Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय दर्शन

HIMALAYA DARSHAN

R
०८१
सं३९हि

हिमालय दर्शन प्रकाशन समिति

डा० शिवानन्द नगर, टिहरी गढ़वाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
०८१
ब३८हि

71772

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

71772

71772

०८१
ब ३८ हि

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

वर्ग संख्या ——— आगत संख्या ———

पुस्तक - वितरण की तिथि नीचे अंकित है इस तिथि सहित 15वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए । अन्यथा 5 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब - दण्ड लगेगा ।

1482
26-1-84

11 FEB 1991

31/8

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
R
0८१
व२१ हि
... ... विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

71772

हिमालय दर्शन

सम्पादक :

योगेश चन्द्र बहुगुणा

★

प्रकाशक :
हिमालय दर्शन प्रकाशन समिति,
शिवानन्दनगर, टिहरी गढ़वाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक :
हिमालय दर्शन प्रकाशन समिति,
शिवानन्दनगर, टिहरी गढ़वाल,
उत्तर प्रदेश ।

वितरक :
दूनघाटी शिक्षण संस्थान,
गुमानीवाला, डा० सत्यनारायण,
देहरादून, उत्तर प्रदेश ।

मुद्रक :
तरुण हिन्द प्रेस, ऋषिकेश

आवरण :
विन्सटन जे. क्रीडो

आवरण मुद्रक :
साहित्य मुद्रणालय, अहमदाबाद

संख्या : १००० प्रतियां
मूल्य : ५०-०० पुस्तकालय संस्करण
३५-०० सामान्य संस्करण

Himalaya Darshan : EDITOR : Yogesh Chandra Bahuguna

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री शांतिलाल त्रिवेदी और श्री सुन्दरलाल
बहुगुणा द्वारा आजीवन हिमालय क्षेत्र
की सेवाओं को निमित्त बनाकर
हिमालय के ज्ञात-अज्ञात सेवकों
के चरणों में आदर व प्रेम
सहित समर्पित

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महान हिमालय के महान सेवक

परम दिव्य सत्ता को मैं नमन करता हूं। यह समस्त अस्तित्व का उद्गम है। यहीं अदृश्य सहायक और जीवन का अन्तिम ध्येय है। पावन हिमालय के प्राचीन और अर्वाचीन संतो और ऋषियों व सर्वशक्तिमान परमात्मा के परम आशीर्वाद इस ग्रन्थ के पाठकों और उन दिव्य आत्माओं के ऊपर रहें जिन्होंने इस प्रकाशन कार्य को सफल बनाया। मौन हिमालय की शांति और निर्मलता समस्त विश्व में प्रतिबिम्बित हो।

इस प्रकाशन के माध्यम से श्री शांतिलाल जी त्रिवेदी और श्री सुन्दरलाल जी बहुगुणा को उनकी निस्वार्थ सेवाओं, समर्पित जीवन-आदर्शवाद और उच्च आदर्शों के प्रति उनकी निष्ठा के लिये अपना परम आदर भाव प्रदर्शित करने का अवसर पाकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। मेरी प्रार्थना है कि परमात्मा इन दोनों को दीर्घ जीवन, आरोग्य निस्वार्थ सेवाओं में सफलता और हार्दिक आकांक्षाओं की सम्पन्नता प्रदान करे। उनका अनुकरणीय जीवन भविष्य के अनेक वर्षों तक विस्तार करे और उन सब लोगों को प्रेरणा प्रदान करता रहे जो अपनी मातृभूमि भारतवर्ष और सुदूर क्षेत्रों में निवास करने वाले विस्मृत बन्धुओं को प्यार करते हैं।

हिमालय का क्षेत्र इस महान धरती का मुकुट का मणि है। अतीतकाल से वर्तमान तक हिमालय का क्षेत्र हमारे देश और देशवासियों के जीवन में अद्वितीय महत्व का स्थान रखता है। यही वह क्षेत्र है, जहां गहन ध्यान में स्थित होकर महान संतों व सिद्धों ने परम शाश्वत आध्यात्मिक वास्तविकताओं की खोज की। धर्म और अध्यातम की हमारी पावन धरती पर हिमालय सदा से ही त्याग, तपस्या, ध्यान और ज्ञान का विशेष क्षेत्र रहा है।

हिमालय क्षेत्र को तपोभूमि या देवभूमि के नाम से जाना जाता है। यह दिव्य ज्ञान का उद्गम क्षेत्र भी है। यह ज्ञान ही हमारे सनातन धर्म की आधारशिला है, हमारे राष्ट्र का पालना और हमारी सफलता की पौधशाला है।

किसी राष्ट्र और उसमें निवास करने वाले लोगों के जीवन के बाह्य और आन्तरिक पक्ष होतेहैं। बाह्य पक्ष सतत् परिवर्तनशील और अस्थिर होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि ऐसा कोई आन्तरिक प्रवाह न हो, जिसमें कोई जीवन्तता न हो, जिसमें कुछ शाश्वत मूल्य न हों, तो यह बाह्य जीवन निष्फलता में बिखर सकता है। यही पर हमें उनके आदर्शों, शाश्वत मूल्यों, ध्येय की कल्पनाओं, मनुष्य जीवन के दृष्टिकोणों और वृत्तियों के मजबूत आधारों की खोज करनी होती है। मानव ज्ञान के इस क्षेत्र में सामान्यतया भारतवर्ष द्वारा और विशेषतया उत्तराखण्ड क्षेत्र ने मानव कल्याण के लिये अमूल्य देन दी है। महर्षि व्यास, वशिष्ठ, अगस्त्य आदि महान् विभूतियों के नाम इस हिमालय क्षेत्र से जुड़े हुये हैं। हमारी प्राचीन सभ्यता, संस्कृति और धर्म के पवित्र पिता व्यास ने बद्रीनाथधाम के निकट पवित्र धर्मशास्त्रों की रचना की। वेदान्त सूत्र, महाभारत और दूसरे धर्मग्रन्थों की रचना वेदव्यास द्वारा इसी हिमालय क्षेत्र में की गई। यहीं से मानव की दिव्यता और आत्मा की शाश्वतता की घोषणा हुई। यहां से हर समय समस्त मानव जाति को 'उठो, जागो और आध्यात्मिक प्रज्ञा को उपलब्ध करो' का संदेश सुनाया गया।

इस हिम-प्रदेश से आन्तरिक, आत्मिक, अभीप्सा और शोध का रोमांचकारी संदेश सर्वत्र फैला है और सुप्त मानव जाति में इससे आन्तरिक स्फुरण हुआ है। विश्व-कुटुम्ब को हिमालय क्षेत्र की यह अनुपम भेंट है। कैलास-मानसरोवर और गंगा के इस पावन क्षेत्र से जीवन की कठिन राहों पर चलने के लिये प्रकाश की किरण उपलब्ध होती है।

शिवानन्द नगर —स्वामी चिदानन्द
जिला टिहरी-गढ़वाल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान्य-जन का अपना आदमी

भूदान आंदोलन में और उससे भी पहले देश भर में जिन कार्यकर्ताओं से निकट का संबंध आया, उनमें सुदरलाल का स्थान मेरे हृदय में बहुत ऊंचा है। स्वार्थ, त्याग, तितिक्षा, सातत्य पराक्रम और वीरवृत्ति के गुणों में शायद ही कोई उसकी बराबरी कर सकेगा। विशेष बात यह है कि इन गुणों का विनियोग उसने खुद हौतात्म्य प्राप्त करने के लिये नहीं किया, बल्कि उत्तराखण्ड के लोगों का शुभ–पुरुषार्थ जगाने के लिये किया है। उत्तराखण्ड में शराबबन्दी और वन-संरक्षण जैसे सवालों को सुलझाने के लिये उसने लोगों के पराक्रम का आह्वान किया। लोगों का पक्ष लेने का परम्परागत नेताओं का हमेशा का राजमार्ग छोड़कर, लोगों को साथ लेकर नये-नये कर्त्तव्य की पगडंडियां निर्माण करके उन पर लोगों के साथ चलने का रिवाज चलाया। लोकशाही का मार्ग प्रशस्त करने की उनकी यह हथौटी विलक्षण है। लेकिन यह सारा करते वक्त सामान्य लोगों से 'विलक्षण' वह कभी नहीं बना। उसका जीवन सामान्य कार्यकर्ता के जीवन से कुछ अधिक ही कष्ट का है। कोई भी मोह या महत्वाकांक्षा उसके कर्तव्याचरण के आगे नहीं आये। अपने त्याग या पराक्रम का अभिमान उसे कभी छुआ नहीं है, क्योंकि उसके आचरण में सहजता है, कर्तव्य प्रेरणा का ऊपरी आविर्भाव नहीं।

विमला नौटियाल भी मेरी परिचित थी। लेकिन विमला बहुगुणा होने के बाद उसका व्यक्तित्व ही अनोखा हो गया है। सुन्दरलाल का सोना हो गया, मानो दो पारसमणि ही एक दूसरे के पास आये।

सुन्दरलाल का १९४२ के आन्दोलन के वक्त का जीवन तो एक अद्भुत कथा ही है। उसका नित्य मुस्कराता चेहरा देखकर यह इतना बड़ा तपस्वी और मनीषी होगा यह खयाल ही छूट जाता है।

मैं उससे उमर में कितना ही बड़ा उसके पिता जैसा ही हूं। चि० चन्दु भी इस साल पचास साल का होगा। लेकिन पराक्रमी पुत्र का अभिवादन पिता भी प्रणाम पूर्वक करें, ऐसा संकेत ही है। मेरे अन्तःकरण की भी वैसी प्रेरणा है।

—दादा धर्माधिकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

लेख	लेखक	पृष्ठ
हे रहस्यमय, तुम्हें नमस्कार !	निकोलस रोयरिख	१
हिमालय की स्मृति	सुमित्रानन्दन पन्त	२
आत्मचेतना का प्रतीक हिमालय	विनोबा	३
हिमालय का सन्देश	काका कालेलकर	४
नगाधिराज	काका कालेलकर	७
ऊर्ध्वमुखी यात्रा का प्रतीक हिमालय	मीरा	११
भारतीय हिमालय	डॉ. राममनोहर लोहिया	१५
हिमालय का अर्थ	डॉ. गंगाप्रसाद 'विमल'	१६
कालिदास का हिमालय	डॉ. पार्थसारथि डबराल	२४
गंगा की महिमा	एच. एच. विल्सन	२६
पर्वतों की गरिमा में देवत्व स्थापना का परिप्रेक्ष्य	वाल्टर लाइफर	२७
हिमालय की उत्पति	डॉ. प्रेमस्वरूप सकलानी	२८
हिमालय और उसकी वनस्पतियां	गोविन्द रजवार	३१
मानवीय समृद्धि में हिमांचलीय औषधियां	सच्चिदानन्द मैठाणी	३७
पर्वत और मानव	डॉ. डी. डी. पन्त	४४
केन्द्रीय व्यवस्था को बदलने की प्रयोग भूमि–पर्वतीय क्षेत्र	रघुवीर सहाय	५२
गंगा का उद्गम या प्रस्रवण क्षेत्र	सुन्दरानन्द	५६
हिमालय एवं भारतीय भू–भाग	डॉ. राम लखन सिंह	६५
आज का पहाड़	गिरीश तिवाड़ी/शेखर पाठक	६२
पर्वतीय विकास किधर	सुन्दरलाल बहुगुणा	१२५
उत्तरकाशी की संस्कृति और इस पर महाभारत कालीन प्रभाव	जितेन्द्रसिंह/रघुनाथसिंह नेगी	१३७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख	लेखक	पृष्ठ
उत्तराखंड की जन जातियां	डॉ. प्रयाग जोशी	१४६
धर्माचार्यों की भ्रमणस्थली उत्तराखंड	कु. आशा शाह	१५४
रमणीय हिमाचल प्रदेश	श्रीमती प्रसन्ना पारेख	१७३
कुमाऊंनी लोक साहित्य	वंशीधर पाठक 'जिज्ञासु'	१८२
गढ़वाल के देवी-देवता और जागर गीत	डॉ. गोविन्द चातक	१८७
कुमाऊंनी—भारतीय आर्य भाषाओं की खिचड़ी भाषा	प्रेमसिंह नेगी	१९६
गढ़वाल के विजेता सैनिक	अजयसिंह रावत	२०४
कुमाऊंनी लोकसाहित्य के वातायन से	रमेशचन्द्र पन्त	२०९
गढ़वाली का गौरव काव्य—भूम्याल	डॉ. गोविन्द चातक	२१७
गढ़वाल के हिन्दी कवि मोलाराम	अबोध बन्धु बहुगुणा	२२७
कामिट पर्वत शिखर पर	कु. चन्द्रप्रभा ऐतवाल	२३८
चन्द्रसिंह गढ़वाली	अजयसिंह रावत	२४४
भारत के आधुनिक बराह मिहिर श्री मुकुन्द दैवज्ञ	शक्तिप्रसाद बड़थ्वाल	२४८
आत्मदानी कलाकार श्री अवतारसिंह पंवार	डॉ. बनारसीदास चतुर्वेदी	२५२
पत्रकारिता में उत्तराखण्ड के पर्वतीयों का स्वातन्त्र्य पूर्व योगदान	चन्द्रशेखर बडोला	२५७
स्वामी रामतीर्थ की साधना भूमि उत्तराखण्ड	विद्यानन्द प्रसाद	२६४
स्मृतियों के झरोखे से	सरला बहिन	२८१
परम संकल्प	सुन्दरलाल बहुगुणा	२९७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख	लेखक	पृष्ठ
स्वामी चिदानन्द : पूर्व से लेकर अब तक की यात्रा	सुदर्शन मैठाणी	२९८
युग पुरुष मुकन्दीलाल बारिस्टर और हम	कमल साहित्यालंकार	३०२
ढोल सागर	केशव अनुरागी	३०८

ENGLISH SECTION

The Himalayas : Crisis in the Evolution of Policy and Programmes	Norman Reynolds	2
The Himalayan Kingdoms	Navnit Parekh	12
Hills and Forests in Literature and Life	P.S. Sundaram	28
Uttarakhand : Ecology vs. Economy	Rajshri Pant	33
Quiet Crisis in the Himalayas	A. D. Moddie	36
Kalida's Kumarasambhavam	P. S. Sundaram	45
The Sherpas–The Sons of the Snow	Dr. H.D. Bhatt 'Shailash'	48
What shall we leave to them	Winston J. Creado	54
The Rape	Winston J. Creado	56

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक की ओर से :

हिन्दी जगत् के सुप्रसिद्ध पत्रकार, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी कुछ समय तक कोटद्वार (गढ़वाल) में रहे। क्षेत्रीय भाषा, साहित्य और प्रतिभाओं को आगे बढ़ाते रहने को पराक्रम चतुर्वेदी जी सदा ही करते रहे हैं। कोटद्वार में निवास करते समय उत्तराखण्ड (हिमालय) में सत्ता निरपेक्ष जन-कार्यों और कार्यकर्ताओं से उनका परिचय हुआ, उससे वे काफी प्रभावित भी हुये और उन्होंने इच्छा प्रकट की कि हिमालय क्षेत्र में आजीवन सेवारत कार्यकर्ता श्री सुन्दरलाल बहुगुणा के ५०वें जन्म-वर्ष को निमित्त बनाकर हिमालय के विविध रूपों पर एक ग्रन्थ का प्रकाशन किया जाय। इसका दायित्व उन्होंने मुझ पर सौंप दिया।

कुछ गुरुजनों से मैंने इस विषय पर चर्चा प्रारम्भ की तो एक दूसरा सुझाव सामने आया कि राजकोट (गुजरात) में जन्म लेकर राष्ट्रपिता बापू के आदेश से अल्मोड़ा में रहकर पिछले ५० सालों से हिमालय की सेवा में रत श्री शांतिलाल जी त्रिवेदी के सेवा कार्यों को भी इस ग्रन्थ के प्रकाशन का निमित्त बनना चाहिये; यह सुझाव मुझे अच्छा लगा। इस प्रकार हिमालय क्षेत्र की सेवा में आजीवन निष्ठा पूर्वक कार्य करने वाले इन दो हिमालय सेवकों को निमित्त बनाकर 'हिमालय दर्शन' ग्रन्थ हिमालय प्रेमियों के हाथों में प्रस्तुत है।

हिमालय जितना विराट् है, उतना ही रहस्यमय भी है। कवियों, रचनाकारों,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलाकारों, साधकों, सन्तों, पर्यटकों, तीर्थ यात्रियों और लक्ष्मी के पुजारियों ने हिमालय को अनेक रूपों में और अपने अपने रूपों में देखा है। फिर भी हिमालय की अध्यात्मिक प्रेरणा और सौन्दर्यात्मक बोध ने सभी को प्रभावित व आकृष्ठ किया है।

एक समय में हिमालय को राष्ट्रीय सीमाओं का प्रहरी भी माना जाता रहा है। परन्तु विज्ञान ने देश-काल की दीवारों को तोड़ दिया है और इसलिये वह राजनैतिक धरातल पर भी अत्याधिक महत्व का स्थान पा चुका है। शायद यही कारण है कि हिमालय के नैसर्गिक स्वरूप के साथ साथ अब इस क्षेत्र के निवासियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति व उनकी समस्याओं की ओर भी लोगों का ध्यान आकृष्ट हुआ है इस पर चिंतन-मनन भी होने लगा है।

प्रायः कहा जाता है कि इतिहास अपनी पुनरावृत्ति करता है। मनुष्य जाति के सांस्कृतिक विकास में हिमालय ने अतीत में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। अब ऐसी स्थिति बन रही है कि राष्ट्रों के राजनैतिक-आर्थिक जीवन के सम्बन्ध में भी हिमालय अपनी निर्णायक भूमिका अदा करने वाला है। इसलिये इस विशाल भूखण्ड और उसमें निवास करने वाले लोगों के जीवन के बारे में एक नई सोच का विकास करना ऐतिहासिक अनिवार्यता बन गई है।

इस ग्रन्थ की सामग्री के संकलन में मेरे परम मित्र श्री चन्द्रशेखर बडोला का अविस्मरणीय सहयोग रहा। दिल्ली में एक बस दुर्घटना में उनका देहान्त हो जाने के कारण, वे इस प्रकाशन को अपनी आंखों से नहीं देख सके, लेकिन इस प्रकाशन के साथ उनका जो लगाव था, उस स्मृति को मैं अपने मस्तिष्क से कभी पोंछ न सकूंगा। उन सब लेखकों के प्रति भी मैं कृतज्ञता ज्ञापन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना चाहूंगा, जिनके सहयोग से यह प्रकाशन सम्भव हो सका है। ग्रन्थ के प्रकाशनार्थ आर्थिक सहायता जुटाने में पूज्य स्वामी चिदानन्द जी, श्री हेमवती-नन्दन जी बहुगुणा और बम्बई के श्री कांति भाई शाह, श्री देवराज ममगांई का आशीर्वाद व सहयोग न मिला होता तो इसका प्रकाशन असम्भव ही था। उनके प्रति जितनी भी कृतज्ञता प्रकट की जाय, वह कम ही है।

इस ग्रन्थ के सम्पादन में अनेक दोष हैं, जो मेरे द्वारा दूसरी अनेक प्रवृत्तियों में फंसे रहने का स्वाभाविक परिणाम है। इन कमियों के लिये पाठकों से मेरी क्षमा याचना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्धि पत्र

अशुद्धि	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
हिमलय दर्शन	हिमालय दर्शन	२	शीर्ष पंक्ति
नागाधिराज	नगाधिराज	६	,, ,,
ऊर्ध्वमुखी यात्रा का प्रतीक हिमालय	भारतीय हिमालय	१७	,, ,,
वनस्पति	वनस्पतियां	३३	,, ,,
,,	,,	३५	,, ,,
महाभारत कालीन प्रभाव	उत्तरकाशी की संस्कृति और इस पर महाभारत कालीन प्रभाव	१३६-१४६	,, ,,
भ्रमणस्थलीं उत्तराखंण्ड	धर्माचार्यों की भ्रमण-स्थली उत्तराखंड	१५५-१७१	,, ,,
भ्रमणस्थली उत्तराखंड	रमणीय हिमाचल प्रदेश	१८१	,, ,,
गढवाल के देवी-देवता	गढवाल के देवी-देवता और जागर गीत	१८६-१६५	,, ,,
कुमाउंनी भाषा	'कुमाउंनी' : भारतीय आर्य भाषाओं की खिचड़ी भाषा	१६७-२०३	,, ,,
साहत्य	साहित्य	२०६	लेख की शीर्ष पंक्ति
वातायान	वातायन	,,	,, ,,
कुमाउंनी लोक साहित्य	'कुमाउंनी' लोक साहित्य के वातायन से	२११-२१५	शीर्ष पंक्ति
गढवाली का गौरव काव्यभूम्याल	गढ़वाल के हिन्दी कवि मोलाराम	,२३७	, ,,
दशन	दर्शन	२५४	,, ",
पत्रकारिता में उत्तरा-खंड का योगदान	पत्रकारिता में उत्तराखंड के पर्वतीयों का स्वातंत्र्यपूर्व योगदान	२५६-२६३	,, ,,
पूर्व लेकर	पूर्व से लेकर	२६६	,, ,,
Reyolds	Reynolds	2	Writer's name
Himakayas	Himalayas	14	head line
An	And	30/32	,, ,,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साभार उधृत

१. भारतीय हिमालय	डा. राममनोहर लोहिया	जन मासिक
२, आज का पहाड़	गिरीश तिवाड़ी/शेखर पाठक	नैनीताल समाचार
3. Quiet Crisis in the Himalaya	A. D. Moddie	Himalayan Journal
४. नगाधिराज	काका कालेलकर	हिमालय यात्रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे रहस्यमय, तुम्हें नमस्कार !

• निकोलस रोयरिख

हिमालय ! ऋषियों की तपोभूमि हिमालय ! यहां कृष्ण की पावन बंशी के स्वर प्रतिध्वनित हुये थे ।

अमिताभ गौतम बुद्ध का अवतरण यहीं हुआ था । वेदों की रचना भी इसी के प्रांगण में हुई । पाण्डवों ने इस क्षेत्र में शरण ली । यह पावन प्रदेश आर्यावर्त है । यही संभला है हिमालय, विश्व का वैभव ! यह है हिमालय, पावनता का पुण्य प्रतीक !

ओ विश्व–विमोहन भारत, तुम्हारी प्राचीन महत्ता ने, हरे-भरे अंचल ने, तुम्हारे वैभवशाली नगरों और मन्दिरों ने—तुम्हारे देव-वनों ने, तुम्हारी पवित्र सरिताओं ने और तुम्हारे विराट् हिमालय ने जो गरिमा और प्रेरणा मुझे प्रदान की है, उसके लिए मेरा हार्दिक अभिनन्दन स्वीकार करो !

हिमालय के उत्तुंग शिखरों के आरोहण में, अभियान में एक अव्यक्त अनिर्वचनीय आनन्द निहित है । अन्तरात्मा की कोई शक्ति हमें सतत् इस उच्चता की ओर बढ़ने के लिए आह्वान करती रहती है । यदि कोई हिमालयोन्मुख इन साहसिक यात्रियों का प्रारम्भ ढूंढ़ने का उपक्रम करें तो अद्भुत परिणाम प्रकाशित होगा । वस्तुतः इन शिखरों के आकर्षण की पृष्ठभूमि का परिज्ञान यह सिद्ध कर देगा कि हिमालय 'अप्रतिम' क्यों है ? अज्ञात अतीत काल से असंख्य विभूतियों का इन पार्वत्य अंचलों से सम्बन्ध संग्रथित है ।

हे हिमागार, हे वसुधा के यशोस्नात सौन्दर्य, हे रहस्यमय, तुम्हें नमस्कार है । तुम्हारा यह अतन्त वैभव, तुम्हारा यह दिव्य लोक युग-युग से आकर्षण का केन्द्र रहा है । तुम्हारे दर्शनमात्र से ही चित्त उत्फुल्ल और भव्य भावनाओं से परिपूर्ण हो जाता है ! तुम धन्य हो, तुम अनन्त हो !!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय की स्मृति

देख रहा था खड़ा निकट ही हिमवत् नव जनमोत्सव,
गौरव से उन्नत कर मस्तक, बरसा आसी वैभव ।
अमरों का अधिवास, पुण्य शिखरों से अक्षय कल्पित,
सात्विक आत्मोल्लास, चेतना में एकान्त समाधित ।
स्वर्गिक गरिमा से उठकर, नैसर्गिक सुषमा में स्थित,
स्फटिक श्रृंग निर्वाक नीलिम में थे स्वर्ण निमज्जित ।
उतर रहा था हेम गौर चूडों पर मौन अतन्द्रित,
ज्योतिकाय चैतन्य लोक सा नव प्रभात दिग प्रहसित ।
फहराते थे आरोहो पर नीहरो के केतन,
शुभ्रारूण छायातप कंपित, रश्मि ज्वलित नव चेतन ।
अतल गहनताओं से जग उत्कर्षों में नभ-चुम्बित,
अध्यात्मिक परिवेश शांत, लगता था विस्मय स्तम्भित ।

• सुमित्रानन्दन पन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मचेतना का प्रतीक हिमालय

• विनोबा

भगवान् ने हिमालय की गणना विभूतियों में की है। उसकी यथोचितता का अप्रत्यक्ष अनुभव मिल रहा होगा। कुछ विभूतियों का महत्व तत्कालीन होता है। वैसी ही बात गीता में भी आई है। पर कुछ विभूतियां जो विशेषत: निसर्गात्मक होती हैं, उन्हें चिरन्तन कहा जा सकता है। यों तो दरअसल इस जगत में एक आत्म तत्व ही चिरन्तन है। और विभूतियों का वर्णन करते समय "अहं आत्मा गुडाकेश" इसी प्रकार आरम्भ किया है। इस महान विभूति में बाकी सब विभूतियों का सहज ही समावेश हो जाता है। बाह्य विभूति दर्शन से जो आनन्द होता है, उसका भी कारण यही है कि उसमें आत्मा का गुण प्रकट होता है।

समुद्र को देख कर आत्मा की गम्भीरता, कमल को देख कर आत्मा की अलिप्तता, रात को देख कर आत्मा की अव्यक्तता, सूर्य को देख कर आत्मा की तेजस्विता, चन्द्र को देख कर आत्मा की आल्हादकता, हिमालय को देख कर आत्मा की स्थिरता इत्यादि आत्म भावों का अनुभव होता है, इसलिए आनन्द लब्धि होती है। छपे हुए अक्षर सुन्दर प्रतीत होते हैं, क्योंकि उसमें आत्मा की व्यवस्थितता प्रकट होती है और व्यवस्था के मानी है समता। लिखे हुए अक्षर भी सुन्दर प्रतीत होते हैं। उसका कारण यह है कि उसमें हमारी आत्मा की स्वच्छन्दता और स्वतंत्रता प्रकट होती है! जहां-जहां आत्मा की यत्किंचितता की उपलब्धि होती है, वहीं सौन्दर्य, सन्तोष, समाधान और सुख का वास होता है। सृष्टि दर्शन से प्राय: सभी को आनन्द होता है। परन्तु सृष्टि में समाये हुए आत्म तत्व की जिसे पहचान होती है, वह कवि कहलाता है।

हिमालय की सन्निधि में रहकर बहुतों ने महान तपस्या की है। उस तपस्या की पावनता हिमालय के शुभ्र अंग की कांति के रूप में झलकती है। अनेक ऋषियों ने उस (हिमालय) की गुफा में बैठ कर जगत के हित का चिंतन किया है। उनकी वह विश्व-कल्याण की कामना गंगा आदि नदियों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप में आज भी बह रही है। हिमालय के शिखरों पर शरीर से और उन्नत विचारों से अनेक ऋषियों ने आक्रमण (उलंघन) किया है। वहां से बहने वाले अनेक विचारों की पवित्र हवा का प्रभाव हिन्दुस्तान के हर मनुष्य के हृदय का आलिगन करके उसे जगाता रहता है।

हिमालय का संदेश

• काका कालेलकर

कहते हैं दुनिया के सब पहाड़ों में हिमालय कल का बच्चा है। मुझे इसका न रंज है, न अभिमान। कल का बच्चा सही लेकिन उसकी उम्र कम से कम पांच दस लाख वर्ष जरूर है। पहाड़ों के परिवार में कोई सबसे बूढ़ा और कोई सबसे जवान होगा ही।

हमें पिता के तौर पर हिमालय मिला है। इसकी धन्यता मैं जरूर अनुभव करता हूं। हिमालय पर्वत माला दो हजार मील लम्बी और दो सौ मील चौड़ी जरूर है, और सारा हिमालय विशाल चन्द्र रेखा जैसा है। इतनी बात भारत के हर बच्चे को मालूम होनी ही चाहिए। भारत के इस पार शिवालिक पहाड़ है और उस पार मान्धाता है। यह भी हम कभी भूलें नहीं।

लोकमान्य तिलक कहते हैं कि आर्यों का मूल बसतिस्तान उत्तरी ध्रुव की ओर था। उन्होंने इसके लिए वेद ग्रन्थों में से अकाट्य प्रमाण दिये हैं। ज्योतिष और भू-स्तर शास्त्र भी इसका समर्थन करते हैं। यूरोप के चन्द लोग कहते हैं कि आर्यों का मूल स्थान स्विट्जरलैंड की ओर था। समर्थन के लिए वे भाषा शास्त्र अथवा शब्द शास्त्र को ले आते हैं। आर्यों का मूल स्थान यूरोप मे था, ऐसा कहे विना उन्हें संतोष नहीं होगा। जर्मनी के लोग कहते हैं असली आर्य हम ही हैं। आर्य जाति को वे कहते हैं इण्डो जर्मनिक। जिनका इतिहास समुज्ज्वल है, उनके साथ सम्बन्ध जोड़ने का प्रयास कोई करे, तो इसका प्रतिवाद हम नहीं करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बचपन में हमें ऐसा सिखाया गया था कि आर्यों का मूल स्थान एशिया यूरोप के बीच जो कैस्पियन सागर है, उसी के आस-पास था। हमने तुरंत मान लिया कि कैस्पियन समुद्र कश्यपीय सागर रहा होगा।

पर आज कोई मुझसे पूछे कि आपका दिल क्या कहता है? तो मैं एक एक क्षण के लिये भी द्विविधा में पड़े बिना कहूंगा कि हमारा आदिम स्थान हिमालय ही है। इससे पहले इतिहास से और प्राग इतिहास से मुझे कोई मतलब नहीं है। आर्य जाति की भावना कहती आई कि हमने प्रारम्भ में हिमालय में तपस्या की है। आर्य जाति के माता पिता शिव और पार्वती हिमालय के तिलक समान पर्वत पर विराजमान हैं। हमारे देवी-देवता हिमालय में रहते हैं, इसलिए कालिदास ने हिमालय को देवतात्मा कहा है।

सारे देव और ऋषि मुनि स्नान करने के लिए हिमालय में जाते हैं। मानसरोबर में जाते हैं। उसके नजदीक ही रावण हृद का सरोबर भी है। गौरीकुण्ड भी इन दोनों के नजदीक ही है। भारत की चार नदियों और चीन की दो प्रजनन नदियों का उद्गम भी कैलास-मानसरोवर के इर्द गिर्द का प्रदेश ही है।

हमारे हृदय की भावनाएं जितनी हिमालय के इस पार के प्रदेश के साथ जुड़ी हैं, उतनी ही हिमालय के उस पार भी संग्रथित है। और हमारे शाक्य मुनि भगवान बुद्ध की कृपा दृष्टि भी हिमालय के दोनों ओर एक सा आशीर्वाद बरसा रही है।

हिमालय का दर्शन एक भारतीय के आशय को पावन करता है। हिमालय की हवा प्राण दायिनी है। हिमालय के झरनों में से अमृत जल बहता है। हिमालय की बनस्पतियां और जड़ी बूटियां आज भी हमारे साधुओं के बटुओं में पाई जाती हैं।

जब तक हमारे ऋषि मुनि और धर्मकार आचार्य हिमालय के साथ सम्बन्ध रखते रहे, तब तक हमारी संस्कृति की उज्ज्वलता कायम रही। जब हमारे सम्राट अपने वैभव से छूट जाते थे, तब वे अपने अन्तिम दिन व्यतीत करने के लिए हिमालय में ही जाते थे। उस काल के तीर्थ स्थानों और कलापूर्ण मन्दिरों के अवशेष आज भी हिमालय में जगह जगह पाए जाते हैं। किसी ने सही कहा है कि पहाड़ों का सन्देश है, स्वावलंबन और स्वराज्य और विशाल मैदानों का सन्देश है साम्राज्य। मास्को, इन्द्रप्रस्थ, पेकिंग ये सब साम्राज्यों की राजधानियां थी। सिर्फ गांधी जी ने कहा कि विशाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैदान, लोकमाता नदिया और समुद्र, खेती व बाग बगीचे हमें अहिंसा का संदेश देते रहे हैं। हम यह भी मानने को तैयार हैं कि हम कहेंगे कि मानव जीवन के सब प्रश्नों का चिन्तन तो हिमालय के हिम धबल शिखरों की सन्निधि में ही हो सकता है। बुद्ध भगवान कहते थे कि ध्यान के लिए नजर के सामने पानी या भूमि का मण्डल बनाओ और चिन्तन के लिए चक्रमण करते रहो। हमारी संस्कृति के संस्थापक संचालक और संरक्षक साधु सन्तों ने ध्यान के लिए चिरहिम विभूषित शिखरों को ही पसंद किया है, और चिन्तन के लिए गंगोत्री, जमनोत्री, केदार बद्री, महाबलेश्वर, अमर कंटक आदि नदी उद्गमों की यात्रा ही बताई।

ध्यान चिंतन की परम्परा हम भूल गए हैं। हमारे अध्यात्म के साथ हमारा साधनात्मक परिचय टूट गया है। हम तो केवल तार्किक, दार्शनिक चर्चा तक ही आध्यात्म को स्वीकार कर रहे हैं। इसलिए हमारे सन्तों की बाणी और हिमालय की प्रेरणा हमारे हृदय को पूर्णतः उजागर नहीं करती और हमें प्राणों की समृद्धि नहीं मिलती।

लेकिन हमारी त्रुटियां कितनी भी हों, हम अपने पुरखों के वंशज हैं। उन्हीं का खून हमारी नसों में बहता है। थोड़े से प्रयत्न से हम अपनी पैत्रिक, आध्यात्मिक संपति फिर से प्राप्त कर सकते हैं। वाह्य प्रकृति और हमारी मानसिक प्रकृति दोनों हमें अवश्य मदद देंगी। विघ्न आता है हमारी आधुनिक शिक्षा की संकुचितता की ओर से। मैं मानता हूं कि अगर हम पश्चाताप करेंगे और भक्ति नम्र होकर हिमालय की यात्रा करेंगे, तो हमें हिमालय का संदेश अवश्य सुनाई देगा।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नगाधिराज

• काका कालेलकर

विदेश में रहने वाले मनुष्य मात्र में अपनी जन्मभूमि का स्मरण, जन्मभूमि बिरह और वापस जन्मभूमि में पहुंच जाने की इच्छा हमेशा जागृत ही रहती है। बाबर को हिन्दुस्तान की जबरदस्त शाहंशाहत मिली और अमृत सा मीठा आम खाने को मिला फिर भी उसे मध्य एशिया के अपने तरबूजों की याद बार बार आया करती थी। साथ ही उसकी यह इच्छा भी रही कि चाहे जीते जी अपनी जन्मभूमि के दर्शन करना उसके भाग्य में न हो फिर भी आखिर उसकी हड्डियां तो उस जन्मभूमि में ही गिरनी चाहिए। हिन्दुस्तान में आकर नवाबी ठाठ से रहने वाले अंग्रेज को भी तब तक चैन नहीं पड़ता था जब तक छह महीनों की छुट्टी लेकर वह स्वदेश नहीं हो आता। कुछ इसी तरह की उत्कंठा हिमालय के प्रति हिंदुओं के मन में रहती है। इतिहास लेखक आर्यों के मूलस्थान के रूप में उत्तर ध्रुव की कल्पना चाहे करें और भाषाशास्त्री इसका गौरव मध्य एशिया को चाहे दें और देशाभिमानी लोग चाहे हिंदुस्तान को ही आर्यों की आद्यभूमि सिद्ध करे तो भी अगर राष्ट्र के हृदय में बिराजी हुई प्रेरणा का अपना कोई ऐतिहासिक महत्व है तो हिमालय ही हम आर्यों का आद्यस्थान है। राजा हो या रंक, बूढा हो या जवान, पुरूष हो या स्त्री हर एक यह अनुभव करता है कि जीवन में अधिक नहीं तो कम से कम एक बार तो हिमालय के दर्शन अवश्य किये जांय, हिमालय का अमृत सा जल पिया जाय और हिमालय की किसी विशाल शिला पर बैठकर क्षण भर ईश्वर का ध्यान किया जाय। जब जीवन के सभी करने लायक काम किये जा चुके, इंद्रियों की सब शक्तियां क्षीण हो जांय, जीर्ण देह और शेष आयुष्य भार रूप लगने लगे, तब इस दुनियां रूपी पराये घर में पड़े न रह कर अपने घर में पहुँच कर मरना ही ठीक है। इस उद्देश्य से कई हिंदू अन्न-जल का त्याग करके देहपात होने तक हिमालय में ईशान्य दिशा की ओर बराबर बढते ही चले जाते हैं। हमारे शास्त्रकार यही मार्ग लिख गये है। किसी राजा का राज पाट गया नहीं कि वह हिमालय में पहुंचा नहीं। भर्तृहरि जैसों को कितना ही वैराग्य क्यों न उत्पन्न हुआ हो फिर भी हिमालय के विषय में उनका अनुराग अणुमात्र भी कम न होगा। उलटे वह अधिकाधिक बढ़ता ही जायगा। किसी व्यापारी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिवाला निकालने की घड़ी आ पहुंचें, किसी सौदागर का सब कुछ समुद्र में डूब जाय, किसी की स्त्री कुलटा निकले, किसी की संतान या प्रजा गुमराह हो जाय, बागी हो जाय, किसी के सिर कोई सामाजिक या राजनीतिक संकट आ पड़े, किसी को अपने अध: पतन के कारण समाज में मुंह दिखाना भारी हो जाय, हालत कैसी भी क्यों न हो आस्तिक हिंदू कभी आत्महत्या न करेगा। हिंदुओं के मन में परम दयालु महादेव के प्रति जितनी श्रद्धा है, उतनी ही श्रद्धा हिमालय के प्रति भी है। पशुपति नाथ की तरह हिमालय भी अशरण शरण है। चंद्रगुप्त ने राष्ट्रोद्धार का चिंतन हिमालय में जाकर ही किया था। समर्थ राम दास स्वामी को भी राष्ट्रोद्धार की शक्ति हिमालय में ही बजरंगबली रामदूत से प्राप्त हुई थी। यदि पृथ्वी की सतह पर ऐसी कोई जगह है जहां हिंदू धर्म का रहस्य अनायास प्रकट होता हो तो वह हिमालय ही है। श्री वेद व्यास ने अपना ग्रन्थ सागर हिमालय की गोद में बैठ कर ही रचा था। श्रीमद् शंकराचार्य ने अपनी विश्व विख्यात प्रस्थान त्रयी हिमालय में ही लिखी थी और स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ ने भी हिमालय में ही इस बात का विचार किया था कि सनातन धर्म तत्व आधुनिक युग पर किस तरह घटाये जाय, यहां इस बात का स्मरण हुए बिना नहीं रहता कि गांधी जी ने गीता का अपना अनुवाद अनाशक्तियोग भी हिमालय में ही पूरा किया था। हिमालय आर्यों का आद्यस्थान, तपस्वियों की यह तपो भूमि, पुरूषार्थी लोगों को चिन्तन का एकान्त स्थान, थके मांदों का विश्राम स्थल, निराश बने हुओं का सान्त्वना धाम, धर्म का पीहर, मुमूर्षूओं की अन्तिम दिशा, साधकों का ननिहाल, महादेव का धाम और अवधूत की शैया है। मनुष्यों को तो ठीक पशु पक्षियों को भी हिमालय का अपूर्व आधार है। सागर से मिलने वाली अनेक नदियों का वह पिता है। उसी सागर से उत्पन बादलों का वह तीर्थ स्थान है। कविकुल गुरू ने देवतात्मा नगाधिराज को पृथ्वी का मानदण्ड जो कहा है सो अनेक अर्थों में यथार्थ है। हिमालय भूलोक का स्वर्ग और यक्ष किन्नरों की निवास भूमि है। वह इतना विशाल है कि उसमें संसार के सभी दु:ख समा सकते हैं, इतना शीतल है कि सब प्रकार की चिन्तारूपी अग्नि को वह शांत कर सकता है। इतना धनाडच है कि कुंवर को आश्रय दे सकता है और इतना ऊंचा है कि मोक्ष की सीढी बन सकता है। हम ठेठ अपने बचपन से हिमालय का नाम सुनते रहते हैं। बाल कथा, बाल गीत, प्रवास या यात्रा वर्णन इतिहास या पुराण कहीं भी क्यों न देखें सर्वत्र अन्तिम आश्रय तो हिमालय का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही मिलेगा। बचपन से जो आदर्श रमणीय स्थान कल्पना सृष्टि में प्रत्यक्ष हुआ हुआ होगा उसकी कल्पना हिमालय से ही आई होगी।

अरे इस हिमालय ने क्या क्या नहीं देखा, पृथ्वी के असंख्य भूकम्पों और आकाश के हजारों धूमकेतूओं को इसने अपलक भाव से देखा है। महादेव के विवाह उसी ने करवाये हैं। सती के विरह का और कुमारसम्भव का कौतुक उसी ने अपत्य वात्सल्य से किया हैं। भागीरथ तक की रघुकुल की अनेक पीढियों की कठिन तपस्याओं का वह साक्षी है। पाण्डवों की महायात्रा उसी ने सफल की है। लेकिन ये पुरानी बातें क्यों दोहरायी जांय। सन् सत्तावन के पराक्रम में पराजित होने के कारण जो वीर और मुसद्दी हताश और निराश हो गये थे, उन्हें आश्रय देने वाला भी हिमालय है। यदि भूस्तर शास्त्रों की दृष्टि से देखना ही प्राणिशास्त्र की दृष्टि से विचार करना हो, ऐतिहासिक दृष्टि से शोध करनी हो, भव्यता के दर्शन करने हों, धर्म तत्वों की गांठ सुलझाने का प्रयत्न करना हो तो हिमालय ही वह जगह है, जहां सब प्रकार से आपका समाधान हो सकता हैं, क्योंकि हिमालय आर्याव्रत के एक-एक युग के पुरुषार्थों का साक्षी रहा है। वह यह सब जानता है।

यह कहना कठिन है कि हिमालय जाने की पहली इच्छा मेरे हृदय में कब पैदा हुई थी। शायद मेरे जन्म के साथ ही वह भी जन्मी होगी। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, बहुत सम्भव है कि वह वंश परम्परागत राष्ट्रीय भावना रही हो। जब यात्रा का विचार करते हैं तो मन में यह ख्याल पैदा होता है कि हम अपना घर छोड़ कर परदेश जा रहे हैं। पर जब जब मैंने हिमालय जाने का विचार किया है, तब तब मेरे मन में यही भावना प्रबल रूप से उठी है कि मैं स्वदेश जाने वाला हूं, नहीं नहीं स्वगृह जाने वाला हूं, और इस विचार ने मेरे मन को हमेशा गुदगुदाया है। आज भी जब कोई हिमालय की बात छेड़ता है तो मुझे उतना ही आनंद आता है, जितना ससुराल में रहने वाली बहू को मायके की बात सुनकर हुआ करता हैं। लड़की जब मायके से दूर जा पड़ती है तो वह दिन रात अपने मायके को और मायके वालों को ही बिसूरा करती हैं। इस बिसूरने का नतीजा यह होता है कि मायके का प्रत्यक्ष चित्र एक ओर रह जाता है। वह अपने मन में एक प्रेम चित्र का निर्माण कर लेती है। उसके अपने लिए यह प्रेम चित्र ही एक यथार्थ वस्तु बन जाता है। बिसूरन का, चिंतन का गुण ही यह हैं कि दिल जिस चीज को जैसा देखना चाहता है दिल की भावना कुछ ऐसी बन जाती है कि वह चीज वैसी ही मालूम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने लगती है। दुनियां में किसी को यथार्थ का यथातथ्य ज्ञान होता हो तो भले ही पर जिसे हम अनुभव का प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं उस पर भी हमारी इंद्रियों का रंग चढ़ा ही रहता है। वह निरा ज्ञान नहीं होता। प्रेम चित्र में रंग इंद्रियों का नहीं, हृदय होता है। आदर्श भावनाओं का होता है और इसी कारण वह चित्र हमारे जी का, विशेष निकट का और विशेष रूप से सच्चा प्रतीत होता है। तर्कवादी चाहे इस चित्र को खोटा माने पर संसार का अनुभव और संसार का रहस्य सभी कुछ तर्क की छलनी में चाला नहीं जा सकता। तर्क सोचता है कि मैंने जो व्यवस्था बांध दी है जो क्रम तय कर दिया है दुनिया को वह मानना ही चाहिए, जो मेरे गले नहीं उतरता वह सत्य हो ही नहीं सकता। अस्तु।

हिमालय के जो शब्दचित्र मैं दूंगा वे प्रेम चित्र ही होंगे। जिस वस्तु से प्रेम हो जाता है उस वस्तु का प्रेम रहित विचार हो नहीं सकता। इसलिए मुझ से प्रेम चित्र छोड़ कर दूसरी किसी चीज की अपेक्षा कोई रखे ही क्यों।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊर्ध्वमुखी यात्रा का प्रतीक 'हिमालय'

• मीरा

संत फ्रांसिस की कहानी है। रात का समय था। असिसी गांव की ऊँची-ऊँची इमारतों पर चंद्र की चांदनी बरस रही थी, कल-कल बहते झरने की तरह नीरव सड़कों पर चांदनी बहती जा रही थी। पर सारे नगर जन गाढ़ निद्रा में सोये हुये थे।

अचानक मन्दिर में घंटानाद सुनायी दिया। आपति सूचक घंटारव सुनकर सारे लोग घबड़ा कर वहां दौड़े आये तो देखा संत फ्रांसिस जोर-जोर से घंटा बजा रहे हैं। लोगों ने चिल्ला कर पूछा—क्या हुआ, घंटा क्यों बजा रहे हैं ? संत फ्रासिस ने शांति से जवाब दिया, आंखें तो जरा ऊपर उठाइये। चांद की तरफ देखिये। कैसी सुन्दर चांदनी खिल रही है।

आज मैं भी वैसा घंटारव करने आयी हूं। संत फ्रांसिस की चांदनी पीने की जो क्षमता थी, उसका लाखवां हिस्सा भी मेरे पास नहीं है। शायद इसी-लिए मैं और जोर से घंटा बजाऊँगी, ताकि समर्थ सृष्टि से कोई नया ही सौंदर्य निर्माण हो जाये।

हां, तो अभी हम हिमालय के दर्शन कर आये। वहां अन्य अनेक अनुभूतियों के साथ एक यह अनुभुति सतत रही कि वहां अपने भारतीयपन की याद सतत्, लगातार आती रही। वहां ऐसा अनुभव बारबार आता रहा कि मैं अपनी देह में समाविष्ट आत्मा के साथ वहां नहीं पहुँची हूं, बल्कि भारतात्मा मुझमे समायी हुयी है, ऐसी विराटता का अहसास होता रहा। इसलिए आज भारतीयों की एक सहोदर, अपने स्वजनों को घंटा सुनाने आयी हूं कि जीवन में एकबार उस भारतात्मा के पास जरूर जाइये। परमात्मा को प्राप्त करने के लिये मन्दिर के देवता की अनिवार्यता नहीं है, परन्तु बहुत सारे लोगों को उस देवमूर्ति से भगवान के पास पहुंचने की सीढ़ी मिल जाती है, वैसे ही इस नगाधिराज के दर्शन की बात है। हो सके तो जब बुद्धि में होश सम्पन्न हो गया हो और शरीर में जोश कायम रहा हो, तभी वहां हो आना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए। जितना निरुपाधिक खाली होकर वहां जायेंगे, उतना अधिक सम्पन्न बन कर आयेंगे।

हिमालय से नाता कब जुड़ा, यह कोई भारतीय याद कर पायेगा? जनम के साथ माँ बाप, समाज जुड़ गये, वैसे ही यह हिमालय सहज है। यह कोई केवल मेरा ही अनुभव नहीं। इतना ही नहीं, यह अनुभव भी करीब-करीब सबको होगा कि सुदूर होते हुए भी हमेशा वह हमको बुलाता रहता है, खींचता रहता है। गुरुत्वाकर्षण जैसा ही दुर्निवार यह हिमालयाकर्षण है, तन से सब लोग वहां जा पा सके यह सम्भव हो या न हो, मन से तो प्रत्येक भारतीय वहां हो ही आता है।

तो वैसी पुकार मुझे भी आती रहती थी, परन्तु इस जन्म में वहां जाने की आशा मैंने छोड़ दी थी, क्योंकि वहां की कड़ी चढ़ाई में मेरी स्थूलता मुझे कितना साथ देगी, इसके बारे में मुझे पूरा संदेह था। परन्तु मित्रों का निमंत्रण आया तो मोह संवरण नहीं कर पायी और उनके साथ निकल पड़ी।

वास्तव में हिमालय जाने की मेरी चाह में हिमालय देखने की उतनी प्रेरणा नहीं थी, जितनी हिमालय को अनुभव करने की थी। हिमालय कोई मिट्टी का पहाड़ तो नहीं है। हिमालय एक भरपूर चैतन्य सागर है। अनेक साधु-संतों, तपस्वियों तथा आत्मार्थियों ने वहां की मिट्टी के कण-कण में, वहां के जल के बूंद-बूंद में और वहां के वायुमण्डल के अणु-परमाणु में प्रभुता को अवतारने का प्रचंड पुरषार्थ किया है। हिमालय जाना यानी उस प्रभुता का कुछ संस्पर्श, कुछ झांकी पाना, यह था मेरे मन में।

और सचमुच वहां की समग्रता में ही कुछ ऐसी भव्यता, दिव्यता बसी हुई है कि जिसका संचार प्रत्येक मनुष्य में हुये बिना नहीं रहता। वहां हम जहां के तहां नहीं रह सकते। समूचे हम हिल जाते हैं। निर्मल शुद्ध व्यक्ति तो शायद बदल भी जाता होगा। इतनी परिवर्तनकारी क्षमता वहां के वातावरण में है। कम से कम वहां की तेजोमय उत्तुंगता हमारी अंत्रकार-गलियों की गहराई का, वहां की भव्यता, हमारी अल्पता का, क्षुद्रता का दर्शन कराये बिना नहीं रहती। यह भी तो बहुत बड़ी कृपा है।

पृथ्वी पर यह एक ऐसी धरती है, जहां अनेक पहाड़ एक दूसरे से घुटने मिला कर पलथीं लगा कर टोली में बैठे हैं। हमारे मैदानी मुल्क में एकाध छोटा सा टीला भी हमें बार-बार इशारा करता रहता है, तो यहां तो पहाड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहाड़ों की ही बस्ती। यहां केवल हम ही आरोहण नहीं करते। यहां के पहाड़ भी आरोहण करते हैं। एक पहाड़ के खंभे पर दूसरा पहाड़, उस पर तीसरा......पहाड़ों का अपना यह उर्ध्वमुखी पर्वतारोहण है। धरती कितनी ऊंची उठ सकती है, उसका सर्वोत्कृष्ट पुरुषार्थ यहां की भूमि ने किया है। जीवन की उर्ध्वमुखी यात्रा का यह सर्वोच्च प्रतीक है। इसका प्रत्यक्ष दर्शन यहां होता है। यहां के पहाड़ों की साधना बंध्य नहीं है, इसकी प्रतीति हो जाती है, जब हम दूर-दूर से देखते हैं उन हिमाच्छादित धवल गिरिशृंगो को। जीवन में कुछ क्षण आते हैं, जिनको हम हाथ से छोड़ना नही चाहते। हिम-शिखरों का प्रथम दर्शन, यह एक ऐसा क्षण है। दूर-दूर पहाड़ों के ऊंचे शिखरों पर छाया हुआ बर्फ। लगता है कि भगवान ने वहां नगाधिराज को आलिंगन दिया और जाते समय अपना उपवस्त्र छोड़ कर गये। प्रियमिलन की प्रेम प्रसादी। भगवान के आश्लेष की बची संकेतरूप शुभ्र चादर।

हिमालय में द्विमुखी यात्रा का दर्शन होता है। एक तो पहाड़ों की अपनी गगनमुखी ऊर्ध्वयात्रा। दूसरी है हिमकन्याओं की निम्नमुखी सागरलक्ष्मी यात्रा। पहाड़ ऊंचा चढ़ता है तो पहाड़ों को तोड़ कर बहती गंगा-जमुना नीचे की दिशा में बहती है। पहाड़ों के प्राणों का धड़कना इन नदियों में सुनायी देता है। पहाड़ों के प्राणों को ये नदियां बहाती हैं। यहां का पहाड़ सूखा पहाड़ नहीं है, आर्द्र है। मालूम नहीं अपने पेट में पहाड़ ने कितनी जलराशि छिपायी है। युगों से गंगा जमुना बहा ही करती है। पहाड़ों में उर्ध्वता है, तो नदियों में गति है। प्रचंड गति से प्रचंड पूर दौड़ते जाते है। पानी के प्रवाह में गति है, जीवन है और साथ साथ दिशा संकेत भी है। धरती की निम्नतम सतह पर उसे पहुंचना है जहां से अथाह महासागर का धीर गंभीर उद्घोष हिम कन्याओं को सतत बुलाया करता है।

जमनोत्री की जमुना नितांत निर्मल, स्वच्छ और पारदर्शिनी। पानी को अपने मूल रंग में देखना हो तो, जमुना को देखो। फिर आगे जमुना, श्यामा, जरूर बनती है, घनश्याम की छाया झेल झेल कर। हजारों फीट की उंचाई पर से नीचे बहती पत्थरों से टकराती, गजराज समान ऊंचे फेन को उठाती, प्रचंड वेगवती गंगा जमुना प्रकृति का रुद्र स्वरूप प्रकट करती हैं। अनेक रहस्यों को अपने में छिपाती वह बेहताशा बहे जाती है। गंगा का पानी जमुना से नितान्त भिन्न। देखते ही पता चल जाये कि यह गंगा है। जमनोत्री के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहाड़ पत्थर की चट्टान, जब कि गंगा के पहाड़ मिट्टी के पहाड़। स्वाभाविक ही उस मिट्टी के कण कण के साथ भिजाती, पिसाती, कुटाती एक रूप होती गंगा नीचे उतरती है। अपने पिता की देह के प्रत्येक अणु के सत्व को आत्मसात् करती वह नीचे उतरती है। इसीलिये शायद 'जान्हवीतोय औषधम्' हो जाता होगा। उसका 'मर्दने मर्दने गुणवर्धनम्' होता होगा। नीचे मैदानों में गंगा का जो शांत धीर गंभीर दर्शन होता है उससे उल्टा रौद्रस्वरूप यहाँ प्रकट होता है। भागीरथी, अलकनंदा, भिलंगना, नारदगंगा, मंदाकिनी, जमुना आदि सारी नदियां हिमालय का प्राण है।

जैसे हिमालय के पहाड़ पवित्र है, नदियां पवित्र हैं, उतना ही पवित्र यहां के यात्रिकों का प्रवाह है। जमुनोत्री, केदारनाथ की दस हजार फुट की ऊंचाई कड़ी चढ़ाई, तंग रास्ते, चिकनी मिट्टी पर से कमर में झुकी मरणासन्न बूढी की आंखो में 'जय केदार बाबा, जय गंगा मैया' पुकारते समय का चमत्कार देखे तो नास्तिक आस्तिक हो जायेगा। न मालूम कौनसी श्रद्धा इन लूले लंगड़े पैरों में ताकत भर देती है। हम बुद्धि प्रधान जीवन जीने वाले लोग। एक दिन एक बूढी मां की परीक्षा करने मैं निकली। केदारनाथ की मूर्ति को देख कर एक दम उसके चरणों में वह लोट गयी और सिसक सिसक कर रोने लगी। हमारे नसीब में स्वानुभूति नहीं थी चिकित्सा थी। बाहर निकल कर उसे ढूंढ कर मैं पूछ बैठी 'मां, आपने भगवान से क्या मांगा ?'

तब राजस्थान की वह अनपढ गवांर बूढी मां मुझसे कहती है "बेटा यहां इतनी दूर इस उम्र में भगवान के पास आकर क्या मांगेंगे, सिवा इसके कि अब तू मुझे अपने में समा ले, अपना ले दीनानाथ। बस तेरी लगन मुझे लगे, और कुछ नहीं भगवान। यहां पति सुख, बेटा सुख, संपति सुख मांगने थोड़े ही आना होता है बेटी।"

मानो एक जोरदार तमाचा मेरे गाल पर पड़ा। सचमुच में वह मेरी मां बन गयी, जो भूली भटकी को राह पर ला रही थी।

सकल तीरथ अपने तन में ही खड़े हो जाये ऐसे वैष्णव जन तो हम बने नहीं है। बाहर तीर्थ करने निकलना ही न पड़े, ऐसी चाह जरूर है हमारी। परन्तु उस चाह को पूरीं करने के लिए सत्संगति जितनी मदद रूप हो सकती हैं उतनी ही मददरूप यह हिमालय संगति हो सकती हैं, ऐसा एक विश्वास पैदा हुआ। सत्संगति में भी तुलसीदास जीं ने आखिर 'देहि सतसंग निजअंग'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कह दिया, ताकि बाहर भटकना न पड़े। परन्तु वह न सधे तब ऐसी यात्रा नि:संदेह मददरूप हो सकती है।

हजारों वर्षों से वह खड़ा है। उसने जो पाया हैं उसे बटोरता है। रहा नहीं जाता उससे। वह ऐसी चीज है, जो जीवन जीने के लिये मदद आ सकती है। जीवन जी लेने के बाद, मरणोत्तर जीवन जीने की कला वहां सीखने जाये, उसके बजाय जीवन के प्रारम्भ में ही जीने की कला क्यों न सीख ले हम ?

———

भारतीय हिमालय

• डा० राममनोहर लोहिया

सबसे पहले तो हमें अपने दिमाग से यह बात दूर कर देनी चाहिये कि हिमालय किसी तरह का संतरी है या पहरेदार है, इस हिमालय को हमें जरा और अच्छी तरह जानना चाहिये, कभी भी हिन्दुस्तान की पुरानी कविता में या साहित्य में, इतिहास में खैर साफ ही है, इस वक्त जो पुरानी बातों को ज्यादा जानते हैं, उनके दिमाग में हिमालय की संतरी वाली शक्ल नहीं रहीं, बल्कि रही है एक तपस्या की भूमि की शक्ल या देवालय की। बर्फ का घर और देवों का घर, ये करीब-करीब एक ही मतलब के शब्द रहे हैं...... हिमालय, देवालय।

भारतीय हिमालय का कुमाऊं व दार्जिलिंग वाला जो हिस्सा है, उस पर मैं कुछ ज्यादा इस वक्त नहीं कहूंगा। हां, कुछ अच्छे दिलचस्प किस्से जो मेरे साथ बीते, थोड़े बहुत मैं बता देता हूं कि हिंमालय का कितना स्थान है हिन्दुस्तान के इतिहास में, साहित्य में और लोकमन में। लोकमन सबसे बड़ी चीज है। वैसे, इन सब चीजों को मैंने स्कूल-कालेज में नहीं पढ़ा है, लेकिन लोकमन कितना हिमालय के साथ जुड़ा हुआ है, वह इसी बात से साबित है कि मेरे साथ एक संस्कृत का प्रोफेसर बद्रीनाथ की यात्रा में हो लिया और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रास्ते पर, यानी तीन दिन में जो किस्से और श्लोक उसने मुझे सुनाये वे अब तक कम या ज्यादा दिमाग में हैं, जैसे उन्होंने मुझे किस्सा बनाया कि मध्य हिमालय में जहां बद्रीनाथ है, और दूसरे इलाके, वहां पार्वती की तपस्या की अब तक दो जगहें हैं, उनके नाम भी अब तक ऐसे हैं कि जो पार्वती की याद दिलाते है, इस इलाकें को शहर, कस्बा या गांव कहना गलत होगा, क्योंकि बड़े निर्जन स्थान होते हैं, एक का नाम है परणा जहां पार्वती पत्ता खाते हुये तपस्या करती थी, 'परणा' पत्ते वाली, दूसरे का नाम है 'अपरणा' बिना पत्तो, जब वह तपस्या करते-करते और आगे बढ़ना चाहती थी तो पत्ता खाना भी छोड़ दिया, दोनों में कोई सात आठ मील का फर्क है, एक जगह गरम सोते का पानी है शायद अपरणा में, और फिर कालिदास तो सबसे ज्यादा रस और रंग के कवि हैं, संस्कृत में कालिदास ने लिखा और सबसे बड़ा है कुमारसम्भव, शिव तक पिघल गये, मैं समझता हूं बर्फ भी पिघली होगी।

वैसे मैं तो माना तक गया था, माना हिन्दुस्तान का सबसे आखिरी गांव है। सर्दी के दिनों में वह खाली हो जाता है, गर्मी के दिनों में बसता है, वहां अपने जो देशवासी रहते हैं उनकी जाति का नाम है तालचा और मालया, वे कैसे लोग हैं उसकी एक तस्वीर मैं आपको बताये देता हूं, जब मैं बद्रीनाथ से लौट रहा था तो बगल से एक तालया या मालया लड़की बहुत तेजी के साथ निकल गई, एक आवाज सर्र जैसी हुयी और फिर मैंने देखा पर चेहरा तो मैं उसका देख नहीं पाया था, मैंने देखा कि एक लड़की अपने दोनों हाथों को पीठ के पीछे कोहनी से मोड़ करके रखे हुये है और थोड़ा सा सामने की तरफ झुकी हुई ऐसी तेजी से जा रही है कि जैसे किसी हट्टे-कट्टे नौजवान के लिये मैदान में चलना मुश्किल हो जाय शरीर तो जिसको आम तौर पर आप लोग कहते हो, अप्पसरा जैसा शरीर जितना मैं देख पा रहा था, क्योंकि वह इतनी तेजी से चली जा रही थी कि पता नहीं चल पा रहा था, मन को मैंने बहुत मनाया कि वह जरा पीछे मुड़ कर देखे तो देखूं तो सही कि चेहरा कैसा है, लेकिन वह मुड़ी नहीं और इतनी देर बाद जाकर मुड़ी कि मैं बहुत अच्छी तरह से देख नहीं पाया उनके चेहरे को, लेकिन इतना मुझे याद है कि जो किस्से कहानियां हम अप्सराओं के बारे में, किन्नरियों के बारे में सुना और पढ़ा करते थे उसका एक नमूना उस दिन मुझे देखने को मिला, कैसी शरीर की ताकत और उसके साथ-साथ सुन्दरता, और फिर किस ढंग से वह चली जा रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। वह अलक रमणा तो थी नहीं, वह तो तेज चली जा रही थी और श्रोणी का भार था नही, वह तो पीठ पर सामान का वण्डल रखे हुये थी।

इस इलाके के लोग अपने भाई बहिन हैं, अपने देशवासी हैं, माना में उस ठंड में जाकर रहते हैं। माना, बद्रीनाथ का सारा इलाका इस वक्त बर्फ से ढका हुआ होगा। वहां जाकर मुझे पता लगा कि हमारे पुरखे यहां तपस्या करने आते थे। बरफ के बारे में मुझे पहले ही पता था। कुछ थोड़ा बहुत उस बरफ को देखा, दूर वाली बरफ को जैसे नीलकंठ वाली बरफ को और कंचन जंघा वाली बरफ को। बचपन से ही बरफ देखता आ रहा हूं, फिर एकाएक खयाल आया जब लोगों ने मुझे बताया कि यह पूरा इलाका बर्फ से ढक जाता है, सिर्फ वह अगह जहां गरम पानी का सोता है, थोड़ा सा खुला रहता है, लेकिन दूर से देखने पर वह भी ढका हुआ दिखाई देता है। गंगा भी बर्फ से ढक जाती है, सब वर्फ, सव सफेद। मुझे एकाएक लगा कि दुनियां में अगर कोई चीज है जो सब चीजें बराबर कर देती है तो वह वर्फ है और कोई चीज नहीं। बद्रीनाथ की उसी यात्रा में एक बार मैंने रात के कोई साढ़े ग्यारह-बारह बजे पहाड़, गंगा, छोटी-मोटी झोपड़ियां, इन सबको अलग अलग देखने की कोशिश की। रात बहुत हो चुकी थी, अन्धेरा था, इसलिये पहले दस-पन्द्रह मिनट कुछ नहीं दिखाई पड़ा। सब बराबर सा दिखाई पड़ा। लेकिन कोई पच्चीस तीस मिनट के बाद कुछ थोड़ा आकार दिखाई पड़ने लगा। चाहे जितना अन्धेरा हो, कुछ न कुछ दिखाई पड़ने लग जाता है। लेकिन जब बरफ गिर जाती है, सब चीजों पर गिर जाती है, मकान पर, पहाड़ पर, नदी पर, तो फिर सब समान हो जाता है और मैं समझता हूं ऐसे ही किसी इलाके में खड़े होकर शंकराचार्य ने यह बात कही होगी—य एकोऽवशिष्टः शिवः केवलोहम्—वही एक है और कुछ नहीं—एक जो अवशिष्ट है वही शिव है, वही केवल है, वही मैं हूं। तो यह है हिमालय। हिन्दुस्तान के साथ कितना जुड़ा है, अगर मैं थोड़ी भी बात आपके सामने रख पाया हूं तो वह है भारतीय हिमालय।

मैंने तो बहुत वर्षों पहले कहा है कि इस भारतीय हिमालय के लिये हो सके तो एक नीति बनाओ, अलग से मंत्रालय जरूरी हो तो बनाओ। मिसाल के लिये उन सब पहाड़ियों में जहां छत की जैसी खेती होती है, कुमाऊं वगैरह में, यानी छोटा सा टुकड़ा पहाड़ से छीन लिया, इसी तरह इस पूरे हिमालय की घाटियों में सैकड़ों मील की फलों की खेती कराई जा सकती है, एक तरह की फल सेना भर्ती करके। वहां के लोग मेहनत बहुत करते हैं, जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बद्रीनाथ जाते वक्त कुलियों को आप देखते होंगे कि वे अपनी पीठ पर, मन डेढ मन का बोझा लाद करके १२,००० फीट ऊंचा चढते हैं या एक दो आदमियों को डंडी में बैठाकर वही १२ हजार फीट ऊंचा ले जाते हैं। ये लोग कम मेहनत नहीं करते, माथे में पट्टी बांधते हैं और उससे डेढ मन बोझ ढोते हैं। वह माथा क्या रह जाता होगा, यह सवाल अलग है। यही लोग किसी और काम में लगाये जा सकते हैं। मैंने लोगों से एक बार कहा था कि यहां तो कानूनी तौर से आदमी, आदमी को न ढो सके, ऐसा कानून पास करा देना चाहिये। इस पर उन्होंने कहा कि ये क्या खायेंगे बेचारे! इसका तो सीधा-सादा जवाब है कि अगर निजी दायरा न कर सके तो सरकारी दायरे की तरफ से सैकड़ों मील की खेती हो। हिमालय का एक मंत्रालय हो, हिमालय के बारे में आर्थिक योजना बना करके पूरे सैकड़ों मील की बात सोचने के लिये कुछ लोग हों, जो उस काम को करें, जिसमें कि वहां के लोग नये जमाने के लायक बने।

इसमें मेकमोहन रेखा के मामले में तिब्बत का जो कैलास मानसरोवर वगैरह का इलाका है—मनसर का एक बड़ा प्रमाण मैंने दिया है—उसके अलावा मोटा सा सवाल है, कौन कौम हैं जो अपने देवी देवताओं को परदेश में बसाया करती हैं? छोटे मोटे को बसा भी दें लेकिन बड़ों, शिव और पार्वती को भी परदेश में बसायें? यह कभी हुआ है? उन्हे कब बसाया, मैं नहीं कह सकता, शिव-पार्वती के किस्से कब गढे गये? मैं तो बिलकुल एक आधुनिक आदमी की तरह बोल रहा हूं, हो सकता है कि कुछ आधुनिक लोग कहें कि अन्तर्राष्ट्रीय बहस में, कूटनीति की बहस में, शिव-पार्वती को क्यों लाते हो? मैं मानकर चलता हूं कि ये किस्से कभी भी गढे, कभी भी ये किस्से बनाये गये, हिन्दुस्तानियों ने बनाये, कब बनाये इसके ऊपर तहकीकात करो। मान लो ४००-५०० वर्ष पहले बनाये या ४-५ हजार वर्ष पहले, जब भी ये किस्से बनाये गये तब कैलास और मानसरोवर भारत का हिस्सा जरूर रहा होगा। तभी तो कैलास और मानसरोवर में इन बड़े देवी देवताओं को बसाया, नहीं तो और कहीं बसाते, खाली पिछले २-३ सौ बरसों की टूटी-फूटी सड़ी किसी संधि को, दस्तावेज को लेकर साबित कर देना कि तिब्बत चीन के साथ जुड़ा हुआ हैं। यह कोई मतलब नहीं रखता है। तिब्बत में कैलास और मानसरोवर का इलाका है, कैलास और मानसरोवर हिन्दुस्तान का कभी न कभी रहा होगा। यह बात बिलकुल तय है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय का अर्थ

• डा० गंगाप्रसाद 'विमल'

हिमालय भारतीय आत्मा में इतने गहरे निवसित है कि उसे भारतीय चेतना से अलग करना असम्भव है। भारतीय विचारणा में हिमालय कब से आया होगा–ऐसा कोई अनुसंधान भी कल्पनीय नहीं है। कहा जा सकता है कि जब से आदमी चेतन हुआ होगा और उसने पहली बार हिमालय को देखा होगा–बस उसे देखने भर से वह उसकी आत्मा की जड़ों तक प्रवेश कर गया होगा। मानव वैज्ञानिकों, भाषाशास्त्रियों और पृथ्वी पर जीवन के उत्पत्ति बिन्दु पर विचार करने वाले विशेषज्ञों ने जब-जब मनुष्य के पहले पहल सचेत होने, सभ्य होने जैसे प्रश्नों पर विचार किया है तब- तब मध्य एशिया के दक्षिणी हाशिये पर निवर्तमान इस विशाल हिम देश की ओर विद्वानों की दृष्टि गई है। आर्यों का अंता-पता खोजने वाले विद्वानों में से अनेकों ने हिमालय क्षेत्र को आर्य-भूमि स्वीकार किया है और अनार्यों के साथ भावात्मक सम्बन्ध स्थापित करने के लिये देवभूमि में अनार्य प्रतिनिधि शिव को सर्वोच्च शिखर प्रदान किया है। आज हमारी कल्पना इतिहास और पुराण वृत्तों के कारण सीमित हो गई है इसीलिए तर्क के लिए प्रमाण जुटाने पर हम उन्हीं प्रदत्त कथाओं का संदर्भ ले पाते हैं। किन्तु कल्पना की किसी उन्मुक्त अवस्था में केवल मानव चेतना का आदि बिन्दु खोजने पर यदि हिमालय हमें सबसे उपयुक्त आधार प्रतीत होता है तो विचार करना चाहिए कि ऐसा क्यों है? वह कौन सा मनोवैज्ञानिक कारण हो सकता है कि एक पूरी जाति, एक विभिन्न राष्ट्रीयताओं के इतिहास में जीने वाले, भावात्मक आधार की एकता में निबद्ध विभिन्नतावादी राष्ट्र हिमालय के लिए इतना लालायित क्यों रहता है?

इतना निश्चित है कि समूचे भारत का हिमालय के प्रति रागात्मक संबंध होने का कोई विशेष अर्थ है। हमारी कल्पना और हमारी सोच-विचार की शक्ति इतिहास और पुराण वृत्तों के कारण सीमित हो गई है। इसी कारण हिमालम का अर्थ पकड़ पाने की हमारी क्षमता भी सीमित हो गई है। अधिक से अधिक आज के विद्वान लोग भी हिमालय के अर्थ के लिए जो उत्तर देंगे वे पहले ही प्रदत्त सन्दर्भों से परे नहीं होंगे। यह आश्चर्य का विषय है कि जैसे-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्रों में विस्तार हुआ है, बहुत सी चीजों के बारे में हमारी विचारणा में संकुचन आया है, और इसके प्रमाण के लिए दूर जाने की जरूरत नहीं है। वनशास्त्री के लिए हिमालय वनों के कारण महत्ववान है, अर्थवान है। यदि हिमालय की वनश्री नष्ट हो जाती है तो वनशास्त्री के लिए हिमालय मिट्टी के ढेर का अर्थ रखेगा। खनिजवेत्ता के लिए हिमालय खनिजों की खान है, और खनिजों की परिसमाप्ति पर उसके लिए उसका महत्व खत्म हो जाता है। एक धार्मिक के लिए हिमालय तीर्थ है—और तीर्थ का दर्शन कर आदमी उसे भूल जाता है। परन्तु......हिमालय ऐसी जगह है जिसे एक बार देखकर आदमी भूल नहीं सकता। वह उसकी स्मृति का हिस्सा बन जाता है। एक अतीत राज की तरह वह आदमी से चिपक जाता है। वह अपने सोते जागते स्वप्नों में उस प्रवृत्ति को, उसके सौन्दर्य को बार-बार देखने की लालसा बढ़ाता रहता है, क्योंकि वह केवल धर्म-तीर्थ नहीं है बल्कि मनुष्य की आध्यात्मिक प्यास को परितृप्त करने वाली चीज भी है। आज संचार साधनों के विकास के कारण हिमालय क्षेत्रों में पहुंचना आसान हो गया है। पर सौ वर्ष पूर्व की कल्पना कीजिये। दिनों, महीनों लोग पदयात्राएं कर हिमालय के बीच जाते थे। यह आध्यात्मिक प्यास केवल धार्मिक या कर्मकाण्डीय अर्थों में नहीं बल्कि मनुष्य चेतना में अवस्थित एक आदिम ललक का हिस्सा है, जिसे वह गरिमा, उच्चता के प्रतीकों में एक खास ढंग से परितृप्त करता है परन्तु हिमालय के समूचे कार्य का यह एक शतांश है। यदि कोई कहे कि भारतीय मानसिकता के लिए हिमालय का यही अर्थ है तो उसे सिर्फ भोला समझिये।

नदियों का जल, प्राकृतिक सौन्दर्य, औषधि सम्पदा, सैलानियों के लिए आकर्षण आदि कुछ ऐसे बिन्दु हैं जो हिमालय के अर्थ को अलग रूपों में प्रतिभासित करते हैं। परन्तु ये सब सम्पूर्ण अर्थ को पहचान देने वाले कारक नहीं हैं। हिमालय को देखकर कौतुक होना स्वाभाविक है। पूर्व काल में हिमालय के जनवासियों को देख शेष भारतीयों के मन में ईर्ष्या थी, इसलिए थी कि वे लोग देवताओं के निकट रहते थे। पवित्र एवं स्वच्छ वातावरण में रहते थे। परन्तु दरिद्र, फटे कपड़े पहने हिमालयवासियों के प्रति दया हो आती है। आज जिस तरह हिमालय के निवासियों के बारे में हमारे विचारों में बदलाव आया है ठीक वैसे ही हिमालय के बारे में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

71772

गोचविचार में बदलाव आ गया है। पुराने लोगों और शास्त्रों की उक्तियों के अनुसार आज जो हिमालय को अजेय बताता है या भारत को सुरक्षा-दीवार कहता है उस पर हंसी आती है। प्रतिक्रियावादी, प्रतिगामी लोग अब भी इस विश्वास में जीते हैं कि हिमालय पर कोई दूसरी शक्ति राज कर ही नहीं सकती। वे विश्वास के बोझ के तले बुरी तरह दबे हुए हैं—उसके यथार्थ को, आज के समाज के सदर्भ में उसके महत्व को, जानने की क्षमता उनमें नहीं है। इसीलिए हिमालय के समूचे अर्थ को पकड़ पाने की शक्ति भी उनमें नहीं है। जब जब हम हिमालय को एक अंग से, एक कोण से, एक चीज के महत्व की अतिबिस्तारित कल्पना में देखेंगे—इस हिमालय को ज्यादा बौना बना डालेंगे। हिमालय को विज्ञान, राजनीति और अध्यात्म के त्रित्व में समझना चाहिये। ये तीन फलक हैं जिन पर हिमालय की अस्मिता तीन भिन्न वर्णों में अंकित है। इन तीनों के संयोजन का कोई मिश्रित अर्थ हिमालय का अर्थ हो सकता है—इन तीनों में किसी एक कोण से देखना हिमालय के समूचे विश्व को खंडित करना होगा।

कहना होगा कि हिमालय की व्यवस्था के भी ये तीन कोण हैं। हिमालय निवासियों के उत्थान के लिये भी इन तीन आधारों से आरम्भ किया जाना चाहिये, क्योंकि जो लोग हिमालय को केवल हिमागार, विशाल चट्टानी पर्वत श्रृंखला और दो या कई राष्ट्रों के बीच की सीमा रेखा मानते हैं, वे हिमालय को तोड़-फोड़ कर देखते हैं। हिमालय केवल चट्टान नहीं है और अगर वह उत्तर और दक्षिणी के दक्षिण केन्द्र में स्थित है तो वह कोई प्राकृतिक सीमा रेखा भी नहीं है। यह दावा भी कि वह एक राष्ट्र की सम्पदा है वर्तमान समय में बहुत अधिक अर्थ नहीं रखता। अगर ऐसा ही होता तो यह समस्या कभी की सुलझ गई होती। हिमालय आज जो है वह हिमालय के मूल निवासियों से अलग कोई चीज नहीं है। यह बहुत ऊंचा है तो घाटियों में बहुत नीचा भी है। उसकी वन-सम्पदा अत्यन्त सम्पत्तिशाली है लेकिन वहां के निवासी निहायत गरीब भी हैं। अत: हिमालय कोई एकान्त चीज नहीं है। अपने उद्ग-मार्थ में वह हिमालयवासियों का घर है और विस्तृतार्थ में भारतीयों की आत्मा का एक अवर्णनीय आधार भी है। अर्थ यह है कि हिमालय का अर्थ मनुष्य के सन्दर्भ में सार्थक है। इसलिये न सिर्फ भारतीयों के लिये बल्कि मनुष्य जाति के लिये उसका विशेष अर्थ है। खासकर आज सम्पूर्ण मानव समुदाय आर्थिक संकट के जिस दौर से गुजर रहा है उसके समाधान के लिये सम्भव है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई नया वातायन खुले—ठीक जैसे शताब्दियों पहले धर्म, दर्शन और शास्त्र ने व्यवस्थायें दी थीं और जिनमें हिमालय के प्रति मानव चेतना के आभार के अनेक दृष्टान्त उल्लिखित हैं। शास्त्रों में हिमालय के प्रति आभार एकान्तिक नहीं है बल्कि वह मनुष्य के सन्दर्भ में ही वर्णित है। स्पष्ट है कि हिमालय का अर्थ मनुष्य के सन्दर्भ के बिना सार्थक नहीं है। आज पुरानी शास्त्रीय व्यवस्थायें, अर्थहीन हो गई हैं, सभ्यता और विज्ञान ने इस शताब्दी में जो छलांग लगाई है उसने पुरानी व्यवस्थाओं की अनुपयोगिता तो स्पष्ट की ही है यह भी स्पष्ट किया है कि मानवता के कुछ ऐसे पक्ष हैं जो सभ्यता और विज्ञान के सन्दर्भ में सदैव उपयोगी रहते हैं—उन मूल्यों का मानव चेतना, संस्कृति की चिरन्तनता से सम्बन्ध रहता है। गहराई से विचार करने पर हिमालय का सम्बन्व संस्कृति के उसी पक्ष से है और शायद यह एक बिन्दु है जो अपने में दूसरे बिन्दुओं को भी समाहित किये हुये है। अर्थात् हिमालय जिस अर्थ में आज महत्वपूर्ण है उसका महत्तम अंश इसी में है कि वह भारतीय संस्कृति से अभिन्न रूप से जुड़ा है।

बीसवीं शताब्दी में विज्ञान और तकनीकी विकास के आलोक में हिमालय का मनुष्य जाति के लिए एक और ही अर्थ सामने आया है और वह यह है कि हिमालय एशिया की एक सन्तुलन कारक शक्ति है। वैज्ञानिकों ने विविध रूपों में इस दिशा में काम किया है। हिमालय की जनजातियों का संरक्षण किया जाना चाहिये। यह न केवल मनुष्यता, भाईचारे की दृष्टि से की गई संस्कृति है बल्कि यह एक राजनैतिक परिदृष्टि है। हिमालय क्षेत्र के विकास का अर्थ हिमालय-वासियों के मन में शेष देश की उपेक्षा के भाव को, दूसरी तरह की आशंकाओं को मिटाना है। परन्तु यह विज्ञान और तकनीक की जरूरत भी है। हिमालय का वैज्ञानिक दोहन हिमालय-वासियों को शिक्षित कराये बिना असम्भव है। अतः विज्ञान और राजनीति हिमालय के सन्दर्भ में इतने नजदीक, परस्पर एक दूसरे के नीति-नियामक आधार बने हैं कि शेष क्षेत्रों के लिए भी उनका समीकरण स्वीकार्य जान पड़ता है।

परन्तु यथार्थतः हिमालय पिछड़ा हुआ है। वहां के जनवासी न सिर्फ दरिद्रता का जीवन जी रहे हैं, बल्कि घोर असुरक्षित भी हैं। यह असुरक्षा सीमावर्ती क्षेत्रों में राजनैतिक असुरक्षा ही नहीं है बल्कि यह असुरक्षा बीमारियों से न बच पाने, अकाल, बाढ़ का सामना न कर पाने, एक असुरक्षित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भविष्य के आशंकाप्रद रूप के समकक्ष ही हैं जिससे अधिकांश हिमालय क्षेत्र का लोकचित्त ग्रसित है। निश्चित है कि यदि यह अवस्था अधिक देर तक रहती है तो हिमशीतल क्षेत्र में एक आग भड़क सकती है। स्वतन्त्र हिमालय देश या हिमालय संघ की मांग जो कभी कभार दबे रूप में सुनाई देती है, कभी भी विराट् रूप धारण कर सकती है। ऐसी स्थिति में हिमालय राष्ट्रों के द्वन्द्व का क्षेत्र बनकर मनुष्य की विनाशलीला का एक क्रीड़ा क्षेत्र भी बन सकता है। यह मात्र आशंकायें नहीं हैं किन्तु हिमालय के अर्थ की कुछ प्रतिच्छवियां है। कहना पड़ेगा कि इनमें हिमालय का एक दूसरा ही अर्थ झिलमिलाता है। यथार्थ का यह अर्थमय पहलू अगर समय रहते न सुलझाया गया और इसे राष्ट्रव्यापी चिन्ता का हिस्सा न बनाया गया तो असन्तोष की लहर कोई भी करवट ले सकती है।

हिमालय भारत को क्या देता है ? वह वनोत्पन्न सामग्री देता है, निरन्तर जल और जनशक्ति देता है। शेष भारत उसे क्या देता है ? मात्र एक उपेक्षा, हिमालय निवासियों को असुरक्षा, राजनैतिक कुचक्र और मन्त्रणाओं के रूप में तात्कालिक लाभ की दृष्टि और शोषण। और इसके साथ ही भयानक हिमालय ध्वंस–जो राजनीति, व्यवसाय और स्वयं हिमालयवासियों द्वारा हो रहा है। यह ध्वंस–अपने प्रमाण भी प्रतिवर्ष बाढ़ या सूखे या नदियों के उथले होने या जलागमों के सूखने के रूप में दे रहा है। यही स्थिति रही तो निकट भविष्य में, यह शताब्दी पार होते होते हिमालय की वनश्री, उसका सौन्दर्य, उसके हिमागार केवल इतिहास की वस्तु रह जायेंगे।

हिमालय शोधार्थियों, वैज्ञानिकों के लिये जो अर्थ रखता हैं उसका संबंध समूची मनुष्यता से है। हिमालय के प्रति उपेक्षा, योजना-निर्माताओं का अज्ञान, राजनीतिज्ञों का ठंडापन–यह सब हिमालय के ध्वंस का आयोजन नहीं है, बल्कि भविष्य को अन्धकारमय बनाने की योजना है। मनुष्यता के ध्वंस की तैयारी है।

हिमालय के अर्थ का एक महत्वपूर्ण पक्ष उसके वर्तमान में हैं और उसका वर्तमान यदि वह संरक्षित, संगठित और कल्याणकारी है तो वह मनुष्य जाति के भविष्य को सुरक्षित करता है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास का हिमालय

● डा० पार्थसारथि डबराल

है हो जाता हिम-शीत कि जिसकी
सन्निधि में आतप प्रचण्ड,
यह गिरि अखण्ड व्रत प्रहरी,
भारत — सीमा को रखता अखण्ड।
गर्वोन्नत इसके पद लुढ़का,
शतधा खण्डित रिपु का घमण्ड।
उत्तर में खड़ा नगाधिराज,
विस्तृत धरती का मानदण्ड।

जड़ शैल नहीं, यह चेतन है,
देवता अधिष्ठित दिव्य-प्राण।
पृथु से आदिष्ट दुहा इसने,
पृथ्वी में रत्नों का निधान।
रवि—भीत तिमिर को करता है,
यह गुहा--मध्य आश्रय प्रदान।
यह द्रवित सांस्कृतिक धारा सी,
गंगा का पावन पितृ---स्थान।

यह गौर हिमालय शृंगोंमय,
शंकर का संचित शुभ्र---हास।
है उठ कर रात दिवस करता,
नभ की श्यामलता से विलास।
चमरी गायें निज चँवर पुच्छ,
को डुला चन्द्र-शुचि आस-पास।
सार्थक करती इस पर्वत के,
गिरिराज--शब्द को सहोल्लास।

थे इसी शैल पर एक दिवस,
तप---ध्यानावस्थित परशुराम।
तो रुद्ध मानसी हंसों के हित,
उसने अपना परशु थाम।
काटा पर्वत उस क्रौंच-रन्ध्र से,
हंस चले नयनाभिराम।
हंसों के मिस मुनि कीर्ति चली,
थी मध्य एशिया तक ललाम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिव—भक्ति प्रवण रावण का थिरका
बीस भुजाओं का अरण्य ।
उससे हिमगिरि की चट्टानों की,
संधि शिथिल, संघर्ष—जन्य ।
तब भीत गिरि—सुता शंकर से,
लिपटी; आलिंगन था अनन्य ।
थी हुई शैल की हानि, किंतु,
आलिंगन से शिव हुए धन्य ।

प्रिय - मिलन उत्सुका अप्सरियाँ,
लेकर उर में उद्दाम प्रीत ।
इसकी पटाल—दर्पण में लख,
करती शृंगार, विलम्ब—भीत ।
यह देवदारु की क्षीर—गन्ध से,
वासित देवालय पुनीत ।
इस यज्ञ—भाग अधिकारी के,
अप्सरियाँ गातीं यशो—गीत ।

जब लम्बमान बादल करता,
गंगा की घाटी में प्रवेश ।
बह बलि पाताल बिठाने को,
नीला हरि—पद लगता विशेष ।
पर कवि का घन उपकारी है,
जो यक्ष—हेतु सह रहा क्लेश ।
इसकी जीवन धारा खेतों में,
अंकुर उपजाती अशेष ।

हाँ, कालिदास—प्रतिभा से तुम,
कुछ और उठे हे शैल—राज !
तुमको पहिनाया कवि ने ही,
षड्—ऋतुओं का शोभा—समाज ।
है नहीं वस्तु में, किंतु दृष्टि
में रहता है सौन्दर्य—साज ।
इसलिए शैल से भी ऊँचा,
उस शैल—पुत्र का मूल्य आज ।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगा की महिमा

THE GLORY OF GANGA

• एच. एच. विलसन

जा रही बहती गंगा उदधि सदृश विशाल
और है पोषित हिमाद्रि-हिम से, या उमड़ती वर्षा से
जा रही दौड़ती नियत मार्ग पर निज विकराल वेग से
आँचल इसके, हैं लगे जो इसके सुदीर्घ मार्ग पर
हैं रहे दरशा निस्सीम विविधता
भीत जैसी कगारें, सपाट हरियाली
चट्टानें भयंकर, कंदरायें काली
अनुर्वर सैकत, उर्वर मिट्टी ढेले
पुष्पित गुल्मों की भूलभुलय्यों से भूषित
शाद्वल प्रफुल्ल या उग्र वनपथ
भूलती छायाओं से धूसरित
सुविस्तृत मैदान जिसे हैं किए सभलंकृत
लहराता शस्य, वन-कानन या कुंज सुरभित
जब कि नगर ग्राम हैं सटे परस्पर
और बदलते परिवेष को दे रहे जीवन की रंगत
भारत की सरल बेटियाँ
हों रही एकत्रित इस पुनीत सरिता पर
सभ्रांत प्रतिदर्श का लेकर फूलदान
यूनानी बाला जैसी अथवा टुस्कन कुमारी सी
कलश निज ऐसे रहीं समेट भरने हित
प्रस्फुटित निर्झर से या बूंद-बूंद रिसते स्रोतों से
सदा कर रहीं वें श्रद्धाञ्जलि अर्पण गंगा निमित्त
और वे हैं किया करती उसके प्रति समर्पण
निज मनोकामनायें निश्छल विधि-संस्कार सहित

रूपान्तर : चन्द्रशेखर नडोला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्वतों की गरिमा में देवत्व स्थापना का परिप्रेक्ष्य

• वाल्टर लाइफर

"हिमालय पर्वत विश्व का सर्वाधिक ऊंचा और शक्तिशाली पर्वत है, भारत के उत्तर-पश्चिम, उत्तर और उत्तर पूर्व में यह पर्वत श्रृंखला राजनीतिक ही नहीं, दार्शनिक सीमा रेखा का भी काम करती है। प्रतीक रूप में ही सही, इसके अंचल में बसे लोग इस श्रृंखला को कई कारणों से सृष्टि का एक अद्वितीय अंश मानते हैं। यही नहीं जन सामान्य की धारणा तो यह भी है कि यह पर्वत दिव्य है, पावन है।

इस श्रृंखला के श्रृंग स्वयं देवता ही हैं अथवा देवताओं की अपार शक्तिमत्ता और गरिमा इन धवल हिमानी चोटियों में प्रदर्शित है, साकार हो उठी है। अपनी उपत्यका में बसी अपनी संतान की दृष्टि में, चिन्तन और आस्था में, हिमालय अद्भुत है, अनुपम है, अपनी तरह का अकेला है।

अज्ञात अतीन से कौन जाने कितनी शताब्दियों, सहस्राब्दियों अथवा लक्षाब्दियों से आज तक हिमालय की चोटियां और हिमानी श्रृंग भारतीय जनता के तीर्थ बने हुये हैं, कितने आस्थावानों ने इसके आगे शीश नवाये हैं, कितने ऋषि–मुनियों ने यहां तपस्या की है, कितने योगियों की साधना यहां सफल हुई है, कौन जाने! हिन्दू धर्म का, भारतीयों की आस्था जन्य आध्यात्मिकता का, चिंतन और मनन का तो केंद्र विंदु हिमालय रहा है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय की उत्पत्ति

● डा० प्रेमस्वरूप सकलानी

जहां आज हिमालय के दर्शन होते हैं, वहां कालातीत में विशाल सागर विद्यमान था। इस कथन को सुनकर यकायक यकीन नहीं होता किन्तु यह सत्य के बहुत निकट है। इस कथन की पुष्टि के सन्दर्भ में संक्षेप में यह कहना उचित होगा कि हिमालय क्षेत्र में कई स्थानों पर ऐसी चट्टानें विद्यमान हैं, जिनमें कालातीत समुद्र गर्त के जैविक पदार्थ (शंख, कोरल आदि) फासिल पत्थर के रूप में मिलते हैं।

आज से लगभग आठ करोड़ वर्ष पहले के समय को मेसोजोइक के महाकल्प के अन्तर्गत रखते हैं। इस महाकल्प के आखिरी भाग में हिमालय में विद्यमान लम्बाकार व तंग सागर गर्त भू-विज्ञान के साहित्य में 'टैथिस' नाम से विख्यात है, टैथिस के उत्तर में अंगारा लैंड था। यह वर्तमान समय में चीन का तिब्बती भाग एवं रूस का दक्षिणी-पूर्वी भाग है (चित्र २) 'टैथिस' के दक्षिण में गोंडवाना लैंड (वर्तमान समय में दक्षिणी भारत) था। इन दोनों भू-खण्डों से नदियां बहती थी और 'टैथिस' में ही गिरती थी। इन नदियों के साथ करोड़ों टन तलछटी पदार्थ (बालू, मृदा आदि) 'टैथिस' के फर्स पर जमा होते रहे। यह तलछटी पदार्थ परतों के रूप में एकत्र हुए। इन परतों के भार के कारण टैथिस का धरातल नीचे धंसता जाता था और नये तलछटी पदार्थ को एकत्र होने के लिये जगह प्रदान करता था। इस प्रकार तलछटी पदार्थों की परतें एक के ऊपर एक जमा होती रहीं। और ऐसा भी समय आया जब 'टैथिस' की तलछटी परतों का बोझ बहुत ही बढ़ गया। इस सन्दर्भ में यह कहना उचित होगा कि सागर और भू-खण्ड तराजू की भांति संतुलन में रहते हैं और साथ ही प्रकृति की नष्टवान क्रियायें भी चालू रहती हैं। जब यह क्रियायें अपनी चरम सीमा को पार कर लेती हैं तो विशाल भू-वैज्ञानिक परिवर्तन आते हैं। हां, तो 'टैथिस' भू-अभिनति की तलछटी परतों के अत्यधिक बोझ के कारण अंगारा लैंड, गौंडवाना लैंड व टैथिस का परस्पर संतुलन भंग हो गया। यह परिवर्तन आज से लगभग ६ करोड़ वर्ष पूर्व याने इओसीन युग में हुआ। फलस्वरूप अंगारा लैंड दक्षिण की ओर खिसकने लगा, जबकि गोडवाना डलैं अपने मौलिक स्थान पर ही रहा। अंगारा लैंड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और गोंडवाना लैंड के बीच में स्थित तलछटी परतों के विस्थापन से उत्पन्न दवाव के कारण विशेष भिचाव खिचाव उत्पन्न हुए और परतें विशाल मोड़ों में विरूपित हो गईं। इस भिचाव का सर्व प्रथम प्रभाव 'टैथिस' के उत्तरी हिस्से में हुआ और इस प्रकार महान हिमालय की उत्पत्ति हुई। इसी के अनन्तर हजारा, गिलगिट, गंगोत्री, यमुनोत्री, केदारनाथ, बद्रीनाथ, नन्दादेवी आदि पहाड़ियों का निर्माण हुआ। यह पर्वत दक्षिणी सीमान्त पर्वतमाला में विद्यमान है (चित्र २)।

इसी प्रकार दूसरी हलचल आज से पचास करोड़ वर्ष पूर्व मायोसीन युग में हुई और इसी के अन्तर लघु हिमालय की निर्माण सम्बन्धी क्रियायें भी मुख्य रूप से सक्रिय रही। मायोसीन युग में हिमालय में विशाल दरारें, भ्रंश भी विकसित हुए। इन दरारों के अनुकूल विशाल पर्वत खण्ड लगभग ११० किलोमीटर तक उत्तर से दक्षिण की ओर विस्थापित हुए और महान हिमालय के पर्वत खण्ड लघु हिमालय के पर्वत खण्ड पर आरूढ़ हो गए। कहा जाता है कि कालातीत में पहाड़ों के पंख होते थे और वह एक स्थान से दूसरे स्थान तक उड़ते थे। सम्भवत: भ्रंशतलों के अनुकूल पहाड़ों का विस्थापन ही उनका उड़ना था। टिहरी-गढ़वाल हिमालय में शैलपिंड विस्थापन के अच्छे उदाहरण मिलते हैं (चित्र १)।

महान् हिमालय और लघु हिमालय बनने के बाद कई नदियां इनमें से निकली और लघु हिमालय के दक्षिण में विद्यमान एक विशाल खड्ड में गिरने लगीं। यह खड्ड मायोसीन युग के बाद विकसित हुआ और इसका विस्तार जम्मू हरिद्वार से लेकर आसाम तक था। इस खड्ड में भी नदजनित रेत व मृदा परतों के रूप में एकत्र होनी शुरू हुई। हिमालय की तीसरी हलचल आज से तीन करोड़ वर्ष पूर्व प्लायोसीन युग में हुई। इसके फलस्वरूप लघु हिमालय के दक्षिण भाग में विद्यमान खाई की परतदार चट्टाने विरूपित हुईं एवं काफी ऊंचाई पर भी पहुंच गयी (लगभग पांच हजार फीट)। शिवालिक पहाड़ियों का विकास हिमालय की तीसरी हलचल का परिणाम है। शिवालिक चट्टाने ढीली, भुरभुरी रेत और कीचड़ जैसी मिट्टी की बनी हुई हैं जो इस बात का द्योतक है कि शिवालिक चट्टाने नवजनित परिस्थितियों में बनी।

हिमालय में प्लायोसीन युग के बाद भी हलचल हुई है और यह अभी भी सक्रिय है। आज से लगभग एक करोड़ वर्ष पूर्व याने प्लीस्टोसीन युग में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय की चौथी हलचल के कुछ अच्छे उदाहरण काश्मीर में दृष्टिगत होते हैं। काश्मीर में करेवा चट्टाने वर्तमान समय में तेरह चौदह हजार फीट की ऊंचाई पर मिलती हैं और इनमें बांज की पत्ती के फासिल पत्थर मिलते हैं। वर्तमान में बांज का पेड़ पांच छः हजार फीट की ऊंचाई पर मिलता है। सो स्पष्ट है कि करेवा लगभग सात आठ हजार फीट ऊंचे उठे हुए हैं।

हिमालय में हाल ही में भू-वैज्ञानिक हलचल के कई अच्छे प्रमाण मिलते हैं।

(१) पिछले कुछ सालों में उत्तर-प्रदेश व हिमाचल प्रदेश में कई भूकम्प आ चुके है।

(२) तिब्बत की कई झीलों के तल ऊपर उठ रहे हैं और झीलें लुप्तप्राय हो रही है।

(३) हिमालय क्षेत्र में कई विशाल भ्रंशों के अनन्तर चट्टानों का विस्थापन हो रहा है। और यह लगभग एक सेंटीमीटर प्रतिवर्ष नोट किया गया है। पर्वतीय सड़कों पर भू-स्खलन का यह भी एक सम्भव कारण है (यथा राजपुर-मसूरी, नरेन्द्रनगर-टिहरी-गढ़वाल, कल्या सौड़-श्रीनगर गढ़वाल आदि)।

यह भी विचारधारा है कि अब हिमालय का दक्षिण भारतीय भू-खण्ड उत्तर की ओर धंस रहा है। (चित्र ३) किन्नौर हिमाचल में भूकम्पों के विषय में यह कहा गया है कि यहां पर बिशाल दरार, भ्रंश विद्यमान हैं और इनके अनन्तर हिमालय के उत्तारी और दक्षिणी भू-खण्डों का टकराव हो रहा है। इनके टकराने के कारण ही इस क्षेत्र में भूकम्प के झटके महसूस होते हैं। खैर, प्रकृति में परिवर्तन हुए हैं और होते रहेंगे। हिमालय के आकार-प्रकार में कई परिवर्तनों की सम्भावनायें हैं, किन्तु निश्चय ही भू-वैज्ञानिक परिवर्तनों की गति बहुत धीमी है और उन्हें पूरा होने में करोड़ों वर्ष लगते हैं। इतना अवश्य है कि हिमालय का विकास अभी भी क्रियाशील है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरी टिहरी गढ़वाल हिमालय का भूवैज्ञानिक सेक्शन
1 मरोड़ा शेल 2 मूलियागांव 3 जरवीधार शेल 4 और 5 ग्वार फाइलाइट 6 प्रतापनगर क्वार्टजाइट
7 पट्टी क्वार्टजाइट 8 नाल मैगनासाइट 9 मेलुन्ता लाइमस्टोन 10 भ्रंश 11 क्षेप (सकलानी 1973). चित्र 1

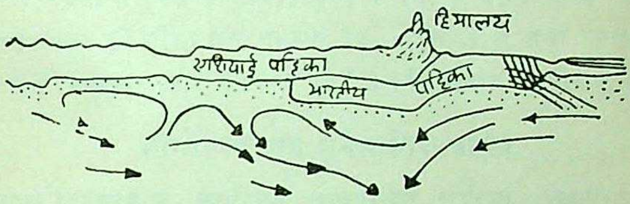

प्लेट टेक्टौनिक परिकल्पना पर आधारित हिमालय की उत्पत्ति. चित्र-3
(होल्महा, 1965)

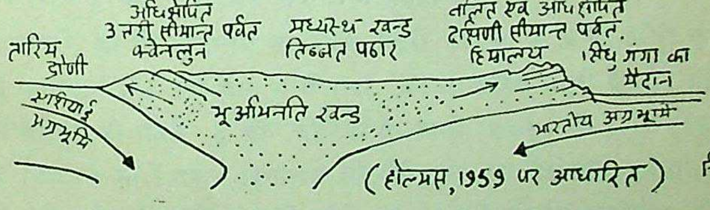

(होल्मस, 1959 पर आधारित) चित्र-2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय और उसकी वनस्पतियां

• गोविन्द रजवार

प्राचीन भारत में 'हिमालय' शब्द का प्रयोग उन बर्फ से ढकी हुई पर्वत शृंखलाओं के लिये होता था, जिनकी सुन्दरता का आनन्द उत्तरी भारत के मैदानों से देखकर लिया जा सकता है। हिमालय टर्सरी युग के चट्टानों की एक जटिल रचना है जिसकी लम्बाई पूरब में बर्मा के उत्तरी भाग से, पश्चिम में अफगानिस्तान की सीमा तक लगभग ३००० कि.मी. है तथा लगभग ७२° से ७१°पूर्वी देशान्तर और २७° से ३६° उत्तरी अक्षांश के बीच है।

भौगोलिक एवं भूवैज्ञानिक वर्णन

सम्पूर्ण हिमालय में अनगिनत आच्छादित चोटियां, विशाल घाटियां, गहरी कण्ठनालियां, गुर्राते झरने तथा घने जंगल है जो न जाने अपने में क्या क्या सम्पदा छुपाये हुये हैं। कुछ घाटियां चौड़ी है जैसे काश्मीर की घाटी। नैनीताल, डल, मनीपुर आदि झीलें भौगोलिक रचनाओं की ओर ध्यान आकर्षित करती हैं। हिमालय में तीन प्रमुख अक्ष हैं—हिमादरी, हिमांचल और शिवालिक। विशाल नदियां जैसे सिन्धु, सतलज, काली, कोसी और ब्रह्मपुत्र पर्वतों के बीच में गहरा काटकर मैदानों में बहती हैं।

हिमादरी, जो कि हिमालय का सबसे उत्तरी भाग है, में ऊँची ऊँची वर्फ से ढकी पहाड़ियां हैं। इस भाग में ग्रेनाइट का आन्तरिक साँचा है और इसी भाग में संसार की सबसे ऊँचो चोटियाँ हैं—जानो (७७१० मी.) से लेकर एवरेस्ट (८८४८ मी.) तक। हिमाचल प्रीं कैम्ब्रियन से ईओसीन भूवैज्ञानिक युग की रचना है। शिवालिक सबसे नीचे का भाग है जो कि मायोसीन और प्लिस्टोसीन से अर्वाचीन युग का है:

पूरे हिमालय की चौड़ाई ८० कि. मी. से ३०० कि. मी. तक है। यद्यपि हिमालय पूरब में ब्रह्मपुत्र नदी के दक्षिणी मोड़ से पश्चिम में सिन्धु नदी के मोड़ तक है, लेकिन हिमालय पश्चिम में इससे आगे अफगानिस्तान तक फैला हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय के प्रक्षेत्रों को सिस–हिमालय तथा ट्रान्स–हिमालयन दो मुख्य भागों में बांटा गया है। सिस–हिमालय प्रक्षेत्र हिमादरी के दक्षिण में है तथा इसमें निम्न हिमालय प्रक्षेत्र तथा शिवालिक आते हैं। ट्रान्स–हिमालयन प्रक्षेत्र हिमादरी के उत्तर में है और इसी प्रक्षेत्र में जस्कर, लद्दाख तथा कराकोरम स्थित हैं। शिवालिक रचनायें पूरे हिमालय में दक्षिण में एक पट्टी का निर्माण करती हैं। कुछ स्थानों में शिवालिक पहाड़ियाँ निम्न हिमालय प्रक्षेत्र से दब जाती हैं, लेकिन अन्य भागों में 'दून' नामक घाटियों से अलग हो जाती हैं। नागटिब्बा, धौलाधार, पीर पंजता, उत्तरी काश्मीर, मध्यभारत, मसूरी और रतन पीर नामक सात निम्न हिमालय प्रक्षेत्र हैं।

हिमालय के विकास के बारे में दी गयी डीं टैरा के सिद्धान्त के अनुसार हिमालय ओरोजीनिक गतिविधियों की श्रेणियों का परिणाम है। इस भूपृष्ट का उभार उच्च क्रीटेसियस में शुरु हुआ तथा मध्य मायोसीन, प्लायोसीन के अन्त, प्लिस्टोसीन तथा उप अर्वाचीन युग तक चलता रहा। मध्य मायोसीन में ग्रेनाइट के विशाल पिंड हिमालय के अक्षीय क्षेत्र में जमा हुये और इसी समय अधिकतम उभार हुआ। टैथिस समुद्र ने यूरेशिया को गौंडवाना से अलग किया। उस समय यूरेशिया मे अल्टाई और गौंडवाना क्षेत्र में अरावली के अतिरिक्त ऊँचे पर्वत नहीं थे। पेलियोजोइक युग से तलछटी-करण लगभग १५२०० मी. तक होता गया। भूपृष्ट गतियों के समय समुद्र तल धीरे धीरे उँचा होने लगा और पर्वतों के उभरने के समय वलियों के नाद अनुदैर्ध्य घाटियों के रूप में बदल गये।

भूवैज्ञानिक आधार पर हिमालय के निम्नलिखित भाग हैं :—

उप हिमालय खण्ड—

इस भाग में दून और शिवालिक हैं। इनकी रचनायें टर्सरी से अर्वाचीन युग की हैं।

निम्न हिमालय खन्ड—

यह खन्ड ईओसीन युग की रचना है तथा निम्न शिवालिक (नहान) से 'मैन बाउन्डरी फॉल्ट' द्वारा पृथक किया जाता है।

उच्च हिमालय खन्ड—

यह खन्ड निम्न हिमालय खन्ड से 'मेन सेन्ट्रल थ्रस्ट' द्वारा पृथक् किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिब्बती या टेथिस हिमालय खन्ड—

यह खन्ड हिमांचल भाग में पाये जाते हैं।

हिमालय के निम्न तीन मुख्य भौगोलिक भाग हैं :—

(१) पूर्वी हिमालय, (२) मध्य हिमालय या नेपाल हिमालय, (३) पश्चिमी हिमालय।

वनस्पति

हिमालय की वनस्पति विभिन्न जातियों के पौधों से मिलकर बनी हैं। यहां घने वन तथा घाटियां हैं, जिनमें कई प्रकार के सुन्दर फूलों वाले वृक्ष, झाड़ियाँ, शाक तथा अन्य प्रकार के पौधे है। पूर्वी हिमालय की वनस्पति पश्चिमी भाग से अधिक घनी है। पूर्वी हिमालय आवश्यक रूप से चीनी तथा मलायान वनस्पति का एक विस्तार है। हिमालय में विभिन्न प्रकार की जातियों के पौधों के पाये जाने का मुख्य कारण विभिन्न भागों में भिन्न भिन्न प्रकार का तापक्रम, वर्षा तथा आर्द्रता है। हिमालय वनस्पति सम्पदा का एक भंडार है। बहुत से वनस्पति शास्त्रियों ने यहां की वनस्पति का अध्ययन किया है, फिर भी न जाने कितने प्रकार के ऐसे पौधे हैं, जिन्हें वनस्पति शास्त्री न ढूंढ पाये हों। हिमालय के विभिन्न भागों की वनस्पति निम्न प्रकार की है:-

पूर्वी हिमालय—

हिमालय का यह भाग ब्रह्मपुत्र से तीस्ता नदी तक लगभग ७२० कि. मी. लम्बा है। इस भाग को दार्जिलिंग–सिक्किम–भूटान–असम हिमालय और पूर्वांचल में विभाजित किया गया है। पहले भाग के असम हिमालय और दार्जिलिंग–सिक्किम–भूटान हिमालय उपभाग हैं। पूर्वांचल में नागालैन्ड, मणिपुर, त्रिपुरा, मीजोरम और नेफा के भाग आते हैं। संक्षेप में पूर्वी हिमालय के निम्न वनस्पति प्रकार है।

आर्द्र ऊष्ण कटिबन्धिय वनस्पति (१७०० मी. तक)—मैदानी भागों से ९०० मी. तक के जंगलों में शोरिया रॉबस्टा (साल), एडिना कार्डिफोलिया (हल्दू), बॉहिनीया वैहलाइ (मालो) आदि मुख्य है। १५०० से १७०० मी. तक चौड़ी पत्तियों वाले वन हैं, जिनमें फाइकस, माइकीलिया (चम्पा), क्वेरकस आदि मुख्य हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्वेरकस–रोडोडेन्ड्रोन वन (१५००–२८०० मी.) क्वेरकस इनकाना (बांझ) के जंगल १५०० से २८०० मी. तक है। रोडोडेन्ड्रोन आर्वोरियम (बुराँस) २५०० से २८०० तक है।

कोनिफर वन एवं कोनिफर–रोडोडेन्ड्रोन सम्बन्ध (२५००–३६०० मी.)–इन वनों में बीट्यूला युटिलिस (भोजपत्र) तथा एबीज स्पेक्टेबिलिस आदि अन्य कोनिफर तथा रोडोडेन्ड्रोन के साथ पाये जाते हैं।

उप आल्पीय वन (३०००–३६०० मी.)–रोडोडेन्ड्रोन तथा कोनिफर के साथ बरबेरिस आदि।

आल्पीय वनस्पति (३५०० मी. से ऊपर)–रोडोडेन्ड्रोन, जुनिपेरस, साँसोरिया आदि।

मध्य हिमालय—

मध्य या नेपाल हिमालय लगभग ९०० कि. मी. लम्बा है तथा तीस्ता नदी से काली नदी तक है। नेपाल हिमालय को तीन भागों में विभाजित किया गया है–पूर्वी, मध्य एवं पश्चिमी।

पश्चिमी हिमालय की वनस्पति उत्तराखंड हिमालय की वनस्पति से मिलती जुलती है। अन्य भागों की वनस्पति संक्षिप्त में निम्न प्रकार की है–

पूर्वी नेपाल की वनस्पति—

ऊष्ण कटिबन्धिय–उपोष्णकटिबन्धिय वनस्पति (१२०० मी. तक)–साल, टर्मिनेलिया आदि।

शीतोष्ण वनस्पति (१२००–३००० मी.)–एलनस, मिरिका (काफल) आदि।

उप-आल्पीय वनस्पति (३०००–४००० मी.)–एबीज, रोडोडेन्ड्रोन आदि।

आल्पीय वनस्पति (४००० मी. से उपर)–जुनिपेरस, एन्ड्रोसेस, सॉसोरिया आदि।

मध्य नेपाल की वनस्पति—

ऊष्ण कटिबन्धिय वन (९०० मी. तक)–साल आदि।

आर्द्र उप–उष्ण कटिबन्धिय वन–(९००–१९०० मी.)–रुबस, मैहोनिया आदि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुष्क उप ऊष्णकटिवन्धिय वन–चीड़ आदि।

नदियों के उप ऊष्णकटिबन्धिय वन–एलनस, तूना आदि।

शीतोष्ण वन (१६००–३५०० मी.)–क्वेरकस, एवीज, रोडोडेन्ड्रोन आदि।

मरुदभिदी वनस्पति–पाइनस, जुनिपेरस, सीड्रस (देवदार), क्यूप्रीसस आदि।

मरुभूमि वनस्पति–सोफोरा आदि।

आल्पीय वनस्पति (दक्षिणी भाग में ३६०० मी. से उपर तथा उत्तरी भाग में ४१०० मी. से ऊपर)–आल्पीय चारागाह तथा आल्पीय झाड़ियाँ।

पश्चिमी हिमालय—

हिमालय का यह भाग काली नदी से सिंधु नदी तक है। इसके तीन उपभाग हैं। उत्तराखंड हिमालय (कुमाँयू-गढ़वाल हिमालय), हिमांचल हिमालय और काश्मीर हिमालय। इन भागों की वनस्पति संक्षेप में निम्न प्रकार की हैं।

उत्तराखन्ड हिमालय—

१. **ऊष्ण कटिबन्धिय वन**–एकेसिया (बबूल, कीकर) आदि।

२. **उपोष्णकटिबन्धिय वन**-डलबर्जिया (शीशम), एकेसिया होलोप्टीलिया (पापड़ी), कैसिया फिस्टुला (अमलतास), एडिना (हल्दू), शोरिया (साल), साइजिगियम (जामुन), ब्यूटिया (ढाक), टर्मिनेलिया (अर्जुन, बहेड़ा) आदि।

३. **शीतोष्ण वनस्पति**–पाइनस (चीड़), क्वेरकस (बाँझ), एबीज, सीड्रस (देवदार) आदि।

४. **उप आल्पीय वन**–रोडोडेन्ड्रोन, मैकिलस; फाइकस आदि।

५. **आल्पीय वनस्पति**–बीट्यूला (भोजपत्र), एबीज, रोडोडेन्ड्रोन (बुराँस) आदि। इसी भाग में फूलों की घाटी भी आती है।

हिमांचल हिमालय—

१. **शुष्क ऊष्ण कटिबन्धिय वनस्पति**–जिजिफस (बेर) आदि।

२. **उपोष्ण कटिबंधित वनस्पति**–कैपेरिस, सिम्बोपोगोन, ओलिया आदि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. **क्वेरकस–रोडोडेन्ड्रोन–कोनिफर खंड–चीड़** (९००–१७००मी.), बाँझ, बुराँस, देवदार आदि ।

४. **बीट्यूला–जुनिपेरस खंड (३०००–३१०० मी.)**–एबीज, जुनिपेरस, भोजपत्र आदि ।

काश्मीर हिमालय–-

१. आल्पीय वन एवं शाक ।

२. **सदाबहार वन**–एबीज, पाइनस आदि ।

३. **पतझड़ वाले वन**–मोरस, बीट्यूला आदि तथा कृत्रिम सेलिक्स वन ।

४. सदाबहार झाड़ियों वाली वनस्पति तथा पतझड़ झाड़ियों वाली वनस्पति ।

५. सवाना ।

६. चारागाह ।

७. दलदलीय वनस्पति ।

८. मरोदभिदी वनस्पति ।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवीय समृद्धि में हिमांचलीय वनौषधियाँ

• सच्चिदानन्द मैठाणी

हमारी वैदिक संस्कृति के दो महान् तत्त्व नगाधिराज हिमालय एवं पतित पावनी गंगा अनादिकाल से ही इस भू-भारती की पुनीत परम्परा को अपने दैविक वर्चस्व से सतत् अलंकृत करते रहे हैं। पुनीत हिमालय की सर्वोच्च धवल श्रेणी गौरीशंकर, जो कि भगवान् आशुतोष शंकर की पावन तपस्थली एवं भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति की अमरज्योति है, इस विश्वविख्यात हिमालय के महान् वैभव एवं परम पवित्र गंगा की गौरव गरिमा को श्रीमद्भगवतगीता में योगेश्वर श्री कृष्ण ने स्वयं वर्णित किया—'स्रोतसामस्मि जाह्नवी' (गीता १०) 'विशाल जलीय स्रोत उद्गमों में पवित्र गंगा मैं हूं।' तथा 'स्थावराणां हिमालयः' (गीता १०) 'प्रकृति के स्थिरमान् तत्त्व पृथ्वी-पर्वतादियों में विशाल हिमालय मैं हूं।' इस प्रकार भगवत् प्रदत्त स्थावर एवं जंगम प्रकृति के दो महान् तत्त्व हिमालय एवं गंगा इस पवित्र धाम उत्तराखण्ड की पुनीत परम्परा को अपने में संजोये हुये हैं। दिव्य हिमालय से अवतरित हुई पुण्य सलिला गंगा भारतीय जनमानस को सतत् पवित्र तो करती ही है, किन्तु हमारी शाश्वत् अन्नमय कृषि सम्पदा को शस्यश्यामला स्वरूप प्रदान कर मानवीय अन्नमयकोष को भी परिपोषित करती है। संस्कृत साहित्य के महाकवि कालिदास ने अपने अमर काव्य 'कुमारसम्भव' में इस रमणीय देवभूमि उत्तराखण्ड एवं सुरम्य हिमालय की भूरी-भूरी प्रशंसा की है, यथा—

अस्त्युत्तरस्यां दिशिदेवतात्मा, हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य स्थितः पृथिव्याइवमानदण्डः ॥

उत्तर दिशा में दिव्यदेवता के स्वरूप पर्वतों का अधिपति हिमालय पूर्व-पश्चिम समुद्र में प्रविष्ट होकर इस पृथ्वी के मानदण्ड के स्वरूप में विद्यमान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नगाधिराज हिमालय ने सृष्टि सृजन के प्रारम्भ से ही अपनी विशाल उपत्यका में दिव्यामृत सञ्जीवनी सदृश अनेक महौषधीय जड़ी-बूटियों को वन-सम्पदा के स्वरूप में सृजन्म देकर मानवीय सुखसमृद्धि एवं विविध रोगों की निवृति मे अपना विपुल वर्चस्व स्थापित किया। हिमालय की उपत्यका में उपलब्ध होने वाली दिव्यौषधियों का अन्वेषण आधुनिक मानव द्वारा ही नहीं किन्तु सुदूरपूर्व में हमारे अग्रज अरण्यवासी ऋषि एवं महर्षि प्रवर्ग ने भी अपनी योग साधना सम्पन्न शक्ति के द्वारा–'स्वान्त: सुखाय बहुजन हिताय–लोकानुकम्पाय' अर्थात् मानवीय कल्याणार्थ हिमालयीय विविध जड़ी-बूटियों पर महान् अनुसन्धान कर उन्हें दिव्य औषधियों का स्वरूप देकर भारतीय प्रजा को समर्पित किया। जीवन-दायनी औषधियों का अपार भण्डार हिमवर्तीय भूमि में सर्वत्र परिव्याप्त है। औषध निर्माण का महान् वैद्यक ग्रन्थ 'शार्ङ्गधर-संहिता' के आधार पर प्रस्तुत है—

'विराजते निर्मलचन्द्रिकायाँ महौषधीव ज्वलिता हिमाद्रौ'

अर्थात् देदीप्यमान हिमालय पर स्वच्छ चन्द्रमा की धवल चांदनी में 'संजीवनी' आदि महौषधियां रात्रिकाल में भी चमकती रहती हैं। राम-रावण युद्ध में लक्ष्मण को मेघनाद द्वारा प्रयोजित 'लक्ष्मणशक्ति' से मूर्छित अवस्था में वैद्य द्वारा निर्देशित इसी संजीवनी बूटी के प्रबल प्रभाव से सुरक्षा की गई थी। अनादिकाल से ही इस विशाल हिमालय में उच्चस्तरीय जड़ी-बूटियों के अतिरिक्त खनिज पदार्थ–शिलाजीत, गौरीपाषाण, लोहपिण्ड, ताम्रमृतिका आदि प्राप्त हैं। जंगम पदार्थों में शुद्ध कस्तूरी, गोलोचन, मृगश्रृंग, मृगमेदा, मनोरम मृगचर्म, व्याघ्रनख, हिमवर्तीय वन निवासिनी गौ-पुच्छ (पवित्र चामर) इत्यादि बहुमूल्य पदार्थ हिमालय श्रेणियों में उपलब्ध होते है। दुर्लभ कस्तूरीमृग केवल हिमांचलीय उच्चस्तरीय पर्वतमालिकाओं में ही यदा-कदा उपलब्ध होते हैं। मृगमद् कस्तूरी इन्ही दुर्लभ मृगों की उपज है। इस बहुमूल्यवान वस्तु की मांग विशेष रूप से अमेरिका, कनाडा, जर्मनी, स्विटजरलैंड, ग्रेट ब्रिटेन आदि में है। वर्तमान समय में विशुद्ध कस्तूरी का मूल्य डेढ हजार रुपये प्रति दस ग्राम का है। भारत सरकार के एक राजकीय आदेशानुसार कस्तूरी मृग का वध करना या उसे किसी भी प्रकार की क्षति पहुंचाना अवैध घोषित कर दिया है। विशुद्ध कस्तूरी के योग से भारतीय आयुर्वेदीय निर्माणशालाओं में अनेक उच्चकोटी की जीवनदायनी औषधियां निर्मित होती है। इनमें कुछ विशिष्ठ औषधियाँ—वसन्तकुसुमाकर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कस्तूरी भैरव, मृगमदासव, दशमूलारिष्ट आदि हैं। स्वतन्त्र रूप से विशुद्ध कस्तूरी का प्रयोग--नाड़ी दौर्बल्यता, नपुंसकता, पक्षाघात, अर्धाङ्ग शून्य, सन्निपात एवं सम्पूर्ण वायु रोगों में किया जाता है।

आयुर्वेद कोष को समृद्ध एवं सम्पन्न बनाने में हिमांचलीय विशुद्ध जड़ी-बूटियों का महान् योगदान रहा है। यूनानी तथा आयुर्वेदीय प्रणाली से निर्मित हजारों औषधियों में कोई विरल ही औषधयोग होगा, जिसमें कि हिमालयन भू-भाग की वनस्पति प्रयुक्त न की जाती हो। आयुर्वेदीय सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ काश्यप संहिता, चरक संहिता, सुश्रुत संहिता एवं अष्टांग हृदय आदि में हिमालयी वनौषधियों का विस्तृत विवेचन किया गया है। सर्वोच्च वन-सम्पदा हिमालय की आठ महत्वपूर्ण औषधियां (अष्टवर्ग) हैं, जो कि--मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, ऋद्धि एवं वृद्धि, इस नाम से वहु प्रचलित हैं। यह स्मरणीय है कि 'अष्टवर्ग' की खोज, सर्वप्रथम एक वनस्पति-वैज्ञानिक गढ़-प्रदेशीय वैद्य ने हिमालय के गहनतम वनों में की थी। विशुद्ध अष्टवर्ग केवल हिमालय में ही उपलब्ध है। महर्षि च्यवन द्वारा प्रस्तुत आयुर्वेदीय महान् रसायन (टानिक) 'च्यवनप्राश' हिमालयीय 'अष्टवर्ग' के माध्यम से ही प्रस्तुत होता है। हिमालयीय 'हरित आमला' जिसमें विटामिन 'सी' की प्रचुरमात्रा है, 'च्यवनप्राश' रसायन का मूलघटक पदार्थ है। हिमांचलीय दिव्यामृत औषधियों के प्रमुख निर्माता--शिवानन्द आयुर्वेदिक फार्मास्युटिकल्स, शिवानन्दनगर--द्वारा विगत ३० वर्षों से भी अधिक समय से कतिपय उच्चकोटि की जीवनदायिनी औषधियाँ हिमांचलीय वनस्पतियों के द्वारा ही प्रस्तुत की जाती हैं।

आयुर्वेदीय प्रख्यात हिमालयीय अष्टवर्ग का परिचय तथा उसके गुण एवं प्रभाव के सम्बंध में शास्त्रीय विवेचन इस प्रकार है--अष्टवर्गीय (आठों) औषधियों के प्रथम दो घटक जीवक एवं ऋषभक हैं, जोकि हिमांचलीय शिखरों में कंद के स्वरूप में उत्पन्न होते हैं। रसोन कंद की तरह यह किंचित् स्थूल, किंतु भीतरी हिस्से में रिक्त है। इसके पत्र किंचित् लम्बे एवं सूक्ष्म होते हैं। जीवक एवं ऋषभक इन दोनों अष्टवर्गीय औषधियों के कंद गुण में वलवर्धक, पौष्टिक एवं शीतल मधुर हैं। इनका सर्वाधिक लाभ क्षयरोग एवं वातपित्त जनित दुर्वलता में है।

अष्टवर्ग का द्वितीय घटक--मेदा एवं महामेदा है। मेदाकंद ईषत् श्वेतवर्ण, शुष्क एवं अद्रक के सदृश होता है। महामेदा किंचित दीर्घस्वरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में उभरा हुआ अद्रक के ही समान संक्षिप्त पीतरंग में होता है। इन दोनों का गुण प्रभाव पुष्टिकारक, वीर्यवर्धक, शीतल एवं पित्ताज्वर को प्रशमन करने वाला है।

अष्टवर्ग का तृतीय घटक काकोली एवं क्षीरकाकोली हैं। ये दोनों अश्वगंधा के सदृश आकार प्रकार में किंतु किंचित कृष्णवर्ण में होते हैं। काकोली-क्षीरकाकोली, दोनों ही शुक्रवर्धक, बलपौष्टिक, रुधिर तथा पित्तविकार को आमूलत: प्रशमन करते हैं।

अष्टवर्ग का चतुर्थ घटक—ऋद्धि एवं वृद्धि है। ये दोनों महौषधियां मानवीय सुख समृद्धि हेतु विशेष महत्वपूर्ण हैं। सदाचार एवं सात्विक जीवन की साधाना में इनका प्रयोग अनन्त शक्तिप्रद है। इन दोनों का प्रभाव मानवीय शरीर के विविध रोगों की निवृति में पड़ता है, संयम–नियम पूर्वक 'कायाकल्प' प्रणाली के आधार पर इनके सेवन से शरीर का स्वच्छवर्ण, स्मृति एवं बुद्धिशक्ति में ओजस्विता, नवयौवनत्व की उपलब्धि एवं दीर्घायु की प्राप्ति होती है। ऋद्धि एवं वृद्धि यथा सर्वश्रेष्ठ इनका नाम है, तत्स्वरूप में इन दिव्यौषधियों का अनन्त प्रभाव भी है।

हिमालय की प्रख्यात वनौषधि–अतिविषा (अतीस) है। यह वहुमूल्यवान् वनौषधि दो प्रकार की होती है, कड़वी और मीठी। इसका-इंगलिस लैटिन नाम एकोनाइटम हैटरोफाइलम् है। रोग निवारणार्थ अतीस कड़वी का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। इसका व्यवसाय बद्रीनाथ तथा केदारनाथ धामों के निवासी नियमित रूप में करते हैं।

निघण्टुकार—भावप्रकाश आदि उच्चकोटि के आयुर्वेद शास्त्रकारों ने अतिविषा (कड़वी) का गुणवर्णन एवं दिग्दर्शन विस्तृत रूप से इस प्रकार किया है—

विषा सोष्णा कटुस्तिक्ता पाचनी दीपनी हरेत्।
कफपितातिसाराम विषकासवमि भ्क्रिमीन् ॥

अर्थात्—अतिविषा अपने गुणों में उष्ण, कड़वी, चरपरी, पाचन शक्तिमद, जाठराग्नि को प्रदीप्त करने वाली तथा कफ-पित्त-जन्य रोगों को समूल नष्ट कर, अत्तिसार, आमविष, श्वास, कास, वमन एवं उदरकृमि रोगों को विनष्ट करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय के उच्च भूभागों में अतिविषा के क्षुप उत्पन्न होते हैं। इसकी पत्तियां छोटी एवं पतली होती हैं। इसके मूल के भूभाग के अन्दर लघुकन्द स्वरूप में जो ग्रन्थित-पदार्थ उपलब्ध होता है, वह अतिविषा (अतीस) के नाम से प्रसिद्ध है। यह अन्दर से श्वेत एवं बाहर से भूरे रंग में अतितिक्त स्वाद की होती है। अतिविषा, बलवर्धक, वीर्यरक्षक एवं ज्वरप्रतिशोधक है। ज्वर निवृति के उपरान्त दीर्घ-दौर्बल्यता में अतिविषा का प्रयोग मक्खन, मलाई या मधु से किया जाता है। इसका गुण योगवाही होने से सन्निपात ज्वर एवं मलेरिया आदि संक्रामक रोगों में सद्य-प्रभाव दिखाता है, उदर क्रिमिरोग में अतिविषा चूर्ण को विडंग के साथ नियमित सेवन करने से पुनः कृमिजन्य व्याधि नहीं होती।

. हिमाञ्चलीय वनस्पति–कटुरोहिणी (कुरकी) का इंगलिश नाम ब्लैकहैलेबोर है। हिमालय-प्रभाग जिला चमोली के वन प्रखण्डों में यह बहुतायत में पाई जाती है। पर्वतीय जन एवं भूटान तिब्बत निवासी 'कटुरोहिणी' का विशेष व्यापार करते हैं, इस वनौषधि का स्वरूप इषत् काण्डाकार विविध ग्रन्थियों में अमृता-लतावत् अन्य वृक्षों के सहारे आरोहण गति में विकसित होती है, इसके बल्की लताकाण्ड पर उत्पनमान् 'कटुरोहिणी' का आवरण अगूंरी वृताकार जैसे दृश्यमान होता है। इसकी ग्रंथियों का ही केवल औषध निर्माणार्थ चयन किया जाता है। कटुरोहिणी का सम्यक् वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय तो इसमें कुछ तिक्त तत्व पिकरोरेजिन–कैथारटिक-ऐसिड, ग्लुकोज इत्यादि उपलब्ध होंगे। यह सूक्ष्म परिश्रुतजल तथा रासायनिक मद्यजातीय तीक्ष्म पदार्थ में घुलनशील एवं संमिश्रणशील द्रव्य है। आयुर्वेदिक शास्त्रकारों ने कटुरोहिणी का गुणधर्म एवं प्रभाव निरूपण इस प्रकार किया है—

कटुका कटुकापाके तिक्तारूक्षा हिमालघुः
भेदनी दीपनी ध्द्या कफपित ज्वरापहा
प्रमेह श्वास कासास्त्र दाहकुष्ठ कृमि मणुत्।

अर्थात् कटुरोहिणी स्वाद में कड़वी, पाचन में तीक्ष्ण, रूक्षप्रद, शीतल एवं भारहीन, मलभेदक, जठराग्निप्रद, हृदय-हितकर, कफपित ज्वरनाशक, एवं प्रमेह, श्वास, कास, रुधिरविकार, प्रदाह, कुष्टविकार तथा उदरस्थ दूषित कीटाणुओं की विनाशक है। कटुरोहिणी के आयुर्वेद में विविध योग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनते हैं । यह सनिपातज्वर एवं इनफ्ल्यून्जा आदि संक्रामक रोगों की महत्वपूर्ण औषध है । बच्चों के उदर संबंधी रोग अतिसार, संग्रहणी, उदरवेदना तथा क्रिमिव्याघात में भी लाभदायक है ।

हिमालयी सुप्रसिद्ध वनस्पति चिरायता (किरात) को इंगलिश लैटिन भाषा में स्वेर्शिया चिरेटा, कहते हैं । यह क्षुपजातीय हिमालयन भूभाग में अधिकतर उत्पन्न होता है । इसकी ऊँचाई २ फुट से ३ फुट पर्यन्त है । इसके पत्रवृन्त छोटे छोटे एवं मध्यम लम्बे स्वरूप में होते हैं । पुष्प श्वेत रूप में पाये जाते हैं । चिरायता दो प्रकार का है, कड़वा तथा मधुर । किंतु औषध निर्माण में कड़वा-जाति का चिरायता ही विशेष प्रयोग किया जाता है । हिमालयन वनसम्पदा की यह सर्वसुलभ तथा महत्वपूर्ण वनस्पति केवल भारतीय चिकित्सकों द्वारा ही नहीं अपितु वैदेशिक चिकित्सिकों द्वारा भी बहु प्रशंसित है । आयुर्वेद में ज्वरनाशक विविध औषधियां 'चिरायता' के योग से प्रस्तुत होती हैं । 'चिरायता' का नैसर्गिक गुण-प्रभाव विवेचन आयुर्वेद-विशेषज्ञों ने इस प्रकार किया—

किरातः सारकोरूक्षः शीतलस्तिक्तको लघु
सन्निपात ज्वरश्वास कफ पितास्त्र दाहनुत्

चिरायता—मलरेचक, रूक्ष, शीतल, कड़वा एवं हलका है । सन्निपात तथा जीर्णज्वर, श्वास, कास, कफ, पित, रुधिरविकार, दाह आदि को समूल नष्ट करता है । चिरायता निर्मित काढ़े को बसंत ऋतु में दो सप्ताह पर्यन्त नियमित सेवन करने से वर्षा ऋतु में मलेरिया का संक्रमण नहीं होता । ग्रीष्म ऋतु में चिरायता-काढ़ा सेवन से चर्म सम्बन्धी रोग नहीं होते । एलोपैथी औषध क्वीनेन के स्थान पर चिरायता निर्मित औषध का प्रयोग करने से मलेरियाज्वर विनष्ट होता है । हिमालयी—चिरायता का गुण सर्वोपरि है । आजकल इसका निर्यात् विदेशों में भी विशेष रूप से किया जा रहा है ।

हिमाञ्चलीय—शिलाजतु का इंगलिश लैटिन नाम-आसफेलटम फंजाविनम है । हिमालय के खनिज पदार्थों में शिलाजतु-रसायन का विशिष्ट स्थान है । यह बहुप्रचलित औषधरसायन बद्री-केदार की उच्चशिखर श्रेणियों में उपलब्धमान् है । यह अतिश्रमसाध्य माध्यमों से शिलाजतु-पिण्ड या द्रवित पाषाण के रूप में संगृहीत की जाती है । उत्तराखण्ड धाम दर्शनार्थ आये हुए यात्रियों तथा पर्यटकों द्वारा इस औषध रसायन का सुरुचिपूर्वक क्रय किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। स्वर्ण, रजत, ताम्र एवं लौह धातु से गर्भित जो भी हिमालयन-पर्वत मालिकायें हैं, वे ग्रीष्म ऋतु में प्रखर सूर्य रश्मियों से पूर्ण प्रतप्त होकर उपरोक्त स्वर्णादि धातुओं के सत्वसार को उद्दीप्त कर पर्वतीय वाह्य शिलाओं पर प्रकीर्ण कर देती हैं। इसे शिलासत्व या शिलाजतु के नाम से कहा जाता है। शिलाजतु की चार प्रकार की जातियां हैं—स्वर्णघटित, रजतघटित, ताम्रघटित एवं लोहघटित शिलाजतु। किंतु हिमालयी उपत्यकाओं में केवल लोहघटित शिलाजतु ही अधिक उपलब्ध होती है। शिलाजतु का संशोधन या औषधीकरण प्रत्येक उच्चस्तरीय औषध निर्माणशालाओं द्वारा सम्पन्न किया जाता है। क्योंकि प्रारम्भिक स्थिति में वन-पर्वतों से संगृहीत शिलाजतु कुछ अन्य तत्वों से भी संकुलित रहती है, अतएव शुद्ध एवं संशोधित शिलाजतु ही सेवनीय है।

शिलाजतु का गुण-प्रभाव एवं इसकी उपादेयता के सम्बन्ध में आयुर्वेद शास्त्र का समन्वय इस प्रकार है—

नसोऽस्तिरोगो भुविसाध्यरूपः
शिलाह्वयं यंन जयेत् प्रसह्य।

इस भूतल पर ऐसा कोई भी रोग नहीं जिसका प्रशमन शिलाजतु के उपचार से न किया जा सके, अर्थात्–असाध्य से असाध्य रोगों के लिये भी शिलाजतु 'रामवाण' औषध हैं। रासायनिक विश्लेषण पर शिलाजतु में अस्सी प्रतिशत् आयरन (लोहतत्व) एवं विटामिन बी पौष्टिक तत्व का बिशेष संगठन लक्षित होता है। फलतः यह औषध नाड़ी दौर्बल्यता, रुधिर की न्यूनता, मूत्रकृच्छ, शर्करामेह, पथरी, राजयक्ष्मा, जलोदर, अर्धांगवायु कुष्ठरोग एवं गम्भीर वात व्याधि में सद्यहितप्रद है।

किंबहुना इस विराट-हिमालय की दिव्य भूमि में अनेक उच्चकोटि की वनस्पतियाँ यथा-जटामांसी, शतावरी, ब्राह्मीबूटी, शँखपुष्पी, ज्योतिष्मती, हंसपदी सर्पगन्धा, श्वेतमूसली, गज पिप्पली, सुगन्धवाला, मंजिष्ठा चिरायता, अष्टवर्ग, चित्रक, गुडूची, कृष्णवासका, लघुपिप्पली, पिप्पलामूल, पाषाणभेद, नीलकंठी कट्फल, कर्कटश्रृंगी, दारुहल्दी, श्वेतमूसली आदि उपलब्ध हैं।

हिमालयन जटामांसी-हृदय सम्बन्धी एवं मस्तिष्क रोगों की महत्वपूर्ण औषध है। शतावरी के गुण मानवीय-बलवीर्य समृद्धि के लिए विशेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्माननीय हैं। हिमालय भूभाग में समुत्पन्न ब्राह्मीबूटी स्वयं अपने ही गुणों से सुप्रसिद्ध है। यह बुद्धि एवं स्मृति शक्ति को ओजस्विता प्रदान कर समस्त हृदय सम्बन्धी रोगों का प्रशमन करती है। ब्राह्मी निर्मित अनेक औषधीय रोग हैं, यथा ब्राह्मी रसायन, ब्राह्मीघृत, ब्राह्मीतैल, सारस्वतारिष्ट इत्यादि। ये गुणदायक योग अनेक कष्टप्रद बीमारियों में यथा-मृगी, उन्माद, अपस्मार, मूर्च्छा, स्मृति ह्रास में विशेष लाभप्रद हैं।.........

पर्वत और मानव

● डा० देवीदत्त पन्त

कई वर्षों पूर्व तत्कालीन वन मंत्री श्री अलगूराय शास्त्री ने कहा था कि पहाड़वासियों को पहाड़ से भगाया जाय। तब इस बात पर बुरा लगा था। लेकिन अब लगता है कि जिस संदर्भ में उन्होंने यह बात कही थी, वह सही थी। विकास की हमारी केन्द्रीय धारा व्यक्ति खाईयों के साथ जुड़ी हुई है। हमने मानव समुदाय तथा उन्नति की अपेक्षा व्यक्ति के निहित स्वार्थों को महत्व देना आरम्भ कर दिया है। परिणामस्वरूप व्यापक मानवीय हित कहीं खो गया है। विकासात्मक नियोजन की यह धारा पहाड़ों के बारे में सोच अवश्य रही है, लेकिन हम किसका विकास कर रहे हैं और विकास का अर्थ क्या है ? यह सम्भवतः पूर्ण बात नियोजकों के दिमाग में भी स्पष्ट नहीं है। सामान्यतः आज पहाड़ या पहाड़ी आदमी की भलाई के पीछे या तो क्षेत्रीय साम्प्रदायिकता सामने आती है या एक निर्धारित रकम को बिना किसी गहन चिन्तनपरक नियोजन के, खर्च करने की जिद। मेरी स्थापना इस परिप्रेक्ष्य में नितान्त भिन्न है। मैं सोचना हूं कि आज पहाड़वासियों को वर्तमान रूप में सुविधायें एवं नौकरियां दिलवाने या डिग्रियां प्रदान करने की सुविधा देने की अपेक्षा कहीं बड़ी समस्या है, पहाड़ों को जिन्दा रखने की। क्योंकि पहाड़ जिन्दा नहीं रहेंगे तो न तो पहाड़वासी जिन्दा रह सकेंगे, न मैदानी और न राष्ट्रवासी। पूरे संसार में पहाड़ ही मानवता को जीवन प्रदान करने वाले हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता जल को, वे ही अपने अंक से जन्म देकर सम्पूर्ण धरती में प्रवाहित करते हैं। उनमें हरियाली नहीं रहेगी, पेड़ पौधे नहीं होंगे, भू-स्खलन न रुकेगा तो मानवता को प्राणशक्ति प्राप्त नहीं होगी। पहाड़ नहीं रहेंगे तो गंगा, यमुना, सिन्ध और शारदा जैसी बड़ी नदियां नहीं रहेंगी और तब मैदानी क्षेत्रों का क्या होगा, यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

पहाड़ बड़े भयानक और विशाल ऊंचे दिखायी देते हैं। लेकिन जरा इनके भीतर जाकर देखें तो ये कितने कमजोर और कितने संवेदनशील हैं। मनुष्य ने अपने स्वार्थों के लिए इन्हें कमजोर बना दिया है। पहाड़ों में जन्म लेने वाली सम्पदा चाहे वह मिट्टी हो, खनिज हो, वृक्ष हो या जल हो सभी का इस प्रकार अराजकता पूर्ण दोहन किया जा रहा है कि वे एक बूढ़े और बीमार आदमी की तरह रीते दिखाई देने लगे हैं। कटाव के कारण भूमि की ऊपरी उर्वरा मिट्टी नष्ट हो रही है। परिस्थितिक परिवर्तनों के फलस्वरूप बर्फ पड़नी धीरे धीरे कम होती जा रही है। इस प्रकार एक समय ऐसा भी आ सकता है कि बड़ी बड़ी नदियों के स्रोत भी सूख जायें और गंगा का सम्पूर्ण तटवर्ती क्षेत्र सूख जाये। यह कल्पना ही यथार्थ की अपेक्षा कितना भयानक होती है।

पहाड़ केवल पहाड़ वासियों के लिए नहीं है, वे सम्पूर्ण राष्ट्रवासियों के लिए हैं और पहाड़ों की समस्या एक राष्ट्रीय वरन् अधिक स्पष्ट अर्थों में अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है। इसीलिए आज लगता है कि वैदिक काल से ही क्यों हिमालय की इतनी महिमा गायी गई है। वे पवित्र हैं यही उनका योगदान नहीं है और न यही कि वे एक राष्ट्र को सुरक्षात्मक आवरण प्रदान करते है। पहाड़ों का सबसे बड़ा योगदान यही है कि वे मानवता को जीवन स्रोत प्रदान करते हैं, जिन्दा रहने के लिए आधारभूत वस्तुएं प्रदान करते हैं। पहाड़ की हरियाली और उनकी विशालता अनंतकाल से मानव के लिये प्रेरणादायक रही है। ये पवित्र और प्रेरणादायक पहाड़ सदा से मानव कल्याण के लिए प्रयत्नशील रहे हैं, हमेशा ही मानव जाति के लिए जीवित रहे हैं।

जैसा कि पहले ही कहा गया है, पहाड़ो के बारे में सोचने की हमारी अवधारणा मूलतः त्रुटिपूर्ण है। विकास के नाम पर एक ओर पी. डब्लू. डी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा दुरूह पर्वतीय क्षेत्रों में सड़कें बनती हैं, उनसे कितने ही पेड़ नष्ट होते हैं। मलवा गिरता है, जमीन कमजोर हो जाती है, खेत कटते हैं, भूस्खलन होता है और इसी विकास के नाम पर वन विभाग और भूमि-मिट्टी अनुसंधान केन्द्रों द्वारा पेड़ लगाओ अभियान चलाया जाता है और भूमि कैसे मजबूत हो इस पर शोध किये जाते हैं। यह विरोधाभास क्यों ? शक्ति और पूंजी की यह दोहरी क्षति अंततः किस उदेश्य से ? इस समय पर्वतीय विकास के लिए लगभग १०–११ विभाग कार्य कर रहे हैं, इनमें कहीं भी परस्पर सहयोग नहीं है वरन् सभी लगभग एक दूसरे के विरोध में कार्य करते प्रतीत होते हैं।

विकास शब्द की अवधारणा हमारे मस्तिष्क में आज बड़े संकीर्ण अर्थों में है। हम समझ नहीं पाये कि विकास किसे कहते हैं। पश्चिम के कुछ आदर्श हमने अपने दिमाग में रख लिए हैं। प्रति व्यक्ति आय कितनी बढ़ी, प्रति वर्ष कितने स्कूल खुले और कितनी सड़कें बनीं, हमने कितना कपड़ा, पैट्रोल और कोयला खर्च किया। संक्षेप में हम कितना खर्च करते हैं, इससे हम अपना जीवन स्तर मापते हैं। पहाड़ के विकास की जितनी भी धारणायें हैं, सभी इस पर आधारित हैं। पहाड़ की ही क्या, मैदानों की और सारे विश्व की धारणा इसी पर आधारित है।

मुख्य बात है ग्रामीण नियोजन की :

उत्तराखण्ड के क्षेत्र को ही लिया जाय, आज यहां पर दो विश्वविद्यालय खुल गये हैं, ११ डिग्री कालेज कुमांयू क्षेत्र में हैं, १३–१४ गढ़वाल क्षेत्र में हैं, कई सड़कें बन गई हैं, अस्पताल खुल गये हैं और विकास के नाम पर कई अन्य कार्यालय खुल गये हैं, लेकिन ये सब सही अर्थों में बाहरी आडम्बर मात्र हैं। क्षेत्रीय समस्याओं के विकास के साथ इनका संबंध लगभग नहीं है। हम लोग आज जांइटिज्म की धारणा से ग्रस्त हैं। विकास का रास्ता हमारे लिए केवल एक ही है–हमारा बड़े से बड़ा अस्पताल हो, बड़ी बड़ी सड़कें हों और कई मंजिली इमारत वाला विश्वविद्यालय हो, तभी हम विकसित हैं अन्यथा नहीं !

विकास की समकालीन धारा विशिष्ट वर्ग की ओर ले जाने को उन्मुख है। हमारी दौड़ मूलतः सामूहिक चेतना से एक विशिष्ट एवं पृथक वर्ग में किये जाने की हैं और इस दौड़ के जो साधन हैं वे इतने निम्नस्तरीय एवं छलछद्म युक्त हैं कि वे हमें निश्चय ही इस धरती से नहीं जोड़ सकते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गावों से शहरों की ओर भागने की प्रवृति बढ़ रही है और यह समझा जाने लगा है कि सभ्य और सुसंस्कृत वही हैं जो कि शहरी हैं, अंग्रेजी पढ़ता है, स्मार्ट है और दूसरों को धकेल कर आगे बढ़ सकता है। इस प्रवृति से जहां एक ओर बड़े आदमी का बेटा बड़ा आदमी बन रहा है, वहीं दूसरी ओर गांवों का आदमी अकेला होता जा रहा है और अन्ततः उसे भी शहर की चकाचौंध अपनी ओर आकृष्ट कर रही है।

उच्च शिक्षा :

जाइंटिज्म और पश्चात्य प्रभावों से युक्त धारणा से पहाड़ों का जो अनिष्ट हो रहा है, वह स्पष्ट है। मेरा विचार है कि इस प्रभाव से मुक्त होने के लिये सत्ता का रूप बदले बिना एक रास्ता यही है कि शिक्षा प्रणाली को सस्ता बना दिया जाय। बड़ी बड़ी रकम खर्च करके आज जो शिक्षा संस्थान बन रहे हैं, उनसे सिवाय एक निरर्थकता के और कुछ भी सामने नहीं आ रहा है। वह प्रणाली निर्भीक इसलिए हो गयी है कि एक ओर तो वह विद्यार्थी को अनुपयोगी बना रही है, दूसरे अपनी मूलभूत आवश्यकताओं से अरुचि उत्पन्न कर रही है। उसकी रूचि उन बाहरी आडम्बरों की ओर बढ़ रही है जो उसके हैं ही नहीं और जो उसे कभी मिल भी नहीं सकते। अपने वास्तविक जीवन से, जो कि पश्चिमी जीवन की तरह चमक दमक से पूर्ण नहीं है, उसे घृणा होती जा रही है। यह घृणा का भाव उसे एक ऐसे अधर में छोड़ दे रहा है, जहां से वह न आगे बढ़ सकता है और न पीछे लौट सकता है।

उपरोक्त स्थिति में कोई क्राँतिकारी परिवर्तन लाया जाना सम्भव नहीं है। सम्भवतः यह स्थिति आसानी से बदल भी नहीं सकती क्योंकि आधुनिकता के इस तथाकथित बहाव में आदमी इतना अधिक आगे बढ़ चुका है कि उसे लौटा पाना अत्यन्त कठिन है।

आज यह भावना घर कर गई है कि छोटे वर्ग से बड़े वर्ग में जाने के लिए एक ही रास्ता है और वह है उच्च शिक्षा का। लेकिन यह रास्ता इतना संकरा है कि इससे आदमी बहुत ऊपर नहीं उठ सकता। अतः उच्च शिक्षा को सस्ता बना दिये जाने पर विचार होना चाहिये। क्या आवश्यकता है कि प्रत्येक व्यक्ति महाविद्यालयों में प्रवेश लेकर ही परीक्षा दे। वह घर में रहकर खेती कार्य करे और सम्पर्क केंद्रों के माध्यम से, जो कि शिक्षा से सम्बन्धित जानकारी प्रदान करने वाले छोटे छोटे सैल की भांति होंगे और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूर दराज के क्षेत्रों में विकीर्ण रहेंगे, एक दो घंटे पढ़ाई का कार्य करें और सप्ताह में एक दो दिन आस-पास के पढ़े लिखे लोगों या इन्टरमिडियेट के अध्यापकों की सहायता से अपनी कठिनाइयां दूर कर लें। कोई पंचायत घर, प्राइमरी स्कूल या अन्य खाली स्थान इनके एकत्र होने का स्थान हो सकता है। सम्पर्क केन्द्रों के लिए उसी क्षेत्र के कुछ उत्साही एवं पड़े लिखे लोगों को विश्वविद्यालय एक वर्कशाप में ट्रेनिंग दे देगा, उन्हें पाठ्यक्रमों की जानकारी दे देगा और इन्हीं व्यक्तियों के माध्यम से विश्वविद्यालय के नियमों आदि की जानकारी लोगों को हो सकेगी। समय-समय पर विश्वविद्यालय अपने प्राध्यापकों को भेजकर व्याख्यान-प्रशिक्षण करेगा, जिनका लाभ उस क्षेत्र के लोग भी उठा सकेंगे। यह योजना कुमायूं विश्वविद्यालय में आरम्भ की जा रही हैं कि कालेजों के विद्यार्थी भी बड़ी संख्या में गाँव में जाकर जनता के कामों में सहयोग दें, अपने को उनसे भिन्न न समझें।

उत्तराखंड की अधिकांश जनता ग्रामों में रहती है, लेकिन गांवों की स्थिति ऐसी है कि वहां आवश्यक वस्तुएं भी लोगों के द्वारा उत्पन्न नहीं की जा रही हैं। पिथौरागढ़ को ही ले, वहां बड़ी-बड़ी इमारतें बन गई हैं लेकिन साग-सब्जी, मिट्टी का तेल आदि टनकपुर आदि मैदानी क्षेत्रों से आता है। एक ओर तो आदमी ने शहरीकरण के मोहवश स्वयं को बौना बना दिया है, दूसरी ओर विकास की धारायें इस प्रकार संकीर्ण एवं निकृष्ट हो चुकी हैं कि उससे चाहकर भी व्यक्ति विकसित नहीं हो पा रहा है। पहाड़ के गांवों में इस समय सबसे विकट समस्या पानी की है। पानी न होने के कारण पहाड़ों में हरियाली नहीं हैं और परिणामस्वरूप रहे सहे पानी के स्रोत भी नष्ट होते जा रहे हैं। पानी से सम्बन्धित झगड़े प्रायः प्रतिदिन गांवों में सुनाई देते हैं। एक गांव उपलब्ध पानी से सिंचाई करने लगता है, तो दूसरे गांव वाले इस बात पर झगड़ने लगते हैं कि पानी पीना ज्यादा महत्वपूर्ण है न कि सिंचाई करना। यह एक विरोधाभास सामने आता है। पानी की इस पूर्ति के लिये आवश्यक है कि प्रत्येक छोटे-छोटे नदी नालों का पानी बिजली द्वारा पम्प करके ऊपर गांव में पहुंचाया जाय। बरसाती पानी को एक स्थान पर इकट्ठा करके सुरक्षित रखा जाय ताकि गर्मियों में वह सिंचाई के काम आ सके। बिजली पहाड़ों में हाइड्रिल से उत्पन्न की जाती है। अतः प्रत्येक ग्रामवासी को पानी चढ़ाने के लिए मुफ्त बिजली दी जाय। इस प्रकार जब गांव में पानी पहुंचेगा तो हरियाली होगी, पेड़-पौधे साग-सब्जी उगेगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और लोगों को जीवन स्रोत मिलेगा। इसके साथ ही वृक्ष धर्म का यह अभियान भी चलाया जाय कि प्रत्येक व्यक्ति ५० वर्ष में कम से कम एक वृक्ष को उगाकर बड़ा बनाये। बिना पानी के कुछ भी सम्भव नहीं। अतः जल पूर्ति के लिये बिजली निःशुल्क प्रदान करने की योजना शीघ्र ही चालू की जानी चाहिए।

संतुलित दोहन की आवश्यकता

पहाड़ों में अनन्त सम्पदा छिपी हुई है। उसके दोहन के सही और बिवेकपूर्ण उपाय किये जाने चाहिए। सम्पदा के दोहन के साथ-साथ उसके संरक्षण की बात भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि गांधी के 'शोषण' शब्द को मैं प्रकृति के सन्दर्भ में भी प्रयुक्त करना चाहता हूं। आज विज्ञान का ध्येय प्रकृति पर नियंत्रण माना जाने लगा है, जोकि गलत है। मेरा तो विचार है कि प्रकृति के शोषण के विरुद्ध एक जेहाद चलाया जाना चाहिए, क्योंकि पहाड़ों की कई बनस्पतियां प्रकृति के इसी शोषण की शिकार हुई हैं। हमें प्रकृति के साथ रहना है तो उसे सुरक्षित भी रखना है। खनिज हो या बनस्पतियां, सभी का दोहन धीरे धीरे किया जाना चाहिए न कि उन्हें जड़ से ही नष्ट कर दिया जाय। जंगली बनस्पतियों को विगत १०–१५ वर्षों में इस तरह से उखाड़ दिया गया है कि लगता है कुछ समय बाद उनका नामोनिशान नहीं रहेगा।

स्वास्थ और चिकित्सा

आज हमारे समाज में ग्रामीण जीवन के साथ सही अर्थों में जुड़ा हुआ व्यक्ति प्राइमरी स्कूलों का अध्यापक है, जो गांवों में रहता है। बहुत कुछ गांव वालों की सी बेशभूषा पहनता है और अपने बच्चों को वहीं पढाता हैं। इनकी बी. टी. सी. की पढ़ाई को अब दो वर्ष का कर दिया गया है। यदि एक वर्ष की शिक्षा को चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षा में जोड़ दिया जाय तो वे अधिक उपयोगी हो सकते हैं। वे जिन क्षेत्रों में रहते हैं वहां की समस्याओं से परिचित रहते हैं, अतः समय समय पर ग्रामवासियों को चिकित्सा सहायता दे सकते हैं। वे चीन के 'बेयर फूटेड डाक्टर्स' की तरह गांव के लिए उपयोगी हो सकते हैं। बड़े बड़े अस्पतालों को खोलने या सिविल सर्जन बनाने से कहीं अधिक श्रेयस्कर यही होगा कि इन छोटे डाक्टरों को निर्मित किया जाय। पहाड़ों के ऐसे अनेकों गांव है, जहां एक कुल्हाड़ी की चोट सामान्य चिकित्सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायता के अभाव में नासूर का रूप ले लेती है और मृत्यु का कारण बन जाती है। थोड़ी थोड़ी दूरी पर अस्पताल हों, लेकिन वे भी विशाल न होकर, सामान्य जरूरतों से युक्त हों। महत्वपूर्ण यह नहीं होना चाहिए कि इमारत विशाल हो वरन् महत्वपूर्ण यह होना चाहिए कि वहां समस्त आवश्यक वस्तुयें प्राप्त हो सकती हों। 'बेयर फूटेड डाक्टर्स' के भारतीय संस्करण में उपाधिरहित डाक्टर सामान्य पढ़े लिखे हों। कुछ महीने तक इन्हें डाक्टरी का आरम्भिक प्रशिक्षण दे दिया जाय और दिन भर काम करने के बाद शाम को ये अपने गांव के लोगों को आवश्यक दवायें वितरित करदें। साल भर बाद इनका पुनर्प्रशिक्षण हो जाय। इस प्रकार कुछ ही वर्षों में इन्हें डाक्टरी का अच्छा खासा सामान्य ज्ञान हो जायेगा और यह नियोजन कम पैसे में अधिक सार्थक हो सकेगा।

गंवार बनाओ

मुख्य बात आज दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने की है। लोगों के दिमाग से जाइन्टिज्म की धारणा को खत्म किये जाने की आवश्यकता है। मेरा तो विचार है कि समय आ गया है, जब कि लोगों को गंवार बनाया जाय। यह कोशिश की जाय कि उनमें गांवों के प्रति वास्तविक मोह पैदा हो। लोग खेती में रुचि लें, खेती से सम्बन्धित छोटे छोटे उद्योग धन्धे शुरू करें और उनको अपनाने में किसी प्रकार की शर्म का अनुभव न करें। शहरों की ओर दौड़ से कोई बड़ी उपलब्धि नहीं मिलती है। शहर आज या तो निरर्थक डिगरियां बांट रहे हैं, युवावर्ग को क्लीव और अशक्त बना रहे हैं या फिर एक औपचारिक एवं प्रदर्शनप्रिय दृष्टिकोण को उनके दिमागों में भर रहे हैं, जिसकी कोई सार्थकता नहीं है। सन् १९६० में हम कह रहे थे कि ११ साल के सभी बच्चों को हम प्राईमरी स्कूलों में भेज देंगे। लेकिन आज भर्ती हुए बच्चों में से केवल २८ प्रतिशत बच्चे ही कक्षा ५ पास कर सके हैं। आज यह कहा जाने लगा है कि छटी योजना तक हम अपना यह लक्ष्य पूरा कर लेंगे। लेकिन मेरा विचार है कि जब तक हम इस स्थिति में पहुंचेंगे, यह अनुभव करने लगेंगे कि इस प्रकार की शिक्षा बेकार है।

सही शिक्षा के द्वारा ही राष्ट्र की समग्र शक्ति का निर्माण होता है। अतः डिग्रियां या केवल अक्षर ज्ञान मानव समुदाय में नैतिक शक्ति पैदा कर सकने में असमर्थ हैं। बिना नैतिक शक्ति के शिक्षा व्यर्थ है। शिक्षा ऐसी हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसमें प्रदर्शन की भावना बिल्कुल न हो। मनुष्य को वह विशिष्ट एवं पृथक वर्ग की ओर न ले जाय बरन् उसे आम आदमी के साथ जोड़े, उसे सामूहिक चेतना की ओर बढ़ाये। शिक्षा का उद्देश्य दृष्टिकोण बनाना होना चाहिए न कि उसे एक मशीनी पुर्जा बना देना।

शिक्षा की यह समस्या केवल पहाड़ों की नहीं है, यह राष्ट्र व्यापी और मानव व्यापी समस्या है। लेकिन पहाड़ों में आज जिस गति से पारिस्थितिक परिवर्तन हो रहा है, वह तब तक नहीं रुक सकता, जब तक कि पहाड़-वासियों में अपने क्षेत्रों के प्रति मोह एवं जागृति की भावना न पैदा की जाय। पहाड़वासियों को, चाहे वे गांवों में रहते हों या शहरों में, ग्रामीण परम्परा के साथ जोड़ा जाय और राष्ट्रवासियों के मन में यह भाव तेजी से घर कर जाय कि पहाड़ हमारे हैं और उनके बिना हमारा अस्तित्व नहीं है। पहाड़ केवल पहाड़वासियों के लिए नहीं, वे सभी को प्राणशक्ति प्रदान करते हैं। अतः आज अधिक आवश्यक यह है कि पहाड़वासियों के साथ हमारा ध्यान पहाड़ों की ओर जाय। यदि विज्ञान को इस समस्या का हल निकालना है तो पानी, ईंधन और चारे की समस्या पहिले हल करनी होगी। जल्दी उगने वाले पेड़, चारे की घास या पेड़ पर खोज में पैसा खर्च करना अधिक आवश्यक हैं, बजाय कि विश्वविद्यालय, महाविद्यालय खुलें, बड़े अस्पताल हों अथवा सितारों पर खोज की जाय, वाह्य प्रतिष्ठा आन्तरिक कष्ट को पूरा नहीं कर सकती।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केन्द्रीय व्यवस्था को बदलने की प्रयोग भूमि-पर्वतीय क्षेत्र

• रघुवीर सहाय

इस पद यात्रा के संस्मरण सुनने के बाद यदि कोई यह कहे कि इससे एक नये संसार की एक छोटी सी झलक देखी है तो वह उचित ही होगा। अपने लिए तो मैं यह भी कहूंगा कि मैं अतृप्त ही रह गया हूं। यह वर्णन केवल तथ्यों का वर्णन नहीं है। यह बहुत से सत्यों को उजागर करते हैं और वे सत्य इतने झकझोरने वाले हैं कि उनको देखकर फिर शान्त रहना सम्भव नहीं है। इस परिचय को, जो अपने देश की मिट्टी से आज आपको हमको इन छात्रों की बदौलत मिला है, और आगे बढ़ाना बहुत जरूरी है।

इस विवरण को सुनने के बाद दो बातें उठती हैं। इन अनुभवों से हमें कुछ समझ में आ सकता है कि क्यों हमारे जितने आन्दोलन, आक्रोश को प्रकट करने के लिए होते हैं वे विफल हो जाते हैं और यदि हम कुछ करें भी, एक मुख्यमन्त्री की जगह दूसरा मुख्यमन्त्री रख दें, जैसा अनेक प्रदेशों में भारत में हुआ है, तो भी कुछ नहीं कर पाते। मुझे लगा कि यह सारा मामला पहाड़ के सन्दर्भ में बहुत प्रखर रूप में देखा और जांचा जा सकता है। जो कुछ अभी हैं उस पर सत्ता के केन्द्रीयकरण का घनघोर असर पड़ता है और पहाड़ों पर सबसे अधिक पड़ता है, क्योंकि पहाड़ यों भी दुर्बल हैं। वहां सम्पत्ति है, धन है, वहां भूमि का और जितनी देर तक उस क्षेत्र को कार्य शून्य रखा जा सके उतनी देर तक बेकार लोगों का धन भी वहां है। इन सबका शोषण करने के लिए मैदान आतुर होता है। यह भारत की घटना नहीं, प्रायः सभी जगह ऐसा हुआ है।

सत्ता के भयंकर केन्द्रीयकरण के कारण मनुष्य के समस्त अधिकार जितने संविधान के द्वारा संसदीय संस्थाओं ने दिये, वे सब अधिकार उसके हाथों से छीन लिए जा चुके हैं और जब हमको यह सुनने के लिए मिला कि विधायकों ने उन क्षेत्रों को देखा ही नहीं तो यह सिद्ध हो गया है कि इस अधिकार का केन्द्रीयकरण इतना अधिक हो गया है कि विधायक को वहां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाने की आवश्यकता ही नहीं। यह घटना मनुष्य के जीवन से बहुत कुछ छीन लेती है। अपने काम धन्धे के अधिकार को छीन लेती है। अपने आस-पास की भूमि, पानी और दूसरे साधनों का उपयोग करने की उसकी रचनात्मक शक्ति को छीन लेती है और उससे मिलने वाले सुख को भी छीन लेती है। उससे मिलती है इस प्रकार की भावना जिससे अन्ततः यह समझना बहुत सरल हो जाता है कि, क्योंकि तुम अभी योग्य नहीं हो, इसलिए तुम्हें और अधिक अधिकार नहीं दिए जायेंगे। बहुत अधिक समय तक अपने सामान्य कर्म और कर्म से प्राप्त होने वाले सुख और सम्पत्ति के अधिकार को छीनेगा कौन ? यह कहना बहुत अधिक आसान हो जाता है कि तुम अलग राज्य की मांग करोगे तो वह सारे देश के लिए अहितकर होगा। तुम पढ़ो-लिखो, तब तुम्हें देश के बड़े-बड़े स्थानों पर जगह मिलेगी। यह सुनते-सुनते खप चुके हैं। अब जरूरत है कि सारे तथ्यों को सही सन्दर्भ में रखकर देखें और इस बात को प्रमाणित करें व सिद्ध करें कि पहाड़ का जो भी शोषण हुआ है उसे बदलने के लिए पहाड़ के लोगों को भयंकर केन्द्रीयकरण वाली व्यवस्था के एक नये ढांचे में फिट करना कोई ठीक उपाय नहीं है। इस दृष्टिकोण से जो शब्दों के द्वारा हमारे सामने रखा गया है वह बात हमारी समझ में आनी चाहिये कि पहाड़ों में वहां के साधनों से, वहीं के लोगों की बुद्धि द्वारा और वहीं के लोगों के हित के लिए विकास और उत्पादन का कार्य सबसे प्राथमिक कार्य है और कोई राजनैतिक कार्य सच्चे अर्थ में हो सकता है तो यही एक राजनैतिक कार्य वहां के लोगों को उनके प्राथमिक अधिकारों को वापिस दिलाने में सहायक होगा। उनको सारे भारत से बिल्कुल अलग कटा हुआ सुरक्षित प्रदेश रखने की सलाह देना बहुत अधिक यथार्थवादी नहीं होगा। मूलरूप से अलग-अलग ऐसा प्रयोग आप नहीं कर पायेंगे, परन्तु ऐसा अवश्य कर सकेंगे कि इस प्रदेश को प्राथमिकता देकर उसके बाद आप सारे भारत के आर्थिक व राजनैतिक ढाँचे में अपना समावेश करें। इसके साथ रिश्ता जो रहे वह ऐसा न हो कि आप एक अजायबघर की तरह केवल बहुत छोटे उद्योगों को लेकर काम चलाते रहें और इसका सुख हो कि आप अपने साधनों के द्वारा अपना विकास कर रहे हैं। यह मान लेने का मतलब यह होता है कि सारे भारत पर पहाड़ के लोगों का कोई अधिकार ही नहीं है। पदयात्रियों ने इस ज्वलन्त सत्य को हमारे सामने रख दिया है कि जितना मैदान है वह पहाड़ से ही बना है और वहीं से नदी आई है और वहीं से मिट्टी लाई है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मैदान सारे पहाड़ के लोगों का है, उतना ही जितना मैदान के लोगों का है।

राजनैतिक अधिकारों के केन्द्रित हो जाने के कारण और उसी के समानान्तर उत्पादन के साधनों के केन्द्रित हो जाने के कारण, जिसका मतलब होता है कि जो तकनीक और प्रौद्योगिकी इस्तेमाल होती है, उसके बहुत अधिक दुरूह हो जाने के कारण, शोषण मैदान के द्वारा हो रहा है। ऐसा कोई रास्ता खोजा जाय जिसमें पहाड़ों की प्राकृतिक सम्पदा का उत्पादन करने योग्य विद्या सुलभ हो। विद्या को दुर्लभ बनाने न दिया जाय। यह न हो कि लीसा गलाने की विद्या कुछ बड़े कारखाने चलाने वाले, विलायत में पढ़े हुए या हिन्दुस्तान की बड़ी-बड़ी संस्थाओं में पढ़े लिखे लोग जानें और बाकी लोगों को केवल उससे मजदूरी ही मिले और इसलिये वह कारखाना पहाड़ों में नहीं बरेली में ही बने। इनको तोड़ने के लिए हमें प्रौद्योगिकी का आकार छोटा करना चाहिए, फिर उसे सबके लिए सुलभ बनाना चाहिये। जो काम हो वह आदर्शवादी और कल्पना से भरा हुआ काम नहीं, यथार्थ हो। उसे वहीं के लोग अपने ढंग से और अपनी व्यवस्था के अन्दर ढालें। पश्चिम के बहुत बड़े-बड़े विद्वान बड़ी प्रौद्योगिकी द्वारा मनुष्य के शोषण के विरुद्ध आन्दोलन कर रहे हैं। शूमाखर दिल्ली आये थे। इवान इलिच नामक एक और विद्वान इसके बहुत बड़े समर्थक हैं। इसके बड़े-बड़े समर्थक प्रेरक अपने देश की मिट्टी से पैदा हुए लोग भी रहे है। गांधी जी, विनोबा जी और सर्वोदय आन्दोलन तो इसके लिए समर्पित हैं। तो इस प्रकार प्रौद्योगिकी का आकार छोटा करना जिससे कि वह सबको सुलभ हो और उसी के साथ-साथ अपनी स्थानीय इकाइयों के प्रशासन और वहां पर उत्पादन सम्बन्धी निर्णय, विकास सम्बन्धी कार्य करने के लिए सम्पूर्ण अधिकार वितरित करना, स्तर के अनुसार एक कार्यक्रम माना जाये तो पहाड़ों के शोषण की मुक्ति का यह एक रास्ता बन सकता है। एक हद तक यह रास्ता सुगम रूप से चलता रहेगा। परन्तु आगे चलकर इसका समन्वय उस तमाम संसार से करना पड़ेगा कि जिसे आप अकेले नहीं बदल सकते, जो आज मैदान से चलता है और जिसके कारण आज सम्पूर्ण शोषण पहाड़ों का हो रहा है।

आप कह सकते हैं कि इस प्रकार काम करने पर हम शोषण को केवल एक अंश तक ही कम कर पायेंगे। मैं यह कहूंगा कि ऐसा नहीं है। वास्तव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आप सारी व्यवस्था के प्रकार और उसके गुण को बदलने का प्रयत्न कर रहे हैं। यह ठीक है कि आपको पूर्ण सफलता तो नहीं मिलेगी क्योंकि यह इतना बड़ा तन्त्र यूरोप से लेकर भारत तक फैला हुआ है। यूरोप के लोग भारत को अपनी सड़ी-गली और पुरानी तकनीकियां बेचते हैं और अपने आदमी हमारे ऊपर यहां भेजकर लाद देते हैं। वहां क्या मैदान के लोग पहाड़ पर अपनी तकनीकी नहीं लाद सकेंगे ? तो आप तो पूरी तरह तो नहीं लेकिन एक नए समाज की, जिसमें राजनैतिक अधिकार का गांव और गांव के बाद की इकाइयों पर क्रमशः वितरण भी उसका एक अनिवार्य अंग होगा, नींव रखेंगे क्योंकि बिना इसके आप आर्थिक साधनों के उपयोग के लिए बराबर लखनऊ और दिल्ली पर या दिल्ली से अमेरिका पर या अमेरिका और रूस दोनों पर निर्भर रहेंगे।

इसके साथ एक बात और जोड़नी है। पहाड़ के लोगों के वहां वापिस जाने की बात कही गई है। यह तो नहीं जान पड़ता कि वापिस जाना सम्भव होगा कि नहीं, लेकिन यह बात बहुत सत्य है कि आपके मन को कम से कम वापस जाना ही पड़ेगा। जो लोग वहां से आकर यहां मैदान में बसे हुए हैं उनको मैदान में रहने वाले लोगों की विचारधारा के साथ जुड़कर नहीं बल्कि इस छोटे उद्योग, छोटी इकाई में राजनैतिक अधिकार की विचारधारा के साथ अपने आपको जोड़ना आवश्यक हो जायगा।

शिक्षा का तरीका बदलें

पहाड़ में शिक्षा का सारा तरीका एकदम बदल देना चाहिए। वहां के लोग पहाड़ के साधनों से कोई काम नहीं कर पाते क्योंकि उनको उसकी शिक्षा नहीं है। उनको बुक क्राफ्ट (पुस्तक कला) सिखाया जाता है जो मैदान के लिए सुलभ है। कागज तो वहां मिलता नहीं है। पहाड़ के कागज पर तो आप चित्र बना सकते हैं। उसका लिफाफा नहीं बना सकते। पहाड़ की लकड़ी से आप बहुत सी चीजें बना सकते हैं। अगर किसी के हाथ में रचना की शक्ति को विकसित करना है तो उसके लिए लकड़ी-पत्थर हो, कागज हो, कोई भी चीज हो सब बराबर है क्योंकि रचना की शक्ति एक ही है। परन्तु वहां जो मैदान वाला दिमाग है वह एक क्राफ्ट को वहां आरोपित करता है जो वहां की भूमि से नहीं जुड़ा है। इसी तरह जो विद्या यहां से ले जाकर वहां आरोपित की जा रही है, वह वहां के किसी भी नवयुवक के लिए इतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही उपयोगी है कि सिवाय किसी मैदान में उस व्यवस्था की पूजा करने के लिए उसे विवश करें, जिस व्यवस्था से पहाड़ का शोषण करने में वह सहायक बन जाता है। इसलिए छोटी कक्षाओं से लेकर बड़ी कक्षाओं तक वहां के साधनों द्वारा कम लागत की और कम साधनों से उत्पादन करने वाली तकनीकों के सम्बन्ध में शोध शिक्षा और फिर उत्पादन करने वाली संस्थाओं के संगठन और उनके बाजार में माल भेजने और उनका प्रबन्ध करने की शिक्षा वहां की शिक्षा का अनिवार्य अंग होना चाहिए।

गंगा का उद्गम या प्रस्रवण क्षेत्र

• सुन्दरानन्द

ॐ नमामि गंगे तव पाद पंकजं
सुरासुरैर्वन्दित दिव्यरूपम् ।
भुक्तिंच मुक्तिंच ददासि नित्यं
भावानुसारेण सदा नराणाम् ।।

नगाधिराज देवतात्मा हिमालय अनादिकाल से मानव के आकर्षण का केंद्र रहा है। संसार भर में जहां भी गंगा एवं हिमालय का उच्चारण होता है तो लोगों का मुख-मण्डल एक विशेष आकांक्षा से दमक उठता है। यह आकर्षण अजेय शिखरों, अज्ञात हिम सरोवरों और मनोरम घाटियों के कारण नहीं, बल्कि किसी अदृश्य मानसिक सुख के कारण है। यह सुख आत्मानुभूति या अद्वैत से साक्षात्कार करने जैसा है। यह एक साथ विराट्, पवित्रता और अपनत्व की सुख-समृद्धि है। त्रिभुवन-तारिणी भागीरथी का जनक—गोमुख मानव के साहस को चुनौती देता रहा है। इसलिए साहसी सौन्दर्य-उपासक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव यह मूक निमंत्रण पाकर अपने को रोक नहीं पाता। अनायास ही उसके पैर उस सुरम्य क्रीड़ा स्थल की ओर बढ़ते रहते हैं—शांति के उस परम-पुनीत धाम की ओर !

वर्तमान काल में गंगा का वास्तविक उद्गम-गोमुख-गंगोत्री से १२ या १३ मील ऊपर है। परन्तु किसी समय वह गंगोत्री में गौरीकुण्ड पर था और इससे नीचे भी हो सकता है। यह तो अन्वेषण का विषय है। हो सकता है कि राजर्षि भगीरथ के काल में यहीं रहा हो। गंगोत्री हिमानी दिन-प्रतिदिन गलती हुई पीछे हटती जा रही है। इस हिमधवल प्रस्रवण-क्षेत्र का सांगोपांग वर्णन कर पाना किसी लेखनी का विषय होना सर्वथा असम्भव सा है।

मैंने पहले-पहल गोमुख की यात्रा सन् १९४८ जून माह में गुरुदेव विरचित इस मंगलाचरण के सहारे की——

गंगे ! गंगे !! नमोस्तुभ्यं मातमतिर्नमोनमः ।
कृपया देहि मे नित्यं त्वयि निष्ठामखण्डितम् ।।

एक साथ अनन्त विराटता के दर्शन और कल्याणकारक, निर्मल, स्वच्छ पतित-पावन गंगा धारा में स्नान-पूजन आदि करके मुझे नवजीवन सा प्राप्त हुआ। प्रत्यक्ष में ऐसा अनुभव हुआ मानो उस अव्यक्त में से व्यक्त परमानन्द की न चाहने पर भी प्राप्ति हो रही है और तुलसीदास जी की यह चौपाई बरबस याद हो आई—

दरस परस अरु मज्जन पाना। कटहिं पाप कह वेद पुराना ।।

यहां धरित्री भद्ररूप से विराजमान हैं। नीली आभावाली बर्फ और बहुत ही विस्मयकारी आकार लिए पृथ्वी से दो ढाई सौ फीट ऊँचा एक विलक्षण ढेर सा है, जिसके ऊपर शताब्दियों की धूल-मिट्टी, भीमकाय शिला-खण्डों ने जमकर एक असाधारण टीले का रूप दे दिया है। वहां के अलौकिक देव-दुर्लभ दृश्य तथा व्यक्त आनन्द से धन्य तथा भाव-विभोर होकर संकल्प किया था कि यह मेरे तक सीमित न होकर सर्वसाधारण को भी सुलभ हो और अपने लिये तो दस-बीस बार नहीं, अपितु एक सौ आठ बार उस परम धाम की यात्रा करने के संकल्प के साथ व्रत लिया। गंगा जी की असीम कृपा वात्सल्य से यह कठिन व्रत पूर्ण करके अब कई वर्षों से गणना करना छोड़ दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चूंकि अब गंगोत्री तक बस सेवा उपलब्ध हो गई है और गोमुख तक छः फुटी सुगम मार्ग बन गया है, अतः उस समय की गोमुख - प्रदेश में जाने की कठिनाई को समझना कल्पना से बाहर है। क्योंकि तब न कोई मार्ग था, न मार्गदर्शक। कितने ही दुस्साहसी महात्मा अपनी जीवनी से हाथ धो बैठे थे। जरा फिसले कि सैंकड़ों फीट नीचे हर-हराती गंगा में सदा के लिए समाधिस्थ हो गये। उस समय मार्ग की पहचान केवल पत्थर पर रखे पत्थरों से होती थी, लेकिन बर्फीले तूफानों या पवन देव की कृपा से वे पत्थर गिर जाते थे और सांकेतिक चिह्नों को मिटा देते थे। तब साहसी पर्यटक भटक जाते थे। फिर मीलों इधर-उधर चक्कर काटने पड़ते थे। इसलिए गंगोत्री आनेवाले हजारों यात्रियों में से इने-गिने दुस्साहसी लोग ही गोमुख जा पाते थे। लेकिन पूज्य गुरुदेव श्री तपोवन जी ने गोमुख दिव्य-प्रान्त का जो रम्य चित्र खींचा था, उससे मैं अपने आपको रोक नहीं सका।

गंगा के उद्गम स्थल का पर्वतारोहण के इस युग में भी अज्ञात बना रहना नितान्त विस्मयजनक ही है। उसके विषय में जन-साधारण खासकर धर्म-भीरू भारतीय लोगों में बहुत से भ्रम फैले हुये हैं। बड़ा खेद का विषय है। कोई कहता है उद्गम का पता ही नहीं। कोई बोलता है गंगा की धारा कैलास पर्वत से और मानसरोवर से निकल कर हिमालय के अन्दर ही अन्दर बहती है और गोमुख पर दिखाई देती है। ये विचार सही नहीं हैं। यहां की भौगोलिक परिस्थितियों से सर्वथा अनभिज्ञ जन ही ऐसी मनगढंत बातें करते हैं और भ्रम फैलाते हैं। क्योंकि मानसरोवर की ऊंचाई १८,००० फीट और गंगोत्री-हिमानी जिन चौखम्भा शिखरावलियों से प्रारम्भ होती है, वह क्रमशः २३,४२०; २३ १९०; २२,८८० और २२,४८५ फीट ऊंची है। चौखम्भा शिखरों से २०, २१ मील नीचे अन्तः सलिला के रूप में आकर गंगा प्रकट होती है। यदि गंगा १८,००० फीट ऊंचाई वाले मान सरोवर से निकलती तो भला २३,४२० फीट ऊंचे चौखम्भा-शिखर पर कैसे पहुंच जाती?

सच बात यह है कि हमारे पूर्वजों ने इस सारे हिमालय प्रदेश की चप्पा-चप्पा भूमि का वर्णन वेद-पुराणों में दे रखा है। जब अग्निपुराण में मिश्र देश की नील नदी तक का वर्णन मिलता है तो फिर इस भारत का विस्तृत वर्णन क्यों न होता, जिसमें ऋषि-महर्षि सदा विचरण करते थे? किं-वदन्ति यह भी है कि किसी समय गंगोत्री, बद्रीनाथ और केदारनाथ का एक ही पुजारी होता था, और वह तीनों स्थानों पर पूजा किया करता था। इसका अर्थ यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ कि वह किसी अज्ञात मार्ग से कुछ ही घण्टों में तीनों स्थानों पर पहुंच जाता होगा। यह भी हो सकता है कि तीनों मन्दिर एक ही स्थल पर हों? पर आज वर्तमान काल में ऐसा होना सम्भव नहीं दिखाई देता।

गोमुख १२,८७० फीट की ऊंचाई पर है। यह नीलमणि सदृश गुफा है। गंगा जी की पावन धारा का पहली बार इसी गुफा में दर्शन होता है। "धातूनां अनेकार्था:" से 'गो' शब्द यहां पृथ्वी का वाचक है। पृथ्वी का मुख जैसा दिखाई देने से गोमुख सार्थक नाम पड़ा। गोमुख का अर्थ है गो-समान मुख से गंगा का प्रकट होना। 'गो' का दूसरा अर्थ है, धरती के मुख से पहली बार गंगा का प्रादुर्भाव। तीसरा अर्थ बताता है कि 'गो' याने इन्द्रिय-इन्द्रियों की पहुंच में गंगा का सर्वप्रथम आना। चौथा अर्थ—सूर्य की पहली किरण गंगा प्रवाह को यहीं पर प्रथम स्पर्श करती है। चारों ही अर्थ 'गोमुख' पर पूरे और शास्त्र संगत सही उतरते हैं। यों बहुत से लोग गोमुख का अर्थ गाय का मुख समझते हैं और उसकी पूजा भी करते हैं। कितनी विडम्बना का विषय है। वास्तव में यह विचार ठीक नहीं है। गंगोत्री से भागीरथी के बांये किनारे पर स्थित चीड़वासा से सात-आठ मील तथा भोजवासा और पुष्पवासा से ५ मील दूरी पर गोमुख है। इस प्रदेश का पूरा वर्णन कर सकना तो असम्भव है। महाकवि कालीदास भी भाव-विभोर हो उठे होंगे! तभी तो उन्होंने लिखा है—"क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेवरूपं रमणीयताया:" अर्थात् एक-एक क्षण में जो नवीनता को प्राप्त होता है वही दृश्य रमणीक है।

पूज्य गुरुदेव श्री तपोवन जी ने गोमुख की स्तुति इन ललित शब्दों में की है—

गंगे! गोमुखि! तुभ्यमस्तु मनसा वाचा च तन्वानम—
स्त्वां दृष्ट्वा तव निर्मलेऽमृत समे स्नात्वा च भद्रेजले!
मन्ये धन्य जनिर्ममेति सुतरां धन्योऽस्मि धन्योऽस्म्यहं।
भूयोभूय इवानतोऽस्मि चरितार्थोस्मित्वया सेवनात्॥

अर्थात्—"हे गोमुख, हे गंगे, तुम्हें मन, वचन, शरीर से नमस्कार है। मैं मानता हूं कि तुम्हारा दर्शन करके और तुम्हारे निर्मल, अमृत-तुल्य, कल्याणकारक जल में स्नान करके मेरा जन्म अत्यन्त धन्य हो गया है। मैं अतीव धन्यात्मा हूं। आपके सम्यक् प्रकार से आसेवन से मातृऋण से भी उऋण हो गया हूं। फिर भी तुम्हें बार-बार नमस्कार करता हूं। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार तुम्हारे जल के आसेवन से, पूजनादि से मैं चरित्रवान् ही नहीं, बल्कि अत्यन्त कृतार्थ भी हूं।

कोटि-कोटि भारतीय नर-नारियों की पूज्या, लोक-माता के पितृ-गृह के दर्शन, स्तवन इत्यादि से हृदय भरता ही नहीं। इसकी आयु क्या है, कोई नहीं जानता। नीलाभ वर्ण दूर से श्याम दिखाई देता है, और भूमि के ऊपर लगभग दो ढाई सौ फीट ऊंचा एक ढेर है, जिसके ऊपर शताब्दियों की धूल-मिट्टी शिलाखण्डों, महौषधियां और दिव्य पुष्पों ने जम कर इसे एक असाधारण रूप दे दिया है। इस हिमपाषाणरूपी तहखाने से जो स्रोत फूटता है लगभग ३० फीट चौड़ा और ४-५ फीट गहरा है। शिशु रूपा होने पर भी उद्दामवेग से दहाड़कर गंगा निःसृत होती है। यह विस्तार ग्रीष्मकाल में प्रचंडरूप धारण कर लेता है और हेमन्त में कुछ घटकर अन्तः–सलिला का रूप धर लेता है। विगत २८ वर्षों के आवागमन में मैंने इस मायावी रहस्यमयी हिम-कन्दरा को हर बार नाना रूपों में देखा है!

पांच वर्ष पूर्व जुलाई में नैनीताल–निवासी सुप्रसिद्ध पर्यटक तथा प्रशिक्षक पर्वतारोही श्री चन्द्रलाल शाह ठुलघारिया अपने परिवार के साथ गंगोत्री गोमुख यात्रा पर आये। मैं और शाह जी छह महिलाओं को लेकर गोमुख गये। स्नान–पूजन के बाद मैं और शाह जी गुहा के निकट एक भीमकाय शिला-खण्ड पर खड़े होकर उस रूप माधुरी के चित्र लेने में व्यस्त थे। महिला-वर्ग काफी दूर पीछे बैठकर आरती कर रहा था। इतने में आदम-खोर चीते की तरह दहाड़कर वह पारदर्शी दीवार टूटी। हम जीवन और मृत्यु की सीमा पर खड़े थे। हिम–पाषाण खण्डों ने प्रवाह की गति को अवरुद्ध कर दिया और देखते ही देखते लगा कि प्रलय होने जा रहा है। जिस शिला खण्ड पर हम दोनों खड़े थे, वह डगमगाने लगा और शीतल जल में भीगकर हम भयभीत हो थर–थर कांपने लगे। वह रौद्र रूप देखते ही बनता था। मैं तो उस दृश्य का चित्र लेकर आंखें मूंद करके स्तवन करने में दत्त–चित्त हो गया। कुछ ही मिनटों के अन्दर धारा ने उन हिम–खण्डों को किनारे धकेल कर मार्ग बनाया और वह शान्त हो गई। उस दृश्य की कल्पना करके आज भी रोमांच हो आता है। तेरी महिमा का शिव–सनकादि भी पार नहीं पा सकते, तब भला हम पामर कैसे?

जिस मार्ग से हम आसानी से गोमुख तक पहुंचे थे, वह अब हिम-शिला खण्डों से ऊबड़–खाबड़ बन गया। हम बड़ी कठिनाई से महिलाओं की टोली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पास पहुंचे। वे सब अस्त-व्यस्त अशांत हो रही थी। मुझे अब भी यहीं अनुभूति हो रही थी कि गंगा एक-एक हिम-शिला खण्ड को ताण्डव-नृत्य सिखा रही है और प्रचण्ड लहरें हमें भी आमंत्रित कर रही हैं कि आओ, नाचो और गीत गाओ ! कहां तो वह प्रलयंकारी मृत्यु-रूपी भयावह अद्भुत लीला और कहां ऋद्धि-सिद्धि जैसा वैभव ! मन कांपता भी था और भाव-विभोर भी होता था। तप से ही महत् पद प्राप्त होता है न ! दो अक्षरों का 'मम' (यह मेरा है) मृत्यु है और तीन अक्षरों का 'न मम' (यह मेरा नहीं) अमृत के समान है।

गोमुख से ऊपर ८ मील कच्ची हिमानी का क्षेत्र है, जिसकी ऊंचाई १२,८७० फीट से भी उत्तरोत्तर ऊंची होती गई है। इसमें कहीं-कहीं नीली भयंकर दरारें पड़ी हुई हैं। सूरज की ताप से वामक के बीच नीला स्वच्छ सुन्दर सरोवर बन गया है। कहीं ऊपर चढ़ना पड़ता था, कहीं नीचे उतरना पड़ता था और कहीं चक्कर काटकर आगे बढ़ना पड़ता था। २०/२१ मील के क्षेत्र में फैली इस हिमानी की दरारों को लांघने में बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती थी। कुछ तो ऐसे शिला-खण्ड थे, जो हमारे चलने की धमक मात्र से लुढ़क जाते और भयंकर गर्जना करते हुये धुएं का सा तूफान खड़ा कर देते थे। आगे बढ़ते हुये हमारे कदम वहीं रुक जाते थे। कभी कभी हम भी सन्तुलन खोकर लुढ़कने को हो जाते थे और बड़ी कठिनाई से अपने को सम्भाल पाते थे। विश्व-प्रसिद्ध यह वामक (ग्लेशियर) २१ मील लम्बा है और कहीं एक-दो मील, तो कहीं हिमनदियों के संगम-स्थल पर तीन-चार मील तक चौड़ा है। गोमुख के ऊपर गंगा जी का इन चर्म-चक्षुओं से दर्शन नहीं होता है। इस दृश्य का पूज्य स्वामी तपोवन जी इस प्रकार वर्णन करते हैं :-

अयि भगवति ! भव्य श्रीमुख-श्रीनितम्बे
तुहिम मुकुर हर्म्यस्यान्तरन्तर्वधूवत् ।
अहह ! चरसि चित्रं त्वं तु माता जगत्या-
स्तदपि कथम सूर्यं पश्यतां यासि राही ।।

अर्थात्-हे भगवती, पापनाशिनी, भागीरथी, मंगलमय श्रीमुख पर्वत के सुमनोहर नितम्ब देश में हिमरूपी कांच-महल के अन्दर ही अन्दर, आहा ! अन्तः पुर की नव-वधू की तरह तुम विचरण कर रही हो। यह महान् आश्चर्यजनक है कि एक ओर तुम अखिल-ब्रह्माण्ड-चराचर की जननी हो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथापि दूसरी ओर मैं इन चर्म–चक्षुओं से प्रत्यक्ष प्रमाणयुक्त अवलोकन कर रहा हूं कि लज्जायुक्त होकर तुम किस प्रकार अथवा किस कारण से जगत्–चक्षु सूर्य को न देखने वाली, अवगुण्ठनवाली एक साधारण स्त्री–सी बन जाती हो !!

ऊपर की दिव्यातिदिव्य सुषमा से संवेष्टित देवभूमि में भी प्रस्तुत लेखक कई बार क्या, निरन्तर ही भ्रमण करता आ रहा है। फिर भी तृप्ति की नामोनिशानी तक नहीं। गोमुख के चिर–सनातन हिम संघात के साथ गंगोत्री में शामिल होने वाले हिमनदों के नाम क्रमश: इस प्रकार हैं–मातृ, श्वेतवर्ण, कोटेश्वर थैलू, रक्तवर्ण, अनामिका, नीलाम्बर, चतुरंगी श्रेणियों से फिर अनामिका, विशाल चतुरंगी हिमवात, वासुकी, सुन्दर–सनातन वामक कुशलय, सिता, माना, अवी, चन्द्र, स्वच्छन्द, मैन्डीं, मन्दानी, मन्थानी, खरच, सुवर्ण, गहन, भरत, कीर्ति, शिवा, मेरू, वशि, भृगु, मन्दा, भृगुपन्था, केदार, रुद्र आदि उप-हिम संघातों (ग्लेशियरों) से वह संपोषित ही नही, अपितु संवर्द्धित भी है। इस प्रकार संक्षिप्त उपर्युक्त नाम वाले हिमनदों तथा अनेकानेक जल-प्रवाहों से मिलकर गंगोत्री हिम-संघात का पूरा क्षेत्र याने भागीरथी गंगा मां का प्रस्रवण क्षेत्र बनता है। यह प्रस्रवण क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। इस वामक के दोनों किनारों पर और चारों ओर वेद–पुराणों में वर्णित सुप्रसिद्ध अजेय शिखर हैं। जैसे क्रमश: गंगोत्री पुरी से ठीक बांये ओर ऊपर शौमवर्ण भैरवझांप, नंग–धडंग पर्वतराज सर्वांग विराजित है, तो आगे की नामावली इस प्रकार है–देवघाट, कनकगिरी, चीड, सुदर्शन, मातृ, थैलू, कोटेश्वर, श्रीकैलास, माना, चतुरंगी श्रेणी, कालिन्दी, चन्द्र, सुरालय, सिला, सतोपंथ वासुकी, भगीरथ, स्वच्छन्द, मंदानी, चौखम्बा, मंथानी, मैंडी, सुमेरू, खरचकुण्ड, महालय पर्वत, केदारनाथ, भरतखूंटा, कीर्तिस्तम्भ, शिवलिंग, मेरू, भृगु, मंदा, भृगु–पर्वतमाला, हनुमान टेकरी, अजेय थलय सागर, जोगिन, पटांगणीधार, गंगोत्री, मैनाकी, श्रीकण्ठ। ठीक सामने उत्तर पश्चिमी ढलान के ऊपर चौखम्बा (चार चिर–हिमशिखर) दायें–बायें पे मणिनालावत् या चक्रव्यूह जैसा विराजमान है। इन शिखरों को देखकर ऐसा लगता है जैसे युग-युग से सत्यं शिवं शांतं, अद्वैतम् की साधना से विश्व-कल्याण के लिये ध्यानावस्थित योगीजन विराजमान हों। उस सारी दृश्यावली को देखकर दर्शक या मनुष्य नतमस्तक हो जाता है। इनके अलावा अनगिनत शिखर हैं। ये भारतीय नव-उत्साही युवकों के लिये आवाहन के साथ चुनौती प्रदान कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वनाम धन्य, प्रातः स्मरणीय एवं वन्दनीय स्वामी रामतीर्थ, पण्डित जयदेव विद्यालकार, परिव्राजक गुरुदेव श्रीस्वामी तपोवन जी, स्वामी प्रणवानंद जी, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन प्रभृति के ऋण से हम उऋण नहीं हो सकते, जिन्होंने अथाह खोज के साथ सर्वस्व निछावर करके इस क्षेत्र के संबंध में वास्तविक ज्ञान, तथ्य सप्रमाण हमारे सामने प्रस्तुत किये हैं। इस दुर्गम स्थल का सचित्र वर्णन कई विदेशी विद्वान् पर्यटकों ने भी किया है। जर्मन और स्विस गवेषक-संस्थाओं का यह निर्विवाद मत है कि गंगोत्री हिमनदी ही भागीरथी की मूल जन्मभूमि है। यह प्रत्यक्ष प्रमाणों से वस्तुस्थिति का निर्णय करने वाले आधुनिक गवेषकों का अभिमत है। यह 'प्रस्रवण क्षेत्र' शब्द अपने आप में एक बहुत बड़ी देन है और यहां पर वह यथार्थता से विराजमान है।

चौखम्बा शिखरावलियों के, जिन्हें स्वर्ग खम्बा, स्वर्ग स्तम्भ, कैवल्यधाम, चारसिंग, कैलास, अजातशत्रु आदि नामों से पुकारा जाता है—और जो राजा युधिष्ठिर के महाप्रस्थान स्वर्गारोहण के समय एक मात्र चिर सनातन हिम-शिखर था—इनके सामने से महान् अद्भुत एवं दिव्य आकार वाली गंगोत्री हिमधारा उत्तर-पश्चिमी ढलान के श्रीचरण प्रान्तों से प्रारम्भ होती है और इसके ठीक पृष्ठ भाग में से लौरीवामक, सौकुन्नी, सूरजकुन्नी, मजना, पंपाटिया, विष्णुहरिधार विसाई, कल्याणी आदि हिमधारायें सतोपंथ वामक को बलिष्ठ बनाने के लिये आ मिलती है। इनसे दस-पन्द्रह मील उत्तर की ओर से राज पड़ाव, अर्वा, रक्तकुन्ना, मानापास, बालबला, उत्तरी चमराओंगली, बिदम, बेंगनी, बेंगनेऊ, सरस्वती, देवदक्खिनी, खद्दूखाल, घोरधार, पर्वगढ़ आदि उप हिमधारायें भागीरथ खरक वामक का पोषण करती हुई, उससे समागम करती हैं। सतोपंथ वामक और भागीरथ-खरक वामक हिमधाराओं का संगम स्थल ही अलकापुरी है। यह संगम अत्यन्त भव्य है। त्रिकोणात्मक अथवा अंग्रेजी 'वी' जैसा उसका आकार है। इसके पूर्व की ओर नीलकंठ नारायण पर्वत आदि से ऋषि गंगा निकलती हैं, तो उत्तर की ओर से अर्वा, बिदम, बजकोलं, मूसापानी आदि नदियां स्ताकुन्ना से आ रही सरस्वती में मिलकर माना पर अलकनंदा में मिल जाती है। यहीं से पुण्यवती अलकनंदा भूलोक वासियों को पवित्र करने के लिये क्रमशः वसुधारा, माना, नर-नारायण की तपोभूमि श्री बदरीकाश्रम को पावन करती हुई विष्णुप्रयाग, नंदप्रयाग, कर्णप्रयाग और रुद्रप्रयाग में अन्यान्य नदियो कों साथ लेकर देवप्रयाग में भागीरथी गंगा के साथ एकाकार हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मैक्य पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी तपोवन जी महाराज के चरणारविन्द की सेवा और शिष्यत्व पाकर हिमालय भ्रमण की चाह मेरे मन में भी जागी। ईश्वर ने जीवन दिया तो विराट् हिमालय के वेद–पुराण–प्रसिद्ध सभी अन्य तीर्थों व मार्गों की यात्रा करने का संकल्प है और गुरु एवं ईशानुग्रह से लगभग पूरा परिभ्रमण कर लिया है। हर्ष है कि देशवासियों का ध्यान हिमालय के अगम्य शिखरों की ओर आकर्षित हुआ है। फिर भी इस देश के नवयुवकों में पर्याप्त उत्साह ना के बराबर है। गंगोत्री से बदरीनाथ तक की ऊपर ही ऊपर हिमानियों से होकर उत्तरीय हिम–यात्रा करें तो पता चलता है कि वह केवल ४६ मील का मार्ग है। परन्तु इस मार्ग से आठ बार आवागमन यात्रा करते हुये इस लेखक को गंगोत्री–हिमानी आदि के हिम–शिखरों के जो प्रत्यक्ष दर्शन हुये हैं उन सबका सांगोपांग वर्णन कर पाना शब्दातीत है। लेखक अपने देश के नवयुवकों का और विशेषत: गढ़देश के नवयवकों का हिमालय की खोज के लिये आवाहन करता है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय एवं भारतीय भू-भाग

• डा० रामलखन सिंह

हिमालय आदि काल से ही भारतीय भू-खण्ड के सजग प्रहरी के रूप में आदरणीय रहा है। मुख्यतः इसका कारण धार्मिक, राजनैतिक एवं क्षेत्रीय सुरक्षा की दृष्टि से इसकी विशिष्ट स्थिति रही है। गंगा, यमुना, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र जैसी पवित्र एवं जीवनदायिनी नदियों का जन्मस्थल होने के कारण एक ओर यह भारतीय संस्कृति का पोषक माना गया तो दूसरी ओर अपनी अजेय चोटियों के कारण दृढ़ता एवं पौरुष का प्रतीक माँ एवं पिता के सम्बन्वित व्यक्तित्व वाला यह पर्वतराज, छोटे-बड़े, शहरी-ग्रामीण, मैदानी-पहाड़ी, सभी वर्ग के भारतीयों को जन्म से ही जीवन का संदेश सुनाने लगता है। प्रत्येक भारतीय बच्चे को पाठशाला में यह गीत कंठस्थ कराया जाता है--

हिमगिरि विशाल,
गिरिवर विशाल,
यह है भारत का उच्चभाल।

इतने महत्वपूर्ण दायित्व निभाने के लिये 'हिमालय' स्वयं कहां से शक्ति प्राप्त करता है ? यह हममें से बहुत कम लोगों ने सोचा और खोजा है। क्योंकि हिमालय से हमारा सम्बन्ध भावनात्मक ही रहा है। हमने इसकी विशालता को देखकर यह स्वीकार कर लिया कि यह तो अडिग है, अखण्ड है और इसकी क्षमता अनन्त है, इसलिए जीवन दायिनी परिस्थितियों के निर्माण का कार्य भी यह अनन्तकाल तक करता रहेगा। ऐसी वन्दनीय कल्पना करने का ही परिणाम हुआ कि हमने इसकी ढलान पर उगी वनस्पति को नष्ट करने में भी हिचक नहीं दिखायी। किन्तु इसके दुष्परिणाम अब सामने आ रहे हैं। नवीनतम जानकारी से स्पष्ट हो गया है कि हिमालय की चट्टानों पर उगी वनस्पति ही इसकी शक्ति के स्रोत हैं और उसके नष्ट होते ही यह अडिग नहीं रह सकता, इसकी कोख से जन्मी नदियाँ वर्षभर गतिमान नहीं रह सकतीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय की वनस्पति को सीमातीत क्षति पहुंचाने का ही परिणाम है कि इसकी चट्टानें रेत बनकर विशालकाय मानव निर्मित जलाशयों एवं नहरों को पाटने लगी हैं, इसकी सदावत्सला नदियाँ बाढ़ का कारण बन गयी हैं। स्वयं इसकी गोद में बसे पर्वतवासियों के पानी के स्रोत सूखने लगे हैं और समूचे उत्तरी भारत की प्यास बुझाने वाले हिमालय को आज अपनी प्यास बुझाने के लिये विकट योजनाओं का सहारा लेना पड़ रहा है।

प्रश्न उठता है—हिमालय को शक्तिहीन करने का यह क्रम कब तक चलने दिया जा सकता है ? क्योंकि यदि इसको रोका नहीं गया तो एक दिन अडिग एवं अपराजेय माना जाने वाला 'हिमालय' बिखर जायेगा। उस दशा में भारतीय भू-भाग का क्या होगा ? इस कल्पना से ही डर लगने लगता है। इसलिए उन परिस्थितियों को समझना अनिवार्य है जो इसे जीवन प्रदान करती हुयी, चिरस्थायी बनाये रख सकती हैं।

हिमालय की कहानी, पेड़ों की जुबानी

हिमालय चट्टानों एवं शिलाखण्डों का ढेर मात्र नहीं है। बचपन में अवश्य यह चार करोड़ वर्ष पुरानी मिट्टी की उन पर्तों से बना था जो भूगर्भ शास्त्रियों के अनुसार 'टेथिस' नामक उस मध्य एशियायी समुद्र में जमा थी, जो भूगर्भ में हुई उथल-पुथल के कारण उभर कर विश्व की इस विशालतम पर्वत शृंखला के रूप में प्रकट हुई। इसकी तुलना में दक्षिणी भारत की चट्टानें पचास करोड़ वर्ष पुरानी हैं।

धरातल पर उभर आने के बाद प्रकृति ने इसकी चट्टानों की ऊपरी पर्त को "भूमि" (Soil) में बदल कर इस योग्य बनाना प्रारम्भ कर दिया जो वनस्पति को जन्म दे सके। चट्टानों से किस प्रकार प्राकृतिक शक्तियां 'भूमि' बनाती है, यह अत्यन्त रोचक किन्तु प्रायः अनदेखी रह जाने वाली घटना होती है। किन्तु 'भूमि' की पर्त बनते ही हिमालय की विशाल काया जीवन से स्पंदित हो उठी। इसके ऊपर हरी-भरी वनस्पति लहलहा उठी।

हिमालय की ढलान पर उगे पेड़-पौधों ने एक ओर जड़ों का जाल चट्टानों की कोख में फैलाते हुये, उन्हें तथा उन पर जमा भू-कणों को ढहने से रोका तथा दूसरी ओर ऊपर आकाश में ऊंचाई तक अपने हरे पत्तों की छतरी तान कर वर्षा की तेज फुहारों एवं ओलों की मार स्वयं सहते हुए हिमालय की काया को सुरक्षा प्रदान की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहर से देखने पर मात्र भौतिक सुरक्षा प्रदान करने वाले यह वृक्ष भीतर अत्यन्त जटिल कार्य करते रहते हैं। इनकी जड़े चट्टानों में घुले खनिज तत्वों को खोज कर ऊपर हरे पत्तों तक पहुंचाती हैं, जहां वह सूर्य की ऊर्जा में अपने हरे रंग की चासनी तथा वायुमण्डल की कार्बनडाईआक्साइड को मिलाकर उपयोगी कार्बोहाइड्रेट का निर्माण करते हैं। इस प्रकार निर्मित कार्बोहाइड्रेट का फल-फूल, ईंधन, चारा, इमारती लकड़ी आदि नाना रूपों में मनुष्य को उपलब्ध करते रहना, इन पेड़ों का प्राकृतिक गुण है।

हिमालय की ढलान पर उगे यह वृक्ष यदि उपरोक्त कार्यों तक ही सीमित रहते तो इनकी चर्चा नीचे मैदानों में उगने वाले वृक्षों से अलग करने की आवश्यकता नहीं उठती। किन्तु उपरोक्त महत्वपूर्ण कार्यों से भी अधिक महत्वपूर्ण कार्यों के सम्पादन की भूमिका के कारण ही हिमालय की पर्वतीय ढलान पर उगी वनस्पति का उल्लेख अलग से करना अनिवार्य है। यह कार्य है–दूर सैकड़ों मील दूर बसे उत्तरी भारत के उपजाऊ क्षेत्रों को बाढ़ एवं सूखे से बचाते हुए शुद्ध जल की नियमित उपलब्धि कराते रहने का कार्य।

हिमालय की ढलान पर उगी वनस्पति यह कार्य किस प्रकार करती है इसे समझने के लिए मिट्टी, वनस्पति एवं जल के पारस्परिक सम्बन्धों और उनके मध्य के समीकरण को समझना अनिवार्य है। क्योंकि पर्वतीय भूमि में उगी वनस्पति उस भूमि से जन्म तो पाती है, किन्तु उसे जलधार के साथ नीचे लुढ़क जाने से रोकते हुए स्वयं उस भूमि को जीवित भी बनाये रखती है। इसी प्रकार जो जलधार मिट्टी को बहा ले जाने को आतुर रहती है, वही वनस्पति की उपस्थिति में भूमि से बिंधकर गहराई तक पैठते हुए उसे और हरा-भरा बनाती है। अतः भारतीय भू-भाग के संदर्भ में हिमालय की मुख्य भूमिका समझने हेतु उस पर उगी वनस्पति द्वारा सम्पादित हो रहे भू-संरक्षण एवं जल-संरक्षण की प्रक्रिया को समझना आवश्यक है।

भू–संरक्षण

भूमि (Soil), धरती की चट्टानों पर लिपटी उस ऊपरी पर्त का नाम है जो सम्पूर्ण जीवन का आधार है। इसके नीचे स्थित चट्टानों एवं 'भूमि' में एक मूल अन्तर होता है। चट्टानों को भूमि का नाम तभी मिलता है जब उनमें जीवित पदार्थों (जीव–जन्तु, पेड़–पौधे अथवा इनके सड़े गले भाग का) कुछ अंश घुल जाये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिगत संसार

चट्टानों की ऊपरी एक–दो फीट मोटी पर्त को भूमि बनाने का जटिल कार्य प्रकृति नाना प्रकार से करती है। हम धरती पर चलते समय केवल ऊपर उगे पेड़–पौधों और उन पर पलने वाले पशु पक्षियों को ही देख पाते हैं। जब कि पैरों के नीचे धरती में अत्यन्त विचित्र जीवन क्रम चलता रहता है। अनुमान लगाया गया है कि वन क्षेत्रों की एक चम्मच मिट्टी में लगभग पचास अरब बैक्टीरिया, दो करोड़ एक्टोनीमाइट्स जीवाणु, दस लाख प्रोटोजोवा, दो लाख अल्गी एवं फंजाई मिल सकते हैं। यह अदृश्य जीव निरन्तर कार्यरत रह कर भूमि को अधिक से अधिक उपयोगी बनाने में लगे रहते हैं। इस प्रकार की एक एकड़ भूमि में इन कोषाणुओं द्वारा अनुमानत: उतनी ही शक्ति व्यय की जाती है जो दस हज़ार आदमी कार्यरत रह कर जुटा सकते हैं।

इनके अतिरिक्त देखे जा सकने वाले केंचुए, दीमक जैसे जीव भी इसी मिट्टी में रहते हुये मिलते हैं। केंचुओं को तो भूमि की आंत ही कहा जाता है। यह रात दिन मिट्टी खाकर उसे अधिक उपयोगी रूप में शरीर से बाहर निकालते रहते हैं। डारविन ने तो यहां तक कहा है 'धरती पर शायद हीं ऐसा कोई जीव हो जिसने भूमि को जीवनोपयोगी बनाने का इतना महत्वपूर्ण कार्य किया हो।'

मिट्टी में उपलब्ध यह जीव–जन्तु एवं उसमें उगी वनस्पति, चट्टानों तक पानी एवं वायु पहुंचाकर उसे नम बनाते हुए 'भूमि' में परिवर्तित करने का कार्य निरन्तर करते रहते हैं। किन्तु यह क्रिया इतनी धीमी है कि अनवरत कार्यरत रहकर भी 'भूमि' की एक इंच मोटी पर्त बनाने में प्राकृतिक शक्तियों, पेड़–पौधों एवं भूमिगत जीव–जन्तुओं को सात–आठ सौ वर्ष लग जाते हैं।

जीवन का नाभितन्तु–'भूमि'

इस प्रकार निर्मित भूमि में ही वनस्पति उग सकती है। स्पष्टत: 'भूमि' की इस पर्त को धरती पर चल रहे सम्पूर्ण जीवन का नाभितन्तु (Placenta) माना जा सकता है। क्योंकि कुछ इंच से लेकर कुछ फीट तक मोटी इस पर्त के सहारे ही धरती–मां से समस्त वनस्पति व जीव–जन्तु जुड़े हैं। इस 'भू–पर्त' का सदुपयोग करके सभ्यतायें विकसित हुई और इसके दुरुपयोग से फलते फूलते साम्राज्य रेगिस्तान बन गये। चांद सितारों की सैर कर रहा इन्सान आज भी धरती की मिट्टी से स्वयं को मुक्त नहीं कर सका है। उल्टे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरन्तर प्रकाश में आते जा रहे वैज्ञानिक तथ्य 'भूमि' पर मनुष्य की निर्भरता बढ़ाते ही जा रहे हैं।

'भूमि' एक खनिज तत्व है

कभी हम वस्तुओं के सस्तेपन की सीमा का उदाहरण देने के लिए कहा करते थे, "मिट्टी के भाव बिक रहा है।" किंतु आज जब धरती के खनिज तत्वों की सीमायें स्थापित हो चुकी हैं और यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सोना, लोहा, तांबा, कोयला, पेट्रोलियम आदि की कितनी मात्रा धरती पर शेष बचीं है और यह भी आंका जा रहा है कि उनके उपयोग की वर्तमान गति से यह खनिज कब समाप्त हो चुके होंगे, तो हमें मिट्टी से नाता जोड़ने की विवशता आ गयी है। क्योंकि यही वह एक मात्र पदार्थ है जिसे संभालकर उपयोग में लाया जाये तो अनन्तकाल तक वनस्पति उगती रह सकती है और उस पर चलने वाला सम्पूर्ण जीवन भी गतिमान रह सकता है। वैज्ञानिक दृष्टि से देखने पर 'भूमि' को सोना, चांदी, लोहा आदि खनिज तत्वों की श्रेणी से भी उच्चस्थान देना होगा। क्योंकि यह अन्य खनिज पदार्थों जैसी मृत नहीं बल्कि एक जीवित इकाई है। प्रकृति की जीवनदायिनी शक्तियां नित्य प्रति इसको जन्म देती रहती हैं। अत: यदि सुनियोजित ढंग से इसको खर्चा जाये तो कभी समाप्त नहीं होगी। दूसरी ओर यदि इसे क्षति पहुंचायी जाये तो सदियों के श्रम से जन्मे 'भूमि-कण' रेत बनकर बिखर जायेंगे। इसीलिए किसी राष्ट्र का इतिहास देखने के बदले यदि वहां की 'भूमि' एवं उसके उपयोग की परम्परा की जानकारी उपलब्ध हो तो बताया जा सकता है कि उस देश के लोग खुशहाल थे अथवा खाना-बदोश।

'भूमि' असीम नहीं है

एक युग था जब धरती पर मनुष्य की संख्या सीमित थीं और उसके चारों ओर अनछुई धरती का विस्तार फैला पड़ा था। जिसने जितना चाहा उतना जोता, जिस प्रकार चाहा उस प्रकार जोता। किन्तु अब हम इतने हो गये हैं कि जोती जा सकने वाली जमीन का टुकड़ा भी शेष नहीं है। जो भी है मिल बांट कर सम्हालना शेष है। पहले हम एक स्थान की 'भूमि' को अनुपजाऊ बनाकर दूसरे स्थान पर अछूती पड़ी उपजाऊ भूमि पर जा बसते थे। किन्तु अब भाग कर जाने को स्थान नहीं बचा है। बस, अपने हिस्से में आयी 'भूमि' को पाल-पोस कर उपजाऊ बनाये रखना ही एकमात्र हल बचा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चित ही उपलब्ध भू-भाग को खींच कर बढ़ाया नहीं जा सकता। उपलब्ध भूमि में ही नवागन्तुकों के लिए भी हिस्सा बांटना पड़ेगा। इस पर भी क्या कोई राष्ट्र अपनी सीमित 'भूमि' को क्षतिग्रस्त करके अनुपजाऊ बना देने का जोखिम उठा सकता है। इसका उत्तर स्वत: स्पष्ट है। इसलिए 'भू-विज्ञान' (जो 'परिस्थित-विज्ञान' का एक महत्वपूर्ण अंग है) इस अंतरिक्ष-युग में एक अनिवार्य विषय बनता जा रहा है।

उपलब्ध होती जा रही वैज्ञानिक जानकारी से दिनोंदिन स्पष्ट होता जा रहा है कि एक स्थान पर हुए 'भूमि' के दुरुपयोग का दुष्परिणाम सैकड़ों मील दूर बैठे लोगों को भुगतना पड़ सकता है। पहाड़ों से विस्थापित 'भू-कण' नीचे बनी नहरों एवं जलाशयों को उथला बनाकर उनकी धारक क्षमता घटा देते हैं। यहां तक कि महासागरों को उथला बनाकर उनका क्षेत्रफल बढ़ाते हुए किनारों का अतिक्रमण करा सकते हैं। स्पष्टत: धरती को नक्शों में बांटा जा सकता है किन्तु उसकी छाती पर दीवालें खड़ी करके उसके दुरुपयोग के व्यापक कुप्रभाव को सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता। पहले व्यक्ति को अपने हिस्से की भूमि का दुरुपयोग करने की छूट अज्ञानतावश इस आधार पर थी कि "जो जैसा करेगा, स्वयं भोगेगा।" किन्तु अब विज्ञान ने अज्ञानता का यह सहारा भी छीन लिया है। अब यह स्थापित हो चुका है कि कोई भी करे, सभी को भुगतना पड़ेगा।

इस राष्ट्रीय संकल्प के पीछे पर्वतीय क्षेत्र की भौगोलिक विशिष्टता ही मुख्य थी। क्योंकि पर्वतीय ढलान पर टिके भू-कणों को बह जाने से रोकने के लिए उनके ऊपर वनस्पति की स्थायी छाया बनाये रखना अनिवार्य है। अन्यथा यदि अधिक खाद्यान उत्पादन के लोभ में पर्वतीय भूमि की वनस्पति नष्ट करके जुताई की गयी तो बरसात में जलधार के साथ कट कर वह नीचे बह चलेगी। एक दो फसल लेने के उपरान्त शेष रह जायेगी, नंगी चट्टाने जिनसे एक इंच भूमि की पर्त पैदा करने में पुन: प्रकृति को सात–आठ सौ वर्ष लगेंगे।

हिमालय में भू–संरक्षण

पर्वतीय क्षेत्र में भू–संरक्षण का उपाय है–वन संरक्षण। इस रहस्य को समझने के लिए भूमि एवं चट्टान के अन्तर को स्मरण करना होगा। हिमालय की चट्टानों पर जमा मिट्टी की पर्त का स्थायित्व वहां उगे बनों के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही सम्भव है। क्योंकि यदि वनस्पति का कवच हटता है तो वर्षा एवं आंधी के थपेड़ों की सीधी चोट मिट्टी पर पड़ने लगेगी। ढलान पर टिकी मिट्टी में गुरुत्वाकर्षण के कारण भी नीचे लुढ़कने की प्रवृति रहती है। अतः इस प्राकृतिक स्वभाव के अनुकूल ही जब नीचे लुढ़कता हुआ बरसात का जल भी कार्यरत हो जाता है तो भूकणों का अपने स्थान पर टिका रहना लगभग असम्भव हो जाता है। इसके विपरीत वनस्पति के स्थायी कवच की उपस्थिति में भूकण, वर्षा एवं वायु के सीधे संपर्क में आने से बच जाते हैं। वृक्षों की जड़ें, गहराई तक पैठकर भूकणों को चट्टानों से बंधे भी रहती हैं। इसी प्रकार नीचे बहती हुई जलधार भी वनस्पति से टकराकर धीमी गति से बहती है। वनस्पति के इस अवरोध के कारण ही जलधार, भूकणों का चट्टानों से सम्पर्क तोड़ने लायक प्रवेग नहीं जुटा पाती हैं।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि पर्वतीय ढलान की भूमि को संरक्षित रखने का सहज एवं प्राकृतिक उपाय है—स्थानीय वनस्पति का संरक्षण। इस स्तर पर यह भ्रम उठ सकता है कि पर्वतीय क्षेत्र में भू-क्षरण होने से अधिकतम क्षति यही होगी कि उस भूमि से उपलब्ध हो सकने वाली वार्षिक उपज नहीं मिले। किन्तु वास्तविकता यह है कि क्षति इससे कहीं अधिक व्यापक एवं दूरगामी होती है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, 'भूमि' के दुरुपयोग के परिणाम सम्पूर्ण भू-खन्ड को भुगतने पड़ते हैं। पर्वतीय क्षेत्र से क्षरित भूकण नीचे स्थित जलाशयों को उथला बनाते हुए उपजाऊ मैदानों को अनुपजाऊ बनाने की प्रक्रिया को जन्म देते हैं, अतः अनिवार्य है कि भू-उपयोग को क्षेत्रीय स्तर पर नहीं देखकर राष्ट्रीय स्तर पर जांचा और परखा जाये।

कृषि का आविष्कार

मनुष्य ने प्रकृति द्वारा विभिन्न प्रकार की भूमि में उगायी गयी वनस्पति के क्रम के विपरीत चल पाने की क्षमता 'कृषि' के आविष्कार के साथ अर्जित किया। उसके पहले वह भी अपने पर्यावरण में प्राकृतिक रूप से उगने वाली वनस्पति एवं उनमें जन्में जीव-जन्तुओं से उपलब्ध हो सकने वाली सुरक्षा एवं भोजन-पानी पर निर्भर करता था। उसका जीवन क्रम एवं संस्कृति इन पेड़-पौधों एवं पशु-पक्षियों से सीधा संबंधित थी। इसीलिए उसे अपनी सीमाओं का ज्ञान था और उसके क्रम में प्रकृति के प्रति आदर एवं भय था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिवासियों एवं दूर–दराज के पर्वतीय क्षेत्रों में बसे मनुष्य के मन में यह आदर अभी भी देखा जा सकता है। यह लोग प्रकृति के साथ संतुलन बनाये रखने की अनिवार्यता आज भी समझते हैं।

'कृषि' के आविष्कार के साथ मनुष्य ने अधिक उपज देने वाले एवं उपयोगी दिखाई पड़ने वाले अनाज, फल एवं वृक्ष की प्रजातियों को प्राकृतिक रूप से उग रहे. किन्तु प्रत्यक्ष में कम उपयोगी लगने वाले पेड़-पौधों के स्थान पर उगाना प्रारम्भ किया। इस प्रकार एक मानव-निर्मित प्रकृति का जन्म हुआ। इस परिवर्तन के अनुरूप प्राकृतिक शक्तियों ने भी अपनी क्षमता भर स्वयं को परिवर्तित किया। जब तक प्राकृतिक रूप से निर्धारित भू-उपयोग में परिवर्तन की गति सीमित थी तब तक प्राकृतिक शक्तियां संतुलन स्थापित रख सकीं। परिणामस्वरूप खाद्यान्न उत्पादन तीव्रता से बढ़ा। इसके दो परिणाम हुए। एक तो अधिक स्थान एवं भोजन की उपलब्धि के कारण आबादी बढ़ी, मनुष्य की भी एवं उसके पालतू पशुओं की भी। इनकी आवश्यकता पूर्ति हेतु जब अधिक से अधिक कृषि भूमि जुटाने के लोभ में पर्वतीय क्षेत्र में भी प्राकृतिक वनस्पति को नष्ट करके खेत बनाये जाने लगे तो संतुलन बिगड़ने लगा। इस प्रकार कृषि के आविष्कार से जहां एक ओर प्रकृति पर मनुष्य की निर्भरता कम हुई, वही दूसरी ओर भूमि के साथ सीमा से अधिक मनमानी करने की प्रवृत्ति भी बढ़ी। इस निरंकुश व्यवहार के कारण प्राकृतिक रूप से हरे भरे अनेक भू-क्षेत्रों की उर्वरता नष्ट भी हो गई।

पर्यावरण की प्राकृतिक शक्तियों एवं उनकी रचनात्मक क्षमता की उपेक्षा के परिणाम अब हमें देखने को मिलने लगे हैं। इन प्राकृतिक शक्तियों ने सदियों के प्रयास से जो वनस्पति उगायी थी वह उसकी जलवायु एवं मिट्टी के अनुरूप थी। वह अतिवृष्टि एवं सूखे की मौसमी हिलोरों के साथ उगी एवं पली थी, इसलिए उसे झेल सकती थी, ढालदार चट्टानों पर जड़ें जमा सकती थी, वहां की मिट्टी में उपलब्ध खनिज तत्वों का उपयोग करके जीवित रह सकती थी। किन्तु सदियों के उत्क्रमण (Evolution) से जन्मी इस वनस्पति को हटाकर बनाये गये खेत, फलोद्यान अथवा औद्योगिक दृष्टि से अधिक उपयोगी क्षेत्रीय–वृक्ष इस मिट्टी के लिए सर्वथा अपरिचित थे। परिणाम स्वरूप ना तो वह उस मिट्टी एवं जलवायु से पोषण पा सके, ना ही बदले में उस मिट्टी को पोषित कर सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मदानों अथवा कम ढलानवाले क्षेत्रों में जो फसलें अधिक उपज देकर खुशहाली लायीं, वहीं ढालदार पर्वतीय क्षेत्रो में जलवायु का तीखापन (कभी अतिवृष्टि, कभी बर्फीली आंधी तो कभी भू-स्खलन के थपेड़े) सह नहीं सकी। परिणामस्वरूप एक दो वर्ष में ही ढलान पर जमी मिट्टी की पतली पर्त बहकर नीचे घाटियों में पहुंच गयी और नंगी चट्टानें वनस्पति विहीन होकर हवा-पानी की चोट से ढहने को शेष रह गयी। एक बार मिट्टी बह जाने के बाद इन क्षेत्रों में वह वनस्पति भी नहीं उग सकती जो पहले स्वत: उग कर लहलहा रही थी।

हिमालय की ढलान पर उगे ओक (बांज) के वनों को अनुपयोगी मान कर काटते हुए बनायी गयी फल पट्टियां गलत भू-उपयोग का जीता जागता प्रमाण है। दूसरी ओर कम ऊंचाई में उगने वाले चीड़ पेड़ो को काट अथवा सुखाकर खेती हेतु खाली की गयी पर्वतीय ढलाने, प्रकृति की रचनात्मक शक्तियों की उपेक्षा का दूसरा उदाहरण है। बांज एवं चीड़ को क्षति पहुचाते समय इस ओर ध्यान नहीं दिया गया कि हिमालय की काया को सुरक्षा एवं जीवन प्रदान करने वाली भू-पर्त के यह सजग प्रहरी हैं। इन्हें लाखो वर्ष के निरन्तर प्रयास के बाद ही प्रकृति इस पर्वतीय क्षेत्र में स्थापित कर सकी थी। इस लम्बे काल में पर्वत वासियों ने इन वृक्षों के अनेक उपयोग खोज निकाले थे। बांज की पत्तियां इनके पशुओं को चारा देती हैं, सूखने पर इनकी लकड़ी ईंधन एवं घरेलु औजार बनाने के काम आती है। इसी प्रकार चीड़ जब तक हरा रहता है लीसा (रेजिन) देता रहता है और बाद में उद्योगों (माचिस, रेलवे स्लीपर) को कच्चा माल देता है। किन्तु भू-संरक्षण का जो महत्वपूर्ण कार्य प्राकृतिक रूप से उगने वाली यह बनस्पति करती थी, वह कितना महत्वपूर्ण है, इसका अनुमान तो इसी से लगाया जा सकता है कि कितनी उपजाऊ मिट्टी वह कर जलाशयों, नहरों एवं नदियों में जमा हो रही है। इस प्रकार गलत भू-उपयोग के कारण प्रारंभ होने वाले भू-संरक्षण से होने वाली अपार क्षति को रोकने का उपाय है-'भूमि' को बहुमूल्य खनिज तत्व मानते हुए उसका सुनियोजित उपयोग।

योजनाबद्ध 'भू-उपयोग' की ओर

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि हम एक ऐसी स्थिति में आ पहुचे हैं, जहाँ 'भूमि' की सीमित मात्रा को स्वीकारते हुए उसके 'योजनाबद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपयोग' अथवा 'भुखमरी, सूखा एवं अकाल' के दो मार्गों में एक का चुनाव करना है। निर्विवाद रूप से हम पहला मार्ग चुनना चाहेंगे।

भारतीय भूखन्ड के मैदानी क्षेत्र के संदर्भ में भू-उपयोग का कोई भी मापदन्ड अपनायें, किन्तु पर्वतीय क्षेत्र को भूमि का उपयुक्त एव परिस्थिति-जन्य उपयोग लगभग निश्चित है--प्राकृतिक वनस्पति का संरक्षण ! क्योंकि वनस्पति को संरक्षित करके ही उसकी ढलान पर टिके 'भूकणों' को और उनके माध्यम से वर्षा के 'जल' को संरक्षित रखा जा सकता है। जल संरक्षण का विस्तृत विवरण अलग से दिया गया है। ऐसा नहीं करने का निश्चित परिणाम भू-क्षरण एवं बाढ के रूप में देखने को मिलेगा। अतः भारतीय भूभाग की संपन्नता के लिए हिमालय की ढलान पर टिकी मिट्टी को वहीं बांध कर रखना अनिवार्य है। इसे बांध कर रखने के लिए ही प्रकृति ने हिमालय की लम्बी-चौड़ी काया पर घास, झाड़ियां एवं कद्दावर वृक्ष उगाये थे। वनस्पति का यह कवच जहां सुरक्षित है वहां की मिट्टी भी टिकी है, किन्तु जहां कहीं भी इसे काट कर कृषि हेतु भूमि का जुतान किया गया, वहीं हिमालय की चट्टानें भूमिहीन होकर, हम भारतीयों की कृतघ्नता का परिचय देती खड़ी हैं।

मूलरूप से पर्वतीय क्षेत्र की ढलुवा भूमि का उपयोग प्रकृति ने स्वयं ही उपरोक्तानुसार निर्धारित कर दिया है। किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि पर्वतीय क्षेत्र की प्राकृतिक वनस्पति को अछूता छोड़ देना ही उपयुक्त भू-उपयोग होगा। ऐसा करना मानवीय प्रतिभा की ओर आंखें ढकने के समकक्ष होगा। क्योंकि संरक्षित वनस्पति का भी युक्ति संगत दोहन संभव है। सूखे, बूढ़े, उखड़े वृक्षों को हटाकर नयी पौध को उगने का अवसर देना भी संरक्षण का ही अंग है। इस प्रकार पर्वतीय क्षेत्र में भी यह संभव है कि प्राकृतिक रूप से उग रही पर्वतीय वनस्पति का कवच संरक्षित रखते हुए भी उसका क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय प्रगति हेतु योजनावद्ध उपयोग किया जाये।

वन-विज्ञान का भारतीय भू-खण्ड में प्रवेश

प्राकृतिक रूप से उगने वाली वनस्पति के योजनाबद्ध उपयोग के प्रयास में जो विज्ञान जन्मा उसे 'वन-विज्ञान' का नाम मिला। भारतीय भू-खण्ड में 'वन-विज्ञान' को १८६४ में प्रवेश मिला, जब डा० ब्रैन्डिस नामक जर्मन वन-विशेषज्ञ की देख-रेख में वन-विभाग की स्थापना हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार स्थापित हुए 'वन-विभाग' ने तब तक शोधे जा चुके वन-विज्ञान के नियमों के आधार पर वनों के कटान को नियम्ति करने का दायित्व सम्हाला। इसकी देख-रेख में वन क्षेत्र का सर्वेक्षण, उनका सीमा निर्धारण, उनके अनियमित कटान को रोकने, लोगों के हक-हकूक को संयमित करने तथा उनकी वार्षिक वृद्धि का गुणन करके उसी सीमा तक कटान को सीमित करने के नियम बनाये गये।

इन नियमों में 'अनवरत उत्पादन का नियम' वनों के प्रबन्ध का सर्वाधिक महत्वपूर्ण नियम था। इसके अनुसार वृक्ष प्रतिवर्ष बढ़ते रहते हैं। इसलिए यदि वार्षिक वृद्धि के बराबर ही कटान किया जाये तो अनवरत रूप से वन-उपज मिलती रहेगी और वन भी सुरक्षित रहेंगे। यह नियम विश्व के प्रत्येक राष्ट्र द्वारा अपनी वन-सम्पदा को अनन्त काल तक सुरक्षित बनाये रखने के आशय से मान्यता पाता रहा है।

भारतीय वनों के नियमित एवं वैज्ञानिक प्रबन्ध को एक शताब्दी से अधिक हो चुका है। इस लम्बी अवधि में वन-नीति समयानुसार बदलती रही और कटान से अधिक वन संरक्षण को प्राथमिकता मिलती गयी। क्योंकि वन-विज्ञान के साथ ही विज्ञान के अन्य क्षेत्रों में भी असीम प्रगति हुई और हमारी जानकारी अपने चारों ओर व्याप्त पर्यावरण तथा उसके विभिन्न अवयवों (जल, भूमि, वनस्पति, जीव-जन्तु आदि) के विषय में इतनी अधिक बढ़ी कि हमारे आदि परिचित वृक्ष अत्यन्त कौतूहलपूर्ण हो उठे हैं। जो वृक्ष पहले ईंधन, रेलवे स्लीपर अथवा कागज बनाने हेतु कच्चा माल उपलब्ध करने की दृष्टि से सुरक्षित रखे जाते थे, उन्हीं के सर्वथा अनदेखे उपयोग प्रकाश में आ गये हैं। जैसे भू-संरक्षण, जल-संरक्षण, वायु-मण्डल को प्रदूषण मुक्त करना आदि। इन उपयोगों का व्यापक आर्थिक एवं पर्यावरणीय महत्व इस सीमा तक स्थापित हो चुका है कि इन्हें, कम से कम पर्वतीय क्षेत्र में तो मुख्य वन-उपज माना जा सकता है। अर्थात् वनों के नीचे जन्म लेने वाली उपजाऊ भूमि एवं उसके माध्यम से संरक्षित होने वाले जल-स्रोतों द्वारा नीचे स्थित मैदानी क्षेत्रों को शुद्ध जल की उपलब्धि कराना ही पर्वतीय वनों का मुख्य उपयोग मानने का ठोस आधार है। इसके लिए चिर परिचित 'अनवरत-उत्पादन' के सिद्धान्त को 'सीमित उत्पादन' (केवल सूखे, उखड़े, रोगग्रस्त वृक्षों तक सीमित) के सिद्धान्त में बदलने का प्रश्न आज एक सार्थक प्रश्न बन गया है। अर्थात् अब इतनी वैज्ञानिक जानकारी उपलब्ध है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाणित किया जा सकता है कि पर्वतीय क्षेत्र की वनस्पति को भूमि एवं जल-संरक्षण की दृष्टि से संरक्षित रखना, उसे काट कर उद्योग चलाने अथवा कृषि करने से कहीं अधिक लाभप्रद भू-उपयोग होगा। इसके साथ ही नीचे मैदानी क्षेत्रों में वन उगाने हेतु आवंटित भू-भाग में, 'निरन्तर वृद्धि रत उत्पादन' (Increasingly Increasing Sustained Yield) का सिद्धान्त लगाते हुए उपलब्ध समस्त वैज्ञानिक तकनीकें आजमायी जानी चाहिए। इस प्रकार पर्वतीय क्षेत्र के वनों में होने वाली उत्पादन की कमी को नीचे मैदानी क्षेत्र के वनों में आधुनिकतम वैज्ञानिक तकनिकों के प्रयोग से उत्पादन बढ़ाकर पूरा किया जा सकता है। इसे स्वीकार करने में किये जा रहे विलम्ब के दुष्परिणाम हमारी पीढ़ी को कम, आने वाली पीढ़ियों को अधिक भुगतने पड़ेंगे। इस रहस्य को समझने हेतु पर्वतीय क्षेत्र के जल-स्रोतों के सरक्षण की अनिवार्यता को आधुनिकतम संदर्भ में समझना अनिवार्य है।

जल-संरक्षण – शुद्ध जल की मांग

शुद्ध जल की उपलब्धि आदि काल से ही मानव की सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता रही है। जीवनस्तर उठने के साथ यह आवश्यकता कई गुना बढ़ गई है। आदिम मानव को केवल पीने के लिए पानी की आवश्यकता रहती थी। मध्य युगीन काल में पीने के साथ–साथ सिंचाई के लिए भी जल आवश्यक हो गया और आधुनिक मानव को विशालकाय उद्योगों एवं नगरों की सफाई हेतु भी जल चाहिए। उदाहरणार्थ एक टन स्टील ढालने में औसतन चालीस हजार गैलन पानी का उपयोग किया जाता है, जब कि एक टन कागज निर्मित करने में एक लाख गैलन पानी की आवश्यकता पड़ती है।

नवीनतम आंकड़ों के अनुसार आज प्रति व्यक्ति पानी की आवश्यकता पचास वर्ष पहले की तुलना में बीस से पच्चीस गुना अधिक हो गयी है। यह मांग दिनों दिन बढ़ती जा रही है। प्रति व्यक्ति पानी की खपत किसी भी राष्ट्र की औद्योगिक एवं आर्थिक प्रगति का मापदन्ड बन गया है। कुछ राष्ट्रों में प्रति दिन प्रति व्यक्ति जल की खपत १०० लीटर है तो कुछ अति विकसित राष्ट्रों में यही दर ६ हजार लीटर से भी अधिक है। इन राष्ट्रों के जीवनस्तर में अन्तर भी इसी अनुपात में देखा जा सकता है।

स्पष्टत: जीवनस्तर उठाने के लिए प्रयत्नशील भारतवर्ष जैसे राष्ट्रों में शुद्ध जल की आवश्यकता दिनों दिन बढ़ती ही जायेगी। इसकी संपूर्ति हेतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृतिक जल श्रोतों पर निर्भरता भी इसी क्रम में बढ़ेगी। आज कोई भी नगर ऐसा नहीं बचा जहां वांछित मात्रा में शुद्ध जल की संपूर्ति की समस्या नहीं हो।

भारतीय भू-खन्ड के संदर्भ में यह तथ्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण है कि वर्ष भर में होने वाली औसतन ८० से २०० इन्च तक की जलवृष्टि की अधिकांश मात्रा चार महीनों में ही बरस जाती है। उसके बाद के आठ महीनों के लम्बे काल में इसी जल के सहारे कार्य चलाना पड़ता है। अतः इस भूभाग में जल की मात्रा से अधिक जटिल समस्या बरसात के जल को संचित कर आठ महीनों तक क्रमश: उपलब्ध करते रहने की है। क्योंकि बरसात में बरसने वाला जल इतना अधिक होता है कि यदि उसे संजोया जा सके तो जलाभाव की समस्या उत्पन्न ही नहीं होगी। अनुमानतः हमारे देश में प्रतिवर्ष इतना पानी बरसता है कि अगर उसे संपूर्ण भारतीय भू-भाग पर फैलाया जाये तो प्रत्येक स्थान पैंतालीस इंच मोटी पानी की पर्त से ढक जायेगा। किन्तु इसका पर्याप्त अंश पर्वतीय ढलानों पर बरसता है और बरसने के स्थान पर ही संचित नहीं किये जाने की स्थिति में यही जलराशि महासागरों की ओर एक साथ ही बह निकलती है। अपने संवेग एवं बाहुल्य के कारण यह नदी के किनारों को तोड़ती हुई, फसलों, गांवों तथा नगरों को जल प्लावित करती हाहाकार मचाती जाती है। बाढ़ का कारण बनने वाली बरसात की यही असंचयित जलराशि बह जाने पर दूसरी ओर बाद के आठ महीनों में सूखे की स्थिति का कारण भी बनती है। भूमि में नमी नहीं होने से गर्मी के मौसम में तापक्रम भी बढ़ने लगता है, क्योंकि एक ग्राम जल को वाष्पीकृत करने में लगभग ५४० कैलोरी उष्मा खर्च होती है। स्पष्ट रूप से भूमि की नमी, वाष्पीकरण द्वारा गर्मी के मौसम को सहने योग्य बनाती है। इसके न होने पर वायु का तापक्रम कष्टदायक सीमा तक बढ़ जाता है।

संक्षेप में भारतीय भू-भाग में बाढ़ एवं सूखे की यही कहानी है। पहले बाढ़ें किसी-किसी वर्ष आती थी, अब लगभग प्रत्येक वर्ष आती हैं। इनसे होने वाली क्षति का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि पिछले बीस बर्षों में बाढ़ के कारण प्रतिवर्ष औसतन पन्द्रह अरब रुपयों की क्षति होती रही है। प्रत्यक्ष रूप से हुई इस क्षति में यदि अप्रत्यक्ष रूप से हो रही क्षति (उपजाऊ मिट्टी के वह जाने के कारण, शुद्ध जल के प्रदूषित हो जाने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण, यातायात रुकने के कारण, कार्य दिवसों के अनुप्रयुक्त रह जाने के कारण, गर्मी के मौसम में जल की कमी से जल-विद्युत योजनाओं का क्षमता भर उत्पादन नहीं कर पाने के कारण आदि) को भी जोड़ा जाये तो क्षति अनुमानतः तीन सौ करोड़ रुपये प्रतिवर्ष तक जा पहुंचेगी। इसे भी बाढ़ से हो रही क्षति का सही अनुमान नही माना जा सकता। क्योंकि बाढ़ के साथ बह जाने वाली मिट्टी की उत्पादनशीलता को आंकना सरल नहीं है। फिर भी क्षति का स्पष्ट हो चुका आकार मी इतनी भयावह है कि यह सोचना पड़ता है कि बाढ़ पर नियंत्रण किये बिना प्रगति करना संभव ही नहीं है।

क्या बाढ़ पर नियन्त्रण करना सम्भव है ?

हां है, किन्तु इसके लिए भी हमें हिमालय की शरण में जाना होगा : क्योंकि भारतवर्ष का बाढ़ पीड़ित क्षेत्र वही है जिसे कभी हिमालय की नदियों ने उपजाऊ मिट्टी जमा करके हरे-भरे मैदान के रूप में पाला-पोषा था। फिर आज वही गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, शारदा आदि ममतामयी नदियां उन्हीं मैदानी क्षेत्रों को प्रतिवर्ष क्यों जलप्लावित करने लगी है ?

कारण अब स्पष्ट हो चुका है—इन नदियों के उद्गम एवं प्रस्रवण (Catchment) क्षेत्रों में जल-संरक्षण करने वाली प्राकृतिक शक्तियों का कमजोर एवं नष्ट हो जाना।

यह प्राकृतिक शक्तियाँ कौन हैं ?

उत्तर है—पर्वतीय चट्टानों पर जमी भू-पर्त और उसमें उगी वनस्पति।

आप जानना चाहेंगे कि जल-संरक्षण करके बाढ़ रोकने का यह जटिल कार्य पर्वतीय क्षेत्र की मिट्टी एवं वनस्पति किस प्रकार करती है।

पर्वतीय क्षेत्र में जल-संरक्षण का मूल मंत्र

इसकी ढलान पर बरसने वाले पानी को अधिक से अधिक वहीं स्थानीय रूप से बांध लेना। यह कार्य आदि काल से हिमालय पर उगी वनस्पति एवं उसके नीचे संरक्षित भूमि-पर्त करती आयी है।

सर्व प्रथम वनस्पति, पानी की फुहारों की सीधी चोट से ढलान पर टिके भू-कणों को बचाती है। मिट्टी के ऊपर कवच की तरह फैली इसकी टहनियां एवं सूखी पत्तियां, पानी की बूंदों का प्रहार स्वयं झेलकर, उन्हें अत्यन्त धीमी गति से भूमि-पर्त तक पहुंचाने को विवश कर देती हैं। इसके साथ ही भूमि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में गहराई तक पैठी इनकी जड़ें, पानी को नीचे तक सोखे जाने में सहायता करती हैं। स्पष्टत: प्रत्येक पेड़ एक छोटा सा 'बांध' है जो बरसने वाले पानी का पर्याप्त अंश अपने नीचे की भूमि में बांध लेता है। इस प्रकार छोटे-छोटे बांध रूपी वृक्षों को आच्छादित पर्वतीय ढलान पर बरसने वाले पानी का सीमित अंश ही नीचे बहकर जा पाता है और बरसने वाला समस्त जल नदियों में एकत्रित नहीं होने पाता। जिससे बाढ़ की स्थिति नही आती।

यह नही कहा जा सकता कि वृक्षों के माध्यम से होने वाले इस कार्य की जानकारी मनुष्य को पहले नहीं थी। किंतु बीसवीं सदी के वैज्ञानिक अविष्कारों ने जिस प्रकार स्पष्ट आंकड़े जुटा कर पर्वतीय वनों द्वारा सम्पादित होने वाले 'जल संरक्षण' के महत्वपूर्ण कार्य की अनिवार्यता स्पष्ट कर दी है, उसके बाद पर्वतीय ढलान पर उगे वृक्षों को ईंधन अथवा उद्योगों हेतु कच्चे माल के रूप में देखना इनकी 'क्षमता' का अवमूल्यन करना ही होगा। क्योंकि नदियों के इसी अतिरिक्त जल को बांध रखने के लिए अरबों रुपयों की लागत से जो विशालकाय बांध बनाये जाते हैं, उनमें हजारों एकड़ भूमि जलप्लावित होती है।

वृक्षों द्वारा बरसात के जल का एक अंश बांध लिए जाने के बाद बचा हुआ जल भी जब पहाड़ की ढलान से नीचे की ओर बहता है तो ढलान पर उगी वनस्पति का प्रतिरोध उसे धीमी गति से बहने के लिए विवश करता है। यदि इसी जल को वनस्पति विहीन ढलान से लुढ़कना पड़े तो यह निरंतर गतिमान होकर साथ में मिट्टी को खरोंचता हुआ नीचे नदी तक जा पहुंचता है। किंतु यदि ढलान पर वनस्पति रहती है तो पानी की धार कभी गति नहीं पकड़ पाती। धीरे-धीरे बहने के कारण जलधार मिट्टी काटने के बदले स्वयं मिट्टी द्वारा सोखी जाने लगती है। यही से जल-संरक्षण की क्रिया प्रारम्भ होती है। क्योंकि बरसात में पर्वतीय ढलान की मिट्टी द्वारा सोखा गया यही जल भूमिगत रिक्त स्थानो में भरता जाता है और बाद में धीरे-धीरे रिसते हुए पहाड़ी श्रोतों और झरनों के रूप में बहने लगता है। मैदानी क्षेत्रों में इस प्रकार संरक्षित भूमिगत जल स्वत: तो नहीं बह निकलता किंतु खुदाई करके कुओं के रूप में वांछित स्थान पर प्राप्त हो जाता है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि बरसात का जल यदि वनस्पति व मिट्टी की सहायता से पर्वतीय ढलान पर सोख लिया जाये तो केवल सीमित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्रा में ही जल नीचे बहकर नदियों तक पहुंचेगा और बाढ़ नहीं आयेगी। साथ ही बरसात के बाद भी भूमिगत जल उपलब्ध होते रहने से नदियां बराबर गतिमान रहेंगी। किन्तु दूसरी ओर इसी जल के नहीं सोखे जाने से समस्त जल नदियों के साथ, एक ही मौसम में बह निकलेगा, जिससे बाढ़ व सूखा दोनों की स्थिति उत्पन्न होती है।

प्रकृति विनाश नहीं चाहती

प्राकृतिक शक्तियां सदैव पहली स्थिति के लिए कार्य करती हैं। जबकि मनुष्य अज्ञानतावश एवं तत्कालीन लाभ के लिए प्राकृतिक शक्तियों को कमजोर करके दूसरी स्थिति को जन्म देता रहा है। पहाड़ों की वनस्पति को क्षति पहुंचाने वाले हाथ मैदान में बाढ़ और सूखे की मार सहने वालों को दिखाई नहीं पड़ते। किन्तु यह धरती के पर्यावरण को टुकड़ों में बांटकर देखने का ही परिणाम है। अभी तो बाढ़ से बचने के लिए नगरों के चारों ओर करोड़ों की लागत से पत्थर की दीवालें उठायी जाती हैं और ऊपर पहाड़ों की वनस्पति को क्षति पहुंचाने वाले हाथ भी चलते रहते हैं। जबकि इतिहास गवाह है कि पत्थर की दीवालें उठाकर न तो सिंधु की बाढ़ से हड़प्पा–मोहन जोदड़ों के नगर बचाये जा सके, ना ही नील घाटी की सभ्यता। भारतवर्ष में भी प्रतिवर्ष बाढ़ के बचाव एवं राहत कार्यों में अरबों रुपये खर्च हो रहे हैं। किन्तु बाढ़ का प्रकोप बढ़ता जा रहा है। क्योंकि हम जड़ नहीं पत्तों को सींचने की नीति अपना रहे हैं।

आज विश्व में सभी राष्ट्र स्वीकारने लगे हैं कि जल संरक्षण का सर्वाधिक प्रभावकारी उपाय है, बरसात के महीनों में 'भूमि' द्वारा अधिक से अधिक जल सोखना। इसके लिए धरती की ऊपरी सतह की पानी सोखने की क्षमता बढ़ानी होगी। यह कार्य वर्षा के जल को तीव्रगति से नहीं बह जाने देकर उसे धीरे-धीरे, रुक-रुक कर बहने को विवश करके किया जा सकता है, ताकि 'भूमि' उसे सोखने का समय पा सके। इसके साथ ही 'भू-पर्त' को अधिक से अधिक गहराई तक पोली बनाना होगा, जिससे सोखा हुआ जल शीघ्रता से नीचे बैठ सके। यह दोनों ही कार्य करने का सस्ता एवं सर्वाधिक प्रभावकारी उपाय है––वनस्पति संरक्षण।

पर्वतीय क्षेत्र के भूमिगत जल-भण्डार बरसात में तो अपना पेट भरते हैं और बाद के अपेक्षाकृत सूखे महीनों मे यही जल गुरुत्वाकर्षण के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान-स्थान पर स्रोतों के रूप में नीचे की ओर बह निकलता है। भूमिगत जल का दूसरे जल स्रोतों की तुलना में यह भी अतिरिक्त लाभ है कि यह अधिक शुद्ध एवं छने हुए रूप में उपलब्ध होता है तथा भूमि में नीचे ही नीचे दूर तक बिना किसी व्यय के पहुंच जाता है। इस जल भंडार में वाष्पीकरण से क्षति भी नहीं होती और प्रयुक्त नहीं होने तक सुरक्षित रहता है। इसके विपरीत मानवनिर्मित बांधों से बनने वाले विशालकाय जलाशयों में वर्षा के अतिरिक्त जल को संरक्षित करने की तकनीक आधुनिक विज्ञान की देन है। किन्तु सर्वप्रथम इन जलाशयों को बनाने में पर्याप्त धन व्यय होता है, दूसरे हजारों एकड़ भूमि इनमें जल मग्न हो जाती है, तीसरे इनमें संरक्षित जल सूर्य के ताप से नित्य प्रति वाष्पीकृत होकर घटता रहता है। इसके प्रयोग हेतु भूमि के ऊपर बनी नहरों के माध्यम से दूर तक ले जाने में पर्याप्त मात्रा में जल की क्षति भी होती है।

इन विशालकाय नदी-घाटी योजनाओं की सुरक्षा हेतु भी अन्ततः वृक्षों की ही सहायता लेनी पड़ती है। इनके प्रस्रवण क्षेत्र में पेड़ जितने कम होंगे, उतनी ही इनकी आयु कम होगी। यह एक सहज ही समझ में आने योग्य तथ्य है।

जब वनस्पति को क्षति पहुँचती है तब ?

यदि बांध के जलाशय के प्रस्रवण क्षेत्र में वनस्पति को क्षति पहुंचती है तो उसके द्वारा बरसात में मिट्टी का कटान रोकने का जो कार्य हो रहा था वह मन्द पड़ जाता है। परिणामस्वरूप पर्वतीय ढलान पर लुढ़कता हुआ जल पहले की तुलना में अधिक मिट्टी एवं कंकड़ अपने साथ बहाता हुआ जलाशय की तलहटी में जमा करने लगता है। इसका सीधा प्रभाव बांध की उम्र पर पड़ता है और वह अनुमानित काल से कहीं पहले ही रेत से पट जाता है।

इस तथ्य को विश्व का प्रत्येक राष्ट्र स्वीकारते हुए नदी घाटी योजनाओं के प्रस्रवण क्षेत्र की पर्वतीय ढलानों की वनस्पति को संरक्षित करके बांधों की उम्र अधिक से अधिक बनाने के लिए संघर्षरत है। यदि बांधों में जमा होने वाली मिट्टी एवं रेत की दर घटायी जा सके तो बिना किसी अतिरिक्त व्यय के अनेकों अतिरिक्त वर्षों तक इन्हीं बांधों का लाभ उठाया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वनस्पति की अमरता

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि पर्वतीय क्षेत्र में प्राकृतिक रूप से उगी वनस्पति, भू-संरक्षण एवं जल-सरक्षण का महत्वपूर्ण कार्य किस प्रकार करती है। तात्कालिक लाभ की दृष्टि से हमने वनस्पति को क्षति पहुंचा कर संपूर्ण उत्तरी भारत के उपजाऊ मैदानों और उनमें बसे लोगों को बाढ़, सूखे एवं भुखमरी के क्रूर हाथों में सौंप दिया है। किंतु इस स्थिति का उपचार अभी भी सम्भव है। क्योंकि प्रकृति की रचनात्मक शक्तियां, आज भी क्रियाशील हैं और क्षति का कारण हटते ही वनपस्पति को पुनर्स्थापित करने की क्षमता उनमें है। वनस्पति के अनेक गुणों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है–'मर–मर कर जी उठने की क्षमता।' प्राकृतिक रूप से उगने वाली वनस्पति मे अमरत्व का यह गुण मनुष्य के लिए वरदान हैं। बस, क्षति पहुंचाने का कारण हटा नहीं कि प्रकृति पुन: पर्वतीय ढलानों को हरियाली से ढकना प्रारम्भ कर देगी। कठिनाई वहीं आती है जहां हम प्रकृति के चुने हुए स्वत: पनपने वाले वृक्षों को हटा कर कुछ गिने–चुने अक्षेत्रीय वृक्षों (Exotic) को उगाना चाहते हैं। ढलान वाले पर्वतीय क्षेत्रों में यह प्रवृत्ति अत्यन्त घातक प्रमाणित हो चुकी है। उसे दोहराने की भूल नहीं करके प्राकृतिक रूप से उन परिस्थितियों में उगने वाले वृक्षों का ही उपयोग खोजना होगा। ऐसा करके ही हम वनस्पति की अमरता का लाभ उठा सकेंगे और अब तो उपयोग खोजने का कार्य भी प्रकृति ने ही कर दिया है, यह स्पष्ट करके कि पर्वतीय क्षेत्र में वनस्पति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपयोग भू-संरक्षण एवं जल-संरक्षण है। यह जानकारी हो जाने के बाद भी पर्वतीय क्षेत्र की वनस्पति की अमरता का लाभ नहीं उठाना अज्ञानता की चरम सीमा होगी।

इसके लिए प्राकृतिक रूप से उगने वाली वनस्पति को क्षति पहुंचाने वाले तत्वों की जानकारी आवश्यक है।

वनस्पति के शत्रु

हिमालय के जीवनाधार पेड़-पौधों को क्षति पहुंचाने वाले तत्वों में आग, सीमातीत चरान एवं असयमित कटान मुख्य हैं।

आग वर्ष के सर्वाधिक गर्म महीनों में लगती है। इस समय घास सूखी रहती है, इसलिए रास्ते पर चलते हुए लोग यदि जलती सिगरेट या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे जलाने हेतु सुलगायी गई माचिस की तिली फेंक देते हैं तो जंगल में आग लग जाती है। ऐसी भी घटनायें प्रायः होने लगी हैं कि स्थानीय लोग इस लोभ में जानबूझ कर आग लगा देते हैं कि जल जाने के बाद बरसात होते ही अच्छी घास उगती है और पशुओं के लिए बहुतायत से घास उपलब्ध हो जाता है। पर्वतीय क्षेत्र में आग लगने का एक कारण ढलान पर लुढ़कते हुये पत्थरों की टकराहट से फूटी चिनगारी भी हुआ करती है। बादलों की रगड़ से पैदा होने वाली विद्युत धारा भी पर्वतीय वनों में आग लगा सकती है। किन्तु इन अनेक कारणों में मनुष्य द्वारा जाने अथवा अनजाने में लगने वाली आग की संख्या सर्वाधिक होती है।

आग से होने वाली क्षति का आकलन सरल नहीं है। इसमें प्राकृतिक रूप से उगी वनस्पति, नए पौधे तथा मिट्टी की ऊपरी पर्त भी झुलस जाती है। इस प्रकार झुलसे हुए वृक्ष प्रायः सूख जाते हैं। यह सूखे हुये वृक्ष आग फैलाने में सहायता करते हैं। झुलसी हुई मिट्टी, बरसात में सहज ही पानी के साथ बह जाती है। जिससे, भू-क्षरण से होने वाली सभी प्रकार की हानि का चक्र प्रारम्भ हो जाता है।

हिमालय के वृक्ष आग से विशेष रूप से प्रभावित होते हैं। क्योंकि उनमें अधिकांश में ज्वलनशील पदार्थ (जैसे बिरोजा या रेजिन) प्राकृतिक रूप से पाया जाता है, इसलिए यह शीघ्र ही आग पकड़ लेते हैं। अतः एक बार आग लग कर पर्याप्त क्षति करके ही बुझ पाती है।

सीमातीत चरान

चरान मूल रूप से पर्वतीय क्षेत्र का मुख्य व्यवसाय रहा है। किन्तु पिछले दशकों में जिस गति से पशुओं की संख्या बढ़ी, उससे पर्वतीय वनों पर सीमातीत दबाव बढ़ गया है। दूसरी ओर वन क्षेत्र में हुई कमी के कारण यह दबाव और अधिक बढ़ कर क्षति पहुंचाने की स्थिति तक पहुंच गया है। चरान करने वाले पशु, विशेषरूप से बकरियां और भेड़ें, तीखी ढलान पर उगी घास, झाड़ियों और नव अंकुरित पौधों को भी चुगने लगे हैं। अधिक पशु होने के कारण खुरों के दबाव से भूमि का पोलापन समाप्त होने लगता है, जिससे पानी सोखने की क्षमता कम हो गयी है। अधिक चरान का सर्वाधिक हानिकारक प्रभाव वहां देखने को मिलता है, जहां पेड़ों का कटान हो जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। ऐसे स्थानों पर नई पौध उगा कर स्थापित कर पाना कठिन होता जा रहा है।

अति चरान से हो रही क्षति रोकने हेतु खुले चरान पर रोक लगानी होगी। खेतों की मेडों व पंचायती वनों में चारे वाले वृक्ष लगाकर पशुओं हेतु चारा उपलब्ध करने की नीति अपनानी होगी। चारे के पौधे उगाने हेतु आरक्षित वनों में भी, विशेषकर ग्रामों की सीमा पर स्थित आरक्षित वनक्षेत्र में, सुविधा दी जानी चाहिए। पशुओं की संख्या कम करके, नस्ल सुधारने का कार्य भी साथ-साथ चलाना होगा। क्योंकि वर्तमान में पशुओं की संख्या तो सीमा से अधिक है किन्तु उनकी दूध देने अथवा कार्य करने की क्षमता चिन्ताजनक स्थिति तक कम है। इसलिये सीमित संख्या में किन्तु अच्छी नस्ल के पशु पालते हुए उन्हें बांधकर चारा देने की योजना, पर्वतीय क्षेत्र में लागू करना आवश्यक हो गया है।

वनस्पति का तीसरा शत्रु

पर्वतीय क्षेत्र की वनस्पति को क्षति पहुंचाने वाला तीसरा किन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत है--कुल्हाड़ी। किसके हाथों चलती है कुल्हाड़ी, यह कम महत्वपूर्ण है। महत्वपूर्ण यही है कि दशकों के कठिन श्रम से हिमालय की धरती ने अपनी रक्षा हेतु पाल-पोष कर जिन पेड़ों को सयाना किया, उन्हें असमय ही काट कर चूल्हे अथवा उद्योगों की भट्टी में झोंक दिया जाता है। उसके बाद छाया-विहीन रह जाने वाली तीखी ढलान की मिट्टी बेसहारा मां की भांति वर्षा, धूप और आंधी के थपेड़े खाकर क्षरित होने को शेष रह जाती है। इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया जा सकता है--इन पेड़ों का कटान वन-विभाग की देख-रेख में योजनावद्ध (?) ढंग से कराने में क्या क्षति है?

सिद्धांतरूप में कुछ नहीं। क्योंकि समतल क्षेत्रों की मिट्टी की ही भांति हिमालय की मिट्टी भी निरन्तर उत्पादनशील रहती है। अतः यदि युवावस्था तक बढ़ चुके स्वस्थ एवं कद्दावर वृक्षों को काट कर उनके स्थान पर नयी पौध स्थापित की जा सके तो एक ओर राष्ट्र को विभिन्न उपयोगों हेतु प्रकाष्ठ मिलता रहेगा और दूसरी ओर भूमि पर वनस्पति का कवच भी बना रहेगा। 'निरन्तर उपज' (Sustained Yield) का सिद्धांत मूलतः यही है कि प्रतिवर्ष किसी भू-क्षेत्र की उर्वरक क्षमता के बराबर उत्पादन लेते रहने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से वनस्पति की निरन्तरता बनी रहती है। आरक्षित वनों के योजनाबद्ध कटान का भी यही आधार है। किन्तु इसे प्रायोगिक रूप से लागू करने में सर्वाधिक जटिल समस्या आती है--काटे गये वृक्षों के स्थान पर नये वृक्ष स्थापित कर पाने की।

पर्वतीय क्षेत्र में पालतू पशुओं एवं मनुष्यों की संख्या में पिछले कुछ दशकों में हुई अप्रत्याशित वृद्धि से वृक्षों के कटान के उपरान्त खाली होने वाले स्थान को पुन: वृक्षों से भर पाना एक अत्यन्त कठिन कार्य हो गया है। यदि खाली होने वाला स्थान छुटपुट है (अर्थात यदि कटान दूर–दूर स्थित पुराने वृक्षों का ही हुआ है, जिसे तकनीकी भाषा में सलेक्सन फेलिंग कहते हैं) तो पड़ोस के पेड़ उसे प्राकृतिक रूप से वृक्षारोपित करने में पर्याप्त सहायक प्रमाणित होते हैं। किन्तु यदि रिक्त होने वाला स्थान व्यापक है (अर्थात यदि कटान एक तरफा हुआ है जिसे तकनीकी भाषा में यूनीफार्म फेलिंग कहते हैं) तो उसमें उग आने वाली घास, पशुओं को आकर्षित करती है और उसी लोभ में सकारण आग लगाने की प्रवृति भी जन्म लेती हैं। ऐसे व्यापक कटान वाले क्षेत्र यदि बस्ती के निकट हैं तब तो उसे पुनः वृक्षों से आच्छादित करना लगभग असम्भव हो जाता है। पर्वतीय क्षेत्र के पंचायती एवं 'सोयम' वनों का वनस्पति विहीन हो चुका क्षेत्र इसका स्पष्ट प्रमाण है।

वर्तमान में हिमालय की आबादी वाले क्षेत्रों (२ हजार से ५ हजार फीट ऊंचाई के मध्य वाले क्षेत्रों) में उगने वाले चीड़ वनों में 'एक तरफा कटान' की पद्धति से ही कटान हो रहा है। यह पद्धति वनस्पति की निरन्तरता बनाये रखने की दृष्टि से पहले अवश्य सफल रही होगी किन्तु बदली हुई परिस्थितियों में इसकी वैधता पर पुनर्चिन्तन की आवश्यकता है। विशेष कर इस संदर्भ में कि हिमालय के वनों का मुख्य दायित्व भूमि एवं जल-संरक्षण ही है और इसे निभाते हुए ही जितना प्रकाष्ठ अथवा अन्य वन उपज उपलब्ध हो सके वही अभीष्ट माना जाना चाहिए।

वनस्पति को क्षति पहुंचाने वाले तत्वों की उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट हो जाता है कि हिमालय की ढलान पर प्राकृतिक रूप से उगी वनस्पति को क्षति मुख्यत: मनुष्य के हाथों ही पहुंच रही है। इसे रोकने के लिए जनमानस में व्याप्त अज्ञानता हटाकर वनस्पति के जीवनदायी लाभों से परिचित कराना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनिवार्य है। अन्यथा कोई भी दण्ड विधान इन मूक, अचल वृक्षों को बढ़ती जा रही जनसंख्या के दबाव से बचाने में सफल नही होगा।

परिस्थिति विज्ञान को जन-जन तक कैसे पहुँचायें

हमारे देश में जहां शिक्षा का स्तर इतना नीचे है और बाढ़, भूस्खलन, सूखा जैसी दुर्घटनाओं को ईश्वर का कोप मान कर सह लेना स्वभाव बन गया हो, वहीं जन–जन को यह आभास कराना कि इन प्रकोपों का अधिकांश कारण हमारे कुकृत्यों का परिणाम है, एक जटिल कार्य है। इसे वैज्ञानिक साक्षरता (Scientific literacy) फैलाकर ही हल किया जा सकता है।

विशेषज्ञ और आम आदमी

यह गम्भीरता से स्वीकार करना होगा कि आम आदमी के करोड़ों हाथ ही इस धरती पर व्याप्त जीवन दायिनी परिस्थितियों को संरक्षण प्रदान कर सकते हैं। क्योंकि विज्ञान कोई जादू नहीं है, बल्कि सूझ–बूझ और आत्मचिंतन का ही दूसरा नाम है। धरती पर पल रहे जीवन का भविष्य चन्द विशेषज्ञों के हाथ में नहीं छोड़ा जा सकता। इन विशेषज्ञों की दृष्टि इतनी एकपक्षीय हो गयी है कि जीवन और उसके पर्यावरण की समग्रता का व्यापक स्वरूप देख ही नहीं सकते। विशेषज्ञों की छोटी सी खोज भी जिस धूम–धाम के साथ आधुनिक प्रसार माध्यमों से प्रचारित की जाती है उसकी तुलना में अनेकों व्यक्तियों के वह रचनात्मक कार्य फीके पड़ जाते हैं जो वास्तव में मानव जीवन की खुशहाली के लिए कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं। यह रचनात्मक कार्य प्रकृति संरक्षण, वृक्षारोपण, कृषि, पशुपालन, लोक शिक्षण आदि अनेकों रूपों में नित्य प्रति हो रहा है। यही तो हैं वह लोग जो जल, वायु, भूमि, सूर्य आदि को देवता मानकर पूजते आये हैं और इनका अनादर करने से बच्चों को डराते रहे हैं। जब कि आज के व्यक्तिवादी विशेषज्ञ, धरती पर जीवन के पोषक इन्ही मूल तत्वों को जड़ मानकर मनुष्य को यह मिथ्या आश्वासन देते हैं कि वह प्रकृति की उपेक्षा करने में समर्थ है। किन्तु मानव जाति का इतिहास यही संकेत देता है कि इन मूलतत्वों की उपेक्षा करके, दुरूपयोग करने की भूल जब भी दोहरायी गयी बाढ़, सूखा, भूस्खलन आदि विनाशकारी स्थितियों को ही जन्म मिला। अत: आवश्यक है कि इन मूल तत्वों के संरक्षण कार्य में जुटे रचनात्मक कार्यकर्ताओं के प्रति इन विधाओं के विशेषज्ञों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

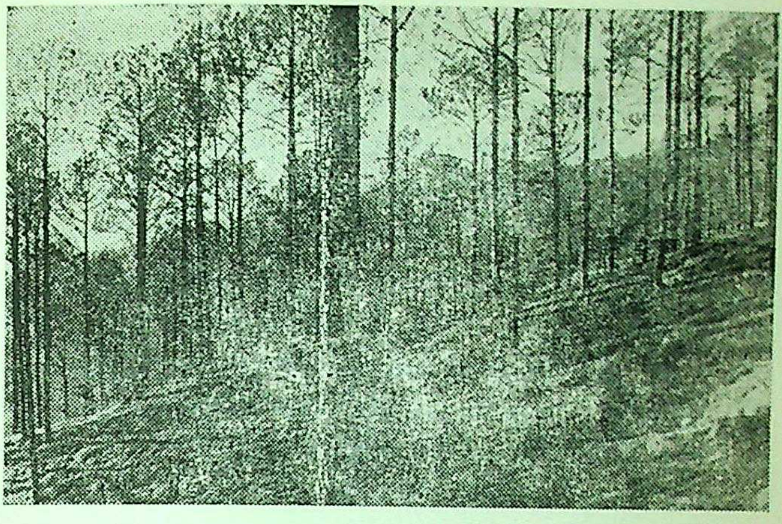

एक ही प्रजाति के शंकुधारी वन

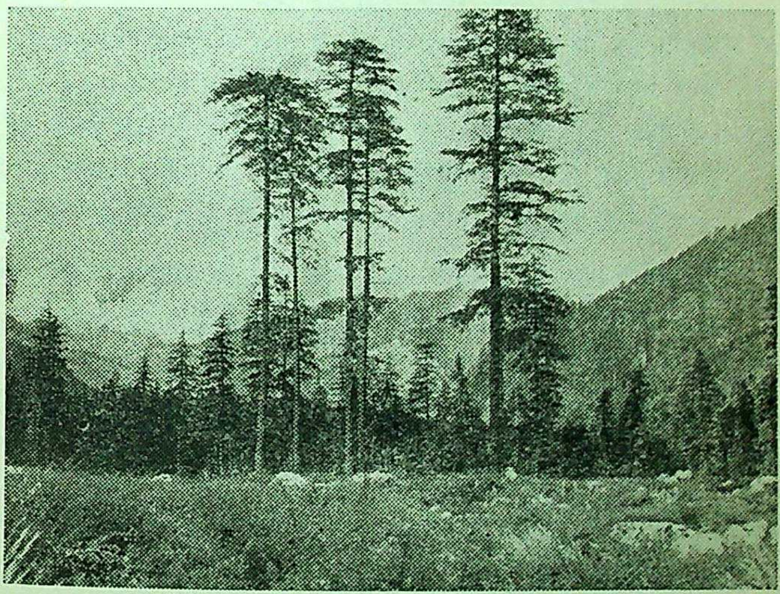

देवदारू वन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को जवाबदेह बनाया जाये। अन्यथा अपने-अपने क्षेत्र की उपलब्धियों को महत्वपूर्ण प्रमाणित करने की प्रतियोगिता में जुटे यह विशेषज्ञ प्रकृति के सम्यक रूप को खण्डित कर सकते हैं। उदाहरणार्थ पर्वतीय क्षेत्र में प्राकृतिक संसाधनों की व्यवस्था से संबन्धित विभिन्न विभागों (वन, कृषि, उद्यान, पशु-पालन, भू-संरक्षण, सड़क निर्माण, बांध निर्माण आदि) का अपना-अपना भौतिक एवं आर्थिक लक्ष्य रहता है, जो दूर बसे नगरों में बैठे उनके विभागाध्यक्षों द्वारा निर्धारित किया जाता है। इनमें से प्रत्येक अपने क्षेत्र का विशेषज्ञ है (?) और इनकी दृष्टि में पर्वतीय क्षेत्र एक नहीं है। वह या तो वन क्षेत्र है या कृषि क्षेत्र या नदी-घाटी योजना का क्षेत्र है अथवा फल पट्टी, सड़क आदि के उपयुक्त क्षेत्र है। प्रत्येक अपने हिस्से में आये टुकड़े में अपनी विशेषज्ञता आजमाते हुए पूर्व निर्धारित लक्ष्य पूरा करने में जुटा है। चाहे सड़क बनाने के लिये किया गया कटान नीचे उगे पेड़ों को ढहा दे अथवा नीचे बहती नदी पर बने बांध में जमा होकर उसे उथला बना दे। कृषि विभाग इस क्षेत्र को खाद्यान्न की दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने में जुटा है तो उद्यान विभाग फलों के निर्यात की योजना का लक्ष्य लेकर कार्य करता है। इसी प्रकार प्रतिवर्ष पूर्व निर्धारित मात्रा में प्रकाष्ठ की उपज करने हेतु हो रहे सुनियोजित कटान से खाली होने वाली ढलान पर प्रारम्भ हो जाने वाले सीमातीत चरान एवं प्रतिफलित भू-क्षरण की क्षति अनदेखी रह जाती है। वैसे तो इन परस्पर विरोधी, विभागीय विशेषज्ञों के हाथ में कार्य एक ही है--पर्वतीय विकास। किन्तु हिमालय की धरती इनके लिए एक नहीं है।

अत: इस पर गहराई से चिन्तन करना अनिवार्य हो गया है कि आम आदमी को उसके पर्यावरण के संरक्षण एवं समुचित उपयोग से किस प्रकार सम्बद्ध किया जाये? क्योंकि केवल वही है जिसे पर्यावरण की समग्रता से वास्ता है और जिसके सामूहिक प्रयास से ही यह संभव हो सकता है।

वैज्ञानिक साक्षरता कैसे लायें ?

इसके लिए क्षेत्रीय भाषाओं को जन-साधारण की समझ में आने वाली शब्दावली का प्रयोग करते हुए रोचक लेख, पुस्तिकायें, चलचित्र आदि माध्यमों का प्रयोग किया जा सकता है। अक्षर ज्ञान के अवसरों से वंचित रह गये लोगों के लिए क्षेत्रीय रचनात्मक कार्यकर्ता अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी पीढ़ी (जिनके लिए प्राइमरी स्तर की शिक्षा निःशुल्क है और कुछ अंशों तक अनिवार्य भी) के लिए ऐसी पुस्तिकायें पाठ्यक्रम में सम्मिलित की जानी चाहिए, जिनमें उस क्षेत्र की भौगोलिक विशिष्टताओं, वहां उगने वाली वनस्पति तथा प्राकृतिक रूप से पलने वाले जीव-जन्तुओं का चित्रों के माध्यम से वर्णन हो। इससे उच्च कक्षाओं हेतु इन क्षेत्रीय प्राकृतिक विशिष्टताओं के परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप उत्पन्न उन परिस्थतियों का वर्णन देने वाली पुस्तिकायें अनिवार्य रूप से चलायी जायें, जिनका संरक्षण दीर्घगामी विकास एवं स्थायित्व के लिए अनिवार्य हो।

सारांश

मानव जाति के सुनिश्चित भविष्य की दृष्टि से अब यह स्पष्ट रूप से अनुभव किया जाने लगा है कि 'भूमि' (Soil) एवं 'जल' मनुष्य को ज्ञात सर्वाधिक महत्वपूर्ण कच्चे माल हैं। इनका समुचित उपयोग किया जाये तो यह कभी समाप्त नही होंगे। किन्तु दुरुपयोग से इन्हें नष्ट करके मानव अस्तित्व को खतरे में डाला जा सकता है। इनके समुचित उपयोग का माध्यम है–वनस्पति।

वनस्पति ही भूमि में उपलब्ध खनिज तत्वों एवं जल को मिला कर सूरज की भट्टी में पकाती है। परिणामस्वरूप चारा, ईंधन, खाद्यान्न, फल आदि का निर्माण होता है। किस प्रकार की भूमि में कौन सी वनस्पति उपयुक्त है, इसका चुनाव प्रकृति की उपेक्षा करके विशुद्ध वैज्ञानिक आधार पर नहीं किया जा सकता। पर्यावरण में व्याप्त परिस्थितियों के अनुसार ही 'भूमि' का सर्वाधिक उपयुक्त उपयोग निर्धारित किया जा सकता है। भू–उपयोग की उपयुक्तता के माध्यम से ही बाढ़ एवं सूखा की दिनों-दिन बढ़ती जा रही समस्या का समाधान हो सकता है। इसलिए भविष्य हेतु कार्यक्रम इसी आधार पर निर्धारित किया जाना मानव जाति के हित में रहेगा।

एकीकृत भू उपयोग योजना की आवश्यकता

भारतीय नदियों में अधिकांश के उद्गम क्षेत्र हिमालय की वनस्पति को, मुख्यतः जल एवं भू–संरक्षण हेतु व्यवस्थित किया जाये। पर्वतीय क्षेत्र की मुख्य उपज 'जल' मानी जाये। वैसे तो पर्वतीय जल स्रोतों का राष्ट्रीयकरण करके उन्हें कच्चा माल मानने की नीति अपनायी जा चुकी है। किन्तु उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभावी कार्यान्वयन अभी भी नही हो पा रहा है। अन्यथा यदि नदियों-नालों के प्रस्रवण क्षेत्रों का अलग-अलग सर्वेक्षण करके उसकी भूमि एवं वनस्पति को संरक्षित करने की स्पष्ट योजना बनाकर चरान, पेड़ों के कटान एवं ढालदार भूमि में कृषि करने पर अंकुश लगाते हुए ऐसे संवेदनशील क्षेत्रों की भूमि का मुख्य उपयोग 'जल संरक्षण' निर्धारित कर दिया जाये तो वनस्पति विहीन होती जा रही हिमालय एवं शिवालिक की लाखों एकड़ पर्वतीय ढलान पुनः हरियाली से लद उठेगी। वनस्पति के अमरत्व का गुण इस दृष्टि से सर्वथा सक्षम हैं।

इस प्रकार नदियों के प्रस्रवण क्षेत्र में उगे वृक्षों पर आधारित लघु-उद्योगों से स्थानीय लोग जीविका पा सकेंगे और प्रतिवर्ष मैदान में बाढ से होने वाली अरबों रुपयों की क्षति भी रोकी जा सकेगी। इसके साथ ही प्रतिवर्ष उपजाऊ मिट्टी का समुद्र की ओर जाना भी कम होगा। इस प्रकार होने वाली बचत, पर्वतीय ढलान में कृषि एवं पेड़ों के व्यापारिक कटान पर लगने वाली रोक से संभावित आर्थिक क्षति से कहीं अधिक होगी और विशुद्ध आर्थिक दृष्टि से भी हम घाटे में नहीं रहेंगे।

'जल संरक्षण' के साथ ही पर्वतीय क्षेत्र में वनस्पति एवं भू-संरक्षण के प्रभावी प्रयासों से इस समूचे क्षेत्र का प्राकृतिक सौन्दर्य भी निखर उठेगा, जो पर्यटन उद्योग के लिए अमूल्य कच्चे माल का कार्य कर सकता है। पर्यटन आज विश्व के चोटी के उद्योगों में गिना जा रहा है। नगरों एवं औद्योगिक क्षेत्रों में रह रहे लोग अपनी आय का कुछ अंश बचाकर वर्ष में एक-दो बार प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर रमणीक स्थलों पर जाकर तरोताजा होने के लिए व्यय करने लगे हैं। इस दृष्टि से देखें तो सोचना पड़ेगा कि हरियाली से लदी पर्वतश्रेणियां, उनके बीच बहती दुग्ध-धवल नदियां एवं ऊपरी चोटियों पर बिछी चांदी जैसी वर्फ किसका मन नहीं मोहेगी। फिर हिमालय तो युगों से भारतीय जनमानस को आकर्षित करता रहा है। इसलिए यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि इन पर्वतीय मार्गों के दोनों ओर खड़ी पर्वतीय ढ़लानों को हरियाली की चूनर पहनाकर उसकी यात्रा के अधिकांश समय को किस सीमा तक रोचक बनाया जा सकता है। अतः वनस्पति के संरक्षण से प्रतिफलित 'भू' एवं 'जल' संसाधनों के संरक्षण के साथ ही स्वतः जन्म लेने वाले प्राकृतिक सौन्दर्य को भी एक कच्चा माल मानने का निश्चित आधार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कार्य तभी किये जा सकते हैं जब पर्वतीय क्षेत्र में जल, भूमि एवं वनस्पति को अलग-अलग तत्व नहीं मानकर सामूहिक पर्यावरण के अनिवार्य रूप से सम्बन्धित अंग मानकर व्यवस्थित किया जाये। वर्तमान में इन संसाधनों की व्यवस्था परस्पर असम्वद्ध विभागों द्वारा की जा रही है। इनके लक्ष्य प्राय: परस्पर विरोधी देखे जा सकते हैं और उन्हें पूरा करने में 'पर्यावरण' की खींचतान होती रहती है। पर्वतीय क्षेत्र में निर्मित सड़कों को विशुद्ध रुप से इंजीनियरिंग क्रिया मानने का ही परिणाम हैं कि उनके ऊपर एवं नीचे स्थित वनस्पति एवं जलस्रोत चिन्ताजनक स्थिति तक क्षति ग्रस्त हो रहे हैं। इसी प्रकार विशाल-काय बांधों से निर्मित कृत्रिम जलाशयों को पर्वतीय पर्यावरण का अभिन्न अंग नहीं मान कर उनके विस्तृत प्रस्रवण क्षेत्र में भू-संरक्षण की व्यवस्था किए बिना ही बनाते रहने के कुप्रभाव स्पष्ट होने लगे हैं।

अत: आवश्यक है कि पर्वतीय क्षेत्र के जल, भूमि एवं वनस्पति की व्यवस्था से संबद्ध सभी संस्थाओं को एक एकीकृत योजना (Integrated Plan) से अनुशासित किया जाये। कैसा विरोधाभास है कि एक ओर पर्वतीय क्षेत्रों को खाद्यान की दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास किया जा रहा है तो दूसरी ओर मैदानों में बाढ़ से कही अधिक फसलें बही जा रही हैं। क्या यह उपयुक्त नहीं रहेगा कि पर्वतीय क्षेत्र की ढालदार भूमि को कृषि के लिए अनुपयुक्त मानते हुए, जल संरक्षण करने वाली स्थायी वनस्पति उगाने हेतु प्रयोग किया जाये और नीचे बाढ़ से वह जाने वाली फसलों के अतिरिक्त उत्पादन से पर्वतीय क्षेत्र की खाद्यान की मांग पूरी की जाये ?

भू-उपयोग का सीधा सा समीकरण है—पहाड़ जल, प्रकाष्ठ और फल दें, मैदान खाद्यान दें।

जल संरक्षण

चूंकि जल संरक्षण का सर्वाधिक सस्ता एवं प्रभावी ढ़ंग, भूगर्भ स्थित जल भण्डारों को पोषित करते रहना ही है, इसलिए सामाजिक, प्रशासनिक वित्तीय एवं जन सहयोग आदि समस्त उपायों के माध्यम से प्राथमिकता के आधार पर इस दिशा में कार्य प्रारम्भ किया जाये।

इसके लिए भी लोक शिक्षण के कार्य में लगी रचनात्मक संस्थायें अत्यन्त दूरगामी भूमिका निभा सकती हैं। किंतु सर्वाधिक प्रभावकारी कदम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृतिक वनस्पति को अभयदान देकर उठाया जाना चाहिये। पर्वतीय क्षेत्र की वनस्पति को जल संरक्षण की दृष्टि से संरक्षित करने की नीति अपना कर स्थानीय लोगों को वनों की व्यवस्था से संबंधित करना होगा। वैसे बाहर से देखने पर लगता है कि वनस्पति को सर्वाधिक क्षति स्थानीय लोग ही पहुंचाते हैं किन्तु उसके लिए इन्हें दोषी नहीं माना जा सकता। क्योंकि पर्वतवासी आदिकाल से ही अपने पशुओं के लिए चारा, ईंधन के लिए लकड़ी, खाद के लिए पत्तियां आदि वनों से लेते रहने के अभ्यस्त हैं और यह इनका प्राकृतिक अधिकार है, इसे मान्यता मिलनी ही चाहिए। इसलिए पर्वतीय क्षेत्र के वनों की वार्षिक उपज तय करते समय यह भी आंकना होगा कि स्थानीय व्यक्तियों की वार्षिक आवश्यकता की पूर्ति की जानी हैं। उसके बाद बचने वाली वार्षिक उपज को ही व्यापारिक उपयोग हेतु सुलभ माना जाना चाहिए। साथ ही पर्वतीय क्षेत्र में लोक सेवी संस्थाओं के माध्यम से पशुओं की संख्या सीमित करने, खेतों की मेड़ एवं गांव की सीमा पर खाली पड़ी ढलान में चारे के वृक्ष लगाने, तथा संयमित चरान हेतु प्रेरित करना होगा। तभी पर्वतीय क्षेत्र की वनस्पति जल संरक्षण का अपना दायित्व निभाने योग्य हो सकेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज का पहाड़

गिरीश तिवाड़ी/शेखर पाठक

'अमीना त्वीलै नापि जमीना
बाँज गाड़ौ को टुक'

यौं तो गीतों के टुकड़े अक्सर टुकड़ों में सच कहा करते हैं, पर यह 'गीत-टुकड़ा' पूरा सच बोलता है कि उत्तराखंड को उसकी पूर्णता में कभी न समझा गया और न समझने की कोशिश की गई, बल्कि जब भी, जिस तरह के भी 'अमीनों' द्वारा पैमाइश की गयी वह हमेशा बंजर से शुरू होकर बंजर में खतम हो गई। क्यों हो गई इस बात को गीत का अगला टुकड़ा बताता है कि नाप जोख और लेखपड़त के बीच 'सही' के ऊपर सदा रबड़ घिसा जाता रहा। यह रबड़ समय, काल, परिस्थितियों के अनुसार शक्ल और शैली अदल-बदल कर अलग अलग चेहरेदार लोगों के (गो कि भीतर से सभी 'वे' लोग एक से थे) हाथों में जाता रहा और अपनी ताकत तथा शोषण क्षमतानुसार तत्कालीन उत्तराखंड को ज्यादा या कम मिटाता रहा।

'रातियां हुँछों खानापुरी,
ब्याव रबड़ै घिस
अमीरू हैरईं चैन-चुपाड़ा,
गरिबूँ पिसा पिस'

शायद अब यह अस्पष्ट नहीं है कि उत्तराखंड को मिटाने वाले हाथ किनके थे/हैं और जो मिटाये गये या मिटाये जा रहे हैं वे कौन थे/हैं ??

तो साब ऐसा है बचा-खुचा आज का उत्तराखंड !

वैसे इसके पास पर्याप्त वन, खन, पन तथा जन सम्पदा है, ऊँचे कहे जाने वाले हिमालय से ले कर सम्पन्न समझी जाने वाली तराई तक है। हिमालय और तराई के बीच दून घाटी, रवाँई-जौनसार, मलेथा सेरा, सुनहरा कत्यूर-सुमेश्वर, गढ़ी चम्पावत और रंगीली बैराठ अब भी मौजूद हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहाड़ और पानी के टुकड़ों का बना यह उत्तराखंड सैलानियों के तीर्थों से तीर्थ यात्रियों के तीर्थ स्थानों तक का अटूट सिलसिला अपने में समेटे है।

इस सबके बावजूद भी यहाँ वह नहीं है, जो यहां होना चाहिए। मतलब यहां का आदमी इतनी संपन्नताओं के बीच भी 'गरीबी' की ही स्थिति में है, (यह स्थिति देश में अन्यत्र भी है पर ऐसे इलाके कम ही हैं जहाँ प्राकृतिक व्यवस्था ने तो सम्पन्नता दी हो पर आदमी की व्यवस्था ने उसका गरीबी में रूपान्तरण कर दिया हो)। क्योंकि चौमास उन के लिए जान माल का खतरा ले कर आता है,तो जाड़ा मुँह–ताजी ले कर और गर्मियों में तो वह अपना चेहरा ही भूल जाता है क्योंकि तब उसके चेहरे पर उसका चेहरा नहीं होता है। अपनें पेड़, पहाड़, पानी के बीच वह असुरक्षित है। उसका पानी उसे बहाता है, पेड़ उसे काटता है और पहाड़ उसे तोड़ते हैं। वह यह जानता है कि मेरे ये (व्यवस्था द्वारा बनाये गये) विपक्षी मूलतः मेरे पक्षधर हैं पर इन्हें विपक्ष में खड़ा कर दिया गया है। वह यह भी कोशिश करता है कि इन पक्षधरों को विपक्ष में न जाने दे। यद्यपि वह पूरी तरह नहीं जानता है कि उन्हें विपक्ष में रखने का काम कौन ताकतें करती हैं ? ऐसा भी नहीं है कि पेड़, पहाड़ और पानी अपने को बनाये रखने के लिए अपने साथ रहने वाले आदमी को यह हक नहीं देना चाहते हों। बल्कि इसके कारण कल और आज की आधी अधूरी राजनीति, देश (प्रदेश और उत्तराखंड) में फैले आन्तरिक उपनिवेशवाद और भारतीय प्रजातंत्र के मूल अन्तर्विरोधों में तलाशे जा सकते हैं।

उत्तराखंड (या देश) को बदलने-बेहतर बनाने के लिए सबसे पहले उत्तराखंड (या देश) के तमाम अन्तर्विरोधों की जानकारी अनिवार्य है। तभी अपने सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और साँस्कृतिक रोगों का पता चल सकता है और बदलाव की कोई रचनात्मक दृष्टि मिल सकती है। हम चाहते हैं कि बीते कल के उत्तराखंड की व्यापक जाँच पड़ताल की जाय और आने वाले कल के उस उत्तराखंड की नींव पक्की पड़ने दी जाय, जो मिथकों, लोक परम्परा का चाहे रहे पर भ्रष्ट-भ्रमित शासकों और मौत तक आदमी को चूसने वाले शोषकों का नहीं। जिस उत्तराखंड में आदमी का अपने पेड़, पहाड़ और पानी से एक आत्मीय रिश्ता होगा और अपने सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दुश्मनों को आंकने की समझ होगी तथा पहाड़ और आदमी दोनों को स्वस्थ-सुन्दर और सम्पन्न बनाने का संकल्प भी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी तमाम विशिष्टताओं और प्राकृतिक संपदाओं के बावजूद इन 'सुन्दर' पहाड़ों में रहने वाले आदमी का जीवन सुन्दर नहीं है। यह सिर्फ उत्तराखंडीय नहीं, राष्ट्रीय स्थिति है। आज के हिन्दुस्तान की तरह (उसी का एक हिस्सा) आज का उत्तराखंड भी आज का बिल्कुल मौलिक उत्तराखंड नहीं है। दरअसल हम लोग सामाजिक बदलाव की किसी बड़ी कार्रवाई से हो कर नहीं गुजर सके हैं। इसीलिए हजारों सालों से हम पर 'सुधारों' के टल्ले पर टल्ले लगते हैं। हमारा आज का व्यक्तित्व पूरी तरह बीते कल के बीमार हाड़ मांस का है, उसमें जितनी कबीलाई सरलता-अद्भुतता मौजूद है उससे ज्यादा सामंती/साम्राज्यवादी रोगाणु हैं। आने वाले कल के उत्तराखंड का हाड़-माँस-रक्त इन सभी रोगाणुओं से मुक्त होना है। उसमें आदमी और आदमी तथा आदमी और प्रकृति के बीच कोई सामन्ती/पूंजीवादी या कुलाकी बिचौलिया न आये। यह वेहतर होगा कि कल के पहाड़ में यहाँ आने वाले प्रारम्भिक आदमी का बहुआयामी आदम संस्कार रहे। तभी आने वाले कल का पहाड़ आज और बीते कल के पहाड़ से अलग और नया पहाड़ होगा।

क

पूर्व में काली (नेपाल सीमा) से पश्चिम में पांवर नदी (हिमाचल सीमा) तक, उत्तर में तिब्बत (चीन)सीमा से दक्षिण में गंगा यमुना के मैदान के उत्तरी छोर तक, महाहिमालय, लघु हिमालय, भावर और तराई की समानान्तर पट्टियों में बंटे फैले भौगोलिक व्यक्तित्व का नाम उत्तराखंड है। अति विविधता-पूर्ण यह भूगोल मूलतः एक सम्पूर्ण सांस्कृतिक इकाई है। अभी इसमें कुल आठ जिले-पिथौरागढ़, अल्मोड़ा, नैनीताल, चमोली, टिहरी, पौड़ी, उत्तरकाशी तथा देहरादून हैं और कुमाऊं तथा गढ़वाल कमिश्नरियां हैं। उत्तराखंड की धरती १९२६३ वर्ग मील के इलाके में फैली हैं और इस धरती में लगभग ४५ लाख आदमी रहते हैं।

साहित्य-संस्कृति की पुरानी और मशहूर किताबों में उत्तराखंड का पर्याप्त जिक्र आया है। वेदों, उपनिषदों, महाभारत, पुराणों से कालीदास के साहित्य तक में उत्तराखंड की बहुत चर्चा है। अगर मिथकों और इकतरफा इतिहास, जो कि या तो पुरातात्विक स्तर पर प्रमाणित है या सिर्फ साहित्यिक या लोक-ऐतिहासिक प्रमाणों के स्तर पर, से होकर आगे चला जाय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो यहाँ तरह-तरह की जाति-समूहों के आगमन का प्रमाण मिलता है। आर्यो से पूर्व और पश्चात् की हिन्दुस्तान में आने वाली लगभग सभी जातियाँ या तो यहाँ आईं या अपना हिस्सा या प्रभाव छोड़कर आगे निकल गयीं। ये जातियां अपनी शक्ति और सक्रियता के अनुसार अपना स्थान बनाती रही और एक दूसरे से प्रभावित होती रहीं, प्रभावित करती रहीं।

आज के उत्तराखंड के शिल्पकार यहां की सबसे पुरानी जातियों का प्रतिनिधित्व करते हैं और उस 'लोकथात' को भी बनाये रखने का श्रेय इन्ही को है, जिसको प्रारम्भिक समाज से प्राप्त कर, जोड़ घटा कर ये आज तक लाये हैं। यहां के ब्राह्मणों/राजपूतों का बड़ा हिस्सा (भारत में मुस्लिम आक्रमण के समय या बाद) महाराष्ट्र से ले कर गंगा-यमुना के मैदान के विभिन्न इलाकों तक से भाग कर यहां आया था। इतिहासकारों के अनुसार कत्यूरी शासकों से पहले भी यहां के कोई शासक थे या यह इलाका तत्कालीन साम्राज्यों के अन्तर्गत कुछ न कुछ सीमा तक-था, फिर क्रमशः कत्यूरी, चंद-परमार, कभी बड़े कभी छोटे इलाके के शासक बने। इस मध्यकालीन वृद्ध सामन्तवाद के स्थानापन्न गोरखा शासक बने, जिनका सामन्तवाद सैनिक शक्ति की नीव पर खड़ा था, उत्तराखंड १७९० से (पश्चिमी क्षेत्र १८०३ से) गोरखों के अधिकार में आया। और १८१५ में सैनिक सामन्तवाद से बड़ी शक्ति बर्तानवी साम्राज्यवाद ने गोरखों का स्थान लिया। तब से १९४७ तक उत्तराखंड के बड़े भाग में यही व्यवस्था चली। पहले ईस्ट इंडिया कंपनी के तहत और फिर बर्तानवी साम्राज्ञी के अनुचरों के तहत। इसी बीच गढ़वाल के छोटे क्षेत्र (आज का टिहरी और उत्तर काशी जिला) में टिहरी रियाशत भी जीवित रही। यह एक ऐतिहासिक आश्चर्य है कि तब से १९४७ तक शेष हिन्दुस्तान की तरह उत्तराखंड में भी सामन्तवाद और साम्राज्य वाद साथ साथ एक दूसरे के पूर्वज उत्तराधिकारी के रूप में नहीं, बल्कि एक दूसरे के पूरक के रूप में जिये। एक अधिक रोचक बात यह कि बर्तानवी साम्राज्यवाद का बिस्तर तो १९४७ में बंध गया जब कि टिहरी रियासत १९४९ में भारत में अपने विलय तक चलती रही। १९४७ से कहा जाता है कि हम आजाद हैं और जून १९७५ में खोई आजादी को मार्च' ७७ में दूसरी आजादी' के रूप में पाना बताया जाता है। 'दूसरी आजादी' का स्वाद सिर्फ डेढ़ साल में ही पता लग गया है जबकि पहली आजादी हम ३२ साल से ढो रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क-२

विभिन्न लोगों के यहाँ आने से यहाँ का बाहरी भूगोल तो शायद कम ही बदला होगा मगर भूगोल के भीतर का भूगोल निरन्तर बदलता रहा और इसी क्रम में सामाजिक संगठन, राजनीति और अर्थ व्यवस्था भी बदलती रही। जो जातियां यहां थीं, वे अपनी लोकथात में तो सम्पन्न जरूर थी किन्तु आर्थिक और राजनैतिक सम्पन्नता उनके पास अपेक्षाकृत कम थी, जब कि नवागंतुकों के पास अपनी सांस्कृतिक थात निश्चित रूप से कम और अधूरी थी पर राजनैतिक चातुर्य अधिक था और इसी के बल पर कम समय में वे यहां अपने पांव जमा सके। राजनैतिक चातुर्य्य से उन्होंने अपनी आर्थिक स्थिति मजबूत की और फिर सांस्कृतिक शोषण की कार्यवाही जारी हुयी। इस तरह उत्तराखंड का ग्रामीण जीवन दो टुकड़ों में बंटा। जिनमें एक ओर यहां के मूलनिवासी थे और दूसरी ओर मध्य-काल में आये हुये जातिसमाज, 'डुमौड़' और 'बिठौड' में गांव का विभाजन हुआ। पर इन दोनों में एक अनिवार्य अन्त सम्बन्ध की बुनियादी विशेषता यह थी कि इसके तहत बिठौड़ वाले तो डुमौड़ वालों की प्रतिभा और हुनर का पूरा फायदा उठा सकते थे पर डुमौड़ वालों के सामने 'गुस्से' को 'स्वे' लगाने के सिवाय कोई विकल्प नहीं था। राजाओं की मदद सदा बिठौड़ को मिलती थी क्योंकि तत्कालीन व्यवस्था और व्यवस्था के विरोध की व्यवस्था में इन्हीं का बोलबाला था, बल्कि 'चालों' के रचयिता, उन्हें कार्यान्वित करने वाले और फिर स्थिति सामान्य कराने वाले ये ही लोग थे। पहाड़ का भूगोल इनके पक्ष में था क्योंकि अखिल उत्तराखंडीय साम्राज्य के स्थान पर छोटी छोटी कोट-गढ़ियां थीं। बिठौड़ में ब्राह्मण और राजपूत वर्ण थे और इनके बाद जितनी जातियां बाहर से आई वे इन्हीं की पक्षधर होती चली गयीं। इसके समाज-परिस्थितिकीय तथा मनोवैज्ञानिक कारण थे। एक तो सभी बीठ उन्ही की तरह हाल में यहां आये थे। दूसरे व्यवस्था में इनका स्थान था। आने वाले वर्षों में इन श्रेष्ठियों ने शेष उत्तरखंडीय समाज पर इतना बड़ा प्रभाव डाला कि यहां के मूल लोगो में इनकी नकल करने की प्रवृत्ति जगी। खस ब्राह्मण और खस राजपूत इसी प्रक्रिया के परिणाम थे। ये लोग पूरी तरह न अपने मूल लोक संस्कार त्याग सके और न इन श्रेष्ठियों की जीवन शैली ही अपना सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी अन्तर्विरोधी नींव पर उत्तराखंड में सामाजिक स्तरण आगे बढ़ा। चंद-परमारों और गोरखों के काल तक यह प्रक्रिया इसी क्रम में जारी रही। "औपनिवेशिक शासकों के आने के बाद इस सामाजिक वृत्त में कुछ बदलाव लाये गये। ये बदलाव साम्राज्यवाद के प्रसार स्थाईत्व के लिए अनिवार्य थे। इस औपनिवेशिक कार्यवाही के तहत बर्तानवी शासकों ने बिठौड़ प्रतिभा का पूरा उपयोग किया और बिठौड़ में कहीं अपनी प्रतिभा का अहं न जगे उन्होंने डुमौड़ में समानान्तर बिठौड़ पैदा किये और इस चातुर्य से उत्तराखंड की प्रतिभा का पूरा फायदा भी उठाया। चाहे गजेटियरों के लिए सामान जुटाया गया हो, लोक साहित्य का संकलन किया गया हो, भूमि की नाप जोख की गयी हो या तिब्बत–मध्य एशिया का सर्वेक्षण कराया गया हो, यह सब उत्तराखंड की प्रतिभा के दम पर किया गया। इसी समय उत्तराखंडीय प्रतिभा के दो पूरक हिस्सों में प्रतिद्वन्दिता के बीज बोये गये और उत्तराखंड के शरीर के दो अंगों में क्षेत्रीय वैमनस्य उपजाने की सफल कोशिश की। यहीं से 'कुमाउँनी'–'गढ़वाली' के सामन्ती सोच को और भी फैलने का मौका मिला। यद्यपि कुमाऊँ–गढ़वाल के सामाजिक स्तरण में कहीं कुछ भी कोई फर्क नहीं है। प्रतिद्वन्दिता के ये बीज और क्षेत्रीयता की संकीर्ण भावना तब से निरंतर फल–फूल रही है, जिसे निरंतर हरा करते रहने का श्रेय हमारे तब से लेकर अब तक के राजनीतिज्ञों को जाता है।

दुनियां के किसी भी देश की तरह (इन देशों में हम आज के साम्यवादी देशों को भी गिन रहे हैं) हिन्दुस्तान में और इसके एक हिस्से उत्तराखंड में भी दो वर्ग थे और हैं। हिन्दुस्तान का समाज दुनियाँ के अन्य समाजों से इस बात में कुछ भिन्न है कि इसमें वर्ग के साथ वर्ण भी हैं (वैसे दुनिया के अनेक हिस्सों में काले-गोरे का, कैथौलिक-प्रोटेस्टैन्ट का, मुस्लिम-ईसाई का, यहूदी-गैर यहूदी का संघर्ष हैं) और उत्तराखंड का समाज इनसे इस मामले में कुछ भिन्न है कि यहां वर्ण के भीतर 'धड़े' (सामाजिक घटक) मौजूद हैं (जो शेष हिन्दुस्तानी समाज में इतने भागों, उपभागों तक नहीं पहुचे हैं।) इस प्रकार यहाँ के समाज के दो वर्गो के भीतर चार वर्ण हैं और इन चार वर्णों के भीतर दर्जनों धड़े हैं और ये इतने अन्तर्सम्बन्धित हैं कि इनको अनेक स्थानों पर अलग अलग कर पाना कठिन होता है।

धड़ों और वर्णों के छोटे झगड़े आम जनता को अपनी वर्गगत स्थिति नहीं समझने देते रहे। इसीलिए इन वर्णों या इनके भीतर के धड़ों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुझान अपनी तरह के वर्णों या धड़ों (लगभग एक ही वर्ग) के टुकड़ों की तरफ न हो कर अपने ही वर्ण या तथाकथित श्रेष्ठ वर्ण के उस पक्ष की ओर अधिक होता है, जो मूलतः उनका शोषण करते हैं और उनके प्रतिद्वन्द्वी वर्ग के प्रतिनिधि होते हैं। यही कारण है कि उत्तराखंड में वर्गीय सोच आज तक पैनापन नहीं पा सका है।

क—३

इस सामाजिक स्तरण के, जो बाद के वर्षों में ग्रामीण और नगरीय उत्तराखंड में अल्प भिन्नता पा सका, जारी रहते हुये यहां के समाज विन्यास में कुछेक महत्वपूर्ण परिवर्तन पिछली सदी से शुरू हुये। थारू, बुक्सा तथा वनरावत ये तीन ऐसी जन जातियाँ है, जो अपने को यहाँ की मूल सामाजिक-सांस्कृतिक धारा से नहीं मिला पायी या सामाजिक-राजनैतिक नियन्ताओं ने उन्हें इस धारा में शामिल नहीं होने दिया। पर विभाजन के समय पंजाब और बंगाल से आये विभाजन की वास्तविक त्रासदी को भोगे हुये लोगों को तराई में एक नये उत्तराखंड की शुरुआत करने का अवसर मिला। ऐतिहासिक दबाव के कारण इनका यहां आना संभव हुआ। पर इनके आने के तुरन्त बाद ही यहां र राजनैतिक षडयंत्र शुरू हुये, जिनमें विभाजन की त्रासदी को इस तरह भुनाया गया कि उत्तराखंड का आंगन तराई आबाद होने पर भी कोई ऐसी सांस्कृतिक इकाई नहीं बन सकी जो शेष पहाड़ की पूरक हो। इस तरह यह तराई इस दुर्लभ मौके पर भी शेष पहाड़ से नहीं जुड़ सकी और दूसरी ओर पंजाब और बंगाल की स्थानीय संस्कृतियों के असली हिस्सों से वंचित रही। आजाद भारत की शुरुआत के समय से ही तराई-उत्तराखंड में आदमी को विभाजित करने का वही खेल खेला गया जो पहाड़ी उत्तराखंड में पहले के नियन्ताओं से आज तक खेला जाता रहा था।

यहीं पर यह बात भी सामने आती है कि इन नवागंतुकों का एक हिस्सा अभी तक अपने को यहां नहीं जमा पा रहा है। इसी के परिणाम स्वरूप "व्यापारिक यायावरी" शुरू हुयी। इस यायावरी में पंजाब बंगाल से आया आदमी नव धनाढ्य तो बन गया या बनने की कोशिश में है पर सांस्कृतिक स्तर पर वह अपने मूल से तो कट ही गया, यहां के जीवन से भी अपने को नही जोड़ सका। इसके विपरीत इसी तराई में विभाजन के नाम पर विभाजन की त्रासदी न भोगे हुये जो लोग आये उन्होंने तराई के सामाजिक तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जमीनी संतुलन को गड़बड़ा दिया, जिससे एक ओर भूमिहीनों की संख्या बढ़ती गयी और दूसरी ओर हजारों एकड़ों वाले फार्मरों की। "तराई की जमीन और आदमी के रिश्ते की इस असामान्यता ने तराई में वर्णगत भावना के स्थान पर वर्गीय चेतना को अपेक्षाकृत स्पष्ट किया है।"

यद्यपि जमीन का यह असंतुलन ऊपरी उत्तराखण्ड में भी था, यहां ब्राह्मण, राजपूत-थोकदारों के बड़े बड़े गांव, सेरे, बगीचे, चाय बागान और स्टेटें थीं। कुछ आज भी मौजूद हैं। पर यहां भी छोटे-छोटे खेतों और मडुवे-मादिरे की फसलों वाली भौगोलिक स्थिति तराई की धान, गेहूं तथा गन्नेदार स्थिति से भिन्न थी। इसीलिए जमीन ने ऊपरी-उत्तराखण्ड में आदमी को वह उत्तेजना नहीं दी, जो कि तराई ने दी।

"तराई में आये हुये बड़े फार्मरों और ऊपरी उत्तराखंड के ब्राह्मण/राजपूत श्रेष्ठियों में कहीं न कहीं एक समानता थी। इसी तरह तराई के भूमिहीनों या कम जमीन वालों तथा ऊपरी उत्तराखण्ड के इसी तरह के लोगों में एक समानता थी पर इस बार प्रजातांत्रिक राजनीति ने उन्हें इस एकता को महसूस न होने देने के लिये उत्तराखण्ड की छवि को सिर्फ 'पहाड़ों' तक सीमित करने की और तराई-उत्तराखण्ड को 'मैदान' कह कर काटने की कोशिश की।"

ख

उत्तराखण्ड की संस्कृति तरह-तरह की नयी पुरानी स्थानीय संस्कृतियों का जोड़ है। यही कारण है कि इस संस्कृति का एक कोना आदम समाज से जुड़ा है तो दूसरा कोना उन समाजों से, जो समय समय पर ऐतिहासिक कारणों से यहां आते रहे। "उत्तराखण्ड की आज की संस्कृति में कम से कम भोट, नैपाली, हिमाचली, जौनसार-भाबरी, तराई (पंजाबी, बंगाली तथा पूर्बियों की), मूल जातियों (शिल्पकारों) की, मध्य तथा आधुनिक कालीन आगन्तुकों (ब्राह्मण, राजपूत तथा अंग्रेजों) की, और थारू, बुक्सा तथा बनरौतों की संस्कृतियां जी रही हैं। इसमें एक ओर लोक जीवन की तरह तरह की परम्पराएं, गीत, संगीत, नृत्य और विविध उत्सव हैं तो दूसरी ओर पूरे उत्तराखण्ड में फैले नौले, मूर्तियां और मन्दिर हैं। एक ओर 'अजुवा बफौल, पुरुख पंत और कफू चौहान' की वीर गाथाएं हैं तो दूसरी ओर प्रेममय 'मालूशाही' है, 'मोलाराम' के चित्र हैं और गुमानी की कविताएं हैं, एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर 'बेगार, हुड़किया बौल' और 'हिल जात्रा' है तो दूसरी 'ओर जमीन को न छूने वाला मालिक' और सिर्फ 'दमन' तथा लूट 'करने वाले नियन्ता हैं। बाहर से एक फ्रेम के अन्दर होने के बावजूद भी इनकी अपनी मौलिकताओं में भिन्नता हैं और विशिष्ठता भी।

'इन में कुछ संस्कृतियाँ (ग्रामीण शिल्पकार, खस-राजपूत, थारू-बुक्सा बनरौत, भोट) अपनी तमाम वाचालताओं के बावजूद मौन प्रवृत्ति की हैं जब कि कुछ और संस्कृतियां (ब्राह्मण, राजपूत, तराई आदि) अपनी तमाम दिखावटी चुप्पी के बावजूद वाचाल हैं। वाचाल संस्कृतियां राजनैतिक और आर्थिक पक्षों में मजबूत हैं पर भीतर से खाली और बीमार। इसीलिए इस बकवासी संस्कृति के भीतर जो भी सोच वाला आदमी आया उसे इस अंचल की असली साँस्कृतिक जड़ें तलाशने के लिए इस मौन संस्कृति की ओर दौड़ना पड़ा या इसे अपने पास लाना पड़ा। इस मौन संस्कृति के बोलते चेहरे हम मणकोट-गढ़ी चंपावत से श्रीनगर-टिहरी तक, जागेश्वर से केदारनाथ तक, एक हथिये के नौले से मलेथा की गूल तक, अल्मोड़े के छज्जों से रवांई के भंडारों तक, भोट के रङ-वंङ से जौनसार के माघ मिलन तक, गुमदेव (माली-कुमाऊं), पुरौला (उत्तरकाशी) के डोकों से चोप्ता (चमोली) की घोघियों तक, दानपुर की चांचरी से जौनसार के थाली नांच तक, और भी न जाने कितनी कितनी चीजों के साथ कौसानी के रमौलिया गोपीदास से गढ़वाल के जितुवा भंडारी तक देख सुन, पहचान सकते हैं।

यद्यपि यह मौन संस्कृति जब–जब वाचाल संस्कृति वालों द्वारा खोजी और ले जाई गयी, उसका कुछ हिस्सा अपने मूल में ही छूट गया क्योंकि उसका वहां से पूरी तरह ट्रांसपोर्ट हो सकना असंभव था। जैसे दानपुर की चांचरी या सोर की न्यौली का कुछ उपरी सांगीतिक अंश तो बाहर ले जाया जा सकता है या टीपा जा सकता हैं पर वहां आदमी और पहाड़ का मंचीय परिवेश साथ में न्यौली का 'भौगोलिक सुर' नहीं ले जाया जा सकता। रवांई-जौनसार या भोट की 'मैलोडीज' तो आकाशवाणियां भी गा सकती हैं पर चकती घुला इन गीतों का सम्पूर्ण व्यक्तित्व टेपों के अन्दर अटा ही नहीं सकता।

हर संस्कृति के कुछ हिस्से तात्कालिक और कुछ शाश्वत हुआ करते हैं। आदमी के आगे बढ़ते रहने में संस्कृति एक धारक होती है और परिणाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी, और यह ग्रादमी के ग्रागे बढ़ते रहने की यानी ग्रादमी के ग्रादमी होने की या बने रहने की कोशिश को त्वरा देती है। इस प्रक्रिया में संस्कृति के कुछ हिस्सों को मरना खपना पड़ता है तो कुछ नये हिस्सों की रचना भी होती है। संस्कृति जब ग्रपने एक हिस्से को, दूसरे ग्रधिक महत्वपूर्ण हिस्से को जिन्दा रखने के लिए समर्पित करती है तो ग्रादमी को इसकी पहचान होनी जरूरी है ताकि वह इस जरूरी हिस्से को संजोये रखे और ग्रपनी ग्रादमी होने की कोशिश में इसका इस्तेमाल करे। पर ग्राज के उत्तराखंड में शायद इसे नहीं समझा गया है। इसीलिए यहां के नगरों-कस्बों तक एक नकली-नकलची संस्कृति ग्रा कर जम गई है, जो धीरे-धीरे दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों की ग्रोर बढ़ती जा रही हैं। दूसरी ग्रोर इसी ग्रनुपात में यहां की लोक-संस्कृति का क्षय हो रहा है।

ग्रगर बारीकियों में जाया जाय तो पता चलता है कि मिट्टी की पाल, पत्थर की छत की जगह लोहा-लिन्टर, गाय-भैंस के दूध की जगह लैक्टोजन, स्थानीय पेयों की जगह सुरा, लांल बणपास, सफेद जमाली, दूधिया धान, कौणी, मडुवा, मादिरा, जुनल, गेहूं, जौ की जगह सड़ा परदेशी ग्रनाज, गुड़गुड़दार भासी, तमाखू की जगह 'कैंचीमार,' १० नंबरी सिगरेटें, लोक गीतों की जगह सिनेमा गीत, हुड़का, दमुवा, नङारा की जगह ढोलक, मजीरे, खड़ताल और चिमटी और हारमोनी (यद्यपि मसकबीन और हारमोनी से हमारा रिश्ता नया नही है, पर ग्रब इनके पहाड़ी सुरों में इस्तेमाल होने वाले 'सर-गम' भटकने लगे है) ग्रा गये हैं। उधर हल्दी नहाया पुवे दालभात दार जनमवार ग्रब मोमबत्ती बुझाने लगा है और ढोल, तूतूरी और मसकबीनी छलियेदार बारातें ग्रब ट्विस्ट और बैण्डवाली, पहाड़ में न जी जा सकने वाली धुनों पर नाचने लगी हैं। व्यापक रूप से ये दुष्प्रभाव ग्राज हमारे सभी सामाजिक संस्कारों में देखे जा सकते हैं।

लोक संस्कृति के निरन्तर क्षय होते रहने के ग्रनेक कारणों में पहला : यहां की ग्रार्थिक विवशता है, जिसने पहाड़ की संस्कृति को समझने वाले लोगों का ही नहीं, वरन् पहाड़ की युवा पीढ़ी का भी पहाड़ निकाला संभव कराया। दूसरा : लोक संस्कृति को ग्रपने लिए सीढ़ी के रूप में इस्तेमाल कर व्यापक स्तर पर भुनाने से जुड़ी है। तीसरा : ग्राजादी के बाद हिन्दुस्तान की प्रतिकूल जलवायु-यानी ग्रनियोजित राजनीति, ग्रर्थव्यवस्था और योजना विकास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीति-रही। और चार : इस सब की जड़ पर विविध राजनैतिक दल, उनके दिल्ली लखनऊ के नेता और स्थानीय 'चुटकुलों' की कभी न ढकी जा सकने वाली दृष्टिहीनता थी।

ख-२

उत्तराखंडीय संस्कृति का अगला हिस्सा उसके अखबारों, साहित्य और कला से जुड़ा है। मतदान और आंदोलनों से इतर जनता की एक और आवाज होती है और यह आवाज तत्काल अखबारों के माध्यम से और कुछ अर्से बाद साहित्य कला से प्रकट होती है।

उत्तराखंड में एक बर्तानवी लाट और पहाड़ी अफसर बुद्धि बल्लभ पंत के सहयोग से १८७१ में हिन्दी के सबसे पुराने पत्रों में एक-'अल्मोड़ा अखबार'-चला। इसकी ४७ साल की जिन्दगी के चार दशक औपनिवेशिक शासन के सहयोगी के रूप में बीते और अंतिम हिस्सा सक्रिय रहा, जिसमें इस अखबार को बंद होना पड़ा। अल्मोड़ा अखबार के अंतिम संपादक बदरीदत्त पाण्डे ने १९१८ में जनता के सहयोग से 'शक्ति' का संपादन-प्रकाशन शुरू किया। उधर देहरादून से १९०५ में गिरजादत्त नैथाणी, विश्वंभर दत्त चंदोला आदि के संपादकत्व में 'गढ़वाली' निकला। १९३० में अल्मोड़े से मोहन जोशी ने 'स्वाधीन प्रजा' निकाली, जिसे जल्दी बंद होना पड़ा, पुनः जिसे कृष्णानंद शास्त्री ने जीवित किया। १९३९ में श्रीदेव सुमन भैरवदत्त धूलिया, भक्तदर्शन, ललिता प्रसाद नैथाणी आदि ने 'कर्मभूमि' निकाली। (१९०० के बाद उत्तराखंड से और भी कितने ही अखबार निकले जिनमें से कुछ जनपक्षी और अधिकांश तटस्थ या औपनिवेशिक शासन के समर्थक थे)। इन महत्व पूर्ण अखबारों में शक्ति (अल्मोड़ा) और कर्मभूमि (कोटद्वार) अब भी निकलते हैं।

आजादी से पहले अखबार एक मिशन की तरह चलाये गये थे और इन्होंने बड़ी सीमा तक नेतृत्व और जनता के बीच पुल का कार्य किया था। तब अखबारों के सामने जनता या औपनिवेशिक नियन्ताओं में से किसी एक का प्रवक्ता होने का विकल्प था। यह बात महत्व की है कि अल्मोड़ा अखबार, शक्ति, स्वाधीन प्रजा, गढ़वाली आदि से हजारों की जमानतें मांगी गई और अनेक बार अखबारों-संपादकों को बंद होना पड़ा। गढ़वाली पर तो टिहरी स्टेट के दीवान ने मुकदमा किया पर विश्वम्भर दत्त चंदोला ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिहरी से खबर भेजने वाले का नाम नहीं बताया। दो साल जेल भुगत कर भी वे फिर 'गढ़वाली' को जिन्दा नहीं रख सके। दूसरी महत्व की बात यह है कि इन अखबारों के संपादक मूलत: आजादी की लड़ाई के योद्धा थे, आजादी की लड़ाई के अलग-अलग पक्षों को मिलाकर यदि कभी समग्र चित्र बनाने की कोशिश होगी यो ये अखबार बहुत कुछ कहेंगे।

आजादी के बाद अखबार जनता के स्वरों से दुकानदारी में बदल गये। लंबे समय तक पहाड़ के अधिकांश अखबार कांग्रेसी बने रहे। आपातकाल में कदाचित् द्रोणांचल प्रहरी सहित कुछ अखबारों को छोड़कर कोई और खतरनाक नहीं माने गये। पहाड़ से आज १०० के करीब अखबार निकलते हैं, जिनमें से पहाड़ का प्रतिनिधि अखबार कोई नहीं बन पाया है। यह सच है कि किसी भी अखबार को जिन्दा रहने के लिए विज्ञापन और पाठक यानी सरकार और जनता से ठीक ठाक सम्बन्ध रखने पड़ते हैं पर जनता की ओर पीठ किये अधिकांश अखबार ऐसे हैं जिनमें स्थानीय अफसरों के वक्तव्य या उनके आने जाने की बात, बड़े लोगों के शादी-विवाह की खबर, हैड़ाखान बाबा वर्णन, स्टार पेपर मिल के पर्वतीय क्षेत्र में उपकार या दिल्ली-लखनऊ की बड़ी-बड़ी खबरें होती हैं। किसी भी अखबार के पास 'समाचार स्थलो' तक जाने वाले प्रतिनिधि नहीं हैं। अनुपस्थित संवाददाता न सिर्फ स्थानीय अखबारों के पास हैं बल्कि संवाद समितियों या आकाशवाणी के प्रतिनिधि भी इसी 'केरी' के हैं।

नेताओं के वक्तव्यों को सर्वाधिक महत्व का मानना और अपनी डैस्क पर तवाघाट (भू-स्खलन) नैनीताल (अग्निकांड), पंतनगर (गोलीकांड), सोमेश्वर-उत्तरकाशी (बाढ़) की खबरों की रचना कर अखबारी कर्तव्य पूरा करना जितना सरल और रिस्कहीन है उतना ही जन विरोधी भी। अनेक-अनेक अखबार विज्ञापन ठगते हैं, कुछ तो विज्ञापन छापने के हीं लिए निकलते हैं, चाहे स्टार पेपर मिल से ठगे या पहाड़ विरोधी, सोचहीन जनप्रतिनिधियों की वकालत करके सरकार से। जो दैनिक निकलते हैं उनमें से कुछेक तो अखबारों के नाम पर पहाड़ की जनता के साथ सरासर गद्दारी हैं और कुछ अपनी जड़ से ही जन विरोधी और समाज की विविध धाराओ में अपना वर्चस्व स्थापित करने के आकांक्षी हैं। दिल्ली, बरेली और लखनऊ के, पहाड़ की आधी-अधूरी खबरें देने वाले दैनिक शायद इसीलिए पहाड़ को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरी तरह कब्जे में किये हैं। सूचना या वन विभाग की जीपों में खबर-स्थलों तक जाने वाले पत्रकार हर बखत यह भूल जाते हैं कि अखबार के अपने हाथ पांव, आंखें और दिमाग होने चाहिए।

ख—३

अखबारों की तरह पत्रकार भी है। इधर (कुमाऊँ) और उधर (गढ़वाल) के उत्तराखंड में एक फर्क इस स्तर पर जरूर है कि कुमाऊं में सामान्यतया पत्रकारिता उनके हाथ में है जो किसी दल में हैं या किसी नेता के स्थानीय एजेन्ट हैं या सरकारी नौकरी पेशा हैं या पत्रकारिता को 'आमद' और 'मनोरंजन' (जैसे-नैनीताल की झील में 'विनाशकारी पौधे' के उगने या आकाश से सांपों के बरसने की खबरें रचना) के रूप में लेने वाले हैं। गढ़वाल में अनेक सामाजिक कार्यकर्ता पत्रकार भी हैं, जिससे अनेक बार पहाड़ की कुछ सही खबरें या समस्याए अखबारों में जा पाती हैं। वैसे पहाड़ के अधिकांश पत्रकार सरकार विरोधी या सही खबरें न भेजने के लिए मशहूर हैं। इन्हीं कारणों से न पहाड़ की सही और पूरी खबरें राष्ट्रीय अखबारों में आ पाति हैं और न आज तक कोई ऐसा दैनिक या साप्ताहिक ही यहां उभर सका है, जिसकी आकांक्षा पहाड़ का सही चित्र पेश करने की हो।

कस्बों/शहरों में पसरकर सुनी-सुनाई बातों को खबरबद्ध करने वाले पत्रकार भाई यह याद नहीं रखते कि पत्रकार होना कोई छोटी और गैर-जोखिमी बात नहीं हैं। किसी भी घटना को भुना लेना बड़ा आसान होता है पर उसे सही ढंग से प्रस्तुत और विश्लेषित करना और भी जरूरी काम है जिसके लिये सरकारी जीपें नहीं अपनी 'आंख' चाहिए। अगस्त ७७ की तवाघाट दुर्घटना से जौलाय ७८ की कोशी-गोमती की बाढ़ों तक भी अधूरी और अविश्लेषित खबरें जरूर छपी पर इन घटनाओं के पीछे की कहानीं न किसी ने तलाशी और शायद इन्हें इसकी जरूरत भी नहीं थी क्योंकि इन्हें घटनाओं को भुनाना मात्र था।

अखबारों और पत्रकारों की ठगपंची को अब पहाड़ की जनता समझने लगी हैं। आजादी की लड़ाई के दिनों या उसके बाद भी स्थानीय अखबारों का जो इन्तजार हुआ करता था या जो आज भी होना चाहिए, वह अब नहीं है। इस प्रक्रिया की परिणति कुछ अखबारों के जनोन्मुखी होने में या कुछ कुछ इसी तरह के अखबारों के जन्म में हो रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख—४

उत्तराखंड ने साहित्यकारों का एक लम्बा सिलसिला दिया है, 'खड़ी हिन्दी' के तथाकथित प्रथम कवि गुमानी से छायावाद की एक "थूमी' सुमित्रा नंदन पंत तक, उपन्यासकार इलाचंद्र जोशी से नाटककार गोबिन्द बल्लभ पंत तक, हिन्दी के प्रथम डाक्टर पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल से भाषा विज्ञानी हेम चन्द्र जोशी तक यह सिलसिला इतना लंबा है कि हम इन्हें गिनाना नहीं चाहते हैं। इनके माध्यम से संभव हो कहीं पहाड़ व्यक्त हो पड़ा हो, परं यह नहीं कहा जा सकता है कि इनके साहित्य में पहाड़ का रंग, गंध और स्वाद मौजूद है। यह जरूरी भी नहीं है पर इससे प्रमाणित होता है कि ये पहाड़ को कागज पर नहीं उतार सके, या इन्होंने यह नहीं चाहा, या ये असली पहाड़ को नहीं जानते थे। पहाड़ी जीवन संघर्ष के स्थान पर यहाँ के 'अभिजात्यों' और 'भावनात्मक पक्षों' को उजागर करने वाले ये साहित्यकार दरअसल उसी वर्ग से उभरे थे जिन्होंने निरन्तर पहाड़ को तोड़ने में अहम भूमिका निभाई थी। हम यह नहीं कह रहे हैं कि इस वर्ग से असली पहाड़ को प्रस्तुत करने वाले साहित्यकार नहीं उपज सकते हैं पर आज तक ऐसा नहीं हुआ है। यहीं पर एक प्रश्न उठता हैं कि क्यों नहीं उत्तराखंड शिल्पकारों और दलित तबके से आज तक कोई स्मरणीय कवि-कथाकार उभरा? कुछ लोग उत्तर देंगे कि उनमें शिक्षा (और संवेदना) का अभाव होता है। पर ये कभी नहीं मानना चाहेंगे कि दलित तबके को शिक्षा और नयी चेतना से वंचित करने का काम भी तो इन्हीं बड़े लोगों ने किया और जहां तक संवेदना का सवाल है वह कागज पर लिखने वाले से गाने, बजाने और नाचने वालों के पास प्रामाणिक रूप से ज्यादा होती है।

इसी तरह पहाड़ के इतिहास, संस्कृति, समाज, राजनीति, लोक साहित्य या अर्थव्यवस्था अथवा भाषा (इन विषयों पर वैसे ही कम लिखा गया है और जितना लिखा गया है उसके रचनाकार श्रेष्ठी-वर्ग से ही सदा रहे हैं) पर लेखन का हाल रहा। विशेष रूप से उत्तराखंड के इतिहास और संस्कृति पर आधी-अधूरी और बकवास किताबों का लिखना-छपना जारी है। इन में रतूड़ी, पातेराम से बदरी दत्त पाण्डे और राहुल (जी हां, राहुल की सबसे कमजोर किताबों में 'कुमाऊं' और 'गढ़वाल' हैं) तक की किताबें शामिल हैं। हाल में लिखी-छपी कुछ किताबें तो इतनी 'हवाई' और 'पुराने-दोहराव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाली हैं कि उनके नाम गिनाना यहां ठीक नहीं होगा। इनमें से कितने ही आज तक 'अठ-किन्सनवाद' से मुक्त नहीं हुये हैं। कुमाऊं और गढ़वाल विश्वविद्यालयों के बनने के बाद तो यह प्रक्रिया धन बटोरने के लिये चलने लगी हैं।

इस सबके बावजूद कुछ ऐसे भी हैं जो यहां की जमीन पर जीते हैं, जिनके साहित्य या कला में पहाड़ का असली चेहरा रंग पाता है (चाहे 'गौर्दा हों या शेरदा', शैलेश, जगूड़ी हों या शेखर जोशी और 'पहाड़ी' अथवा दीवानसिंह कुमैय्या या मोहन उप्रेती), जो यहां के पुरातात्विक, लोक ऐतिहासिक, भाषा शास्त्रीय, सामाजिक राजनैतिक व्यक्तित्व को सही परिप्रेक्ष्य में या अपेक्षाकृत सही परिप्रेक्ष्य में समझते हैं या समझने की कोशिश करते हैं, यहां की संस्कृति या अर्थव्यवस्था की विविधता और अन्तर्विरोधों की जानकारी रखते हैं या इन्हें खोजते हैं (इनमें शिव प्रसाद डबराल, के० पी० नौटियाल, ताराचन्द्र त्रिपाठी, त्रिलोचन पाण्डेय, प्रयाग जोशी, गोविन्द चातक, पी० सी० जोशी, शूरवीरसिंह पंवार, नित्यानन्द मिश्र, रमेश तिवारी के अलावा हम अन्य नाम नहीं गिनना चाहते हैं क्योंकि इनका मूल्यांकन दरअसल हम नहीं, आने वाला जमाना करेगा)।

ख-५

ह्वेनसांग का पश्चिमी उत्तराखंड में आना प्रमाणित है। शंकराचार्य और गुरु नानक के यहां आने की बात भी कही जाती है। विवेकानन्द से दयानन्द से, रामतीर्थ से, गोविन्दलामा और मियानेव से, रवीन्द्रनाथ से, ब्रूस्टर से उदशंकर तक कितने ही लोग यहां आये। इनके पहाड़ आने के पीछे पहाड़ को बदलने-संवारने का लक्ष्य न था, न हो सकता था। ये लोग शुद्ध यायावारी करने, एकान्त की खोज में, कविता लिखने, चित्र बनाने, नृत्य रचने, अध्यात्म में डूबने या अपने उपदेश प्रचारित करने यहां आये थे। फिर इनका यहां आना उत्तराखंड के अद्भुत आकर्षक व्यक्तित्व को उजागर करता है। इनमें से कुछ ने सांस्कृतिक हलचलें भी करीं, पर वे जिन्दा नहीं रह सकीं। उदय शंकर द्वारा अल्मोड़े में भारतीय कला केन्द्र की स्थापना चौथे दशक के अंत की महत्वपूर्ण घटना थी, पर यह घटना अल्पजीवी रही (यह भी विचित्र बात है कि जब देश आजादी के लिये कुलबुला रहा था तो उदय शंकर यहां नृत्य केन्द्र बनाने और रवीन्द्र विश्राम करने, कविता या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र रचने आये बाताये जाते हैं)। इसी हलचल में जीवन चन्द्र जोशी द्वारा 'अचल' प्रकाशन की हलचल जुड़ी है जो पहला कुमाऊंनी पत्र था पर अल्पजीवी रहा।

आजादी के बाद उत्तराखंड में कलाकारों का पहला जनमुखी संगठन लोक कलाकार संघ था, जो कला के पीछे वैचारिक आधार भी लिये हुये था। अपनी तमाम सक्रियताओं के बावजूद वैचारिक कारणों से ही इस संगठन को ठप्प होना पड़ा। पर आज भी इस संगठन के सदस्य अलग-अलग ही सही, अपने पुराने रचनात्मक रास्ते में ही चलने की कोशिश कर रहे हैं। आजादी के बाद इस तरह के संगठन बने भी थे पर जब से सरकार ने ग्राम सेवकों, सेविकाओं, युवक मंगल दलों, नेहरू युवक केन्द्रों या पीपुल्स कालेज का जाल पहाड़ में बिछाया इस तरह के संगठनों की संभावनाएं कम हो गयी। फिरभी कुछ लोग या छोटे-छोटे सांस्कृतिक समूह कुमाऊंनी या गढ़वाली पत्रों को निकालने का, मंचीय काम करने का उद्यम कर रहे हैं। यह बात याद रखने की है, जिस अंचल (या देश) जमें ७०% लोग अनपढ़ हैं वहां पत्रकारों, साहित्यकारों की अपेक्षा रंग कर्मियों की भूमिका अधिक असरदार हो सकती है।

पहाड़ से बाहर भी एक पहाड़ है और वह है प्रवासियों का पहाड़। पहाड़-निकाले की त्रासदी भोगने वाला प्रवासी नराई का धारावाहिक शिकार होता है। उसे प्रवास में पहाड़ को तुलनात्मक कदमों में जानने का मौका मिलता है। हिन्दुस्तान के अनेक छोटे-नगरों में हजारों प्रवासी और उनके दर्जनों संगठन हैं। कुछ संगठन तो पहाड़ से बाहर होने पर भी 'इलाकाई' ही रूप लिये हुये हैं। इनके मन पर पहाड़ की कार्रवाहियों का बड़ा असर होता है। अपनी संस्थाओं द्वारा वे कुछ 'मदद' करने की या कुछ 'सांस्कृतिक हलचलें' करने की कोशिश करते हैं पर इसका पहाड़ पर बड़ा असर नहीं होता है। दरअसल प्रवासी समुदाय पहाड़ में बदलाव के किसी व्यापक अभियान में हिस्सेदारी करने की स्थिति में नहीं है। फिर भी यदि कभी इस तरह का अभियान पहाड़ में चलेगा तो प्रवासियों के सहारे से इस अभियान को त्वरा मिलेगी और अपने पहाड़ को निर्मित करने में प्रवासी संगठन अपनी 'परदेशी स्थानीयता' छोड़ देंगे। प्रवास में भी अधिकांश लोगों ने अपना पहाड़ीपन बरकरार रखकर उत्तराखंडीय संस्कृति को ताकत दी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख-६

शिक्षा की हालत पूरे देश में एक सी है। उत्तराखंड में हजारों प्राइमरी, सैकड़ों हाईस्कूल-इण्टर कालेज और दर्जनों डिग्री कालेज हैं। तीन विश्व-विद्यालय हैं। पंतनगर वि०वि० मूलतः कृषि-प्रौद्योगिक वि०वि० है पर इसका पहाड़ से और छोटे काश्तकार से अन्तरंग रिश्ता नहीं है। अपने महत्वपूर्ण कृषिशोधों के बावजूद इसने 'विचारों की फसल' इलाके को नहीं दी हैं। कुमाऊं और गढ़वाल वि०वि० जन-आकांक्षाओं और घोषणाओं के बावजूद आगरा वि०वि० के स्थानीय रूप ही बन गये हैं। इनके कुछ विभागों में जरूर सक्रियता है, पर सामान्यतया ये वि० वि० मात्र इम्तहान ठीक से ले लेते हैं और पंतनगर वि०वि० गोलीकांड के बावजूद अच्छी फसल पैदा करता है। पर सिर्फ ये किसी क्षेत्रीय वि० वि० के लक्ष्य नहीं हो सकते है। इन्हीं अन्तर्विरोधों के कारण इनका रिस्ता पहाड़ से प्रगाढ़ नहीं हो पा रहा है। ये वि० वि० उत्तराखंड के सांस्कृतिक केन्द्र बन सकते थे पर ऊपर से लेकर नीचे तक जो लोग इन वि० वि० को चला रहे हैं उनमें इस तरह का 'सोच' नहीं है, जो वि०वि० को पहाड़ से जुड़ने को, पूरे उत्तराखंड को अपना कार्यक्षेत्र बनाने और जिन्दगी के महत्वपूर्ण वर्षो को नष्ट करने वाली शिक्षा के स्थान पर हाथों और दिमाग दोनों का इस्तेमाल करने वाली शिक्षा प्रणाली (धीरे-धीरे ही सही) लाने को प्रेरित कर सके।

ग

हिन्दुस्तानी राजनीति का हिस्सा होने के बावजूद उत्तराखंड की राजनीति का स्थानीय दृश्य कुछ भिन्न हैं। एक खास वर्ग प्रारम्भ से यहां की राजनीति चलाता रहा। इतिहास से गुजर कर यदि इस संदर्भ में वर्तमान राजनीति पर आया जाय तो पता चलता है कि जिन लोगों ने चंद -परमार शासकों के जमाने में व्यवस्था का संचालन किया उन्हीं लोगों (चाहे गुटों के हिसाब से वे एक दूसरे के प्रतिपक्षी रहे हैं) ने 'गोरख्याणी' में भी राज सुख प्राप्त किया। आजादी की लड़ाई की सुगबुगाहट के उत्तराखंड में पहुंचने पर इन्हीं में से कुछ लोग बाकायदा सी. आई. ई., राय साहब बने रहे या उस जमाने की कम खतरे की अधिक रौबदार नौकरशाही की ऐश भोगते रहे। इससे बड़ी बात यह है कि बर्तानवी व्यवस्था में नौकरशाही निबाहने वाले रिटायर्ड लोग सामान्य 'परोपकारों' से ऊपर राजनीति में भी आने लगे और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजाद भारत में उत्तराखंड के नेतृत्व में अधिकांश वे ही लोग आये जो आजादी की लड़ाई भाग लेने के बावजूद परम्परा से शोषक थे।

आजादी से पहले और बाद की राजनीति में बड़ा फर्क था। उत्तराखंड से आजादी के अनेक योद्धा ऐसे थे जो अपनी पृष्ठभूमि में यथास्थितिवादी थे पर परिस्थितियों ने उन्हें सक्रिय, ईमानदार और परिवर्तनकारी मन (आजादी प्राप्ति के संदर्भ में ही) का बना डाला था। आजादी की लड़ाई के समय एक साफ लक्ष्य था आजादी प्राप्त करना। इसलिए अनेक बार वर्ग-वर्ण धड़ों के झगड़े उभार नहीं पा सके। पहाड़ सामान्य-तया उस समय ब्राह्मण नेतृत्व के अन्तर्गत था, पर ये नेतृत्व वाले अपने सोच में सम्पूर्ण ब्राह्मण न थे। बर्तानवी शासकों ने राजपूतों और शिल्पकारों के भीतर भी अपनी पसंद के ब्राह्मण पैदा करने की कोशिश की, उनकी प्रतिभा का उपयोग किया और उन्हें खूब सम्मान भी दिया। उत्तराखंड को आजादी की लड़ाई के समय बदरीदत्त पाण्डे, अनुसूयाप्रसाद बहुगुणा, गोबिन्दवल्लभ पंत, हरगोविन्द पंत, मुकुन्दीलाल आदि से भिन्न देवीदत्त पंत, मोहन जोशी, हर्ष देव ओली, रामसिंह धौनी, चंद्रसिंह गढ़वाली और श्रीदेव सुमन जैसे योद्धाओं को पाने का अवसर भी मिला। असहयोग के आन्दोलन समय बागेश्वर में बेगार उन्मूलन और १९४२ में सालम और सल्ट के विद्रोह कभी भी धूमिल न होने वाली घटनाएं हैं। पर आजादी के बाद नेतृत्व की यह आक्रामकता बची नहीं रह सकी। चुनाव और पदों की राजनीति ने नेताओं को अपने और परिवार-रिश्तेदारों से इतर आम आदमी के बारे में सोचने की न फुर्सत दी और न वे इसकी जरूरत ही महसूसते थे। आजादी के बाद जितने राजनैतिक दल उग आये उनसे ज्यादे गुटबंदी की टहनियाँ फूट गयी। नेता विचार नहीं, सुविधानुसार दल-राजनीति में घुसने लगे। इस तरह एम.पी., एम. एल.ए., एम. एल. सी., ब्लौक प्रमुख, जिला परिषद अध्यक्ष, सभापति आदि बन जाने की प्रक्रिया तो अधिक दिक्कत वाली नहीं रही। साथ ही अपने पदों का निरन्तर दुरुपयोग करते रहने पर इन्होंने प्रारम्भिक दिनों में अपना विरोध नहीं देखा, विचार के स्तर पर शून्य कुछ नेता आज तक पहाड़ को खाते और बेचते रहे हैं। इस तरह प्रत्यक्ष राजनीति में जनता के सामने बुरे और भ्रष्ट प्रतिनिधियों (अधिकाँश मामले ऐसे ही थे) में से किसी एक को चुनने का विकल्प था।

प्रारम्भ में स्थानीय जन-आक्रोश की मुखर अभिव्यक्ति न हो सकने के कारण कुछ नेताओं को इस तरह की संस्थाओं और व्यक्तियों से संपर्क और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'शुभ लाभ' करने का मौका मिला, जो उत्तराखंड की संपदा का शोषण करने का लम्बा अभियान जारी करने वाले थे। सरल पहाड़ियों को पंडित पंत के जमाने से आज तक निरन्तर ठगा जाता रहा। ठगी और शोषण के प्रमुख कारणों में पहाड़ की सरलता, जनता में संगठन का न होना और नेताओं को न समझ पाने की क्षमता तथा स्थानीय नेतृत्व के अपरिपक्व और अस्थिर मानस का होना था।

ग-२

आजादी की लड़ाई के दिनों उत्तराखंड ने पूरनचन्द्र जोशी, चन्द्रसिंह गढ़वाली, नागेन्द्र सकलानी आदि जैसे कामरेड पैदा किये पर उन दिनों—कम से कम १९४२ तक, यहाँ कांग्रेसियों के अतिरिक्त किसी का प्रभाव नहीं हो सका। श्री देव सुमन, देवीदत्त पंत, मोहन जोशी या हर्ष देव ओली जैसे संग्रामियों को अपनी तमाम आक्रामकता के बावजूद कांग्रेसी ही बनना पड़ा था। सन् '४२ में सालम और सल्ट में बगावत करने वाले, शहादत देने वाले भी कांग्रेसी ही बताये जाते हैं।

आजादी के बाद पहली बार कांग्रेस का मिथ तब टूटा जब कुमाऊं क्षेत्र में समाजवादियों और गढ़वाल क्षेत्र में साम्यवादियों को जनता का समर्थन मिला। पर यह समर्थन कांग्रेस के मुकाबले छोटा ही था। प्रारम्भ में कांग्रेसियों को जन-समर्थन मिलना अस्वाभाविक नहीं था क्योंकि आजादी के तत्काल बाद जो यहां के नेतृत्व में आये थे उनके पास कम से कम आजादी की लड़ाई की पृष्ठभूमि थी। पर आज के प्रतिनिधियों के पास किसी महत्वपूर्ण दल या उसके महत्वपूर्ण नेता का आदमी होने के अलावा कोई यादगार 'अर्हता' नहीं है और आज के पहाड़ की राजनीति का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही है। इतिहास को कुछ व्यक्तियों द्वारा निर्मित मानने वाले लोग अक्सर गर्व के साथ कहा करते हैं कि उत्तराखंड ने प्रदेश को चार मुख्यमन्त्री—पंत, गुप्त, बहुगुणा और तिवारी भी दिये। पर असलियत यह है कि इनमें से पहाड़ का प्रतिनिधि नेता न कोई था और न है ही।

आजादी के बाद सबसे तेजी से सर्वोदय फैला। सर्वोदय मठी गांधीवादियों द्वारा सरकारी मदद के लिए एक गैर सरकारी अभियान के रूप में चलाया गया आन्दोलन था। पहाड़ में इसके तेजी से फैलने के पीछे मुख्य तत्व यहां के पक्ष विपक्ष की राजनीति की अपनी कमजोरी थी। अपनी तमाम सीमाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बावजूद शुरू में इसमें सक्रियता रही, पर धीरे-धीरे इसमें तरह-तरह के लोग घुसे। गांधीवादी संस्थाओं में तरह-तरह की सुविधाओं की भरमार होने के कारण इसमें ऐसे लोग भी आ गये जो मूलतः पहाड़ को नहीं समझते थे या पहाड़ में रहकर भी 'अपनोदय' या 'परिवारोदय' चाहते थे। इस तरह उत्तराखंड का सर्वोदय परिवार सुविधा भोगियों और सेवकों के खेमे में बंट गया। सरला बहिन भी इनमें एकता न ला सकीं। यह एक बड़ा विचित्र तथ्य है कि सर्वोदय ने एक ओर शराबबन्दी, स्त्रीजागरण तथा वन बचाने के अभियानों को चलाकर पहाड़ में जागृति की तात्कालिक लहरें पैदा कीं, दूसरी ओर उत्तराखंड की मूल आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक जटिलताओं से कन्नी काटने के कारण इन लहरों को पक्का चेहरा नहीं दिला सके।

कुछ लोग चिपको आन्दोलन को सिर्फ सर्वोदय का आविष्कार मानते हैं, जब कि सच यह है कि १९२० से ३० के बीच वनों के मामले ने उत्तराखंड की जनता को आजादी की लड़ाई से जोड़ा था। रवांई (तिलाड़ी) काण्ड उस जमाने के दमन और जन-प्रतिरोध का स्मारक उदाहरण है। दरअसल चिपको आन्दोलन पर्वतीय संपदा के शोषण के खिलाफ अपनी ही इस सम्पदा से बंचित ग्रामीण जनता की आक्रामक अभिव्यक्ति है। हां, इसमें जरूर स्थानीय सर्वोदयी सेवकों और साम्यवादियों ने मजबूत हिस्सेदारी की। इसे अपनी शैली की दिशा और त्वरा देने की कोशिश की। १९७४ से १९७८ तक उत्तराखंड के कस्बों/नगरों में जितने वनान्दोलन सम्बन्धी प्रदर्शन हुए या २४ फरवरी को अद्‌भुत उत्तराखंड बंद हुआ, उनका ताल्लुक छात्र-युवा वर्ग की एकता, शक्ति और समझ से था, न कि सर्वोदय या किसी राजनैतिक दल की।

आज उत्तराखंड में घटकमय जनता, कांग्रेस, इ.का. माकपा, भाकपा आदि सभी दल हैं। माकपा और भाकपा का कुछ क्षेत्रों में प्रभाव और कुछ क्षेत्रों में अस्तित्व है। तराई में मालेकपा का अस्तित्व भी है जो तराई के जमीनी समीकरण में स्वाभाविक भी है। उत्तराखंडव्यापी मजबूत आधार किसी दल का नहीं है।

कुछ ऐसे संगठन भी पहाड़ में उभरे हैं, जिनका फिलहाल ढीला-ढाला ही सही पर उत्तराखंडव्यापी आधार हैं। इनमें पहाड़ को समझने वाले युवा लोग हैं, पर जब तक ये संगठन गांव तक अपने को नहीं फैलाते, और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनाधार मजबूत नहीं कराते, इनका उभरना सरल नहीं है। दूसरी बात जो ऐसे संगठनों के विपक्ष में जाती है या उन्हें पक्की तैयारी करने की प्रेरणा देती है वह यह है कि पिछले कुछ सालों से जितनी कार्रवाहियों में इन संगठनों ने हिस्सेदारी की है, उसे देखकर उत्तराखंड के परस्पर विरोधी दल, नेता या उनकी लाबियां संयुक्त मोर्चा भी तैयार कर सकती हैं। अतः ऐसे संगठनों को जनता के बीच और भी खुलकर आना होगा और अपना असली व्यक्तित्व बताना होगा।

ग-३

कुछ विचित्र बातें यहां की राजनीति में हैं। अपनी तमाम व्यक्तिगत सरलताओं के बावजूद उत्तराखंड के आदमी का समाज कम जटिल नहीं है। अतः जात-बिरादरी की बात राजनीति को प्रभावित करती है। जैसे अलमोड़ा से जनसंघ के ठाकुर उम्मीदवार की अपेक्षा ब्राह्मण उम्मीदवार की और टिहरी से भाकपा के ब्राह्मण की अपेक्षा ठाकुर उम्मीदवार की जीत की प्रामाणिक संभावना रहती हैं। दूसरी बात यह कि यदि सुरक्षित क्षेत्र नहीं होते यो यहां से किसी हरिजन को चुना नहीं जाने दिया जाता, क्योंकि जिन संस्थाओं में सुरक्षित सीटें नहीं हैं, वहां हरिजनों का प्रतिशत बहुत कम है। दूसरी बात कि अनेक नेता ऊपर से नीचे को आये हैं। ऐसों की संख्या कम है जो जनता से उठे हों।

तीसरी यह कि राजनीति के अनेक लोगों के पास समर्थ और आत्मविश्वासी अधिकारियों का स्थानान्तरण कराने या उल्टे-सुल्टे वक्तव्य देते रहने के सिवाय न जनता के बीच कोई काम है और न विधानसभा या संसद में। कुमाऊं, गढ़वाल तथा पंतनगर वि० वि० के संकटों, चिपको, टिहरी बांध आन्दोलनों, तवाघाट, गरुड़-सोमेश्वर सहित कितने ही क्षेत्रों की घटनाओं के समय प्रतिनिधियों की भूमिका तटस्थता और कायरता की रही।

चौथी बात यह है कि राजनीति में वही लोग हैं, जो आर्थिक रूप से सम्पन्न हैं। इनमें या तो धनाड्य वकील, ठेकेदार हैं या इनके द्वारा खरीदे, जिताये और मोहित किये सामान्य परिवारों के लोग। कुछ प्रतिनिधि व्यक्तिगत रूप से समझ वाले होने के बावजूद इस तरह के दलों या घटकों से जुड़े हैं, जिन में सच्चा प्रतिनिधि दल या घटक के लिए इस्तेमाल किया जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। लकड़ी-लीसे की राजनीति आजादी के बाद चर्चा का विषय रही है। अल्मोड़ा-पिथौरागढ़ और टिहरी के पिछले दो सांसद क्रमशः लकड़ी के ठेकेदार और राज परिवार से सम्बद्ध थे। वन मन्त्री सहित गढ़वाल के एक वर्तमान सांसद वनान्दोलन के सबसे बड़े विरोधी हैं। कुछ लोग लकड़ी-लीसे के कारण राजनीति में आये या कुछ और लोग राजनीति के साथ लकड़ी लीसे का खेल खेलते रहे। कितने ही प्रधान, सभापति, जिला परिषद् अध्यक्ष, ब्लाक प्रमुख, विधायक या सांसद या तो स्वयं ठेकेदार रहे हैं या उनकी छत्रछाया में उनके अन्तरंग लोग ये कार्य करते रहे। स्थानीय स्तर पर शोषक होने के बावजूद, इन्होंने अपनी छवि 'समर्पित सेवकों' की बनाने की कोशिश भी की।

पांचवीं बात यह कि पहाड़ का प्रतिनिधि गरीब नहीं रह पाता। (यह सारे हिन्दुस्तन की समस्या है)। चुने जाने के बाद वह निरन्तर धनी होता जाता है। पैदल से बस, बस से जीप, जीप से कार में जाने लगता है। कभी-कभी वह अपने इलाके के ऊपर हैलीकोप्टर में मँडराता भी है। इसलिये संकट के समय भी वह 'अपनी जनता' में वहीं तक जाता है, जहां तक जीपकार उसे ले जाती है। यह सनद रहे कि आज भी पहाड़ में पैदल चलकर स्पर्श होने वाले इलाके हैं।

ग-४

आजादी के बाद पहाड़ में अनेक आन्दोलन हुए। ढिमरी ब्लाक (तराई) का विद्रोह भूमिहीनों का महत्वपूर्ण आन्दोलन था, जिसे इतनी बुरी तरह कुचला गया कि तराई में आज तक आदमी और जमीन के रिश्ते सामान्य नहीं हो सके हैं। विश्वविद्यालय स्थापना का आन्दोलन रुक-रुक कर जोर शोर से चला। बाद में उत्तराखंड वि० वि० की कल्पना के दो टुकड़े कर दिये गये और १९७३ में गढ़वाल तथा कुमाऊं वि० वि० की स्थापना हुयी। इन वि० वि० से पहाड़ की जनता ने जरूरत से ज्यादा अपेक्षा की थी। सोचा गया था जैसे इनकी स्थापना से पहाड़ का समग्र जीवन ही बदल जायेगा, पर यह सम्भव न था। राजनीत्ति इन वि० वि० में कितना गंदा खेल खेल रही है, यह अब रहस्य नहीं है।

वन बचाओ आन्दोलन या चिपको कदाचित् पहला आन्दोलन है, जिसमें पहाड़ की ग्रामीण तथा शहरी जनता सर्वाधिक शरीक हुयी। रेणी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौरादेवी और साथी औरतों से चली आन्दोलन की धारा में हजारों औरत-मर्द-युवा शामिल हुये। इस आन्दोलन के तहत सबसे बड़े जूलूस, यात्राएं, सभाएं और बन्द आयोजित हुये या प्रभावशाली सांस्कृतिक जुलूस निकले। १९७४ में रेणी, १९७८ में भ्यूंडार (चमोली), अडवाणी (टिहरी) और चाँचरी धार (अल्मोड़ा) में चिपको को प्रत्यक्ष विजयें मिली, जब यहां जंगलों के कटान निरस्त हुये या जब व्यापक वृक्षारोपण के अभियान आयोजित किये गये। पर इस आन्दोलन का भी एक दुर्भाग्य रहा है कि यह पहाड़ को बचाने-बदलने के किसी व्यापक (समाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक) अभियान में नहीं बदल पाया है। पेड़ों को बचाने वालों को उत्तराखंड के आदमी को भी तरह-तरह के शोषणों और पलायन से बचाने के रास्ते ढूंढने पड़ेंगे, वर्ना चिपको भविष्य में इसकी संभावनाओं से छोटे या तात्कालिक आन्दोलन के रूप में याद किया जायेगा।

अगला महत्व का आन्दोलन उत्तराखंड राज्य स्थापना का हैं। यह सच है कि पूरा हिमालयी क्षेत्र प्रान्तों में बँटा है। नेपाल-भूटान भी इसमें पड़ते हैं। सिर्फ उ० प्र० के आठ पहाड़ी जिलों को यह रूप प्राप्त नहीं है। काश्मीर को छोड़कर उत्तराखंड हिमालय का सबसे बड़ा क्षेत्र है और जनसंख्या में कदाचित् पहला। चीन-नेपाल के साथ सीमा के कारण इसका सामरिक महत्व है। हिमालयी क्षेत्र में प्रति व्यक्ति औसत आय और केन्द्रीय सरकार की मदद उत्तराखंड को सबसे कम है। रोजगार के साधन नहीं हैं। युवकों को पलायन करना पड़ता है। सैनिकों की प्रथम और नागरिकों की द्वितीय रक्षा पंक्ति के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका के बावजूद, उत्तराखंड को महत्व नहीं दिया गया है।

उत्तराखंड राज्य को सिद्धान्त रूप में स्वीकारना दिक्कत पैदा नहीं करता है। हर दृष्टि से इसमें एक राज्य बनने की क्षमता व संभावना है। तराई की अन्न सम्पन्नता पहाड़ की वन, खनिज, फल और पर्यटन संपदा मिलकर इस क्षेत्र को खुशहाल कर सकते हैं। पर असली सवाल है कि इस व्यवस्था के अन्तर्गत उत्तराखंड राज्य बन जाने पर भी क्या बड़ा फर्क होगा? किसी भी शरीर का मात्र एक हिस्सा स्थाई रूप से स्वस्थ नहीं बनाया ज़ा सकता है। पूरे हिन्दुस्तान में गरीबी, बेरोजगारी, शोषण और दमन के जारी रहते पहाड़ का चेहरा असली अर्थ में बदला नहीं जा सकता है, पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस लुभावने नारे से जनता को बरगलाया जा सकता है। यह सदा याद रखा जाना चाहिये कि पहाड़ में कुछ भी किये जाने के लिए सिर्फ पहाड़ की जनता के आशीष की जरूरत होगी। रामनगगर, गौचर और न जाने कहाँ-कहाँ इतनी बैठकें हो गयी हैं, पर तब भी कुछ नहीं हुआ है। यह तय है, कि जनता इनके पीछे नहीं आयेगी। इस आँदोलन में लगे युवाओं को अपनी शक्ति किसी उत्तराखंड व्यापी प्रगतिशील संगठन में लगानी चाहिए और जब कभी उत्तराखंड राज्य जनता की अनिवार्य जरूरत बन जाय तो आगे आकर अपना पराक्रम दिखाना चाहिए वर्ना अपनी शक्ति के अपव्यय के पश्चाताप का भी मौका नहीं मिलेगा।

घ

उत्तराखंड की 'गरीबी' का अभिप्राय यह नहीं है कि यहां पूर्वी उत्तर प्रदेश या बिहार के अनेक क्षेत्रों की तरह भुखमरी है। अपनी संपदाओं की सम्पन्नता के मुकाबले यहां खुशहाली नहीं है। बल्कि इस संपदा के कारण पूंजीपतियों/सेठों का ध्यान इस अंचल की ओर गया और उन्होंने हमारी सरकारों से पहाड़ को कटाने, खोदने, बहाने और बेचने के अधिकार खरीद लिये। हिन्दुस्तानी प्रजातंत्र के भीतर यहाँ भी एक आन्तरिक उपनिवेशवाद पनप आया। इसे बढ़ाते रहने में कांग्रेस सरकारों की भूमिका तो सदा आक्रोश के साथ याद की जाती रहेगी ही, पर जनता सरकार भी उससे भिन्न नहीं हो सकी। शोषण-शैली बहुत आयामों वाली है, क्योंकि पहाड़ के शोषक बड़ी सीमा तक स्थानीय, प्रदेशीय या राष्ट्रीय राजनीति में दखल रखने वाले हैं। वे इतने दमदार हैं कि पहाड़ को लूटने के अधिकार खरीद सकते हैं। जन प्रतिनिधि इनकी नजर में सस्ते होते हैं, क्योंकि किसी स्थानीय व्यक्ति को हमी से छँटवाकर ऊपर भेज सकते हैं और आम आदमी इस शोषण चक्र को नहीं समझ पाता है।

घ—१

यहां की संपदाओं में वन सर्वाधिक महत्व के हैं। पहाड़ को अपनी जगह कायम रखने, परिस्थितिकीय संतुलन को बनाये रखने और कृषि, पशुपालन तथा कुटीर लघु उद्योगों को सहयोग और त्वरा देने में वनों की भूमिका निर्विवाद है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औपनिवेशिक शासकों ने पहाड़ के वनों को सोने की खान या हरा सोना कहा था और उनके पहाड़ आने के पीछे के महत्वपूर्ण कारणों में अपार वन संपदा का आकर्षण भी था। इसी काल में वन बिकने-कटने शुरू हुये। आजादी के बाद बिकने-कटने की गति बढ़ी। आज उत्तराखंड में १८% वन क्षेत्र हैं। यह सरकारी आंकड़ा है।

यहां की वन संपदा से स्टार पेपर मिल्स सहित ७ कागज निर्माण इकाईयाँ पर्याप्त नफा कमा रही है। इन इकाईयों की कुल सालाना उत्पादन क्षमता ६७००० मीट्रिक टन बताई जाती है। सभी इकाईयाँ उत्तराखंड से बाहर हैं। प्लाईवुड बनाने वाली आठ इकाईयाँ लगभग एक करोड़ १० लाख वर्ग मीटर संस्थापन क्षमता का प्लाईवुड बनाती हैं। ये इकईयाँ भी बाहर हैं। कत्थे और रंगाई के मिश्रणों की ५ इकाईयाँ लगभग १५७५ मी० टन कत्था और २७८५ मी० टन कच्छ का उत्पादन करती हैं, जिसके लिए ४८९८५ मीट्रिक टन खैर काष्ठ की जरूरत होती है। इन इकाइयों में से मात्र एक उत्तराखंड (हल्द्वानी) में है।

पैंकिंग केस उद्योग और खेल-कूद का सामान जो इकाईयाँ बनाती हैं, उनमें से कुछ उत्तराखंड में जरूर हैं, पर ये भी दो प्रकार की हैं। पहली सरकारी, दूसरी लकड़ी का कोटा बेच खाने वाली। सहकारी इकाई के रूप में गोपेश्वर की दशोली ग्राम स्वराज संघ महत्व की अकेली इकाई है। पहाड़ से १ लाख ३३ हजार क्विन्टल से अधिक बिरोजा और तारपीन का तेल प्राप्त होता है। इस कार्य में हिमांचली/नेपाली मजदूरों के अलावा कुछ स्थानीय लोग भी लगे हैं, क्योंकि लीसा टिपान जंगल से बाहर नहीं हो सकता है। इस उत्पादन का बड़ा हिस्सा बरेली की सहकारी रेजिन फैक्ट्री में या चोरी छिपे होशियारपुर आदि स्थानों के उद्योगों में चला जाता है। स्थानीय वन सहकारी समितियाँ लीसे के अभाव में अकाल मृत्यु को प्राप्त होती जा रही हैं।

तराई से बरफ हिमालय तक कितनी ही तरह के जंगल में साल, शीशम, हलदू, सादण, यूक्लिपटस (यह मिट्टी के खिलाफ है पर व्यापारिक पेड़ है), टीक, साई, तुण, भीमल, चीड़, देवदार, बुरांस, लूकाट, बांज, साईप्रस, मजनू, गढ़पीपल, तिलौंज, राध, खरसू, रिगांल, उदूंबर, पांगर, थनेर, पदम, भोज आदि के पेड़ मिलते हैं। जंगलों से ही तरह तरह की जड़ी बूटियां-गुग्गुल, कस्तूरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मृग से), भोज पत्र, सालम पंजा, कपूर, अगरू, केशर, दालचीनी, आंवला, रतनजोत, कालीजीरी, लाघ, पीपलमूल, तेजपात, पृष्ठपर्णी, झूला, हरड़ा, गदरैण, जम्बू, काकडसिङी, वेल सतमूत, चमड़ा-कपड़ा रंगने की खालें किलमाड़ आदि पहाड़ में बहुतायत से मिलती हैं। रानीखेत की सहकारी दवा फैक्ट्री, जो आजकल 'रघुकुल सुरा' नामक प्रख्यात 'टानिक' का अधिक उत्पादन करने लगी है, के अलावा पहाड़ में इस तरह की कोई इकाई नहीं हैं। ग्रामीण स्तर पर जरूर जड़ी बूटियों का स्थानीय इस्तेमाल होता है, पर इसे कुटीर या माध्यमिक उद्योग का रूप नहीं मिल सका है, जो सर्वाधिक संभावना का है। भोटांतिकों की अर्थ व्यवस्था पर शोधरत एक प्राध्यापक (१९७२) का कहना है कि अकेले पिथौरागढ़ जिले में एक साल में नौ हजार क्विन्टल से ज्यादा जड़ी-बूटियाँ एकत्रित की जा सकती है, जिनसे कम से कम २५ लाख रुपये की सालाना आमदनी हो सकती है। सीमान्त जिलों में जड़ी बूटियों के उद्योगों के विकास की योजनाएँ ठप्प हैं। खादी ग्रामोद्योग कमीशन का कुटीर उद्योगी शोर भी समाप्त हो गया हैं। जहां से चले थे, हम वहीं हैं। हां एक मामले में जड़ी-बूटियों का पर्याप्त दोहन होने लगा है, क्योंकि पूंजीपति, ठेकेदार, बिचौलिये इस संपदा का चुपचाप दोहन करने/करवाने लगे हैं और 'हिमालय' के नाम पर अपनी मिलावट बेचकर नफा भी कमाने लगे हैं।

जड़ी-बूटियों के अलावा वनों से तरह तरह की घासें, शहद, मोमगम, विविध फल आदि महत्व की चीजें मिलती हैं।

वनों से मिलने वाली एक और महत्वपूर्ण संपदा वन्य जीव हैं। सैकड़ों प्रकार के जानवर और हजारों किस्म के पक्षी यहां मिलते हैं। 'कस्तूरी मृग' हिमालयी प्रकृति की दुर्लभ देन है। अनेक मृग विहारों और कारबेट पार्क के बावजूद वन्य जीवन नष्टप्राय है। चोरी छिपे उत्तराखंड के वन्य जीवन को नष्ट करने का अभियान जारी हैं। खालें, सींग तथा जीवित मृत जानवरों का व्यवसाय यहां परम्परा में था। भेड़ पालन और ऊन उद्योग अर्से से यहां के सीमान्तों की पहचान है। १९६२ में चीन-भारत संघर्ष के बाद भारत-तिब्बत व्यापार समाप्त हो जाने से और सरकार द्वारा अधिक प्रोत्साहन न दिये जाने के कारण फिलहाल तो सीमान्त के उद्योग स्थानीय लोगों के दमखम पर चल ही रहे हैं, पर आगे यह उम्मीद नहीं की जा सकती है। इसी तरह डाले, सूपे, पुतके, मोस्टे, टोकरी आदि की रचना भी कम होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगी है। वनों का कृषि, बागवानी, पशुपालन से स्वाभाविक रिश्ता है। त्रिमुखी वन खेती जैसे कार्यक्रम को सरकार अपने ही शोर के वावजूद अधिक महत्व का शायद नहीं मान रही है, क्योंकि इससे जंगलों, चारागाहों, जानवरों का सही उपयोग होने की संभावना है। जितने वनाधारित उद्योग हैं, उनमें स्थानीय जनता की हिस्सेदारी मजदूर की हैसियत से बहुत कम हैं।

घ—२

उत्तराखंड में कुछ खनिजों की प्रचुरता है। कुछ खनिज ऐसे हैं, जो कम मात्रा में हैं, पर महत्व के हैं। डा० वल्दिया ने प्रमुख खनिजों को तीन हिस्सों में बांटा है—पहले वे जिनका वाहुल्य है—मैग्नेसाईट, खड़िया, चूना पत्थर, डालोमाईट, पाथर-पटाल आदि। दूसरे वे, जो औद्योगिक-सामरिक महत्व के हैं पर कम हैं—ताँबा, सीसा, पाईराईट, जिप्सम और ग्रेफाईट आदि। तीसरे वे जिनकी उपस्थिति तो ज्ञात है, परन्तु जिनकी व्यापक खोज के प्रयास नहीं हो सके हैं जैसे गार्वेट, कायनाईट, वैराईट, यूरेनियम, खनिज, एसवेस्टस आदि।

चण्डाक, झिरौली, देवलथल, काण्डा, पुंगार घाटी आदि में कुल ८८२ लाख टन मैग्नेसाईट भंडार की सम्भावना की गयी है। खनिजों की खुदाई के ठेके मसूरी, गढ़वाल से लेकर पिथौरागढ़ तक कुछ नव सेठों, पूंजीपतियों, उद्योगपतियों ने प्राप्त कर लिये हैं और वे खुदाई के तुरन्त बाद इस खनिज संपदा को अच्छे लाभ पर देश या विदेश में बेच डालते हैं। अल्मोड़ा मैग्नेसाईट टाटा और सरकार का साझा उद्योग है। चण्डाक और देवलथल भी पूंजीपतियों के हाथ में हैं, जो दर्जनों ट्रक मैग्नेसाईट रोज टनकपुर पहुंचा रहे हैं। चौनाला (गंगोलीहाट) में सीमेंट फैक्ट्री की स्थापना का शोर जारी है, पर ठोस कार्रवाही अभी तक शुरू नहीं हुयी है। बजरी-रेत से ईंट वनाने का उद्योग भी सहकारी के स्थान पर व्यक्तिगत उद्योग बन गया है।

फिलहाल खनिज खनन या उद्योगों का रूप सहकारी, जनमुखी वनाने का कोई विचार सरकार के पास नहीं हैं, जिसमें पहाड़ का खनिज—मजदूर एक हिस्सेदार की हैसियत से शामिल हो सके। परम्परा से लोहे, तांबे या पत्थर आदि का काम लोहार-टमटा और ओड़ किया करते थे। आज जब इस परम्परा को जिन्दा रखने की बात भी महत्व नहीं पा रही है, तब छोटी-मध्यम तकनीक को खनिज संपदा के उपयोग में लगाने की बात किसी के दिमाग में कैसे आ सकती है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घ-३

उत्तरी भारत की वे सभी नदियां, जो हिन्दुस्तानी हिमालय से जनम लेकर, हिन्दुस्तानी समुद्र में जाती हैं, उत्तराखंड से जनम लेती हैं। यमुना-टौन्स, भागीरथी-अलकनन्दा, काली-सरयू ये तीन प्रमुख जल-धारायें उत्तराखंड में निकलती हैं, उत्तरी भारत के मैदान की निर्मात्री हैं और इनकी खुशहाली का रिश्ता इन नदियों से है।

पहाड़ से निकलने वाली नदियों पावर, टौन्स, यमुना, भागीरथी, मंदाकिनी, अलकनन्दा, पिन्डर, सरयू, रामगंगा (दोनों), काली (शारदा) एवं इनकी सहायक धाराओं का अभी तक पहाड़ के हित में बड़ा उपयोग नहीं किया जा सका है। नदियों के पानी का बहुउपयोगी इस्तेमाल पेय-जल, सिंचाई, औद्योगिक इकाइयों में सफाई, घट (पन-चक्की) चालन के अलावा विद्युत उत्पादन हेतु किया जा सकता है। उत्तराखंड की नदियों से सम्पूर्ण उत्तरी भारत के लिये बिजली पैदा की जा सकती है। छोटी-छोटी बांध इकाईयां स्थापित कर बाढ़ पर रोक, खेत पर पानी और हर उद्योगों तक बिजली पहुंचाई जा सकती है; पर तमाम घोषणाओं और 'मल्टी परपज रीवर वैली प्रोजेक्ट्स' के बावजूद यहां के पानी का बेहतर उपयोग नहीं किया गया है। उत्तरकाशी की मनेरी भाली परियोजना को जरूर एक आदर्श इकाई माना जा सकता है। पर इस तरह की अन्य इकाईयों का अभी इन्तजार बना हुआ है। पंचेश्वर बांध की हाल में फिर चर्चा हुई हैं और टिहरी बांध ने पहाड़ में फिर आन्दोलन खड़ा कर दिया है। वैज्ञानिकों और स्थानीय जनता का कहना है कि टिहरी बांध का क्षेत्र भूकंप प्रभावित है, कमजोर है और बांध की जिन्दगी सौ साल की नहीं, २५-३० साल की ही रह पायेगी। पर सरकार टिहरी को खाली कर, वैज्ञानिकों की बातों का तिरस्कार कर 'बड़ा' बांध बनाने पर उतारू है।

पहली पंचवर्षीय योजना के समय माइक्रोहाईडिल्स की बात उठी थी, जिसे 'अकरा' मानकर सरकार ने छोड़ दिया, जब कि पहाड़ से जल-विद्युत और सिंचाई कार्यक्रमों का विकास भी विकेन्द्रीकृत रूप में ही किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। एक समय पिण्डर परियोजना की बात उठी थी; के० एल० राव तक से बातें हुयी थी, पर इस योजना को गम्भीरता से नहीं लिया गया। आज यह विस्मृत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज के पहाड़ के अधिकांश खेत असिंचित हैं और पीने का पानी डेढ़-डेढ़, दो-दो मील से लाना पड़ता है। मिट्टीतेल के धुंयेदार 'लैम्फू' और 'छिलके' का युग यहां आज भी जिन्दा है। यदि पहाड़ के पानी को पीने, सिंचाई और बिजली उत्पादन के लिये सही इस्तेमाल किया जाय तो किसी और कार्य के लिए श्रम शक्ति बचेगी, पहाड़ के सिर पर जा कर पानी हरियाली पैदा कर सकेगा और सामान्य सिंचाई, बाढ़ नियन्त्रण के साथ-साथ छोटे-छोटे निर्माण केन्द्रों की शृङ्खला स्थापित की जा सकती है, जहां पहाड़ की विविध कच्ची सामग्रियां गांव-गांव की इकाईयों में पक्के सामान में बदलेगी और बिजली-पानी ग्रामीणों के 'सपने' नहीं, कामगार साथी की तरह होंगे।

घ-४

पर्यटन आजकल सबसे चर्चित और पहाड़ के संदर्भ में सबसे कम समझा गया व्यवसाय है। उत्तराखंड में इसे सरकार ने कुछ स्थानों और लोगों में इतना केन्द्रित कर दिया है कि इस व्यवसाय का फायदा कुछ ही स्थानों में कुछ ही लोगों द्वारा उठाया जा रहा है। दूसरी ओर हिन्दुस्तान की जनता का एक छोटा धनाड्य हिस्सा ही पहाड़-पर्यटन का उपभोग कर रहा है। जिस दिन देश की आम जनता पर्यटन में शामिल होगी, उस दिन से आम पर्वतीय जन भी इस व्यवसाय से लाभ पायेगा। आज 'पहाड़ पर्यटन' का मतलब है 'यू पी टूरिज्म' यानी कुछ बड़े होटलों, बड़ी ऐजेन्सियों, बड़े होस्टलों या बंगलों-क्लबों द्वारा कुछ बड़े लोगों, अफसरों, पूंजीपतियों, संस्कृतिविहीन नव-धनाड्यों को स्वागत सुविधा देना। पर यह असली पर्यटन नहीं है, जिसमें पहाड़ का अपनी तरह का हर शहर, मन्दिर, नदी, झरना, किला, हिमगल या शिखर, लोग, उनके द्वारा बनाये सामान शामिल होंगे, वही सही पर्यटन होगा और इसमें पर्यटक बन के आने वाला भी महसूस करेगा कि आज तक जो वह जानता था वह छलावा ही था।

पहाड़ ने बहुत खूबसूरत चेहरा पाया है। पेड़, पहाड़, पानी और इनके आस-पास इनके दूसरे रूप, इनकी मदद से रचे गये यहां के अन्य दृश्य किसी को भी भीतर तक प्यार देते हैं (यह स्मरण रहना चाहिए कि आज पर्यटन का मतलब यंत्र-तंत्र से भयभीत और परास्त आदमी को प्रकृति का प्यार देना भी हो गया है)। हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध तीर्थस्थल गंगोत्री, यमुनोत्री, केदारनाथ, बद्रीनाथ, तुंगनाथ, जागेश्वर, हेमकुंड, रीठासाहब, मायावती,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्णागिरी आदि यहां हैं। मसूरी, लैन्सडौन, रानीखेत, नैनीताल जैसे औपनिवेशिक काल से चर्चित नगर यहां हैं। चंपावत, अल्मोड़ा, श्रीनगर, टिहरी जैसी पुरानी राजधानियां यहां हैं। नंदादेवी, त्रिशूल, शिखरों से पिण्डारी और मिलम हिमगल यहां हैं। फूलों की मशहूर घाटियां और उनकी दर्जनों छोटी बहिनें यहां हैं। तीर्थयात्री, पदयात्री, पर्वतारोही, सैलानी, विश्रामी, कला प्रेमी या रचनाकार, पता नहीं कितनी हैसियतों से लोग पहाड़ आ सकते हैं। पहाड़ जी सकते हैं और पहाड़ की सदा बहार यादें ले जा सकते हैं।

पर्यटन के साथ यहां की प्रकृति और आदमी का तो रिश्ता है ही, यहां के उत्पादनों, प्रकृति प्रदत्त चीजों, कुटीर उद्योगों से भी पर्यटन का जरूरी सम्बन्ध है। जैसे केदार-बदरी जाने वाले लाखों लोगों को हर साल लाखों लाठियां और टोकरियां चाहिए। इस तरह फल या फल उत्पादन, यहां के बने थुमले, दल, चुटके, पंखियां, तरह-तरह के पत्थर, चीड़ के 'स्यूतों बाकौर' आदि कितनी ही चीजें पर्यटक अपने साथ ले जाना चाहते हैं। पर इन चीजों का पर्यटन से रिश्ता नहीं जोड़ा गया है। हां, पहाड़ के शहरों में इसी तरह की चीजों के इम्पोरियमों का युग जरूर हो गया है। पर्वतीय विकास निगमों और इनकी गाड़ियों या यू पी टूरिज्म में बेहतरीन विज्ञापनों के बावजूद आज का पहाड़-पर्यटन एक सम्पूर्ण सफलता नहीं हो पाया है।

घ-५

१९८० में उत्तराखंड के पास एक करोड़ हाथ हो जायेंगे। आज इस परिवार में ४५ लाख लोग हैं। इस छोटी जनसंख्या में से बड़े-बड़े विद्वानों, लेखकों, पत्रकारों, संपादकों, नेताओं, नौकरशाहों, विप्लवियों, खिलाड़ी और वैज्ञानिकों की महत्वपूर्ण शृङ्खला निकली भी है।

अपनी, अपने राजाओं की पारम्परिक फौज के बाद प्रथम विश्वयुद्ध के समय यहां के आदमी ने फौज में जाना शुरू किया। यह 'मनीआर्डर एकानामी' की भी शुरूआत थी, क्योंकि सामूहिक स्तर पर 'परदेशगमन' यहीं से शुरू हुआ था। आज फौज में यहां के युवाओं का बड़ा प्रतिशत है। प्रथम विश्वयुद्ध से १९७१ की लड़ाई तक कुमाऊं तथा गढ़वाल रायफलों का योगदान अद्भुत, अपवाद और सदा याद रखा जाने वाला रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ

पहाड़ की अर्थव्यवस्था के विभिन्न पक्षों को उसके अन्तर्विरोधों समेत जानने के बाद अब वे कारण जानने उचित होंगे, जिनसे पिछले तीस साल पहाड़ में विकास के साल नहीं हो सके हैं। यह कहना सही नहीं होगा कि आजाद भारत की सरकारों ने पहाड़ के हित में कुछ न सोचा और न किया। दरअसल ये सरकारें पहाड़ों के बारे में पूरी तरह नहीं सोच सकीं और जो भी सोचा उसे पूरी तरह कर नहीं सकीं।

आजादी के बाद हमने देश को नये सिरे से शुरू नहीं किया था। वरन् अनेक मामलों में सामन्ती-औपनिवेशिक आधारों को बरकरार ही रहने दिया था। यदि सिर्फ पहाड़ की बात फिलहाल की जाय तो यह कहा जा सकता है कि औपनिवेशिक काल से आज तक की सरकारों के पास पहाड़ों को बचाने और बनाने के बारे में कोई समग्र दृष्टि नहीं मिलती है। कांग्रेसी संविद और जनता सरकारों के जमाने में पहाड़ के प्राकृतिक व्यक्तित्व को पूरी तरह खा-पचा डाला गया। पहाड़ के हाड़-मांस और खून के बेच दिये जाने के बावजूद भी इन सरकारों को यह महसूस नहीं हुआ कि पहाड़ को हमने अधमरा बना दिया है। सरकार चलाने वालों के पास विकास की कोई सम्पूर्ण दृष्टि न थी और न है इसीलिए पहाड़ को न देखे, न जाने लोगों को यहां की योजनाएं बनाने को मिलीं। इन योजनाकारों ने बिना पहाड़ देखे और जिये ही पहाड़ को समझने की कोशिश की। स्वाभाविक था कि यह कोशिश असफल रही। पहाड़ की प्रकृति, परिस्थिति, समस्यायें और संभावनाएं इसीलिए आज तक नहीं समझी जा सकी हैं। यदि योजना दृष्टि होती तो पिछले ३० सालों में यह क्षेत्र कम से कम ऐसा अवश्य हो गया होता, जहां प्रतिभा का पलायन एक अतीत की चीज होती और पहाड़ के सभी प्राकृतिक संसाधन विकास के उपकरणों की तरह इस्तेमाल किये जा रहे होते। नेतृत्व की इस निर्णायक कमजोरी में नौकरशाही की कोई सार्थक भूमिका न हो सकनी स्वाभाविक थी। यह एक तथ्य है कि नौकरशाही कभी भी 'अद्भुत' और 'मौलिक' 'चिन्तन' और 'कार्य' नहीं किया करती है। वह सरकार का हाथ-पैर हो सकती है पर दिमाग नहीं। जब नौकरशाही के ऊपर सोच के स्तर पर अस्तरीय लोग राज कर रहे थे तो नौकरशाही को सिर्फ दिन दूनी रात चौगुनी निजी सम्पत्ति जोड़ने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्लभ मौका मिल रहा था और नवनिर्माण के समस्त कार्यक्रम मृत प्राय या स्थगित थे।

उत्तराखंड पहले कुमाऊँ कमिश्नरी था। छठे दशक के अन्त में तीन सीमान्त जिले बनाये गये। फिर कुमाऊँ तथा गढ़वाल दो कमिश्नरियां बनाई गईं। दूसरी ओर सरकारी स्तर पर कहे जाने के लिए १९५१ में पर्वतीय विकास परिषद बनी। डेढ़ेक साल बाद पर्वतीय विकास निगम बना। बाद में इसके भी दो हिस्से कर दिये—गये एक कुमाऊँ तथा दूसरा गढ़वाल मंडल विकास निगम। दो ग्राफिस, दो डायरेक्टर, दो बोर्ड, कारें जीपें, कुछ टूरिस्ट बसें, मशरूम, सेव ग्रालू विक्रय, रोप वे आदि के साथ नौकरशाही बहुत बड़ी हो गयी थी; 'सोच' कुछ कम और विकास तो और भी कम हुआ। अगर पुराने आंकड़े छोड़ दिये जाय, वर्ष ७६-७७ में ३७.७५ करोड़ रुपये के मुकाबले ७७-७८ में ५६ करोड़ रुपया यहां के विकास कार्यक्रमों के लिए मंजूर हुआ। ७८-७९ के लिए ६६ करोड़ रुपये की धनराशि रखी गयी है। कुछ योजनाओं के कार्यान्वयन के लिए विदेशी और विश्व बैंक की मदद भी मिल रही है। ये राशियां कम नहीं कही जा सकती हैं। पर आज तक अपनी जगह से हम कुछ संदर्भों में कुछ आगे और ज्यादा संदर्भों में ज्यादा पीछे हटे हैं। क्योंकि विकास के लिए जो भी धनराशि आती थी, उसका आधा नौकरशाही और विकास के अकर्मण्य उपकरणों के रखरखाव में खर्च हो जाता था दूसरी ओर प्रकृति ने पहाड़ के लोगों को इतना शांत और सरल बनाया है कि आजादी के २५ सालों में यहां प्रतिरोध संभावना और जरूरत के बावजूद नहीं फूट सका।

उत्तराखंड की ७५% जनता कृषि कार्य करती है और यहां ८८% जोतें २ हैक्टेयर या उससे भी छोटी हैं। कुल क्षेत्रफल के १५% पर खेती होती है। इस तरह कृषि सम्पूर्ण न होकर भी जीविका का महत्वपूर्ण साधन है। तराई का बड़ा हिस्सा बड़े फार्मरों के पास है। राजनीति, फौज और नौकरशाही के वर्तमान या भूतपूर्व लोग भी इन 'बड़ों' में शामिल हैं। १९६९ की सनवाल कमेटी के अनुसार अकेले नैनीताल जिले की तराई में १९६९ तक २० हजार अतिक्रमणकारी करीब ५३ हजार एकड़ जमीन पर कब्जा किये थे। जिनके पास जमीन है उनमें अधिकांश किसान नहीं हैं···और इस तरह आज उत्तराखंड में भूमिहीन या खेतीहर मजदूरों की संख्या हजारों में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंत विश्वविद्यालय और विवेकानन्द अनुसंधानशाला की तमाम कृषि शोधों के बावजूद सामान्य पर्वतीय किसान के हित में इनका व्यापक इस्तेमाल नहीं किया जा सका है। अभी तक पहाड़ की कुल कृषि भूमि का मात्र १३% सिंचित है। कृषि क्षेत्र नहीं बढ़ाया जा सकता है, क्योंकि इससे या तो चरागाह क्षेत्र घटेंगे या जंगल कटेंगे। दर असल कृषि को उपलब्ध जमीन पर ही अधिक फलदाई बनाने की बात जरूरी होनी चाहिए थी। अल्मोड़ा में इगाडा ने वे ही घाटियां अपनी योजना में लीं जो अपनी पुरानी कृषि शैली के बावजूद सम्पन्न थीं। संभव हो इस योजना की कुछ उपलब्धियाँ हों या बताई जायें पर यदि इगाडा के विकास आंकड़ों में नौकरशाही के १० साल का सरप्लस खर्चा घटा दिया जाय तो उसकी उपलब्धियाँ बहुत कम पड़ती हैं। अब हर जिले में हाडा योजना चली है यह सफेद हाथी भी निश्चित रूप से पहाड़ को कमजोर करेगा।

जंगलों को काटकर फल पट्टियाँ बनाई गयीं। बाद में फल पट्टियाँ भी नहीं रही और अनुदान प्राप्तकर्ताओं की कुड़कियाँ आ गयी। जहां बगीचे लगे—रामगढ़ और आराकोट को छोड़कर उन क्षेत्रों का बाजारों से रिश्ता नहीं बनाया गया और न एग्रो की हकाहाक के बावजूद फलों या इस तरह की चीजों का कोई जल्दी खराब न होने वाला उत्पादन बनाने का कार्य ही शुरू हुआ है। पहाड़ के विविध उत्पादनों में उत्पादकों से ज्यादा नफा बिचौलिये खा रहे हैं।

उत्तराखंड में एक विकास क्षेत्र में एक दो सांड और भैंसें जरूर हैं। इसी तरह कुछ विदेशी नस्ल की भेड़ें भी ऊँचे इलाकों में पाली जा रही हैं। पर अभी तक स्थानीय स्तर पर ऊन के मामले में आत्मनिर्भर होने की कोई संभावना नहीं है, और गांव गांव पहुंच गया डिब्बे का दूध हमारी पशुपालन व्यवस्था के लिए चुनौती बना हुआ है।

पहाड़ के सामान्य आदमी की यह मान्यता है कि पहाड़ में आधा अधूरा जो भी विकास कार्य हुआ वह भी चीनी आक्रमण का परिणाम है और यह तथ्य दुखद है कि इस इलाके के बारे में 'राष्ट्रीय संकट' के बाद ही सोचा जाने लगा। आज राष्ट्रीय संकट को जीवित न मानने के कारण सरकारी विभागों, नियोजकों और नेताओं का संकल्प पूरी तरह परास्त हो गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्वतीय विकास किधर ?

उ० प्र० के पर्वतीय विकास की बहुचर्चित दिशा का दर्शन राज्य सरकार के पर्वतीय विकास संबंधी ग्रांकड़ों से होता है । सन् १६७६–८० में ७१ करोड़ ६८ लाख रुपये के अनुमानित व्यय में २६ करोड़ ४० लाख रुपया सामाजिक एवं सामुदायिक सेवाओं में व्यय होगा और उसके बाद सबसे बड़ी रकम २२ करोड़ ७५ लाख रुपये यातायात एवं संचार यानी सड़क निर्माण पर व्यय होगा । सन् १६८०–८१ के लिये भी प्रस्तावित व्यय के ग्रांकड़े लगभग इसी प्रकार हैं । यह पहाड़ों से दिल्ली और लखनऊ के राजसिंहासन तक पहुंचाने की होड़ करने वाले हर उम्मीदवार की इस चुनाव–घोषणा के कि "मैं तुम्हारी पट्टी (पंचायत क्षेत्र) में मोटर सड़क, स्कूल और अस्पताल बनवा दूंगा" के अनुरूप ही है । इसमें सब पक्षों की सर्वसम्मति है और कोई भी प्रतिनिधि अपने चुनाव क्षेत्र से बहुत दूर रहने पर भी इन वायदों को पूरा करने की अपनी क्षमता के आधार पर लोकप्रियता प्राप्त कर सकता है । पिछले विधान सभा चुनाव में एक भूतपूर्व मंत्री को जो स्थायी रूप से लखनऊ में विराजमान रहते हैं, अपने जिले से भी भिन्न एक दूसरे जिले में स्वतन्त्र उम्मीदवार के रूप में सफलता मिल गई, क्योंकि उनके पास अपने शासनकाल की इन उपलब्धियों का शानदार ब्योरा था । किसी अकेले गाँव के लिए जाने वाली मोटर सड़क, स्कूल और अस्पताल को देखकर आपको आश्चर्य नहीं होना चाहिये । हो सकता है कि उसे किसी सांसद या विधायक को जन्म देने या उनकी ससुराल होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो ।

आजादी के बाद सड़क, स्कूल और अस्पताल की विकासमयी की लोकप्रियता कोई आकस्मिक घटना नहीं है । यह तो गुलामी के पिछले सौ वर्षों के शासन और सरकारी नीतियों का तथा आजादी के बाद प्रारम्भ हुए विकास कार्यक्रमों का स्वाभाविक परिणाम था । इन सबने मिलकर पहाड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की धरती से वहां के लोगों को, जो उस पर पहाड़ों की तरह ही स्थिर थे, उखाड़ दिया। धरती की उनको पोषण करने की शक्ति समाप्त हो गई। लोग इस सदी के प्रारम्भ से घर छोड़कर रोजगार के लिए मैदानी नगरों में जाने लगे। जैसे-जैसे परम्परागत विकास की गति बढ़ती गई, वैसे-वैसे घर छोड़कर रोजगार के लिए बाहर जाने वालों की संख्या भी बढ़ती गई।

अंग्रेजी राज के प्रथम पचास वर्षों के लोकजीवन की झांकी प्रस्तुत करते हुए उत्तरांखण्ड के इतिहासकार डा० शिवप्रसाद डवराल लिखते हैं, "परिवार के सभी व्यक्ति नर-नारी और बालक वृद्ध व्यस्त रहते थे। छोटे अवोध शिशुओं को छोड़कर शेष सभी के लिए कृषि और पशुचारण से संवंधित कार्य इतने अधिक थे कि परिवार में किसी को निठल्ले रहने का अवसर नहीं था। नर-नारी अन्धेरे मुंह ही उठ जाते थे। अन्धेरे में ही घर के आवश्यक कार्यों, जैसे अन्नों को कूटने-पीसने एवं दुधारू पशुओं को दुहने से निवृत होकर नारियां अन्य कार्यों में जुट जाती थी। पुरुषों के लिए भी कार्यों की भरमार थी। गढ़वाली पुरुष अपने पूर्वी पड़ोसी पुरुषों के समान सारा कार्यभार नारी पर नहीं छोड़ते थे। मध्याह्न में भोजन के बाद पुनः कार्य की शृङ्खला प्रारम्भ हो जाती थी। अन्धेरा होने पर ही लोग घरों में लौटते थे। रात्रि में अगले दिन की कार्य योजना बनती थी। पुरुष रात्रि को गोठ या छानों में बिताते थे। बच्चे और नारियां घर पर रहती थी।"

उन्होंने इस प्रकार का जीवन मजबूरी से स्वीकार नहीं किया था, क्योंकि "जीवन व्यस्त था। लोग स्वस्थ थे। उनका संसार उनके खेतों और पशुओं तक सीमित था। सभी परिवारों में जीवन को सुखी और समृद्ध बनाने की होड़ लगी रहती थी।"

खेती और पशुपालन से इतनी उपज होती थी कि ट्रेल (सन् १८२५) के अनुसार "पहाड़ों से मुख्य निर्यात की वस्तुयें—गेहूं, चावल, ओगल, मंडुवा, दालें, तैलीय बीज, हल्दी, अदरख, केशर, नागकेशर, दालचीनी, जड़ी-बूटियां, दाड़िम, अखरोट, पहाड़ी कागज, मधु, कस्तूरी, लकड़ी के वर्तन, चंवर, टट्टू गाय-बैल, तांबे के छड़ और पंखियां थी। मैदान से पहाड़ों में गुड़ और सूती कपड़ा आयात होता था।"

अंग्रेज व्यापारी शासकों की पहली दृष्टि उत्तराखण्ड की वन संपदा पर पड़ी। जब उत्तराखण्ड पर गोरखों का शासन ही था, गवर्नर जनरल ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने १० अप्रैल १८०९ के पत्र में नेपाल के राजा को सूचित किया था कि कुमाऊँ और डोटी के चीड़ के पेड़ों से बड़ी मात्रा में लीसा निकाला जा सकता है, जिसके व्यापार से कम्पनी सरकार और नेपाल सरकार दोनों को लाभ पहुंचेगा। इसके कुछ पहले ही कम्पनी सरकार काशीपुर में अपनी फैक्ट्री स्थापित कर चुकी थी। गवर्नर जनरल के अनुरोध पर नेपाल के राजा ने काशीपुर फैक्टरी के प्रबन्धक रुथरफोर्ड को कुमाऊँ, गढ़वाल और डोटी (नेपाल) के चीड़ के पेड़ों से लीसा निकालने तथा उन क्षेत्रों में पहुंचकर स्थानीय व्यक्तियों को इस कार्य की विधि सिखाने की सुविधा दे दी थी। फलतः लीसे से तारपीन व बिरोजा बनाया जाने लगा। यह तारपीन ब्रिटेन में निर्मित तारपीन की अपेक्षा अधिक पतला, द्रवित, पारदर्शी और सुगंधित था।

कंपनी को राज्य मिलने के बाद तो सरकार को वनसंपदा को खुली लूट करने और उसका मनमाना प्रबन्ध करने की छूट मिल गई। तराई के साल और पहाड़ के चीड़, देवदार के वनों की कटाई-छटाई प्रारम्भ हुई। पुराने मिश्रित वन, जिनसे लोगों को खाद्य, चारा, ईंधन, खाद, रेशा आदि जीवनोपयोगी आवश्यकता की वस्तुयें प्रचुर मात्रा में मिलती थी, समाप्त कर चीड़ आदि के एकल शंकुधारी वन पनपाये गये। इससे केवल वनों की ये प्रत्यक्ष उपजें ही लुप्त नहीं हो गई, बल्कि दो अप्रत्यक्ष उपजें—मिट्टी और पानी—जो लोगों के जीवन प्राण थे, लुप्त होने लगे। जब लोगों ने इस सर्वनाशी वन प्रबन्ध और वनों पर ग्राम समुदाय के बजाय सरकारी अधिकार का विरोध किया तो उसका मनोवैज्ञानिक मुकाबला करने के लिए उन्हें पहाड़ी ढ़ालों पर खेती का विस्तार करने की छूट का प्रलोभन देकखर शांत कर लिया गया। सन् १८९४ की वननीति में तो इसका प्राविधान था ही। इसको किस प्रकार बढ़ावा दिया गया, जड़ाऊखांद (गढ़वाल) के ८५ वर्षीय बुजुर्ग श्री रघुवरदत व्यानी के शब्दों में "सन् १९०९ में यहां कमिश्नर कैम्पबेल आया। यहां पशुपालकों के मौसमी खर्क थे। बांज, बुरांस, बेडू, तिमला और चीड़ के बड़े-बड़े पेड़ तथा हिंसर और किनगोड़ की झाड़ियां थी। उसने लोगों से कहा तुम जितना आबाद (कृषि-विस्तार) करना चाहते हो, हम तुम्हारे नाम पर दर्ज कर देंगे।" देखते—देखते यह सारा इलाका आबाद हो गया। इस प्रकार गांवों के निकट की भूमि पर कृषि और पशुपालन का दोहरा दबाव पड़ा और सुरक्षिन वनों की भूमि पर शंकुधारी पेड़ो को उगाया गया। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवृति कृषि और पशुपालन के लिए घातक सिद्ध हुई। भूक्षरण की गति तीव्र होने से खेती की उपज नाम मात्र की रह गई। चारे के अभाव में पशुओं की नश्ल बिगड़ गई। दुधारू पशुओं के बजाय बेकार पशुओं और मांस के लिए बकरियों की संख्या बढ़ने लगी। यह क्रम अब तक जारी है। परन्तु लोगों के जीवन का मुख्य आधार कृषि पशुपालन नहीं रह गया। उनके जीवन का आधार नौकरी है, जिसने अर्थशास्त्र में अब तक अज्ञात एक नई–मनीआर्डर अर्थव्यवस्था को जन्म दिया।

विकास की मौजूदा दिशा

इस प्रकार सड़क, स्कूल, अस्पताल वाली मौजूदा विकास नीति का निर्धारण लोगों की तत्कालिक आवश्यकताओं के अनुरूप हुआ है। उन्हें सड़कें चाहिये, जिससे वे अपने रोजगार के स्थान (मैदानी नगरों) से दूरस्थ अपने पर्वतीय गांवों में जल्दी पहुंच सकें। घर में रहने वाले उनके परिवार के लोगों को जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की वस्तुयें, जिनमें केवल खाद्य–पदार्थों का आयात ही ७० प्रतिशत तक है, नियमित रूप से और सस्ते दामों पर मिल सकें। सड़क निर्माण की मौजूदा दिशा से यह स्पष्ट हो जाता है। प्रारम्भ में जिला मुख्यालयों और प्रमुख तीर्थस्थानों को देहरादून, ऋषिकेश, कोटद्वार, रामनगर, हल्द्वानी और टनकपुर के रेलवे स्टेशनों से जोड़ने वाली सड़कें बनी। अब दूरस्थ गांवों और अलग-थलग स्थानों पर स्थित सैर-सपाटे के केन्द्रों को इन सड़को से जोड़ा जा रहा है। राजनेताओं के निरन्तर प्रचार के फलस्वरूप लोगों में अपने-अपने गांवों तक सड़क पहुंचाने की होड़ मची हुई है। थोड़े बहुत पढ़े-लिखे ऐसे लोगों के, जो न तो रोजगार के लिए मैदानी नगरो में गये और न सरकारी नौकरी ही प्राप्त कर सके, श्रम ठेकेदार (यद्यपि अधिकांश श्रमिक नेपाली और अब मैदानी क्षेत्रों से आने लगे हैं।) वर्ग का जन्म आजादी के बाद की नई घटना है और ग्राम से लेकर जिला स्तर तक के नेतृत्व में उसकी प्रभावशाली भूमिका है। सड़क निर्माण से उसके तात्कालिक स्वार्थों की पूर्ति होती है। सड़क निर्माण पर अब तक खर्च हुए अरबों रुपये की धनराशि से स्थानीय लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार होना चाहिए था, परन्तु वह नहीं हुआ। क्योंकि निर्माण कार्यों में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण कार्य पर वास्तविक खर्चा तो ३०% ही होता है, शेष इन्जीनियरों और ठेकेदारों की जेबों में चला जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निःसन्देह इसमें वे अपने संरक्षक भ्रष्ट राजनीतिज्ञों का हिस्सा देना नहीं भूलते !

सड़कों के विस्तार से विकास के जिन नमूनों का जन्म हुआ है, उसमें छोटे-छोटे ग्रामीण बाजारों की सृष्टि मुख्य है। ये व्यसन और फैशन की वस्तुओं के आयात के अलावा ताश और गप-शप के अड्डे होते हैं। इनकी चाय की भट्टियां आस-पास की पहाड़ियों पर खड़ी वनस्पति को श्मशान सिद्ध हुई हैं। इतना ही नहीं विकास का एक नया कार्यक्रम पनप रहा है, जिसे नये जन्मे निम्न मध्यम वर्गीय पूंजीपति ने वनाधारित उद्योग का नाम दिया है। यह लकड़ी चीरने की आरा मशीनें हैं। एक लोक कवि ने इसे 'डाल्या बाघ' (आदमखोर की तरह पेड़ खाने वाले बाघ) की संज्ञा दी है। यह विकास के अन्तिम दशक का चमत्कार है। इसमें सबसे अधिक घातक सिद्ध हुआ है चमखड़िक और अन्य चारा प्रजाति के पेड़ों से शटल बनाने का उद्योग ! चारे के लिए पाले-पोसे हुए इन पेड़ों को अब वन–अनुसन्धानकर्ताओं ने लोगों से छीनकर उद्योगपतियों को सौंप दिया है। इनके दोहन में निःसन्देह कर्मचारी, उद्योगपति और राजनैतिक नेता की भ्रष्ट त्रिमूर्ति सक्रिय है। हिमांचल प्रदेश के खिड़की काण्ड ने तो इसका खुला भण्डाफोड़ कर दिया था। उ० प्र० में यह सतह के नीचे दबा हुआ है, क्योंकि इस लकड़ी की बिक्री खुली नीलामी के बजाय लखनऊ से होने वाले आबंटन के अनुसार केवल नौ इकाइयों को होता है। इतना निश्चित है कि कठिनाई से पनपने वाली यह प्रजाति अगले पांच-दस वर्षों में लुप्त प्रायः हो जायेगी। भागीरथी घाटी से तो हो गई है। इस प्रकार जो लोग अभी विकास के प्रभावों से दूर होने के कारण अछूते थे, सड़कों ने उनको नंगा बनाने की प्रक्रिया तीव्र करदी हैं।

सड़कों के विस्तार की अन्य अनुपूरित क्षतियों में भूस्खलन, भूक्षरण से मिट्टी का बहना, उपजाऊ खेतों, नहरों और वनों का उनके मलवे के नीचे दबना है। जब कभी घाटी से चोटी की ओर कैंचियां काटकर सड़कें बनाई जाती हैं तो विनाश की गति बढ़ जाती हैं। वन दोहन की पुरानी पद्धति जिसमें लकड़ी के सलीपर बनाकर नाली या कन्धा ढुलान कर नदियों तक बहाने के लिए पहुंचाया जाता था, बदल गई है। अब तो बड़े-वड़े लठ्ठों या सलीपरों को सड़क तक लुढ़काकर धरती की चमड़ी उधेड़ की जाती है। आरामशीनों के निकट के वनों में तो यह रोज का धन्धा है, अतः स्थान-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान पर भूमि का स्थायी कटाव करने वाले नाले बन गये हैं। इस विनाश लीला को कोई रोकने वाला नहीं हैं, क्योंकि अब स्वयं सरकार (वन निगम के माध्यम से) जंगल की व्यापारी बन गई है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बाद यह इतिहास में पहली घटना है जब व्यापारी के हाथ में डन्डा भी दे दिया गया है ! बाड़ को उजाड़ खाने (खेत चरने) का काम सौंपा गया है।

पर्वतीय मोटर सड़कें, जो पहाड़ों की कमजोर भूरचना के कारण टूटती रहती है और जिनमें अधिक छेड़छाड़ के कारण अब तक कई स्थानों पर स्थायी नासूर बन गये हैं, ठेकेदार–इन्जीनियरों के कामधेनु हैं। इसलिये कभी कभी उनके रख-रखाव पर निर्माण से कई गुना अधिक खर्चा हो जाता है। सड़कों, आरामशीनों, वन-दोहन तथा अन्य निर्माण कार्यों को ठेकेदारी से अल्प समय में सम्पन्न हुए वर्ग ने, जिसके हाथों में अब पर्वतीय समाज का आर्थिक–राजनैतिक नेतृत्व आ गया है, एक अपूरित चारित्रिक क्षति की हैं। हट्टे-कट्टे और परिश्रमी पर्वतीय लोगों को कामचोर व कम परिश्रम से अधिक धन बटोरने की आकांक्षा वाला बना दिया है। अतः वे घरों के निकट मेहनत-मजदूरी के कामों के बजाय अब दूर मैदानों में जाकर छोटी-मोटी नौकरियां करना अधिक पसन्द करते हैं। अब पहाड़ों में निर्माण कार्यों के लिए अधिक से अधिक श्रमिक नेपाल और यहां तक कि देश के मैदानी भागों से आने लगे हैं। सीमा सड़क संघठन को जाड़े के दिनों मैदानी श्रमिकों के शीत के कारण धर चले जाने के कारण, सड़क पर काम करने के लिये स्थानीय श्रमिक नहीं मिलते।

सा विद्या या विमुक्तये : उ० प्र० के मुकाबले पर्वतीय जिलों में शिक्षा और साक्षरता का औसत अपेक्षाकृत ऊँचा है। जनता ने अपने प्रयत्न से स्कूल खोले हैं। इन संस्थाओं को बढ़ाने में घर छोड़कर रोजगार के लिये दिल्ली आदि नगरों में गये प्रवासियों को ग्राम, पट्टी और विकास क्षेत्र स्तर की संस्थाओं की विशेष भूमिका रही है। इसका मनोवैज्ञानिक कारण स्पष्ट हैं। पहाड़ की धरती पर अपने लिये रोजगार पाने से निराश लोगों के सामने एक मात्र विकल्प प्रवास का है और उन्होंने महसूस किया कि स्कूली शिक्षा नौकरी के बाजार में उनकी कीमत बढ़ाने में सहायक होती है। आज उच्च पदों पर आसीन कई पर्वतीय जन घर से मामूली शिक्षा प्राप्त कर बाहर निकले थे। एक बार वे छोटी मोटी नौकरी पर चिपक गये तो उसके बाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राइवेट परीक्षायें देकर ऊँची डिग्रियां हासिल कर ली। इस प्रकार अब शिक्षा कष्टमय और असुरक्षित जीवन से मुक्ति पाने का एक साधन मात्र है और विद्यालय ज्ञान के मन्दिर के बजाय मुक्ति के मन्दिर हैं। गांव-गांव में इन मुक्ति मन्दिरों की स्थापना क्यों न लोकप्रिय कार्यक्रम हो? परन्तु अब पहाड़ों में पिछली शताब्दी तक की तरह साहित्य, आयुर्वेद और ज्योतिष के विद्वान बड़ी संख्या में पैदा नहीं हो रहे हैं।

कृषि और पशुपालन के ह्रास से खाद्यों में पौष्टिक तत्वों के अभाव तथा जंगलों के कटने से जलस्रोतों में पानी की कमी का पर्वतीय लोगो के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। फेफड़ों की बीमारियां (श्वास, दमा और तपेदिक) तथा पेट में कीड़ों की बीमारियां आम हैं। पुरानी पद्धति के समाप्त होने से, जो समाज सेवा के लिए वैद–बामण (पुरोहित–वैद्य) तैयार करती थी और जो जड़ी-बूटियों का उपयोग करते थे, नई स्वास्थ्य सेवाओं की आवश्यकता महसूस हुई। प्रत्येक पंचायत के लिए एक ऐलोपैथिक दवाखाने की मांग होती है। उनमें दवाइयां नहीं होती, परन्तु इन्जेक्शनों के प्रति लोगों में इतना अन्धविश्वास है कि वे डिस्टिल्ड वाटर के इन्जेक्शन लग जाने पर ही सन्तोष मान लेते हैं।

भेड़ और पेड़ : सन् १९६० में चीनी आक्रमण के खतरे से केन्द्र और राज्य सरकार का ध्यान उत्तरी सीमा पर स्थित उपेक्षित क्षेत्रों की ओर गया। सघन विकास और प्रशासन के लिये सीमान्त तहसीलों (उ० प्र० में उत्तरकाशी, चमोली और पिथौरागढ़) को जिले का दर्जा दे दिया गया। इन क्षेत्रों के विकास के लिए सड़क, स्कूल, अस्पताल की विकासत्रयी के अलावा भेड़ और पेड़ का नया नारा भी दिया गया। स्थान-स्थान पर विदेशी उत्तम नस्ल के भेड़ो के प्रजनन फार्म खोले गये और लोगों को उदारता-पूर्वक ऋण और अनुदान बांटे गये। ये भेड़ें सुरक्षित जीवन बिताने वाले साहबों की तरह पहाड़ों की दुरूह परिस्थितियों के लिए बहुत मंहगी मेहमान साबित हुई। उनके साथ ही कुछ स्थानों पर ब्रह्मचारी सांड आयात किये गये। अब तो दोगुली जर्सी नस्ल की गायें भी आने लगी हैं। भेड़ पालन के लिए आवश्यक चारागाहों के अभाव में इन कार्यक्रमों से अपेक्षित लाभ नहीं मिला। ऊंचाई के क्षेत्रों के समतल बुग्यालों (चारागाहों) को वन विभाग ने सरकारी तन्त्र को घी से चुपड़ने वाले गूजरों को सौंप दिया। स्थानीय भेड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पालकों को चट्टानी क्षेत्रों की शरण लेनी पड़ी, जहां उनकी भेड़ें चट्टानों से गिरकर मरने लगी। शीतकाल के लिये तराई के पाद प्रदेश के चारागाहों से, जो आजादी आने तक पर्वतीय पशुपालकों के 'घमतप्पा' गोठ थे, कृषि और नगरों का विस्तार हुआ। ये चारागाह उनसे छिन गये। पहाड़ की घाटियों में शंकुधारी वनों ने चारा समाप्त कर दिया। इधर मोटर सड़कों के विस्तार से भारवाहक भेड़ बकरियों की आवश्यकता नहीं रही। अतः भेड़ पालन को अपेक्षित सफलता नहीं मिली

पशुपालन के लिए पौष्टिक चारा एक अनिवार्य आवश्यकता है। पहाड़ों में खेतों पर चारा उगाना सम्भव नहीं है। प्राकृतिक जंगली चारा व्यापारिक वानिकी के पेट में समा गया। अतः पहाड़ों में मैदानों से अब केवल अन्न और सब्जी जैसी अनिवार्य आवश्यकताओं की वस्तुओं का आयात नहीं होता, बल्कि क्रास जर्सी गायों के लिये ट्रकों पर बरसीम भी लदकर आती हैं। पुरोला के एक कृषक की क्रास जर्सी गाय के लिए तो १०० कि० मी० दूर चोहड़पुर से बस की छत पर बरसीम लदकर आती है। जिस दिन सड़क टूट जाती थी, गाय को एकादशी का व्रत करना पड़ता था।

'पेड़' के नारे को सार्थक करने के लिए सेब के पेड़ लगाने को प्रोत्साहन दिया गया। सेब की खेती के लिए कुशल ज्ञान की आवश्यकता होती है। इस अभियान का लाभ वे ही साधन सम्पन्न परिवार उठा सके, जिनके पास जीविका का वैकल्पिक साधन था। जिन दिनों सेब पकते हैं, उन्हीं दिनों पहाड़ों में भूस्खलन के कारण सड़कें टूट जाती हैं और यातायात अवरुद्ध हो जाता है। मैदानी मंडियों में सेब पहुंचाने के लिये पैकिंग से लेकर यातायात के लिए एक कुशल और मजबूत संघठन चाहिये, जिसके अभाव में छोटे उत्पादकों को प्रोत्साहन नहीं मिला। मैंने सितम्बर ७८ में मोरी के ग्रामीण बाजार में एक सेब उत्पादक को देखा था, जो १४ कि० मी० दूर अपने गांव से पीठ पर लादकर सेब की पेटी लाया था, परन्तु पचास पैसे किलो की दर से भी कोई सेब खरीदने को तैयार नहीं था।

जमाने की मांग: पहाड़ और पहाड़ के निवासी—दोनों एक नाजुक दौर से गुजर रहे हैं, क्योंकि दोनों के अस्तित्व के लिये आवश्यक स्थिरता समाप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गई है। अगर आज भगवान कृष्ण को गीता का ज्ञान देना होता तो वे 'स्थावराणां हिमालय' के बजाय 'अस्थावराणां च हिमालय' कहते। पिछले दशक में बेलाकूची में अलकनन्दा की प्रलय लीला, गेंवला, वराली, पिलखी, डडुवा आदि गांवों के जानलेवा भूस्खलन, तवाघाट (१६७७, १६७६) और कोन्था (१६७६ की तबाही, भागीरथी के अवरोध (१६७८), ज्ञानसू काण्ड (१६८०) और धारचूला तथा नेपाल भूकम्प की विनाशलीला (जुलाई १६८०) के द्वारा प्रकृति इसके स्पष्ट संकेत दे चुकी है। निरन्तर होने वाली दुर्घटनाओं के समाचार सुनते सुनते हमारे हृदय पाषाणवत् हो गये हैं, संवेदन शीलता लुप्त हो गई है, इसलिए ये केवल सामान्य घटनायें बनकर पीछे छूट जाती हैं। ये प्राकृतिक प्रकोप आकस्मिक दैवी दुर्घटनायें नहीं हैं। इनमें से अधिकांश मनुष्यकृत हैं। ढ़ालों पर पहाड़ों के प्रहरी का काम करने वाले हरे पेड़ों की बड़े पैमाने पर व्यापारिक कटाई और लीसा दोहन जैसी वन-विनाश की अन्य प्रवृतियां, लठ्ठों का लुढ़कान, भूगर्भीय दृष्टि से कमजोर क्षेत्रों में मोटर सड़कों का निर्माण, विस्फोटकों का प्रयोग, आदि विनाशकारी प्रवृतियां पहाड़ों की अस्थिरता को बढा रही हैं।

पहाड़ बड़े नगरों और निर्माण कार्यों को स्वीकार नहीं करते। सन् १८८० में, जब नैनीताल का विस्तार हो रहा था, सितम्बर में हुए भारी भूस्खलन से और तीन वर्ष पूर्व शिमला में रिज क्षेत्र के घंसने से इसकी चेतावनी मिल गई थी। बांधों के निर्माण के लिये होने वाली छेड़छाड़ और विस्फोटकों के उपयोग के दुष्परिणाम भागीरथी पर मनेरी–भाली व्यावर्तन सुरंग के ध्वस्त होने तथा टिहरी बाँध की बाईं व्यावर्तम सुरंग के निर्गम स्थल व प्रस्तावित भूमिगत जल विद्युत गृह स्थल के हाल ही में धंस जाने से स्पष्ट हो गये हैं।

ये विशाल बांध निश्चय ही राष्ट्र निर्माण की महान् योजनायें हैं। इसी प्रकार जंगलों की कटाई का औचित्य सिद्ध करने के लिये उद्योगों के कच्चे माल की पूर्ति का प्रश्न उठाया जाता है। चीड़ के पेड़ रेलवे के सलीपर देने के लिए, लीसा विदेशी मुद्रा कमाने के लिए, और शटल बनाने के लिए चमखड़िक के पेड़ काटना विदेशी मुद्रा बचाने के लिये आवश्यक है। परन्तु हम कौन से राष्ट्रीय हितों की रक्षा करना चाहते हैं? क्या तात्कालिक लाभ के लिए नियमित रूप में अनंतकाल तक मिलने वाले हितों का बलिदान तो नहीं कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय देश की सुख और समृद्धि का पहाड़ है। यह आध्यात्मिक और साहित्यिक प्रेरणा का पहाड़ है। हिमालय के इस स्वरूप के निर्माण में सबसे बड़ा हाथ उसका शृंगार करने वाली वनस्पति का—पेड़ पौधों का—हैं। देश के लिये हिमालय के वनों की मुख्य उपज मिट्टी और जीवनदायी जल है। यह हमारी महान् नदियों की जन्मभूमि हैं। अतः क्षणिक हितों के लिये यहां की वनस्पति का विनाश सुप्रसिद्ध हिमालय सेविका सरला बहन के शब्दों में "मिट्टी को निर्यात करने वाला राष्ट्रद्रोह का कार्य है।" अर्थशास्त्रियों को यह हिसाब लगाना होगा कि मिट्टी और पानी का उत्पादन अधिक लाभदायक है, या लकड़ी, बिरोजा और शटल का। कलकत्ता विश्वविद्यालय के कृषि वैज्ञानिक डा० तारक मोहन दास ने अपने विद्वतापूर्ण शोध के द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि एक पेड़ अपने पचास वर्ष के जीवनकाल में १५ लाख ७० हजार रुपये की आमदनी देता है, जब कि इसे काटकर लकड़ी से केवल ०.३ प्रतिशत की ही आय होती है!

राष्ट्र के लिए हिमालय की दूसरी देन विशिष्ट गुणों वाली मानवशक्ति है। पहाड़ के कठोर जीवन और ठंडी जलवायु ने लोगों को परिश्रमी और कठिनाइयों से मुकाबला करने वाला बनाया है। जीवन में जोखिम उठाने के अधिक अवसरों के कारण तुरन्त और स्वतन्त्र निर्णय करने की शक्ति का विकास किया है। कठोर परिश्रम ने इमानदारी दी है। ये गुण किसी क्षेत्र विशेष या किसी देश के कल्याण के लिये ही आवश्यक नहीं हैं, बल्कि संपूर्ण मानव जाति की एक महान् संपति हैं। पर्वतीय विकास का एक लक्ष्य जहां पहाड़ों की स्थिरता के लिये प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा होनी चाहिये, उसका दूसरा लक्ष्य वहां के निवासियों को एक स्थिर जीवन की गारण्टी देना होना चाहिये, क्योंकि इन गुणों का विकास एक विशिष्ट परिवेश में ही होगा। सीमा क्षेत्र होने के कारण हमें पहाड़ों को आज की तरह केवल बूढ़े, बच्चे और स्त्रियों का आश्रय स्थल मात्र नहीं रहने देना है, बल्कि लोगों को वहां की धरती से सीधे जोड़ने वाली विकास योजना बनानी हैं, जिससे वहां का टूटा हुआ गृहस्थी जीवन लौट सके।

आज की पहली और तात्कालिक आवश्यकता तो स्त्रियों को, जो पहाड़ों में जीवन-संघर्ष के बीच में हैं, कष्टमय जीवन से मुक्ति दिलाना है। घास, लकड़ी और पानी का प्रबन्ध करने में ही उनकी सारी शक्ति और समय चला जाता हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापारिक वानिकी ने इनका अभाव पैदा कर दिया है। प्रतिवर्ष ३-३, ४-४ के समूहों में आपस में रस्सियों से बंध कर नवयुवतियां इस कष्टमय जीवन से छुटकारा पाने के लिये नदियों में छलांग मार कर आत्महत्या करती हैं। पर्वतीय महिलाओं ने अपने इस नारे के द्वारा योजना भवन के विद्वानों और राजभवनों के प्रशासकों द्वारा निर्मित व कार्यान्वित योजनाओं का मूल्याङ्कन किया है :—

"घास, लाखडु अर पाणी; यां का विना योजना काणी"

[घास, लकड़ी और पानी के प्रबन्ध के विना योजना अन्धी है।] इसके सुधार का एक मात्र उपाय है, पहाड़ी ढ़ालों पर वनों का व्यापारिक कटान बन्द करना तथा गांवों की परंपरागत सीमाओं का, जो सन् १८२२-२३ में ट्रैल ने अपने बन्दोवस्त में कायम की थी और जिसे आज भी लोग साल अस्सी के नाम से याद करते हैं, वन प्रबन्ध गांव समुदाय को फल, चारा, ईंधन, ऊर्वरक और रेशा प्रजाति के पेड़ों को उगाने के लिए सौंपना। पेड़ आज भी पहाड़ के पेचीदा प्रश्न का उत्तर हैं, पर वह तब ही पनपेगा जब उसके लिए व्यक्ति को प्रोत्साहन दिया जावेगा। इन नये क्षेत्रों पर वृहद वृक्षारोपण की दस वर्षीय योजना के अलावा, जिसके अन्तर्गत लोगों को निरन्तर काम के बदले अन्न मिलता रहे, १५ अंश से अधिक ढ़ालवाले निजी खेतों में भी उनमें पैदा होने वाला अनाज मुआवजे के रूप में देकर, पेड़ उगाने को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये।

आज तक पर्वतीय विकास योजनाओं का मूलभूत दोष यह रहा है कि हमने सड़क, स्कूल और अस्पताल के रूप में पहाड़ों में सुविधाओं का विस्तार तो किया है, परन्तु वहां पर स्थायी जीवन के लिए आधारभूत पूंजी–मिट्टी और पानी–के ह्रास को बचाने और उन्हें बढ़ाने के लिए कुछ नहीं किया है। एक स्थायी स्वाश्रयी और अनन्तकाल तक जीवित रहने वाली विकास योजना का लक्ष्य आधारभूत पूंजी–मिट्टी और पानी–का निर्माण करना, होना चाहिए। पहाड़ों के सन्दर्भ में इसकी दुहरी अनिवार्यता है–पहाड़ों के विकास के लिए और सारे देश के विकास के लिये।

विशेषज्ञों का दल—यथा स्थिति (स्टेटसको) का स्वभाव होता है कि वह अपने बचाव के लिए उसे कायम रखने में लगी समस्त शक्तियों को संघठित करती है। पर्वतीय विकास को इससे मुक्त करने और नई दिशा देने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयासों में मैं यह खतरा स्पष्ट देखता हूं। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि हिमालय के विकास की दिशा को निर्धारित करने के लिए योजना आयोग वैज्ञानिकों की एक उच्चस्तरीय समिति का गठन करे, जिसमें कृषि, वानिकी, भूगर्भशास्त्र, पर्यावरण शास्त्र और अन्य विभागों के विशेषज्ञ हों, वह आज की चालू योजनाओं की आलोचनात्मक समीक्षा करने के पश्चात् पर्यावरण की रक्षा के पहलू को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए, नई विकास रणनीति तय करे। वह समिति यह फैसला भी दे कि १–वैज्ञानिक दोहन के नाम पर वनों की व्यापारिक हजामत का क्या औचित्य है? लोगों के जीवन के लिए मिश्रित प्राकृतिक वन आवश्यक है या शंकुधारी एकल वन? २–सड़क निर्माण को कितना महत्व देना चाहिये? ३–बड़े बांधों के निर्माण के क्या प्रभाव पड़ेंगे? यदि इन प्रश्नों का समाधानकारक उत्तर प्रस्तुत नहीं किया गया तो हिमालय के विकास के नाम पर खर्च होने वाली अरबों रुपये की धनराशि को हिमालय से निकलने वाली नदियों में डुबाने के समान होगा।

—सुन्दरलाल बहुगुणा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरकाशी की संस्कृति और इस पर महाभारतकालीन प्रभाव

जितेन्द्रसिंह एव रघुनाथसिंह नेगी

उत्तरकाशी नामक स्थान जिसे सम्प्रति उत्तर प्रदेश के उत्तरकाशी जनपद का मुख्यालय बनने का गौरव प्राप्त है, स्थानीय निवासी बाड़ांहाट कहते हैं। रवांई तहसील से निर्मित यह जनपद सामन्त-युगीन गढ़वाल राज्य का एक महत्वपूर्ण अंग था। गंगा और यमुना जैसी नदियों का उद्गम स्थल होने के कारण यह प्रदेश चिरकाल से ही विख्यात है। महाभारत में इनका उल्लेख कुलिन्द प्रदेश[1] और स्कन्द पुराण में केदारखण्ड[2] नामों से हुआ है। केदारखण्ड[3] का विस्तार दक्षिण में गंगाद्वार (हरिद्वार) से लेकर उत्तर में हिममंडित महाहिमालय के श्वेत शिखरों तक और पश्चिम में तमसा (टोंस) नदी से पूर्व में बौद्धांचल (नन्दादेवी) पर्यंत माना गया है। इसी बहुचर्चित केदारखण्ड के अन्तर्गत तमसा नदी से लेकर गंगा के उद्गम प्रदेश गंगोत्री-गोमुख तक विस्तृत उत्तरकाशी जनपद है। इस भू-भाग की सांस्कृतिक सम्पदा सदैव से ही निराली मानी जाती रही है और आज भी अपनी वैविध्यता और विचित्रता के लिए विख्यात हैं। यहां की संस्कृति में कतिपय महाभारत कालीन सांस्कृतिक संकुल अक्षुण्ण है, जिसका श्रेय यहाँ की दुर्गम पर्वत शृंखलाओं और पथविहीन सघन वनों को है। जिनके कारण यहां आवागमन अवरुद्ध रहा और संस्कृति संक्रमण सुलभ नहीं हो सका।

महाभारत से विदित है कि इस प्रदेश का तत्कालीन शासक सुबाहु[4] था। सुबाहु[5] के राज्य में मेरुमन्दर पर्वतों के बीच देव रिंगाल की छाया में किरात, खश, तंगण, परतंगण, तुषार, दरद, ज्योहा, परद, प्रदर, दीर्घवेणु

---

१. महाभारत, वन पर्व १४०/२४–२५

२-३. स्कन्द पुराण, केदारखण्ड ४०/२७–२९

४. महाभारत, वनपर्व १७७/११–१२

५. महाभारत, सभापर्व ५२/२–७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कुलिन्द निवास करते थे। यह लोग राजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में पिपीलिकाओं द्वारा निकाले गए पिपीलक नामक स्वर्ण से भरे द्रोण (३२ सेर का मापक पात्र) श्वेत एवं श्याम चंवर, मधु, गंगाजल, कैलाश की वला-महावला औषधियाँ और बहुमूल्य रत्नादि पार्वतीय उपायनों को लिए शत्रुहीन राजा के द्वार को घेरे खड़े थे। युवान च्वांड[६] के यात्रा सस्मरणों में ब्रह्मपुर का उल्लेख आया है, जिसकी पहिचान विद्वानों ने गढ़वाल से की है। ब्रह्मपुर का उत्तरवर्ती प्रदेश स्वर्णगोत्र प्रदेश स्वर्ण खानों के लिए प्रसिद्ध था और सम्राट हर्ष के अधिपत्य में था। विक्रम की ९वीं शदी के लिपिबद्ध कत्यूरी ताम्र शासन (पद्मट) से स्पष्ट है कि भागीरथी उपत्यका अपने उद्गम प्रदेश में टंकणपुर कहलाती थी। इस प्रदेश के निवासी टंकण या तंगण थे जो टंकण (सुहागा) और तंगण घोड़ों का व्यापार करते थे। इसके अतिरिक्त गंगाजी के किनारे तथा उत्तर में अनेक नाग बस्तियाँ थीं, जिनके नाग महान पराक्रमी थे। गंगाद्वार के पास किसी नागराज का शासन था, जिसकी पुत्री उलूपी[९] का अर्जुन के साथ विवाह हुआ था।

ऐसे वैभव सम्पन्न ऐतिहासिक भू-भाग से सम्बद्ध उत्तरकाशी जनपद के तीन भिन्न भौगोलिक परिस्थितियों वाले ग्रामों—बड़ेती, देवरा और थराली में सम्पन्न विस्तृत एवं दीर्घकालीन मानववैज्ञानिक अन्वेषणों पर आश्रित प्रस्तुत शोध लेख, यहां के सांस्कृतिक विन्यास और इसमें गुन्थे हुए महाभारत कालीन सांस्कृतिकावशेषों का विश्लेषण करता हैं।

सामाजिकाधिकरण :

यहां का समाज संस्तरित है और दो प्रमुख वर्गों में विभक्त है। पहले वर्ग को वीठ और दूसरे को डोम कहते हैं। बर्गगत प्रचलित आचार संहिता से प्रतीत होता है कि यहां वैदिक वर्ण व्यवस्था प्रतिमान का अनुकरण कुछ ही समय पूर्व हुआ है, जिसके फलस्वरूप वीठ वर्ग में ब्राह्मण और राजपूत दो जातियों का उदय हुआ और इन जातियों से अनेक उपजातियों का। इसी प्रकार डोम वर्ग से तीन जातियां-मिस्त्री, बाजगी और डोम उत्पन्न हुई

६. युवान च्वांडस, ट्रेवेल्स इन इंडिया, वाटर्स, १९६१ पृ. ३३०
७. उत्तराखण्ड का इतिहास, डबराल भाग १–पृ. ३८१
८. महाभारत, आदि पर्व ३
९. महाभारत, आदि पर्व २१३/३२–३३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनकी उपजातियां अभी बनी नहीं किन्तु बनने के लक्षण स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे हैं। बीठ वर्ग से ब्राह्मण और राजपूत बनाने वाली आधारशिला श्रम–विभाजन है जिसके कोई ठोस प्रमाण नहीं उपलब्ध होते। दोनों ही जातियों के लोग कृषिकर्मा हैं। दोनों ही जाति के लोग मन्दिरों में पूजा-पाठ करते हैं। यद्यपि आज बड़ेती, देवरा और थराली में पूजा–पाठ करने हेतु ब्राह्मण ही नियुक्त हैं किन्तु नैटवाड़ के पोखू मन्दिर और जखोल के दुर्योधन मन्दिर के पुजारी अभी भी राजपूत ही हैं। थराली के राजपूतों का कथन है कि कुछ समय पूर्व उनके पितामह ही गंगोत्री मन्दिर में पूजा-पाठ करते थे, मुखवा के ब्राह्मण बाद को बताए गए। सिंगतुर, पंचगाई और फतेह पर्वत निवासी ब्राह्मण और राजपूतों में अभी भी रोटी-बेटी के सम्बन्ध हैं। किन्तु यात्रा-मार्गों के सन्निकट ग्रामों में इस प्रथा का निराकरण हो गया है। ब्राह्मण और राजपूतों में पर्याप्त भेद उत्पन्न हो गये हैं जो प्रमुख रूप से भोजन की सुविधा और इसके ग्रहण पर आधारित हैं। ब्राह्मण अपनी असम्बन्धित उपजातियों और राजपूतों के हाथ से पके जूठे भोजन जैसे भात एवं उर्द तथा तोर की दाल का सेवन नहीं करते। इसी प्रकार का व्यवहार राजपूत भी अपनी असम्बन्धित उपजातियों के साथ करते हैं। किन्तु दोनों जातियों के लोग परस्पर सुच्चे भोजन, जैसे रोटी और छीमी की दाल को ग्रहण करते हैं।

डोम वर्ग की जातियों का निर्माण श्रम–विभाजन की स्पष्ट आधारशिला पर हुआ है। वर्गगत प्रत्येक जाति में कार्यों की बहुलता होने पर भी अलग अलग उपजातियां नहीं बन पाई हैं। मिस्त्री जाति के लोग डोमवर्ग में सर्वोपरि हैं, इनका पुरातन कार्य मृदभाण्ड, स्वर्ण, लौह एवं काष्ठोपकरण तथा भवन निर्माण है। यह डोमवर्गीय अन्य जातियों से सुच्चा या जूठा किसी प्रकार का स्पर्श किया भोजन ग्रहण नहीं करते। इस वर्ग में द्वितीय स्थान बाजगी या भुमरिया जाति को प्राप्त है। बाजगी जाति के लोगों का व्यवसाय नृत्य-वादन, क्षौरकर्म, वस्त्रों की सिलाई और टोकरी निर्माण है। यह लोग मिस्त्री जाति से दोनों प्रकार के भोजन ग्रहण करते हैं किन्तु तृतीय श्रेणी में आने वाली डोम जाति से किसी प्रकार का भोजन ग्रहण नहीं करते। डोम जाति के लोगों का व्यवसाय हल चलाना, मृत पशुओं से चर्म निकालना, उसको पकाना और जूते बनाना है। यह जाति अपने वर्ग की दोनों जातियों से दोनों प्रकार के भोजन ग्रहण करती है। डोम वर्ग की सभी जातियां, बीठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग की दोनों जातियों से दोनों प्रकार के भोजन ग्रहण करती है किन्तु बीठ वर्ग की कोई भी जाति डोम वर्ग की जातियों से भोजन ग्रहण नही करती।

बीठ और डोम दोनों वर्गों की जातियों के वर्तमान गोत्रों और महाभारत तथा अन्य ग्रन्थों में वर्णित ऐतिहासिक जातियों के नामों में पर्याप्त घनिष्टता है, जो यह स्पष्ट करती है कि तत्कालीन जातियां आज भी इस जनपद में कहीं परिष्कृत और कहीं विकृत रूप में विद्यमान हैं। बड़ेती के मिस्त्री जाति के लोगों का गोत्र तगान है जो स्पष्टत: प्राचीन तंगण जाति का अपभ्रंश है। देवरा तथा इसके निकटवर्ती ग्रामों के राजपूत अपने को सोनगोत्री कहते हैं, और इसी आधार पर रामासिराई के लोग उन्हें सूंगड़ नामक शब्द से पुकारते हैं जो वस्तुतय: प्राचीन स्वर्ण गोत्र के ही विकृत रूप हैं। देवरा के बाजगी अपना गोत्र अगरथ बताते हैं जो संभवत: महाभारत ख्याति के कर्ण के पालन-पोषण कर्ता शुद्रवंशी अथिरथ का ही अपभ्रंश है। उल्लेखनीय है कि देवरा में कर्ण का विशाल मन्दिर है और सम्पूर्ण पट्टी के आराध्य देवता आज भी कर्ण ही हैं। थराली के राजपूतों का गोत्र सोनगोत्र और कशि है जो क्रमश: प्राचीन स्वर्णगोत्र और खश जाति का समर्थक है।

समाज की इकाई को कुटुमधारी या टबरधारी कहा जाता है, जो अक्षरश: संयुक्त परिवार है। संप्रति परिवार पितृ सत्ताक और पितृनामी हैं, समाज के दोनों वर्गों में महिलाओं को आदर-सत्कार एवं उच्च सम्मान प्राप्त है। वे पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हैं। गृह कार्य से लेकर कृषि कर्म का सम्पूर्ण भार उनके कन्धों पर ही निर्भर है। वे अत्यंत कार्यकुशल और परिश्रमी हैं। सम्भवत: इसीलिए यहां विवाह करने के लिए कन्या शुल्क देना पड़ता है। अनुभवहीन अविवाहित कन्याओं की अपेक्षा विविधि कार्यों में दक्ष और अनुभवी परित्यक्ता महिलाओं को अपनाने के लिए अधिक मात्रा में कन्याशुल्क लेने का प्राविधान है। विवाह जीवन का एक प्रमुख लक्ष्य है। इस लक्ष्य को पूर्ण करने के लिए मैंतुल (क्वांरी) और छुटोड़ (परित्यक्ता) दोनों ही विवाहों को सार्वजनिक मान्यता है। सर्वत्र संटवारा (विनिमयात्मक) ढ़ंग से विवाह करने की रीति है जिसके अन्तर्गत ममेरे और फुफेरे भाई-बहनों में विवाह सम्भव है। विधुर और विधवा विवाहों के साथ भावज एवं साली विवाहों का सर्वत्र प्रचलन है। विधवा अपने मृत पति के घर रह कर भी टेक्वा या कठाला (सेवक पति) रख सकती हैं, जिससे उत्पन्न सन्तान को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैतृक सम्पत्ति लेने का अधिकार है। विवाह-विच्छेदन को दोनों वर्गों में वैधानिक माना जाता हैं, जिसकी पहल प्रायः महिलाएं ही करती हैं और ऐसी परिस्थितियों में महिला या महिला पक्ष परित्यक्त पति को उसके द्वारा दिया गया कन्याशुल्क एवं गहना वापस कर देता है। कन्या शुल्क की यह राशि द्विगुणित मात्रा में नए पति से ही लेने की परम्परा है।

विवाहित महिलाएं अपने मैत (मां के घर) में ध्याण या ध्यांटुड़ी कहलाती है और अपने सास्रें (ससुराल) में रयांटुड़ी। विवाहित महिलाओं का जीवन सास्रे की अपेक्षा मैत में अधिक स्वच्छन्द है। जमाई अपनी ससुराल में सेवक की तरह काम-काज करता है और वह अपनी पत्नी को अपनी इच्छा के विपरीत कार्य न करने को बाध्य नहीं कर सकता। जनपद के दुर्गम क्षेत्रों में द्रोपदी (वहुपतित्व) प्रथा का प्रचलन व्यक्त या अव्यक्त रूप से अभी भी है। एक परिवार के समस्त भ्राता व्यक्तिगत पत्नियां रखकर वहुपतिपत्नीत्व प्रथा का आचरण करते हैं। समाज अवगुंठन प्रथा का पोषक नहीं है। परिहास का कोई विशेष नियम नहीं है। परिहास की मान्यता अत्यन्त सीमित है, जिसके अन्तर्गत सर्वाधिक बल मामा और भान्जे की वहू की अस्पृश्यता को दिया गया है। कुछ समय पूर्व यहां की महिलाओं को पति या पतियों की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनने का सौभाग्य प्राप्त था और जिसके अन्तर्गत पति या पतियों की सम्पत्ति पहले पत्नियों में समान विभक्त होती थी और फिर उनके पुत्रों में, जिसे सौतिया बांट कहा गया है। उक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि इस समाज में आज भी मातृ सत्ताक प्रथा के अनेकानेक लक्षण विद्यमान हैं जो सम्भवतयः एक समय इस भू-भाग में प्रचलित थी।

समाज अभी अस्पृश्यता प्रतिमान का पूर्णरूपेण अनुकरण नहीं कर सका है। बीठ वर्ग के कांसी (फूल) धातु निर्मित पात्रों के अतिरिक्त सभी धातुओं के पात्रों में डोम वर्ग की सभी जातियां भोजन ग्रहण कर सकती हैं और विवाहादिक अवसरों पर पात्रों का पारस्परिक लेन देन भी होता है। सिगरेट-बीड़ी का उभय वर्गीय आदान-प्रदान होता है किन्तु हुक्के पर प्रतिबन्ध है। बीठ वर्गीय गृहों के रसवाड़ा आदि कक्षों में डोम वर्गीय लोगों के प्रवेश पर प्रतिबन्ध है। यह प्रतिबन्ध डोम वर्गगत जातियों में अत्यन्त कठोर है। मिस्त्री के गृह में बाजगी व डोम तथा बाजगी के घर में डोम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं जा सकते।

दोनों वर्गों की विभिन्न जातियों में कुछ वैवाहिक नियम प्रचलित हैं, किन्तु व्यवहारिक जीवन में अभी इनका पूर्ण समावेश नहीं परिलक्षित होता। बीठ वर्ग में अन्तः जातीय और वहिर्उप-जातीय विवाहों की मान्यता है। और डोम वर्ग में अन्तः जातीय और मुन्डित दाप-भाय वहिर्विवाहों का प्रचलन है। डोम वर्गगत जातियां तो इस विधान का अक्षरशः पालन करने हेतु कटिबद्ध हैं किन्तु बीठ वर्ग की जातियां अपनी रीति का अनुकरण नहीं करती। कई स्थानों पर यथा रवाई में ब्राह्मण और राजपूत परस्पर विवाह करते हैं। धराली के पवांर राजपूत अपने ही वंश के वर्जित दाय-भायों से विवाह सम्पन्न करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि बीठ वर्ग के लोग भी डोम वर्ग की भांति मुन्डित दाय-भाय वहिर्विवाहों को मान्यता देते हैं, जो सम्भवतयः यहां की प्राचीन परम्परा है।

दैनिक चर्या का यहां अनुपम प्रतिमान उपलब्ध है। प्रातः छैः बजे नामती (नौवत) लगते ही प्रायः सभी आवालबृद्ध अपना बिस्तर छोड़ देते हैं और शौच आदि से निवृत्त होकर निर्धारित कार्य सम्पन्न करने का उद्यम करते हैं। सभी प्रकार के काम चाहे वह पशुचारण हो, या हल चलाना, जंगल जाना हो या बाजार, शाम की संध्या तक पूर्ण कर लिए जाते हैं और भोजनोपरांत रात्रि एक दो घंटा नृत्य-वादन से मनोरंजन कर १० वजे रात्रि की नामती लगते ही लोग अपने-अपने विस्तर पर सोने के लिए पहुंच जाते हैं। नामती शब्द नौबत का अपभ्रंश है जिसके द्वारा बाजंगी ढ़ोल वजाकर ग्राम के सभी रक्षक देवताओं का स्मरण करता है और सभी निवासियों के स्वास्थ्य एवं समृद्धि की कामना करता है। पर्व त्योहार के अवसरों पर प्रातः प्रत्येक द्वार पर नामती लगाने का प्राविधान है किन्तु मृत्यु आदि अशुभ कार्यों में नामती निषिद्ध है।

समय परिवर्तन के साथ सामाजिक संगठन का प्रारूप भी बदल गया है अन्यथा पहले प्रत्येक ग्राम में एक थोकदार या सयाणा हुआ करता था और एक पौरी (प्रहरी)। थोकदार का कार्य लगान वसूलना था जो अब पटवारी करता है, और थोकदारों का कोई अस्तित्त्व नहीं रह गया हैं। पौरी का कार्य गांव की रक्षा तथा सन्देशवाहन था। देवरा के पौरी तो आज भी गांव रक्षार्थ रात्रि को गांव के चक्कर लगाते हैं जो अन्यत्र नहीं है। किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्देशवाहन का कार्य तो अभी भी पौरी सभी ग्रामों में कर रहे हैं।

समाज के व्यक्तियों में पारस्परिक सौहार्द्रता और सहजीवन की अनेक पद्धतियां व्यवहृत होती हैं। पड्याला प्रथा सहजीवन का एक ज्वलन्त उदाहरण है जो सर्वत्र प्रचलित है। इस प्रथा के अनुसार ग्राम की सभी जातियां वर्ग वैभव त्यागकर एक दूसरे के यहां बारी-बारी से गौंत डोलने से लेकर निराई, रोपाई, बुआई और कटाई इत्यादि सभी प्रकार की श्रम साध्य क्रियाओं में श्रम विनिमय करते हैं। पड्याला वस्तु या पूंजी और श्रम के पारस्परिक विनिमय से भी सम्बन्धित हो सकता है। उदाहरणार्थ यदि किसी के पास बैल हैं और दूसरे के पास नहीं, तो दोनों व्यक्तियों में पड्याला हो सकता है। जिसके पास बैल नहीं हैं वह अपना श्रम लगाकर, बैल वाले व्यक्ति से बैल लेकर बारी-२ से अपने और बैल वाले के खेतों की जुताई करता है। निर्बल और सत्रंस्त परिवारों को रैंम-प्रथा के अन्तर्गत, बिना किसी प्रतिफल के हर सम्भव सहायता करने के लिए ग्रामवासी उद्यत रहते हैं। सौहार्द्रता का उत्कर्ष धराली में व्याप्त मांगणी प्रथा में परिलक्षित होता है। इस प्रथा में भूमिहीन कृषिकर्म में समर्थ व्यक्ति अधिक भूमि वाले व्यक्तियों से दो-तीन फसल पैदा करने के लिए निःशुल्क भूमि प्राप्त कर जीविकोपार्जन करते हैं। अध्याली प्रथा का सर्वत्र प्रचार है, जिसमें भूमिहीन लोग भूमिधरों से भूमि लेकर फसल पैदा करते और आधा २ अनाज बांट कर सहजीवन व्यतीत करते हैं।

धर्माधिकरण :

दोनों वर्गों के लोग अत्यन्त ही धर्म परायण हैं। सम्भतयः पर्यावरण के एकाकीपन और प्राकृतिक प्रकोपों ने उन्हें धर्मनिष्ठ होने के लिए बाध्य कर दिया है। वस्तुतः इनके धार्मिक जीवन को हम सामाजिक पहलुओं से पृथक नहीं कर सकते। प्रत्येक सामाजिक क्रिया धर्मविभूत है। यही कारण है कि यहां बहुदेववाद है और बहुदेववाद होते हुए भी एक देवता की प्रधानता है। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए हर सम्भव-असम्भव कार्य कर लिए जाते हैं। लोग देवताओं की इच्छा से अपना घर जलाकर भस्म कर सकते हैं या देखते ही देखते उसे धराशायी कर सकते हैं। हमारी उपस्थिति में ही देवरा के एक बाजगी अपना सुन्दर व मजबूत प्रस्तर-काष्ठनिर्मित घर देवता के मन्दिर के पास से उधेड़ कर एक खेत में बनाने लगा, क्यों कि कर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवता की इच्छा नहीं थी कि उसका घर वहां रहे, यदि रहता तो सन्तान नहीं होती।

प्रायः सभी लोग हिन्दू मतावलम्बी हैं किन्तु इनके देवी देवता विचित्र और लौकिक हैं। जिसमें विशिष्ट प्रतिभा सम्पन्न पितात्माएं और महाभारत-कालीन पात्र सम्मिलित हैं। बड़ेती ग्राम का प्रमुख देवता मटिया है किन्तु बिजर देवता और नैंटवाट के पोखू देवता की भी यहां मान्यता कम नहीं है। देवरा का सर्वोपरि देवता कर्ण है, जिसके साथ शल्य की भी पूजा होती है। धराली में सम्प्रति हमेरू या समोसू और नागरजा की आराधना होती है जिसमें हमेरू प्रमुख है। नैंटवाड़ में पोखू देवता का साम्राज्य है जो कर्ण का एक बीर माना जाता है। इसी प्रकार महाभारत ख्याति के दुर्योधन का मन्दिर जखोल में है और समस्त पट्टी के लोग इसे अपना इष्ट देवता मानते हैं। दुर्योधन और कर्ण देवताओं का साम्राज्य कई गांवों में है, जहां वर्ष में एक बार यह भ्रमण करते हैं और बिना इनकी आज्ञा इस क्षेत्र में न तो अन्य देवता प्रवेश ही पा सकते हैं और न ही पूजे जा सकते है यह दो देवता भी एक दूसरे की निर्धारित सीमा में प्रवेश नहीं कर सकते। किन्तु धराली के हमेरू और नागरजा तथा बड़ेती के मटिया और बिजार भ्रमणशील देवता नहीं हैं। इनकी मान्यता भी अपने गांव तक ही सीमित है। बड़ेती में बिजार की पूजा भादों और वैशाख की फसलें कटने से पूर्व नया अन्न अर्पित कर, की जाती है। मटिया की पूजा वर्ष में एक बार भादों से असोज की संक्रांति तक एक मास के लिए की जाती है। धराली में नागरजा की पूजा आषाढ़ के किसी बुधवार को और श्रावण की नागपंचमी को की जाती है। बिना नाग को अर्पित किए दूध खाना वर्जित है। हमेरू की पूजा संक्रांतियों पर होती है और सभी त्योहारों में। कर्ण, दुर्योधन और पोखू को नित्य गाजे-बाजे के साथ भोग-वत्ती मध्यान में देने की प्रथा है। सभी देवता अपने नियमित कार्यक्रम के अतिरिक्त भी आवश्यकता होने पर पूजे जा सकते हैं।

पाण्डवों को सम्पूर्ण जनपद में प्रतिष्ठित किया गया है और यह सर्वाधिक लोकप्रिय एवं पूज्य हैं। यहां पर ऐसे व्यक्ति मिलने असम्भव हैं, जिन्हें पांडवों की गरिमा का ज्ञान न हो। प्रत्येक गाव में पांडवों के कुछ असीम भक्त मिल जाते हैं जो अपने ऊपर द्रोपदी और पाण्डवों की आत्माओं का आवाहन कर न्याय और अनेकानेक भविष्यवाणियां करते हैं। अधिकांश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रामों में प्रमुख देवता की डोली होती है, जिस पर बैठकर देवता गंगा स्नान, अपने क्षेत्र की यात्रा और तीर्थ यात्रा करता है। देव-डोली वाहन का कार्य प्रायः पाण्डव आत्माविभूत जन ही सम्पन्न करते हैं। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में पाण्डव नाच की महिमा है। यह शुभाशुभ फलदायक, पाप-विमोचक और पुण्यशील माना जाता है। इसके करने से रोग-दोष से मुक्ति होती है तथा धन-धान्य की वृद्धि होती है। इन्ही कारणों से वर्ष में कम से कम दो बार ग्राम स्तर पर और एक बार कुटुम्ब स्तर पर प्रत्येक ग्राम और कुटुम्ब में इस नृत्य के आयोजन करने की प्रणाली प्रचलित है। आयोजक को नृत्यकर्ता के भोजनादि का व्यय वहन करना पड़ता है। पाण्डव नृत्य वही लोग करते हैं जो इनकी आत्माओं का आह्वान पूर्ण-रुपेण अपने ऊपर कर सकते हैं धन और यश लोलुप ढोंगी व्यक्ति नहीं। क्योंकि समाज में इनकी यथार्थता के परीक्षण हेतु कई परिपाटियां विकसित हैं। लोगों की धारणा है कि अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न देवताओं की आत्माओं का आवाहक व्यक्ति भी आवेशकाल में देवता हो जाता है अतएव उसके ऊपर सांसारिक वस्तुओं का प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए और इसीलिए देवात्मा आह्वान की घोषणा करने वाले व्यक्ति को प्रारम्भ में लाल तप्त लौह सब्बल जिह्वा से चाटना और हाथ से स्पर्श करना पड़ता है। युधिष्ठिर की आत्मा किसी पर नहीं आती, किन्तु शेष चार पाण्डवों एवं द्रोपदी की आत्माएं आती हैं। अर्जुन की आत्मा से अभिप्रेत व्यक्ति कुछ समय के लिए अर्जुन की तरह धनुर्धारी तथा भीम की आत्मा से आवेशित क्षीणकाय व्यक्ति भी भीम जैसा गदाधारी बन जाता है। वह लौह निर्मित गदा से अपने ऊपर तीव्रगति से अनेक प्रहार करता तथा अत्यधिक मात्रा में भोजन करता है जो आवेशहीन होने पर सम्भव नहीं। इन्हीं अलौकिकताओं के कारण लोग इन व्यक्तियों में अगाध श्रद्धा रखते हैं।

लोगों के जीवन में संक्रांतियों का विशेष महत्व है। लगभग सभी संक्रान्तियां यहां पर्व के रूप में मानी जाती हैं किन्तु विषुवत और मकर की संक्रान्तियों का विशेष महत्व होता है। इन्हें क्रमशः विस्सू और मक्रायण कहते हैं। इन अवसरों पर प्रसिद्ध देव मन्दिरों में मेलों या थौलुओं का आयोजन होता है जिनमें लोग अत्यन्त उत्साह के साथ देव-डोलियां झुलाने, स्थानीय खेल खेलने और सामूहिक नृत्यगान का रसास्वादन करते हैं। नृत्यों में छोपटा, ताड़ो और रासो सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। मकर संक्रांति के अवसर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर देवरा थौलू में एक विशेष खेल का आयोजन होता है जो यहां की सांस्कृतिक धरोहर है। इस खेल का नाम हिन्डोड़ा है। इसे खेलने के लिए सम्पूर्ण सिंगतुर पट्टी के ग्राम दो पारस्परिक दलों में विभक्त हैं। एक दल को शाटी और दूसरे को पान्शया कहते हैं। शाटी, शत का अपभ्रंश है जिसका अर्थ कौरव दल से है और पान्श्या का अर्थ पांच पाण्डवों से है। खेल की मध्यस्तता कर्ण मन्दिर के पुजारी करते हैं। इसे खेलने हेतु एक चर्म निर्मित कन्दुक होता है जो खेल प्रारम्भ करने से पूर्व बलि के खाडू या बकरे के रक्त से रंजित किया जाता है। सर्व प्रथम तो दोनों दल डोम द्वारा फेंके गए इस कन्दुक को हाथ में लेकर अपनी-अपनी पारी में ले जाने की भीषण स्पर्धा करते हैं। जिसके हाथ में कन्दुक आ गया वह इसे अपने सीने से चिपका कर किसी भी दशा में नहीं छोड़ता। प्रतिद्वन्दी जब कन्दुक नहीं पाते तो कन्दुक लिए खिलाड़ी को ही अपनी पारी में उठा ले जाने का अधिक प्रयास करते हैं, किन्तु उसके पक्ष के खिलाड़ी इसका प्रतिरोध करते हैं। कहते हैं कि अन्त में कन्दुक पान्श्या दल के ही हाथ लगा है और उसी की विजय हुई है। तदुपरान्त प्रतिद्वंदी दलों के सदस्य हाकी जैसी हिन्डोड़ी से कन्दुक छीनते हैं। विजयिनी टोली नए वर्ष की भवितव्यताओं की भविष्य-वाणी करती है। अन्त में सभी खिलाड़ियों को बलि का प्रसाद वितरित किया जाता हैं। इस खेल को देखने के लिए दूर दूर की पट्टियों से लोग देवरा आते हैं।

अन्य त्योहारों में धराली का शेलकू और हारदूद बड़ेती और देवरा की बग्वाल और बलिराज प्रसिद्ध हैं। शेलकू भादों मासान्त से अश्विन संक्रांति तक दो दिन मनाया जाता है। इस अवसर पर सभी नाते रिश्तेदार आमन्त्रित किए जाते हैं। इस दिन छिलकों से बने भैलू जलाकर लोग रात भर खेलते, डोली ढ़ोल आदि के देवता झुलाते और भविष्यवाणियां करते हैं और अन्त में सभी स्त्री पुरूष रासो, ताड़ो आदि नृत्य गान करते हैं। शेलकू एक प्रकार से हिम मंड़ित ग्रामों की बग्वाल ही है जो हिमपात से पूर्व मनायी जाती है। हारदूद २० गते श्रावण को मनाया जाता है। धराली के देवरा (देवस्थान) में विविध भांति के पुष्पों से चबूतरा निर्मित कर हमेरू देवता की डोली रखी जाती है। ग्राम के सभी लोग अपने अपने घर से दूध और दही लाकर देवता के चारों ओर रखते हैं। पुजारी सभी पात्रों से दूध-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दही लेकर हमेरू और नागरजा को अर्पित करता है। तत्पश्चात् दूध, दही का प्रसाद सभी को दिया जाता है और उन लोगों को अधिक जिनकी गाय नहीं होती। अन्त में, सभी स्त्री पुरुष टोलियां बनाकर नृत्यगान करते हैं।

बग्वाल देवरा और बड़ेती ग्रामों में कातिक मास में १४ से १५ गते तक मनाई जाती है। इस अवसर पर छुलके के खेल होते हैं और अन्त में रासो आदि नृत्य का आनन्द सभी स्त्री पुरुष लेते हैं। बलिराज इन दोनों ग्रामों में एक मास पश्चात् मंगसिर मास की १४ और १५ गते को सम्पन्न होता है। बलिराज पूर्ण रूप से बग्वाल की तरह ही मनाया जाता है। भेद यह है कि बलिराज मनाने के बाद सुबह सभी छोटी आयु के लोग अपने बड़ों को बेरुड़ी (सेवा) लगाकर रात्रि को की गई भूल-चूक की क्षमा याचना करते हैं।

इनके अतिरिक्त समय समय पर लोग विभिन्न कार्यों की सफलता एवं देवी देवताओं की प्रसन्नता के लिए जागर, घड्याला और बेड़ार्थ रड़ाना आदि धार्मिक अनुष्ठानों का उपक्रम करते हैं।

न्यायाधिकरण :

वस्तुतः न्याय धर्म का ही एक अंग है जो यहां प्राचीनकाल से देवी-देवताओं पर ही निर्भर रहा है। आधुनिक न्याय पंचायतों के निर्माण हो जाने पर भी लोग देव-निर्णयों में अटूट आस्था रखते हैं। यह अत्योक्ति नहीं है कि यहां के लोग अभी भी सापेक्षतः भोले-भाले और छल-कपट से दूर हैं। यहां चोरी आदि का भय कदापि नहीं है। तथापि लड़ाई-झगड़ा तो होता ही रहता है। इन्हें शान्त करने के लिए पहले गांव के दाने या सयाणे लोग एकत्रित होकर प्रयास करते हैं। यदि नहीं सुलझता तो उत्पीड़ित व्यक्ति देवता के मन्दिर में अपने वस्त्र फाड़कर घात लगाता है कि अमुक व्यक्ति मुझे पीड़ित करता है, उसे आप दोष (दण्ड) लगाइए। देवता के दोष से डरकर पीड़ित करने वाला व्यक्ति मन्दिर में आता और देवतासे क्षमा याचना कर खाडू-बकरा देकर पुनः न प्रताड़ित करने का वचन देता है। इस प्रकार का न्याय आज भी कर्ण और पोखू के मन्दिर में होता है।

सामाजिक नियमों का उल्लंघन करना यथा व्यभिचार और अंतर्वर्गीय विवाह करना भी पाप माना जाता है। इन पापों से मुक्ति पाने के लिए व्यभिचारी खाडू या बकरे की बलि देवता को अर्पित करता है और उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर देवरा थौलू में एक विशेष खेल का आयोजन होता है जो यहां की सांस्कृतिक धरोहर है। इस खेल का नाम हिन्डोड़ा है। इसे खेलने के लिए सम्पूर्ण सिंगतुर पट्टी के ग्राम दो पारस्परिक दलों में विभक्त हैं। एक दल को शाटी और दूसरे को पान्शया कहते हैं। शाटी, शत का अपभ्रंश है जिसका अर्थ कौरव दल से है और पान्श्या का अर्थ पांच पाण्डवों से है। खेल की मध्यस्तता कर्ण मन्दिर के पुजारी करते हैं। इसे खेलने हेतु एक चर्म निर्मित कन्दुक होता है जो खेल प्रारम्भ करने से पूर्व बलि के खाडू या बकरे के रक्त से रंजित किया जाता है। सर्व प्रथम तो दोनों दल डोम द्वारा फेंके गए इस कन्दुक को हाथ में लेकर अपनी-अपनी पारी में ले जाने की भीषण स्पर्धा करते हैं। जिसके हाथ में कन्दुक आ गया वह इसे अपने सीने से चिपका कर किसी भी दशा में नहीं छोड़ता। प्रतिद्वन्दी जब कन्दुक नहीं पाते तो कन्दुक लिए खिलाड़ी को ही अपनी पारी में उठा ले जाने का अधिक प्रयास करते हैं, किन्तु उसके पक्ष के खिलाड़ी इसका प्रतिरोध करते हैं। कहते हैं कि अन्त में कन्दुक पान्श्या दल के ही हाथ लगा है और उसी की विजय हुई है। तदुपरान्त प्रतिद्वंदी दलों के सदस्य हाकी जैसी हिन्डोड़ी से कन्दुक छीनते हैं। विजयिनी टोली नए वर्ष की भवितव्यताओं की भविष्य-वाणी करती है। अन्त में सभी खिलाड़ियों को बलि का प्रसाद वितरित किया जाता हैं। इस खेल को देखने के लिए दूर दूर की पट्टियों से लोग देवरा आते हैं।

अन्य त्योहारों में धराली का शेलकू और हारदूद बड़ेती और देवरा की बग्वाल और बलिराज प्रसिद्ध हैं। शेलकू भादों मासान्त से अश्विन संक्रांति तक दो दिन मनाया जाता है। इस अवसर पर सभी नाते रिश्तेदार आमन्त्रित किए जाते हैं। इस दिन छिलकों से बने भैलू जलाकर लोग रात भर खेलते, डोली ढ़ोल आदि के देवता झुलाते और भविष्यवाणियां करते हैं और अन्त में सभी स्त्री पुरूष रासो, ताड़ो आदि नृत्य गान करते हैं। शेलकू एक प्रकार से हिम मंड़ित ग्रामों की बग्वाल ही है जो हिमपात से पूर्व मनायी जाती है। हारदूद २० गते श्रावण को मनाया जाता है। धराली के देवरा (देवस्थान) में विविध भांति के पुष्पों से चबूतरा निर्मित कर हमेरू देवता की डोली रखी जाती है। ग्राम के सभी लोग अपने अपने घर से दूध और दही लाकर देवता के चारों ओर रखते हैं। पुजारी सभी पात्रों से दूध-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दही लेकर हमेरू और नागरजा को अर्पित करता है। तत्पश्चात् दूध, दही का प्रसाद सभी को दिया जाता है और उन लोगों को अधिक जिनकी गाय नहीं होती। अन्त में, सभी स्त्री पुरुष टोलियां बनाकर नृत्यगान करते हैं।

बग्वाल देवरा और बड़ेती ग्रामों में कातिक मास में १४ से १५ गते तक मनाई जाती है। इस अवसर पर छुलके के खेल होते हैं और अन्त में रासो आदि नृत्य का आनन्द सभी स्त्री पुरुष लेते हैं। बलिराज इन दोनों ग्रामों में एक मास पश्चात् मंगसिर मास की १४ और १५ गते को सम्पन्न होता है। बलिराज पूर्ण रूप से बग्वाल की तरह ही मनाया जाता है। भेद यह है कि बलिराज मनाने के बाद सुबह सभी छोटी आयु के लोग अपने बड़ों को वेरुड़ी (सेवा) लगाकर रात्रि को की गई भूल-चूक की क्षमा याचना करते हैं।

इनके अतिरिक्त समय समय पर लोग विभिन्न कार्यों की सफलता एवं देवी देवताओं की प्रसन्नता के लिए जागर, घड्याला और वेड़ार्थ रड़ाना आदि धार्मिक अनुष्ठानों का उपक्रम करते हैं।

न्यायाधिकरण :

वस्तुतः न्याय धर्म का ही एक अंग है जो यहां प्राचीनकाल से देवी-देवताओं पर ही निर्भर रहा है। आधुनिक न्याय पंचायतों के निर्माण हो जाने पर भी लोग देव-निर्णयों में अटूट आस्था रखते हैं। यह अत्योक्ति नहीं है कि यहां के लोग अभी भी सापेक्षतः भोले-भाले और छल-कपट से दूर हैं। यहां चोरी आदि का भय कदापि नहीं है। तथापि लड़ाई-झगड़ा तो होता ही रहता है। इन्हें शान्त करने के लिए पहले गांव के दाने या सयाणे लोग एकत्रित होकर प्रयास करते हैं। यदि नहीं सुलझता तो उत्पीड़ित व्यक्ति देवता के मन्दिर में अपने वस्त्र फाड़कर घात लगाता है कि अमुक व्यक्ति मुझे पीड़ित करता है, उसे आप दोष (दण्ड) लगाइए। देवता के दोष से डरकर पीड़ित करने वाला व्यक्ति मन्दिर में आता और देवतासे क्षमा याचना कर खाड़ू-बकरा देकर पुनः न प्रताड़ित करने का वचन देता है। इस प्रकार का न्याय आज भी कर्ण और पोखू के मन्दिर में होता है।

सामाजिक नियमों का उल्लंघन करना यथा व्यभिचार और अंतर्वर्गीय विवाह करना भी पाप माना जाता है। इन पापों से मुक्ति पाने के लिए व्यभिचारी खाड़ू या बकरे की बलि देवता को अर्पित करता है और उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसाद समाज के व्यक्तियों को वितरित किया जाता है तथा अंतर्वर्गीय विवाह करने पर चन्द्रायण करने की प्रथा है। चन्द्रायण में गंगा स्नान, पांच तीर्थों की यात्रा और सामाजिक भोज देना पड़ता है। चन्द्रायण प्रायः बीठ वर्ग के उन पुरुषों को करना पड़ता है जो डोम वर्ग की कन्याओं से विवाह करते हैं। इस प्रकार यदि डोम वर्ग की उच्च जातियों के पुरुष इसी वर्ग की छोटी जातियों की कन्याओं से विवाह करें तो चन्द्रायण करना पड़ता है। ऊंची जाति की या वर्ग की स्त्रियां यदि छोटी जाति से विवाह करें तो चन्द्रायण करने से पाप मुक्त नहीं मानी जाती।

आर्थिकाधिकरण :

इस क्षेत्र के लोगों का प्रमुख व्यवसाय कृषि और पशु पालन है। यहां की भूमि बहुत ही उपजाऊ है। हिमपात बहुल क्षेत्रों के ग्रामों में एक ही फसल हो जाती है जिसमें आलू, छीमी, फाफरा और चौलाई प्रमुख रुप से उत्पन्न की जाती है। थोड़ी बहुत राई, सेवचना, गोभी, मूली आदि भी पैदा होता है। यहां सेव और चुली भी पैदा होती है। मध्यम और निम्न ऊंचाई वाले ग्रामों में दो फसलें सर्द और उनाली पैदा होती हैं। जिनके अन्तर्गत गेहूं, धान, झंगोरा, कावणी, बत्थू, तिल, चीणा, मार्सा, उड़द, भट्ट, लाही, मंडुवा आदि सभी प्रकार के तिलहन, अनाज व दालें उगाई जाती हैं। उच्च और मध्यम ऊंचाई के गांवों के लोग खेती में आवश्यक पशु-गाय, बैल, जोई, याक के अतिरिक्त भेड़ बकरी का भी पालन करते हैं। जिनकी ऊन से अपने वस्त्र बनाते एवं शेष ऊन को बेचकर जीविकोपार्जन करते हैं। निम्न ऊंचाई पर रहने वाले व्यक्ति भेड़ बकरी का पालन नहीं के बराबर करते हैं। यह लोग गाय, भैंस पालते हैं और कृषि के लिए बैल आदि रखते हैं।

तिब्बत व्यापार निषिद्ध होने के पूर्व थराली के राजपूत वहां से व्यापार करते थे। वे वहां से नमक, सुहागा (टंकण), घोड़ा, सोना, ऊन, रेशम इत्यादि का आयात करते थे और भारतीय खाद्यानों का निर्यात अपनी भेड़ बकरियों की पीठ पर लाद कर करते थे। थराली जिस पट्टी में स्थित है उसे आज भी टकनौर कहते हैं जो प्राचीन टंकणपुर का ही अपभ्रंश है और इस प्रदेश के निवासियों को टंकण या तंगण कहा जाता था जो सम्भवतः उनके टंकण (सुहागें) और टंगण (घोड़े) के व्यापार से सम्बन्धित होने के कारण पड़ा था। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि थराली के राजपूत अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को टंकण नहीं कहते । टंकण कहने वाली जातियां नीचे की घाटियों में पाई जाती हैं, जो इस बात को प्रमाणित करती हैं कि प्राचीन व्यापारी जातियां बदलती रही हैं और उनके स्थान पर नई जातियां व्यापार करती रही ।

निष्कर्ष :

उक्त विवेचन से विदित होता है कि उत्तरकाशी जनपद की संस्कृति पर महाभारत काल का अटल प्रभाव है । यहां आज भी वह सभी जातियां और स्थान अपने विकृत रूप में उपलब्ध हो जाते हैं जिनका महाभारत ग्रंथ और स्कन्दपुराण में वर्णन हैं । महाभारतकाल की अनेक घटनाओं का यहां के सामाजिक जीवन में समावेश हुआ है । संक्षेप में कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र की संस्कृति महाभारतकालीन संस्कृति से ओतप्रोत है, और सदियों पश्चात आज भी उस विस्मृत संस्कृति को साकार करती है ।

उत्तराखण्ड की जन जातियाँ

● डॉ० प्रयाग जोशी

उत्तर-प्रदेश राज्य के सरकारी कागजों में, समूचे प्रान्त की जन-जातियों की संख्या कोई १३ लाख आँकी गई है । हमारे पूरे देश में हरिजनों सहित आदिम जातियों तथा जन-जातियों की संख्या १० करोड़ के लगभग है जो राष्ट्रीय आवादी का छठा हिस्सा है । उत्तराखण्ड की जन-जातियों का अलग से सर्वेक्षण और अध्ययन अभी नहीं हुआ है सिर्फ भोटिया तथा जौनसारी जातियों पर चन्द विद्वानों द्वारा स्तरीय पुस्तकें लिखी गईं हैं । उत्तर-प्रदेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सरकारी सूचियों में उत्तराखण्ड की कुछ जन-जातियों को सम्मिलित किया जाता है जिनमें अल्मोड़ा, चमोली, पिथौरागढ़ और उत्तरकाशी के भोटिया, टिहरी और नैनीताल जिलों के बोक्सा, देहरादून के जौनसारी एवं खश, पिथौरागढ़ के राजी अथवा राज किरात व नैनीताल के थारू मुख्य हैं।

१९७६–७७ में उ० प्र० हरिजन एवं समाज कल्याण विभाग ने १३ और जातियों को अनुसूचित की श्रेणी में रखने की केन्द्र को सिफारिशें भेजी हैं जिनमें झांसी, मिर्जापुर, वाराणसी और इलाहाबाद जिलों के कोल भी सम्मिलित हैं जिनके सगोत्रीय कोल अथवा कोल-टा उत्तराखण्ड में हरिजनों में शुमार किए जाते हैं। झांसी के भील और अल्मोड़े के 'बोरा' जन-जातियों को उस अनुसूची में रखने का जो लम्बा विवाद चला, वह अब अतीत की कहानी हो गया है। यही कहानी उत्तरकाशी के रवांई और फतेहपर्वत के 'खशों' के साथ भी दुहराई गई है और टिहरी के जौनपुर परगने के खशों के साथ भी।

हरिजन, अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जन-जाति-ये तीन सरकारी साँचे हैं। अविकसित जातियों को उक्त किसी एक साँचे में रखकर उसके लिए विशेष योजनाओं के कार्यक्रम सरकार के पास हैं। कौन जाति सही अर्थ में अविकसित है और उसे किस सूची में रखा जाय, इसके लिए मानव समूहों के नृतात्विक अथवा समाजशास्त्रीय अध्ययन की संस्तुति को आधार बनाने के बजाय एक भद्दी परिपाटी चल पड़ी है जिसके तहत आञ्चलिक स्तर पर नेताओं या विधायकों के नेतृत्व में जनता के प्रतिनिधि–मंडल हरिजन एवं समाज कल्याण विभाग के पास जाते हैं और कहते हैं 'हमें जन-जाति, आदिम जाति या अनुसूचित जाति घोषित करो।'

उक्त विभाग केन्द्र को सूची और संस्तुति भेजता है। केन्द्र यदि उस पर 'सही' कर देता है तो हम मानने लगते हैं कि अमुक अञ्चल-की अमुक जाति जन-जाति अथवा पिछड़ी हुई है। बिना सरकारी सर्टिफिकेट के कोई जाति वह नहीं है जो वह है। यह जाति-समूहों के वर्गीकरण का गलत तरीका है। क्योंकि विकास-योजनाओं का इलाकेवार बटवारे में हमारी सरकारों द्वारा पक्षपात बरता जाता है। अतः अनुसूचित सूची में स्वयं को दर्ज करवाने के लिए हर समझदार अविकसित इलाका प्रयत्नशील रहता है। योजनाओं के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

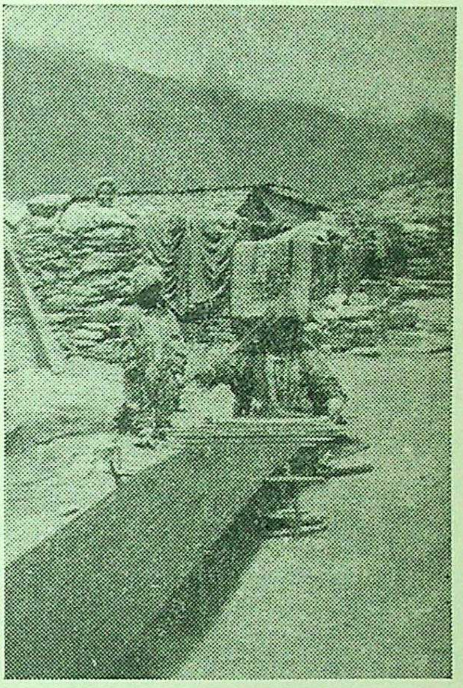

सीमान्त गांव की भोटिया महिला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बटवारे के समय एक ओर हम शहर, गांव, कस्वा और देहात के लिए अलग अलग सुविधाओं का प्राविधान सोचकर चलते हैं दूसरी ओर महानगर और पहाड़, मध्यवित्तीय शहरी समाज और आदिवासी की पृथक-पृथक भौगोलिक स्थिति और विकास-स्तर का सीमांकन नहीं कर पाते। इसलिए हमारे निर्णयों के निर्धारण में जबर्दस्त खामियां स्पष्ट हैं।

यह कितनी विचित्र विडम्बना है कि कोई जाति मानव-सभ्यता की दौड़ में बहुत पिछड़ जाय और सभ्यता इतनी आगे बढ़ जाय कि दौड़ के अलग-अलग सोपानों में रुके हुओं को वह बराबरी की श्रेणी में रखना चाहे परन्तु पिछड़ा हुआ इस निर्णय को आत्मसात ही न कर सके कि उसको दी जा रही तरफदारी का उसके लिए भारी लाभ है। ऐसी स्थिति में पिछड़े हुए को द्विमुखी नुकसान की संभावना रहती है।

(१) दौड़ में आगे होने का गौरव उसके संस्कारों में मिल नहीं पाता।

(२) 'बराबर हैं'—इस ककहरे को वह गले नहीं उतार पाता। जब वह पिछड़ा हुआ है तो बराबर कैसा? इस राष्ट्रव्यापी सत्य को उत्तराखण्ड के छोटे क्षेत्र में भी चरितार्थ हुआ पाया जाता है। उत्तराखण्ड की पूर्णतः असंगठित और गरीबी के औसत स्तर से भी नीचे दबी हुई जन-जातियों को निकट से देखने पर यह सत्य हृदयंगम हो जाता है। यही कारण है कि उनके लिए कार्यान्वित की गई किसी भी आर्थिक योजना का लक्ष्य उनके स्तर को ऊँचा उठाने में असमर्थ सिद्ध हुआ है और उनकी स्वयं की समझ में यह नहीं आ पाता कि उनको इससे क्या फायदा हुआ?

एक और बात ध्यातव्य है कि सरकारी सूची में उत्तराखण्ड की सब जन-जातियाँ दर्ज नहीं हुई हैं। यदि हुई भी हैं तो उनका सही सर्वेक्षण नहीं हुआ। उदाहरण के लिए पिथौरागढ़ के राजियों को लिया जा सकता है जिनकी जनसंख्या के सही आंकड़े, उनकी बस्तियों के पते और उनकी स्थितियों पर कोई भी सरकारी विभाग प्रामाणिक जानकारी नहीं दे पाता। इसी प्रकार टोंस और काली नदी के मध्यवर्ती भूखण्ड में निवास करने वाली हरिजनों की बीसियों उप-जातियाँ हैं जिनमें बाजित्री, कोल-टा, दास, हुड़किया, ढोली, औजी, भाट, नायक, ओली, चणाल न जाने कितनी जन-जातियां हैं। पिथौरागढ़ की चम्पावत तहसील में, जो सदियों तक कुमाऊँ की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजधानी भी रहा; निवास करने वाली जन-जातियां लूल, लांक, भण्यांसी, ट्यूरा, भेरा, ऐरा, धून, पराल, आदि उस सूची में दर्ज नहीं हैं।

जन-जातियों में भी सवर्ण और असवर्ण हुआ करते हैं—समाजशास्त्र के विद्वानों के अलावा इसे बहुत कम लोग जानते हैं।

नायक जाति को जिसे नृवंश में खशिया या खशों की शाखा माना जाता है, कई उप शाखायें हैं। इसके वंशधर 'नेगी' नाम से प्रसिद्ध हैं जिन्हें 'गढ़वाली' में 'खड़वाल' भी कहा जाता है। इनकी बिरादरी खिलिपिती (चम्पावत), कटारमल एवं गरुड़-बैजनाथ (कत्यूर), रामगढ़ (नैनीताल) तथा चौपख्या (पिथौरागढ़) में निवास करती है। मध्यकाल से लेकर वर्तमान सदी के अर्द्धभाग तक यह जाति 'रुपा जीवाओं' के लिए सारे भारत में प्रसिद्धि पाती रही। उनको इस व्यवशाय से स्व० गोविन्द बल्लभ पन्त के मुख्य-मंत्रित्व काल में 'नायक बालिका संरक्षण एक्ट' ने मुक्ति दी।

इस जन-जाति के प्रचलित रिवाजों के अनुसार घर में उत्पन्न प्रथम कन्या देव मन्दिर में अर्पित की जाती थी। इस 'देवदासी' को कुमाऊँनी में 'देवचेली' कहा जाता था। देह-अस्तित्व के समर्पण का यह धार्मिक स्वरूप एक दिन कन्या-विक्रय में बदल गया जो स्वाभाविक था। एक समय आया जब कन्या विक्रय के स्थान वैसे ही प्रचार पाने लगे थे जैसे कि वहां के आज के पर्यटन-स्थल। 'राणीहाट' के ऐसे मेले की एक धुंधली सी याद आज भी बुजुर्गों की जुबान में ताजा है। इस प्रकार की विक्री से प्राप्त धनराशि में पिता से लेकर मामा तक के रिश्तेदारों की हिस्सेदारी होती थी। मामा को दिया जाने वाला भाग 'मामाभाग' या 'मामाझोली' कहलाता था।

रजवाड़ों के युगों तक आते-आते रुप-सौन्दर्य और कला कारिता के मोल से इनकी कीमतों में उतार-चढ़ाव आने लगे तो बड़े-बड़े जमीदारों के दरवारों में पहुंची इन रुपा जीवाओं की 'नथ उतराई' की कीमत हजारों में भी पहुंची। सामन्तों के हरमों में पहुंच कर इन्होंने 'खवासिन' की पदवियां पाई। कुछों ने कोठियों और दरवारों में नृत्य-गीत एवं वाद्य कलाओं में ऊँची महारत भी हासिल की परन्तु समस्त जन-जातियों के कर्म-व्यापार पृथक-पृथक रहे और आज भी वे सामाजिक-विकास की एक मंजिल में नही हैं। अमीरी-गरीबी जन-जातियों में भी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामाजिक-सांस्कृतिक और आर्थिक पिछड़ेपन की दृष्टि से 'वनरौत' उत्तराखण्ड की एकमात्र ऐसी जाति है जिसके जीविकोपार्जन की कार्य-पद्धति जीवन-चर्या और जातीय उद्योग उसे 'आदिवासी कबीले' की कोटि में ला रखते हैं।

पिथौरागढ़ जिले के पांच विकास खण्डों में इनकी बारह बस्तियां हैं। 'घानधूरा' इनका मूल-स्थान माना जाता है। उस पहाड़ी शृंखला को 'खेतारगाड' स्पर्श करती है जिसे बनरौतों के मूल निवास-स्थान से निकली होने के कारण 'रौतिस' भी कहा जाता है। 'धानधूरा' के ६॥ हजार फुट ऊँचे 'चौरान' नामक स्थान में उनकी एक बस्ती आज भी मौजूद है। यहां से वे क्रमशः 'थामाधूरा', 'ओंलतड़ी' और 'चम्पावत' की ओर प्रव्रजित होते गए हैं। कालीगंगा और गोरीगंगा के दोआवे में ही इनकी ४ बस्तियां हैं।

वनरौतों में अभीतक कुटुम्ब-प्रथा विकसित नहीं हुई। उनके एक पिता का प्रत्येक पुत्र विवाह हो जाने पर माता-पिता से पृथक हो जाता है और नव-दम्पत्ति अपनी नयी झोपड़ी में एक अलग संसार बसा डालता है। झोपड़ी के तैयार होने तक वे अपनी बस्ती के आस-पास ही किसी गुफा-कन्दरा की शरण खोज लेते हैं। उनके पास सम्पत्ति नाम की कोई चीज नहीं है अतः दायभाग के बटवारे आसान हैं। सम्पत्ति के संघर्ष में उलझी आज की दुनिया से दूर हिमालय के घने जंगलों में यह आदिवासी रात-दिन कुदरत से जूझता है। १९७३ में उनका प्रत्येक औसत परिवार ३ सदस्यों का था। ३३७ की कुल आबादी में पुरुष ९२ और स्त्रियां ८७ थी। १०९ लड़के तथा ६५ लड़कियों की पूंजी की नयी पीढ़ी संघर्ष से जूझने के लिए सन्नद्ध थी।

स्त्रियों की औसत कमी के करण ही शायद वनरौतों में कन्या क्रय करने की परिपाटी सी बन गई है। विवाह के लिए पिथौरागढ़ के राजी अपनी नैपाली बिरादरी से भी नियमित सम्पर्क रखते हैं।

वनरौत सही अर्थ में आखेट युग के संस्कारों के साथ जीवित जाति है जिसे आज भी कृषि और पशुचारण दिक्कत के काम महसूस होते हैं? परम्परा से ही शेष मानव जातियों की बसासत से स्वयं को न जोड़ सके हुई इस निरीह जात्ति को हरे भरे वनों के मध्य विचरण का नैसर्गिक सुयोग तो प्राप्त है परन्तु वैधानिक रूप से जंगल के एक भी वृक्ष पर उनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार मान्य नहीं है। क्योंकि मात्र २ बस्तियों की जमीन उनके कुछ आदमियों के नाम दर्ज है। शेष सब बस्तियां कानून की दृष्टि में अवैध हैं। स्वयं को हिमालय के वनों की मालिक समझने वाली इस जंगल के राजा (राज किरात) के भाग्य की विडम्बना को क्या कहा जाय ?

धर्माचार्यों की भ्रमणस्थली उत्तराखण्ड

● कु० आशा साह

उत्तराखण्ड अतीत काल से अद्‌भुत जागृति का केन्द्र रहा है। इस स्थल पर मनीषियों ने भारतीय प्रदेशों को सत्यज्ञान से अवगत ही नही किया, अपितु शास्त्रों, दर्शनों तथा उपनिषदों की कठिन से कठिन गुत्थियों को सुलझा कर उन्हें सरल एवं बोधगम्य बनाया है। भारत में आज तक जितने भी लोकाचार्य तथा धर्माचार्य हुये हैं, इन सब मनीषियों ने अपने-अपने समय में आचार्यत्व प्राप्त करने से पूर्व इस उत्तर हिमालय के किसी न किसी तीर्थ में निवास कर अपनी मानसिक शक्ति को बढ़ाया है। शंकराचार्य ने बदरीवन में निवास कर वेदों पर भाष्य लिखे, विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, रामतीर्थ आदि महात्माओं ने उत्तराखण्ड के वनों में भ्रमण कर आत्मबल की प्राप्ति की है।

जगद्‌गुरु शंकराचार्य का उत्तराखण्ड आगमन–

आठवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में यहां की धार्मिक मान्यताओं से प्रभावित होकर शंकराचार्य ने उत्तराखण्ड की महत्वपूर्ण धार्मिक यात्रा की थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि भारत में दर्शन एवं अद्वैतवाद का प्रचार बहुत प्राचीन काल से हुआ है, तथापि इसके प्रचार का सर्वाधिक श्रेय शंकराचार्य को ही है। इस मत के प्रधान समर्थक ग्रन्थ भी उन्हीं के हैं। यही कारण है कि शंकराचार्य को अद्वैतवाद का प्रवर्त्तक माना जाता है। बत्तीस वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना कर, भारतवर्ष के चार कोनों में चार प्रधान मठों की स्थापना कर डाली।

प्राप्त प्रमाणों के अनुसार शंकराचार्य का समय सन् ७८८ ई० से ८२० ई० (सं० ८४५ विक्रमी से ८९७ विक्रमी) है। उनका जन्म केरल प्रान्त के कालड़ी नामक गांव में हुआ था। इनके पिता का नाम शिवगुरु तथा माता का नाम विशिष्टा था, ये जाति के नम्बूदरी ब्राह्मण थे। शंकर भगवान की दीर्घकालीन उपासना के फलस्वरूप शिवगुरु को प्रौढ़ावस्था में यह पुत्र रत्न प्राप्त हुआ था, इसलिये इनका नाम शंकर रखा गया। शिवगुरु की तीव्र इच्छा थी कि शंकर का शीघ्र यज्ञोपवीत कर दिया जाय, जिससे उन्हें संस्कृत भाषा सीखने का सुअवसर प्राप्त हो सके, किन्तु शिवगुरु की असमय मृत्यु के कारण शंकर की माता ने यह कार्य सम्पन्न किया। तत्पश्चात् शंकर वेदशास्त्र के अध्ययनार्थ गुरु के पास गये। विलक्षण बौद्धिक योग्यता से परिपूर्ण शंकर केवल सात वर्ष की अवस्था में वेद, वेदान्त, वेदांगों का पूर्ण अध्ययन कर घर वापस आ गये।

शंकर ने घर आकर सन्यास लेने की इच्छा व्यक्त की लेकिन माता ने आज्ञा नहीं दी। मातृभक्त शंकर माता को दुख देकर सन्यास नहीं लेना चाहते थे किन्तु एक चमत्कारिक घटना से प्रभावित होकर सन्यास धारण करना * स्वीकार किया।

घर से प्रस्थान कर शंकर ने आठ वर्ष की अवस्था में नर्मदा तट पर स्वामी गोविन्द भगवत्पाद से दीक्षा ली, तथा उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रों का अध्ययन किया। अल्पकाल में ही शंकर योगसिद्ध हो गये। इसके बाद गुरु आज्ञा से काशी आये और बारह वर्ष की अवस्था में शंकर ने वहां वेदान्त का प्रचार आरम्भ कर दिया। कहा जाता है कि भगवान विश्वनाथ ने उन्हें ब्रह्मसूत्रों पर भाष्य लिखने की प्रेरणा दी।

---

* घटना के पूर्ण विवरण के लिये देखिये बलदेव उपाध्याय कृत 'शंकराचार्य' पृ० ४६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंकर ने निश्चय किया कि बद्रीकाश्रम जाकर ही सूत्रभाष्य की रचना करेंगे। बद्रीकाश्रम के निकट ही 'व्यासगुफा' में व्यास जी ने इन वेदान्त सूत्रों का प्रणयन किया था अतः अपनी शिष्य मण्डली के साथ बाल-सन्यासी शंकर गंगा के किनारे होते हुये हिमालय के सुदूर तीर्थ की यात्रा हेतु चल पड़े। कुछ दिन हरिद्वार-निवास के उपरान्त ऋषिकेश आये। यहां आकर उन्हें ज्ञात हुआ कि चीन देश के लुटेरों के भय से पुजारियों ने विष्णु प्रतिमा को अलकनन्दा के तट पर छिपा दिया है। शंकर ने मूर्ति को पुनः प्रतिष्ठित किया।

ऋषिकेश से शंकर सशिष्य श्रीनगर पहुंचे। उत्तराखण्ड में उस समय तांत्रिक पूजा का उग्ररूप प्रचलित था। श्रीनगर में तान्त्रिकों ने उनसे शास्त्रार्थ किया किन्तु आचार्य ने अति धीर भाव से धर्मतत्व की यथार्थ व्याख्या करके उनके भ्रम का निवारण किया तथा नरबलि रूपी वीभत्स कर्म से उन्हें निवृत किया। जिस शिलाखण्ड पर बलि दी जाती थी, उसे नदी में विसर्जित कर दिया गया।

बद्रीनाथ का उद्धार—यद्यपि बद्रीनाथ का यात्रा मार्ग अत्यन्त कठिन था तथापि शंकर मार्ग की कठिनाइयों का सफलतापूर्वक सामना करते हुये बद्रीकाश्रम जा पहुंचे। प्रधान मन्दिर में नारायण की प्रतिमा न देख उन्हें आघात पहुंचा। मन्दिर के पुजारियों ने उन्हें अवगत कराया कि तिब्बत के राजा का यहां समय-समय पर आक्रमण होता आया है और इसीलिये उन्होंने भगवान की मूर्ति को नारद कुंड में छिपा दिया है। लेकिन प्रयास के बाद भी उन लोगों को मूर्ति न मिल सकी। अतएव शंकर ने नारद कुंड में डुबकी लगाकर मूर्ति को बाहर निकाला, किन्तु उसे खण्डित देख कर उसे नारदकुंड में ही फेंक दिया। दूसरी और तीसरी बार प्रयत्न करने पर भी वही खण्डित मूर्ति उनके हाथ आई। कहा जाता है कि उसी समय आकाश वाणी हुई कि कलियुग में इसीं खण्डित मूर्ति की पूजा होगी अतः शंकर ने उसी खण्डित मूर्ति को मन्दिर में प्रतिष्ठित किया और वैदिक रीति से पूजा का प्रबन्ध किया।

भाष्य रचना—बद्रीकाश्रम के निकट व्यास गुफा में शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्रों, भगवत् गीता तथा प्रधान उपनिषदों पर विषद भाष्य लिखे तथा आचार्य ने यहां चार वर्ष तक निवास किया। सोलह वर्ष समाप्त होते-होते उन्होंने भाष्य ग्रन्थों की रचना कर डाली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केदार यात्रा—शंकराचार्य ने अपनी शिष्य मण्डली सहित केदारनाथ की भी यात्रा की थी। केदारनाथ पहुंचने पर शिष्यगण भयंकर सर्दी से बेचैन हो उठे। तब आचार्य ने योग दृष्टि से उस स्थान का पता लगाया जहां गरम जल की धारा प्रवाहित होती थी। शंकर ने केदारनाथ से गंगा की उद्गम-स्थली गंगोत्री के लिये प्रस्थान किया और यहां से उत्तरकाशी होते हुये प्रयाग आये।

प्रयाग से भारत के विभिन्न भागों में पहुंच कर शंकर ने विभिन्न मतमतान्तरों का खण्डन करके अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों की पुष्टि की और भारत के चार कोनों में शृंगेरी, गोवर्द्धन, द्वारका के समीप शारदा तथा ज्योतिर्मठ नामक चार मठों की स्थापना की।

ज्योतिर्मठ की स्थापना—यह आचार्य शंकर द्वारा स्थापित मठों में चौथा मठ है। उत्तरी भारत में धार्मिक सुधार तथा व्यवस्था के लिये आचार्य ने बद्रीनारायण से बीस मील दक्षिण में कार्तिकेयपुर के समीप ज्योतिर्मठ की स्थापना की, जो अब जोशीमठ के नाम से जाना जाता है। अक्टूबर से लेकर अप्रैल तक अत्यधिक शीत के कारण बद्रीनाथ का मन्दिर बन्द कर दिया जाता है तथा बद्रीनाथ की चल प्रतिमा व अन्य वस्तुएं इसी स्थान पर चली आती हैं।

प्रामाणिक ऐतिहासिक मत के अनुसार बद्रीनाथ की वर्तमान मूर्ति आचार्य द्वारा प्रतिष्ठित की गई थी। इस स्थान की पवित्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये उन्होंने इस मठ की स्थापना की। आचार्य से संबंधित कुछ चीजें यहां मिलती हैं, जिसमें एक शिव मन्दिर है जो आचार्य द्वारा स्थापित बताया जाता है। आचार्य की एक गुफा है जहां वे समाधि किया करते थे। इसके अतिरिक्त यहां एक विशाल शहतूत का वृक्ष है। कहते हैं कि इसके नीचे बैठकर आचार्य पूजा किया करते थे। इस मठ के प्रथम अध्यक्ष तोटकाचार्य हुये थे, जो शंकराचार्य के शिष्यों में प्रमुख थे।

बदरिकाश्रम की पूजा व्यवस्था—शंकराचार्य से पूर्व बदरिकाश्रम की पूजा व्यवस्था में व्यवधान पड़ गया था। महाभारत, (जिसका सम्पादन गुप्तकाल से पूर्व हो गया था) में बदरिकाश्रम का विशद वर्णन है। देवप्रयाग के अभिलेखों एवं हर्षचरित में ग्रीष्मकाल में उत्तराभिमुखी यात्रा के उल्लेख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से विदित होता है कि सातवीं शताब्दी तक उत्तराखण्ड की यात्रा सुप्रचलित थी। पोख शासनों में (सं० ७०४ से ७८२ वि०) (६४७ से ७२५ ई०) बदरिकाश्रम का उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु कत्यूरी शासन में मिलता है। इससे अनुमान लगता है कि यशोवर्मन के राज्यकाल में सं० ७८२ से ८०६ वि० (७२५ से ७५२ ई०) तिब्बती लुटेरों के कारण, जो सम्भवत: मूर्ति के आभूषण और मन्दिर की सामग्री चुरा लेते थे, बदरिकाश्रम की पूजा व्यवस्था में व्यवधान उत्पन्न हो गया था। यशोवर्मन ने तिब्बती लुटेरों को खदेड़ कर गिरिद्वारों की रक्षा की थी।

शंकर ने बदरिकाश्रम की पूजा तथा ज्योतिर्मठ की व्यवस्था का भार अपने शिष्य तोटकाचार्य को सौंपा था। तोटकाचार्य की शिष्य परम्परा के उन्नीस आचार्यों * ने लगभग चार शताब्दियों तक सं० ८७७-१२७७ वि० (सन् ८२०–१२२० ई०) ज्योतिर्मठ की व्यवस्था व बदरिकाश्रम की पूजा का प्रबन्ध किया। ये बीस आचार्य ज्योतिर्मठ के अध्यक्ष पद पर क्रमश: आरुढ़ होते आये। इसके पश्चात् सम्वत् १५०० तक, किसी भी आचार्य का उल्लेख नहीं मिलता। सम्बत् १५०० के अनन्तर बद्रीनाथ के महन्तों की नामावली मिलती है। इससे प्रतीत होता है कि ये ज्योतिर्मठ के भी अध्यक्ष थे। सम्वत् १८३३ तक बद्रीनाथ का मन्दिर एवं ज्योतिर्मठ, महन्तों के हाथ में रहा। किन्तु इसके पश्चात् सन्यासियों के हाथ से निकल कर रावलों के हाथ में आ गया। तब से बद्रीनाथ का पूजन इन्हीं नम्बूदरी रावलों के हाथ में है।

शरीर त्याग—शंकराचार्य ने भारतभूमि में वैदिक धर्म की रक्षा की सुन्दर व्यवस्था कर केवल ३२ वर्ष की अल्पायु में ही इस धराधाम को छोड़ दिया। अधिकांश विद्वानों के अनुसार शंकर ने केदारनाथ में ही अपना शरीर त्याग किया था। केदारनाथ में उनकी समाधि अब तक विद्यमान है।

शंकराचार्य की उत्तराखण्ड यात्रा से यहां की तीर्थयात्रा को प्रोत्साहन मिला और इस प्रदेश का धार्मिक महत्व बढ़ा। अतएव उत्तराखण्ड के धार्मिक

---

* तोटको विजयः कृष्ण कुमारो गरुड़ध्वजः।
विन्ध्यो विशालो वकुलोवामनः सुन्दरोऽरुणः॥
श्रीनिवासः सुखानन्दो विद्यानन्दः शिवोगिरिः। विद्याधरो गुणानन्दो
नारायणः उमापतिः ऐते ज्योतिर्मठाधीशः आचार्येश्वर जीवितः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास में शंकराचार्य का महत्वपूर्ण स्थान है।

विवेकानन्द—

नरेन्द्र (विवेकानन्द) अभिजात्य क्षत्रिय कुल की सन्तान थे। उनके पिता श्री विश्वनाथदत्त पाश्चात्य सभ्यता में आस्था रखने वाले व्यक्ति थे। कौन जानता था कि उनके ही घर में १२ जनवरी सन् १८६३ ई० को उत्पन्न होने वाला उनका ही पुत्र नरेन्द्रदत्त पाश्चात्य जगत को भारतीय तत्वज्ञान का सन्देश सुनाने वाला महान विश्वगुरु होगा।

बचपन से ही नरेन्द्र में बहुमुखी प्रतिभा थी। सभी दिशाओं में उन्होंने उसका विकास किया। उनका रूप सिंह शावक के समान प्रभावशाली और मृगछौने सा कोमल था। घोड़े की सवारी, तैरना और नाव खेना उनके प्रिय शौक थे। युवकों के वह नेता व फैशन नियन्ता थे। चार पांच वर्षों तक उन्होंने हिन्दू-मुसलिम संगीताचार्यों के साथ गायन व संगीत का अभ्यास किया था। नृत्य अवसरों पर विवेकानन्द कलापूर्ण नृत्य करते थे।

सन् १८८० ई० में, अठारह वर्ष की आयु में जब विवेकानन्द विश्वविद्यालय की पहली परीक्षा की तैयारी कर रहे थे, अपने एक धनिक मित्र सुरेन्द्रनाथ (रामकृष्ण के एक भक्त) के घर पर रामकृष्ण के सम्मुख विवेकानन्द ने एक सुन्दर पद गाया। रामकृष्ण की तीव्र दृष्टि ने विवेकानन्द को देखा, आत्मा की गहराई में बैठ कर उनकी जिज्ञासावृत्ति पहचानी और उन्हें अपना बना लिया।

सन् १८८४ ई० के आरम्भ में हृदयगति रुक जाने के कारण विवेकानन्द के अमितव्ययी पिता की मृत्यु हो गई। एक ओर दुर्बल आर्थिक स्थिति, नौकरी की व्यर्थ खोज और दूसरी ओर बन्धुओं के साफ इन्कार से नरेन्द्र प्रतिदिन गहरी यातना अनुभव करने लगे। पिता की मृत्यु, परिवार की चिन्ता और अपनी आध्यात्मिक जिज्ञासा नरेन्द्र को खाये जा रही थी। नरेन्द्र में अपूर्व प्रतिभा थी, बचपन में ही उन्होंने दर्शनों का अध्ययन कर लिया था। साधना में समाधान न पाकर उनकी प्रखर बुद्धि नास्तिक हो चली। रामकृष्ण को छोड़कर सभी ने मान लिया कि नरेन्द्र पथभ्रष्ट हो चले हैं। रामकृष्ण जानते थे कि नरेन्द्र का उद्धार उन्हीं के द्वारा होगा। उस दिव्य महापुरुष के स्पर्श ने नरेन्द्र को बदल दिया, उन्हें गुरु कृपा से आत्मदर्शन की शक्ति प्राप्त हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पच्चीस वर्ष की आयु में ही नरेन्द्रनाथ ने काषायवस्त्र धारण कर लिये और स्वामी विवेकानन्द के नाम से अविहित हुये। पैदल ही पूरे भारत की यात्रा की और १८९३ ई० में शिकागो की विश्वधर्म परिषद में भारत के प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित हुये। दिसम्बर १८९३ ई० में उनके अलौकिक तत्वज्ञान ने पाश्चात्य जगत को चौंका दिया। संसार ने स्वीकार कर लिया कि वस्तुतः भारत ही जगद्गुरु था और रहेगा। उन्हीं का व्यक्तित्व था जिसने भारत एवं हिन्दूधर्म के गौरव को प्रथम बार विदेशों में जागृत किया।

उत्तराखण्ड भ्रमण—स्वामी विवेकानन्द की भ्रमण करने की तीव्र इच्छा थी। वे चाहते थे कि हिमालय में ऐसे स्थान की प्राप्ति हो जहां वे गहन समाधि में लीन हो सकें। इसीलिये उन्होंने प्रथम बार उत्तराखण्ड के लिये सन् १८८८ ई० में कलकत्ता से प्रस्थान किया। ऋषिकेश तक ही पहुंचे पाये थे कि शिष्य सदानन्द की बीमारी के कारण उन्हें हाथरस लौटना पड़ा। कई प्रकार के उत्तरदायित्व तथा कठिनाइयों के कारण उन्हें एक वर्ष तक बराह नगर ही रहना पड़ा।

हिमालय में भ्रमण करते हुये स्वामी अखण्डानन्द के पत्रों ने स्वामी विवेकानन्द की बन्धनों से मुक्त होकर निर्विघ्न रूप से साधना में लीन होने की इच्छा को और भी प्रबल बना दिया। सन् १८९० के प्रारम्भ में विवेकानन्द ने उत्तराखण्ड के लिये पुनः प्रस्थान किया लेकिन रामकृष्ण के प्रमुख शिष्य बलराम बोस की मृत्यु का समाचार पाकर उन्हें कलकत्ता लौटना पड़ा।

अन्त में ६ जुलाई को उन्होंने अलमोड़ा के अपने गुरुभाइयों शारदानन्द, बैकुण्ठानन्द को लिखा, कि "मार्ग व्यय का प्रबन्ध हो जाने पर शीघ्र अलमोड़ा आना चाहता हूं, वहां से गढ़वाल के लिये प्रस्थान करूंगा जहां गंगा तट पर स्थित किसी स्थान पर दीर्घकाल के लिये ध्यान में बैठ सकूं।" चलने से पूर्व उन्होंने गुरुभाइयों से कहा—"मैं तब तक नहीं लौटूंगा जब तक मुझे वह अनुभूति प्राप्त न हो जाय जो मेरे स्पर्श मात्र से ही मनुष्य में आमूल परिवर्तन कर दे।"

विवेकानन्द अखण्डानन्द के साथ केवल दण्ड कमण्डल लेकर चल पड़े। काठगोदाम से नैनीताल और वहां से अलमोड़ा तक पैदल यात्रा की। भिक्षा के रूप में मात्र भोजन कभी-कभी मिल पाता था। जब स्वामी जी नैनीताल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अल्मोड़ा के बीच काकड़ीघाट नामक स्थान में पहुंचे तो पीपल के वृक्ष के नीचे बैठते ही उनके मुख से ये उद्‌गार निकले—

"ध्यान करने के लिये कैसी रमणीक जगह है।" तुरन्त उनका शरीर एकदम कठोर एवं स्पंदन हीन हो गया मानो प्राण तत्व ही निकल गया हो। बहुत लम्बे समय तक वे समाधि में लीन रहे। जागृत होने पर कहने लगे "आह गंगाधर! (अखण्डानन्द) मैं अभी अपने जीवन के महानतम क्षणों से गुजरा हूं, मैंने जीवात्मा एवं परमात्मा के ऐक्य का अनुभव किया है और अत्यन्त तुच्छ अणु में विराट् विश्व का दर्शन किया है।" इस अनुभुति से स्वामी जी इतने प्रभावित हुये कि अल्मोड़ा पहुंचने तक न तो किसी अन्य विषय पर सोच सकते थे, और न किसी अन्य विषय पर बात ही करते थे।

अल्मोड़ा नगर के समीप पहुंचते ही उनका निराहारी शरीर अत्यन्त श्रम के कारण अचेत हो गया और एक छोटे से कब्रिस्तान के सामने ढल पड़ा। साथी अखण्डानन्द जल की शोध में चले गये। इस बीच कब्रिस्तान के अधिकारी फकीर ने उनकी यह दशा देखकर उन्हें ककड़ी भेंट की। हाथ हिलाने में असमर्थ विवेकानन्द ने फकीर से ककड़ी मुंह में डालने को कहा। वह "मैं मुसलमान हूं" कह कर पीछे हटने लगा तो विवेकानन्द ने यह विलक्षण उत्तर दिया "उसमें क्या हुआ? क्या हम भाई-भाई नहीं हैं?"

आगे चल कर उपर्युक्त घटना का उपसंहार एक विचित्र रीति से हुआ। सात वर्ष के बाद सन् १८९७ ई० में अल्मोड़ा की अगली यात्रा के समय स्वामी जी क्षुधा क्षीण अज्ञात सन्यासी नहीं थे। अब वे जगत विख्यात् स्वामी विवेकानन्द थे। सीमा से बाहर मार्ग में उनका हार्दिक स्वागत किया गया। एक बड़े समारोह के साथ उन्हें नगर में लाया गया। अकस्मात् उनकी दृष्टि भीड़ में उसी मुसलमान पर पड़ी। जनसमूह के सामने ही स्वामी जी पूर्व सेवा का धन्यवाद देने के लिये गये और कहा-"इस व्यक्ति ने मेरे प्राणों की रक्षा की थी। मैं जीवन में इतना क्लांत कभी नहीं हुआ था।"

इस प्रकार सितम्बर सन् १८९० ई० में विवेकानन्द पहली वार अल्मोड़ा आये और बद्रीशाह का आतिथ्य ग्रहण किया। कुछ समय पश्चात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी के मन में एकान्त मे रहने की इच्छा जागृत हुई, जहां वे समाधिमग्न होकर आत्मा की प्यास बुझा सकें। एक दिन स्वामी जी एक पहाड़ी गांव के समीप निर्जन गुफा में जा पहुंचे। इस गुफा में विवेकानन्द ने अपने जीवन के परम लक्ष्य परमानुभूति की प्राप्ति के लिये उग्र साधना की। वास्तव में उनके लिये यह एक अद्‌भुत आन्तरिक द्वन्द का समय था। उन्होंने स्वयं इस गुफा में रहते हुये अपने अनुभवों का वर्णन करते हुये कहा "मेरे समक्ष जीवन में मुझे कभी किसी वस्तु ने निर्दिष्ट कर्म की प्रेरणा से इतना ओतप्रोत नहीं किया। ऐसा प्रतीत होता था मानो मुझे हिमालय के एकान्त को छोड़ कर मैदानों में इधर उधर भटकने के लिये धकेल दिया गया हो।"

इस स्थान से अल्मोड़ा वापस आने पर उन्हें एक तार द्वारा उनकी विधवा बहिन की आत्महत्या का समाचार मिला। इसके शीघ्र बाद एक पत्र मिला जिसमें उस दुखःद घटना का विस्तृत वर्णन था। इस घटना ने उन्हें हिन्दू नारी, विशेषकर विधवाओं की समस्याओं के प्रति झकझोर कर जगा दिया और उन्होंने उनके उद्धार के लिये रुढ़िवादी परम्पराओं के विरोध में संघर्ष करने का दृढ़ निश्चय किया।

विवेकानन्द बद्रीनाथ तथा केदारनाथ के लिये एक कुली को लेकर शारदानन्द, अखण्डानन्द तथा बैकुण्ठानन्द सहित चल पड़े। मार्ग में अखण्डानन्द बीमार पड़ गये। टोली बद्रीनाथ के रास्ते में कर्णप्रयाग नामक स्थान में जा पहुंची। उन्होंने यहां पर तीन दिन तक निवास किया। कर्णप्रयाग छोड़ने के बाद विवेकानन्द तथा अखण्डानन्द ज्वर से पीड़ित हो उठे, जिससे उन्हें एक चट्टी में रुकना पड़ा। पूर्ण रूप से स्वस्थ होने के पश्चात् वे केदारनाथ जाने के लिये रुद्रप्रयाग की ओर बढ़े। मार्ग में प्राकृतिक सौन्दर्य ने स्वामी जी के हृदय को अगाध आनन्द से भर दिया। रुद्रप्रयाग में एक बगाली भिक्षु पूर्णानन्द के पास रात्रि व्यतीत की। रुद्रप्रयाग के निकट धर्मशाला में स्वामी जी तथा अखण्डानन्द प्रचण्ड ताप से घिर उठे। जिससे अपनी यात्रा पूरी करने में वे असमर्थ रहे। भाग्यवशात् यहां पर गढ़वाल जिले के सदर अमीन से उनकी भेंट हुई। जिसने उन्हें आयुर्वेदिक दवाईयां दी और पूर्ण स्वस्थ होने पर उन्हें डान्डी द्वारा श्रीनगर भिजवाया। इस समय विवेकानन्द अल्मोड़ा से १२० मील यात्रा कर चुके थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीनगर पहुंच कर उन्होंने कुली को वापस भेज दिया तथा गंगा के निकट एकान्त स्थान पर झोंपड़ी में निवास करने लगे। यहां विवेकानन्द ने एक महीना निवास किया। वे मधुकरी करते तथा साधना में लीन रहते थे। श्रीनगर में स्वामी जी की भेंट एक वैश्य स्कूल मास्टर से हुई, जिसने उन्हीं दिनों ईसाई मत ग्रहण किया था। स्वामी जी ने उसे हिन्दू धर्म की महत्ता समझाई जिससे वह फिर से सनातनी बन गया और विवेकानन्द का अनन्य भक्त हो गया।

श्रीनगर निवास के पश्चात् स्वामी जी ने टिहरी के लिये प्रस्थान किया। टिहरी पहुंचने पर गंगा के निकट निर्जन बाग में दो कमरों में रहने लगे। यहां भी भोजन मधुकरी पर निर्भर रहता था। कुछ समय पश्चात् स्वामी जी की भेंट टिहरी राजा के दिवान रघुनाथ भट्टाचार्य से हुई। स्वामी जी कुछ समय उनके साथ रहे। दीवान ने स्वामी जी की भिलंगना के निकट गणेश प्रयाग में उनके लिये स्थान बनाने का वचन दिया। अचानक कार्यक्रम बदलना पड़ा क्योंकि अखण्डानन्द फिर बीमार पड़ गये। स्थानीय वैद्यों ने तुरन्त मैदान में ले जाने की सलाह दी। टिहरी के दिवान ने देहरादून सिविल सर्जन के नाम पत्र तथा रास्ते का सामान इत्यादि, और घोड़ों का प्रबन्ध कर दिया। स्वामी जी एक महीना टिहरी में रहने के पश्चात् अपने गुरुभाई को लेकर देहरादून आ गये। देहरादून में तीन हफ्ते रहने के पश्चात् जब अखण्डानन्द स्वस्थ हो गये तो उन्हें इलाहबाद में एक गुरुभाई के पास भेज दिया और स्वयं ऋषिकेश को प्रस्थान किया।

ऋषिकेश में चण्डेश्वर महादेव के मन्दिर के निकट कुछ समय रहे। यहां फिर साधना में लीन होने की इच्छा जागृत हो उठी, लेकिन भाग्य ने साथ न दिया और पुनः बीमार पड़ गये। हालत इतनी गम्भीर हो गई कि लगता था अन्त समय निकट आ गया है। उपचार के नाम में केवल शहद प्राप्त था, जिसने अमृत का कार्य किया और धीरे-धीरे स्वास्थ्य में सुधार होने लगा। पूर्णतः ठीक होने पर गुरुभाई उन्हें हरिद्वार ले गये। हरिद्वार से मेरठ पहुंचे। यहां तीन चार महीने निवास के उपरान्त विवेकानन्द ने अपने गुरुभाइयों से अलग होने का निश्चय किया। जिस भारत की सेवा के लिये उन्होंने देह धारण की थी, उसके वास्तविक स्वरूप को समझने के लिये उन्हें अकेले ही विचरण करना आवश्यक था। जनवरी १८९१ ई० में वह चल पड़े और ढ़ाई वर्ष तक उसी प्रकार विचरते रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मद्रास में उन्होंने सन् १८९३ ई० में शिकागो में आयोजित होने वाले विश्वधर्म सम्मेलन के विषय में सुना और मद्रास के युवकों ने उनकी अमेरिका यात्रा के लिये धन एकत्रित किया। अमेरिका जाने की सूचना उन्होंने केवल शारदा मां को दी। अपनी ओजस्वी वाणी से विश्वधर्म सम्मेलन को चकित करके जगत विख्यात स्वामी विवेकानन्द के रूप में सामने आये। स्वामी जी यूरोपयात्रा से अपने पाश्चात्य शिष्यों जे० जे० गुडविन, अंग्रेज दम्पत्ति कैप्टेन सेवियर और श्रीमती सेवियर आदि के साथ भारत लौटे।

स्वामी जी के हृदय में हिमालय में एक अद्वैत आश्रम बनाने की कल्पना थी जिसे उन्होंने स्विटजरलैंड में सेवियर दम्पत्ति के सम्मुख व्यक्त किया था। इसी कल्पना को साकार रूप देने के लिये सेवियर दम्पत्ति भारत आये।

अपने अभावग्रस्त देश के लिये विदेशों से धन एकत्रित करने और पश्चिम में वेदों के प्रभाव व प्रचार के दोहरे उद्देश्य से स्वामी जी ने शिक्षण और भाषण का जो कठोर परिश्रम किया उससे उनका स्वास्थ्य गिरने लगा था। विदेश से लौटने पर अपार जन समूह द्वारा आयोजित स्वागत समारोहों, सभाओं में दिये गये भाषणों व असंख्य व्यक्तियों से होने वाली व्यक्तिगत भेंटों ने उन्हें और भी थका दिया। वे शीघ्र विश्राम के लिये उत्तराखण्ड आना चाहते थे किन्तु बंगाल में दो महान् कार्यों को करना अनिवार्य प्रतीत हुआ। पहला अभावग्रस्त लोगों की सेवा के लिये रामकृष्ण मिशन का संगठन करना, दूसरा बंगाल के जिलों में तेजी से फैलते हुये दुर्भिक्ष के लिये सन्यासियों द्वारा सेवाकार्य की योजना बनाना।

अन्त में मई सन् १८९७ ई० में डाक्टर के विशेष अनुरोध पर उन्होंने उत्तराखण्ड के लिये प्रस्थान किया। उनके पाश्चात्य शिष्य गुडविन, मिसमुलर आदि उनसे पहले ही यहां के लिये चल पड़े थे। इस बार गुडविन आदि श्रद्धालु सज्जन उनके स्वागत के लिये काठगोदाम पहुंचे। जैसे ही टोली स्वामी जी को लेकर नगर के समीप पहुंची भारी जन समूह ने उनका स्वागत किया और स्वामी जी को सुन्दर सुसज्जित घोड़े पर बैठा दिया गया। अल्मोड़ा नगर में तीन सहस्त्र व्यक्ति अभिनन्दन के लिये एकत्रित थे। सारे मार्ग में छतों पर चढ़ी हुई स्त्रियाँ पुष्पों व अक्षतों की वृष्टि कर रही थीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बद्रीशाह के घर के सामने सड़क पर झंडियां बांध कर पंडाल बनाया गया। रात्रि में समस्त नगर में बड़े त्योहार की तरह दीपमाला सजाई गई।

इस बार विवेकानन्द अपने पुराने मित्र बद्रीशाह के पास ढाई मास तक रहे। किन्तु उनके हृदय में कभी २ विचार आता था कि अल्मोड़ा भी पूर्ण शान्तिमय स्थान नहीं है। दो बार वे लगभग बीस मील उत्तर में स्थित देवलधार इस्टेट में गये। वहां उन्होंने अश्वारोहण किया तथा वहां की सुन्दर जलवायु एवं मनोरम दृश्यों का आनन्द प्राप्त किया। धीरे-धीरे उनका स्वास्थ्य सुधरने लगा, उन्होंने कलकत्ते में अपने डाक्टर को लिखा कि बाल्यकाल के बाद अपने को इतना स्वस्थ कभी अनुभव नहीं किया। जुलाई अन्त तक विवेकानन्द अल्मोड़ा छोड़ने को तैयार हो गये। अल्मोड़ा से चलने से पहले वहां के अंग्रेज निवासियों ने स्वामी जी को अपने क्लब में भाषण देने को बुलाया।

स्वामी जी की आगामी यात्रा दूसरे वर्ष हुई। विदेशों से उनके अन्य शिष्य भी आ गये थे। मैदानों में गर्मी अधिक हो जाने पर सेवियर दम्पति अल्मोड़ा चले गये जहां उन्होंने बद्रीशाह का 'थौमसन भवन' नामक मकान किराये पर ले लिया और विवेकानन्द के पास पहुंच कर उनका आतिथ्य स्वीकार करने का आग्रह किया। इस भय से कि पश्चिम से हाल ही में आने वाले शिष्य बढ़ती गर्मी से बीमार न हो जायें, स्वामी जी ने उन सबके साथ मई १८९८ ई० को कलकत्ता से अल्मोड़े के लिये प्रस्थान किया। उनके गुरुभाइयों ने 'थौमसन भवन' में सेवियर दम्पत्ति का आतिथ्य ग्रहण किया तथा पाश्चात्य मित्रों और स्वामी जी के शिष्यों ने ओकले भवन में निवास किया। यहां जो समय व्यतीत हुआ है वह १८९५ ई० के ग्रीष्म में सैन्ट लौरेन्स पर स्थित "सहस्त्र द्वीप उपवन" में स्वामी जी के प्रवास के दिनों की पुनरावृत्ति थी जहां वे जिज्ञासुओं की मण्डली से घिरे रहते थे। स्वामी जी ने इन पाश्चात्य अनुयायियों के शिक्षण का कार्य अपने हाथ में ले लिया। उनकी चेष्टा थी कि इनके हृदय से कल्पित भ्रमपूर्ण संस्कारों को दूर करके भारत के इतिहास, पुराण, रीति रिवाज और यहां की मान्यताओं का ठीक-ठीक ज्ञान इन्हें करा दें। प्रतिदिन प्रातःकाल गुरुभाइयों के साथ भ्रमण के बाद कलेवे के लिये ओकले भवन जाते थे, और वहां कई घन्टे विभिन्न विषयों पर वृहद वार्ता होती थी। दर्शनार्थियों के साथ भी विचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमर्श और प्रश्नोत्तर चलते थे।

एक दिन भारतीय थ्योसफिकल सोसाइटी की नेत्री श्रीमती एनी वेसन्ट को थॉमसन भवन में चाय में आमन्त्रित किया गया। एक अन्य बंगाली देशभक्त स्वामी जी के निवास स्थान पर आये, इनसे जो वार्ता हुई उसमें स्वामी जी ने भारत की स्वतन्त्रता के विषय में अपने विचार व्यक्त किये। उन्होंने गर्जनापूर्ण स्वर में कहा, "**क्या आप समझते हैं** कि कुछ एक प्रस्ताव पास करने से स्वतन्त्रता प्राप्त हो जायेगी? मुझे इसमें किंचित भी विश्वास नहीं है। पहले जनता को जागृत करना होगा, उन्हें भरपेट भोजन देना होगा तब वह स्वयं अपनी मुक्ति का मार्ग ढूंढ लेगी।"

अब भी यदाकदा स्वामी जी के मन में एकान्तवास की इच्छा प्रबल हो जाती थी। ऐसे ही एक अवसर पर वे अल्मोड़े के पश्चिम में वन्य प्रदेश के शिखर पर स्थित सैयादेवी के लिये चल पड़े। वहां स्वामी जी तीन दिन तक रहे। लेकिन लोगों ने वहां भी पीछा नहीं छोड़ा। इसलिये उन्हें लौटना पड़ा। अल्मोड़ा आने पर उन्हें धक्का पहुंचा। तार द्वारा समाचार मिला कि दक्षिण भारत में उटकमण्ड में भक्त गुडविन की मृत्यु हो गई। मिस मैकिलोयोड के कथनानुसार जब गुडविन की मृत्यु का तार स्वामी जी को दिया गया तो वे थौमसन भवन के सामने खड़े होकर मूक और स्थिर दृष्टि से दूरस्थ शिखरों की ओर बहुत देर तक देखते रहे। तब उन्होने बहुत धीमे कहा—"अब मेरे जनता में भाषण देने के दिन समाप्त हो गये।" उस रात्रि में उन्होंने "Requiescat in Peace" नाम की एक कविता लिखी और उसे गुडविन की माता के पास भिजवाया।

११ जून १८९८ ई० को अन्तिम बार अल्मोड़ा छोड़ने से पहले स्वामी विवेकानन्द ने एक महत्वपूर्ण कार्य किया। मद्रास से प्रकाशित होने वाली अंग्रेजी पत्रिका "प्रबुद्धभारत" के सम्पादक की अचानक मृत्यु हो गई। अतः पत्रिका को फिर से अल्मोड़ा से प्रारम्भ करने का निश्चय किया गया। इसके नये सम्पादक स्वामी जी के युवा शिष्य स्वरुपानन्द तथा कैप्टेन सेवियर ने हैंडप्रेस तथा कागज आदि का व्यय वहन करने का निश्चय किया और सन् १८९८ ई० तक पत्रिका का प्रकाशन अल्मोड़ा से होता रहा। इसके बाद उसे मायावती को स्थानान्तरित कर दिया गया। कैप्टेन सेवियर इस पत्रिका के व्यवस्थापक भी रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मायावती—अल्मोड़ा से ५५ मील की दूरी पर स्थित मायावती का चुनाव अद्वैत आश्रम के लिये सेवियर दम्पत्ति तथा स्वरुपानन्द द्वारा किया गया था। सेवियर दम्पत्ति ने स्वामी जी की प्रेरणा व्यर्थ नहीं जाने दी। उन्होंने इसे अपना जीवनव्रत बना लिया। कैप्टेन सेवियर का देहान्त अपने ही बनाये हुये आश्रम में २८ अक्टूबर सन् १९०० ई० को हुआ। स्वामी जी उस समय पश्चिम की यात्रा पर थे। उन्होंने यह संवाद वापस आकर ही सुना। वैलूरमठ में विश्राम के लिये न रुक कर उन्होंने मायावती को तार दिया कि "मैं आ रहा हूं।"

उस ऋतु में हिमालय दुर्गम हो रहा था। तिस पर विवेकानन्द जी के स्वास्थ्य का जो हाल था उसमें यात्रा और भी दुष्कर थी। वर्षा, धुन्ध का सामना करते हुये मुश्किल से ३ जनवरी १९०१ ई० को वे मायावती पहुंचे। यहां श्रीमती सेवियर से साक्षात्कार करने का तथा वहां के कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न देखने का सुख अवश्य था। परन्तु दमे से उनका श्वास अवरुद्ध होने लगता था। १२ जनवरी को उन्होंने अपना अड़तीसवां जन्मदिन मनाया और १८ जनवरी को मायावती से प्रस्थान कर २४ जनवरी को वैलूरमठ पहुंचे।

अथक परिश्रम से विवेकानन्द जी का स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया। अन्त में जीवन के उनचालीसवें वर्ष में ४ जुलाई १९०२ को इस महान विभूति ने पार्थिव देह को त्याग दिया।

उत्तराखण्ड में विवेकानन्द के निवास तथा उत्तराखण्ड के प्रति उनके झुकाव के कारण मायावती पूर्व तथा पश्चिम के अनुयायियों के लिये महत्वपूर्ण स्थान बन गया है।

महर्षि दयानन्द

ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी में जन्म लेकर जिन महापुरुषों ने भारतीय धर्म, समाज तथा संस्कृति की सेवा की इनमें आर्य समाज के संस्थापक ऋषिदयानन्द का नाम अग्रणी है। इनका जन्म सौराष्ट्र (काठियावाड़ गुजरात) के अन्तर्गत टङ्कारा नामक ग्राम में वि० १८८१ (ई० १८२४) में हुआ था। इनके पिता करसन त्रिवेदी सामवेदी धर्मिष्ठ ब्राह्मण थे। उनके यहां जमींदारी लेन देन का कार्य होता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द जी के बाल्यकाल का नाम मूलशंकर था। १८८८ वि० में बालक मूलशंकर का यज्ञोपवीत हुआ। तदनन्तर वे अपने पिता के सान्निध्य में रह कर यर्जुवेद संहिता कण्ठस्थ करने लगे। इसके पश्चात् उन्होंने वेदों का अध्ययन किया। बालक मूलशंकर बाल्यकाल से ही सत्यान्वेषी थे। पिता ने उनका विवाह संस्कार सम्पन्न कराने का निश्चय किया लेकिन वि० १९०३ की ज्येष्ठमास की संध्या को मूलशँकर ने चुपचाप गृहत्याग कर जंगल का रास्ता लिया।

सन्यस्त होने के पश्चात् दयानन्द ने उत्तरी भारत का विस्तृत भ्रमण किया। विभिन्न योगियों से योग की दीक्षा ली तथा संस्कृत के विभिन्न शास्त्र ग्रन्थों का अभ्यास करते हुये हिमालय भ्रमण किया। इसके बाद मथुरा में गुरु विराजानन्द से वेदों का अध्ययन करके वे वेदों के प्रकाण्ड पण्डित हो गये। उनका प्रचार कार्य भी वेदों पर आधारित रहा। स्वामी जी ने मूर्ति पूजा को वेद विरुद्ध सिद्ध करके एकेश्वरवाद का प्रबल सर्मथन किया और देश में राष्ट्रीय भावना को जागृत किया।

महर्षि उत्तराखण्ड में—हमारे देश में यह विश्वास सुप्रचलित है कि हिमगिरि की उन्नत उपत्यकाओं में अनेक योगी–महात्मा योगाभ्यास एवं आत्म चिन्तन करते हैं। इसी भावना से प्रेरित होकर दयानन्द दक्षिण भारत से महात्माओं और योगियों से ज्ञानोपार्जन के निमित्त उत्तर में आये और हिमधवल उत्तुंग शिखरों पर विचरण करते हुये योगियों की तलाश करते रहे।

सम्वत् १९११ विक्रमी के अन्तिम भाग मे हरिद्वार में कुम्भ समारोह हो रहा था। विभिन्न स्थानों में गुरु की खोज करता हुआ युवा सन्यासी हरिद्वार पहुंचा। हरिद्वार में कुछ समय निवास करने के उपरान्त ऋषिकेश आकर योगाभ्यास किया। उन्होंने लिखा है–"यहां बड़े-बड़े महात्मा तथा योगियों से मैं योग की क्रियायें सीखता तथा सत्संग करता रहा।"

ऋषिकेश में दयानन्द जी को ज्ञात हुआ कि टिहरी में कुछ ऐसे विद्वान हैं जिनके पास संस्कृत के ग्रन्थ हैं। उन ग्रन्थों की खोज में दयानन्द टिहरी के लिये चल पड़े। यह नगर उस समय साधुजनों के निवास और सुपठित राजपण्डितों के कारण प्रसिद्ध था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी ने काफी समय तक टिहरी में निवास किया। टिहरी के राजपण्डित से स्वामी जी ने प्रसिद्ध एवं दुष्प्राप्य पुस्तकों का पता पूछा। उसने बताया कि यहां संस्कृत, व्याकरण कोष और तन्त्रग्रन्थ मिल सकते हैं। स्वामी जी ने अभी तक तन्त्र ग्रन्थों का अवलोकन नहीं किया था इस कारण उन्होंने राजपण्डित से तन्त्र ग्रन्थ लाने के लिये कहा। वह अल्प समय में ही कुछ तन्त्र पुस्तकें स्वामी जी को दे गया। स्वामी जी उन पुस्तकों में से एक को उठाकर ज्यों ही पढ़ने लगे तो अकस्मात् उनकी दृष्टि ऐसे लेख पर पड़ी जिससे वह कांप उठे। पुस्तक में अत्यन्त लज्जाजनक बातें लिखी हुई थीं। वाममार्गियों के तन्त्रग्रन्थों से उनका प्रथम साक्षात् हुआ।

टिहरी से प्रस्थान कर दयानन्द श्रीनगर पहुंचे। यहां केदारघाट पर एक मन्दिर में कई मास तक रहे। यहां भी कुछ तांत्रिक महात्माओं से उनका वाद विवाद हुआ।

श्रीनगर के समीप एक वनावृत पहाड़ी पर गंगागिरि नामक विद्वान् महात्मा निवास करते थे। दयानन्द जी का उस एकान्तवासी शान्तात्मा के साथ मिलाप हो गया। वे नित्य उन्हें मिल कर योगादि उत्तम विषयों की चर्चा में समय व्यतीत करते थे। दयानन्द ने स्वयं लिखा है कि उन एकान्तवासी योगी की संगति ऐसी अच्छी लगी कि दो मास से अधिक काल तक उनके साथ रहने का आनन्द प्राप्त किया।

ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ होते ही दयानन्द जी गंगागिरि से विदा लेकर एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधुओं सहित केदारघाट से चलकर रुद्रप्रयाग आदि स्थानो में घूमते हुये अगस्तमुनि पहुंचे। इस स्थान से आगे उत्तर की ओर एक पर्वत शिखर "शिवपुरी" नाम से प्रख्यात है। स्वामी जी ने उस स्थान पर शरद ऋतु के चार मास व्यतीत किये। शिवपुरी से लौटकर स्वामी जी अपने साथियों से पृथक होकर पुनः केदारघाट आ गये। केदारघाट में कुछ समय निवास के उपरान्त गुप्तकाशी गये। वहां से गौरीकुण्ड, भीमगुफा, त्रियुगीनारायण होते हुये फिर केदारघाट पहुंच गये। केदारघाट का वास उन्हें अति प्रिय था, साथ ही गंगागिरि का सत्संग। इसलिये इस बार वे लम्बे समय तक यहां रहे। इसी बीच स्वामी जी के साथी भी उनसे आ मिले। वहां रहते हुए उनके मन में निकटवर्ती हिममण्डित हिमालय की पर्वत मालाओं में सिद्ध महात्माओं की खोज करने की उमंग पैदा हुई और उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुंगनाथ के लिये प्रस्थान किया।

आज से सौ वर्ष पूर्व तुंगनाथ जाने के लिये यात्रियों को स्वयं अपना मार्ग खोजना पड़ता था। दयानन्द जी ने तुंगनाथ की चोटी में चढ़ना आरम्भ किया। वहां पहुंच कर उन्होंने उस स्थान के मन्दिर को मूर्तियों तथा पुजारियों से परिपूर्ण पाया। पुजारियों के ऐसे जमघटे को देखकर वे उसी दिन वहां से लौट पड़े। स्वामी जी ने उस बीहड़ वन के विकट मार्ग का वर्णन करते हुये लिखा है—

"उतरते समय मैंने अपने सामने दो मार्ग देखे, एक पश्चिम की ओर तथा दूसरा दक्षिण पश्चिम की ओर जाता था। मैं स्थिर न कर सका कि किस मार्ग से मुझे जाना चाहिये। अन्त में मैं उस मार्ग की ओर चल दिया जो जंगल की ओर जाता था। कुछ ही दूर बढ़ा था कि एक घने जंगल में घुस गया। शाखाओं और झाड़ियों को पकड़-पकड़ कर मैं जैसे तैसे एक सूखे नाले के तट पर पहुंचा। चारों ओर ऊंचे-ऊंचे पहाड़ तथा शिखरों के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई न दिया। सूर्य अस्त हुआ ही चाहता था। यह विचार कर मेरा चित्त आन्दोलित हो रहा था कि शीघ्र ही अन्धकार फैल जायेगा। उस दुर्गम मार्ग में मेरे वस्त्र फट गये थे। शरीर क्षत-विक्षत हो गया और पैर कंटको से छिद कर लहूलुहान हो गये थे। अन्त में एक पर्वत के पादमूल में आकर मैंने एक मार्ग देखा। कुछ ही दूर आगे बढ़ने पर मैंने कुटियाओं की एक श्रेणी देखी। कुटीवासियों से पूछने पर उन्होंने बताया कि यह मार्ग उखीमठ को जाता है और थोड़ी देर बाद मैं उखीमठ पहुंच गया।"

उखीमठ में उन दिनों साधु महातमा रहते थे। यह उत्तराखण्ड का प्रसिद्ध मठ है। केदारनाथ मन्दिर के कपाट बन्द होने पर पुजारी यहीं आकर पूजा करते हैं। उखीमठ का महन्त दयानन्द जी से बहुत प्रभावित हुआ। उसने दयानन्द जी को अपने साथ रखने का भरसक प्रयत्न किया, यहां तक कि उसने अपने मरने के पश्चात् इनको ही गद्दी तथा लाखों रुपयों की पूंजी देने का प्रलोभन दिया। स्वामी जी ने निस्पृह उत्तर दिया, "यदि मुझे धन की लालसा होती तो मैं अपने पिता की सम्पत्ति को, जो आपकी पूजा पाठ द्वारा अर्जित पूंजी से कहीं अधिक थी, न छोड़ता।"

उखीमठ में धार्मिक ग्रन्थों का अच्छा संग्रह था, स्वामी जी ने उनका अध्ययन किया। महंत ने उन्हें सब प्रकार की सुविधायें दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उखीमठ से स्वामी जी जगद्गुरु शंकराचार्य के मठ जोशीमठ गये। इस स्थान पर स्वामी जी काफी समय तक प्राचीन ग्रंथों की खोज में संलग्न रहे। यहां उन्हें कई योगी मिले जिनसे उन्होंने योगक्रियायें सीखीं। जोशीमठ के समीपवर्ती स्थलों में भी उन्होंने योगियों की खोज की। स्वामी जी ने लिखा है—

"यहां कुछ समय सन्यासाश्रम के चतुर्थ श्रेणी के सच्चे साधुओं के साथ रहा और बहुत से योगी, विद्वानों, महन्तों, साधुओं से भेंट हुयी। उनसे मुझे योगविद्या सम्बन्धी और नई बातें ज्ञात हुई।" योग विद्या के तत्वों की शिक्षा लेकर स्वामी जी यहां से बद्रीनाथ पहुंचे। वहां का वर्णन दयानन्द जी के शब्दों में—

"मैं बद्रीनाथ पहुंचा, विद्वान् रावल उस समय मन्दिर का मुख्य महन्त था। मैं उसके साथ कई दिन तक रहा। हम दोनों का परस्पर वेदों और दर्शनों पर बहुत वाद विवाद हुआ। जब मैंने उससे पूछा कि यहां कोई विद्वान् और सच्चा योगी भी है तो उसने बड़ा शोक प्रकट किया कि "इस समय कोई ऐसा योगी नहीं है परन्तु मैंने सुना है कि प्रायः ऐसे योगी इस मन्दिर में दर्शन के लिये आते हैं।" उस समय मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि समस्त देश में और विशेषतः इस पर्वतीय स्थल में अवश्य ऐसे पुरुषों का अन्वेषण करूंगा।"

स्वामी जी बद्रीनाथ से सीधे अलकनन्दा के उद्गम की ओर चल दिये। उन दिनों मार्ग अत्यन्त भयंकर था। उस क्षेत्र में रहने वाले ही उन मार्गों पर चलने में कठिनाई अनुभव करते थे। अतः उनके लिये मार्ग खोजना कठिन हो गया। योगियों की खोज में वे काफी ऊंचाई तक चढ़ गये किन्तु फिर भी उन्हें किसी महात्मा या योगी के दर्शन नहीं हुये।

लौटते समय मार्ग खोजने में बहुत कठिनाई पड़ी। मार्ग की खोज में उन्होंने नदी पार करने का निश्चय किया और नदी में घुसते ही उनकी अंगुलियां और तलुवे छिल गये क्यों कि नदी तीक्ष्ण नुकीले हिमखण्डों से भरी थी। वे स्वामी जी के पैरों में गड़-गड़ कर उन्हें घायल करने लगे। ठंड की अधिकता के कारण उनका शरीर सुन्न पड़ गया। हिमप्रदेश की अतिशीतल वायु अल्प वस्त्र युक्त शरीर को तीर की भांति छेदने लगी। वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अचेत होने लगे। सहसा उनके मन में विचार कौंधा कि अगर वे अचेत हो गये तो जल समाधि हो जायेगी। साहस से और प्रयास करके वे नदी से निकल पड़े। बाहर निकल कर हिमकणों को चूस कर गला तर किया। पावों के घावों पर शरीर का वस्त्र उतार कर लपेट दिया। फिर भी एक पग बढ़ाने में असमर्थ रहे। ऐसे घोर संकट के समय दो पहाड़ी सज्जन उधर आ निकले, उन्होंने स्वामी जी की दशा देख कर कुछ जंगली पत्तों को कुचल कर घावों में लपेटा तथा पोटली से कुछ खाद्यपदार्थ स्वामी जी को खिलाया। आसपास से झाड़ियां इकट्ठी करके आग जलाई। इससे उनके शरीर में थोड़ी शक्ति आई। उन्होंने स्वामी जी से घर चलने का अनुरोध किया, लेकिन स्वामी जी ने उन्हें हार्दिक आशीर्वाद देकर कहा—"मैं आपका निमन्त्रण स्वीकार करने में असमर्थ हूं।" बहुत देर तक आग के निकट विश्राम किया, जब शरीर में गर्मी आ गई तो बद्रीनाथ की ओर लौट आये।

दूसरे दिन रावल जी से विदाई लेकर स्वामी जी रामपुर की ओर चल पड़े। रामपुर से काशीपुर पहुंचे। काशीपुर के निकट द्रोणताल नामक स्थान पर स्वामी जी ने चार महीने निवास किया। यहां उनके हृदय में एक बार विचार आया कि हिमालय के हिमप्रदेश में पुनः जाकर परमात्मा के ध्यान में पुनः स्थित होकर जीवनलीला समाप्त कर देनी चाहिये। पर दूसरे ही क्षण देश और समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य का स्मरण हो आया और मन की क्षणिक दुर्बलता दूर हो गई।

सन् १८७६ के हरिद्वार महा कुम्भ के अवसर पर उन्होंने पहले पहल अपने मत का प्रचार किया। इस अवसर पर उखीमठ का महन्त (जिसने स्वामी जी को प्रलोभन दिया) उस स्थान पर पहुंचा। स्वामी जी को देख कर वह विस्मित हो गया। दयानन्द जी ने अपनी शैली से वेदों का भाष्य प्रारम्भ किया। उनके द्वारा सर्वप्रथम बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना हुई।

जोधपुर नरेश यशवन्तसिंह के निमन्त्रण पर दयानन्द जी जोधपुर पहुंचे। असत्आचरण से उन्हें तीव्र घृणा थी। महाराज के आचरण का उन्होंने स्पष्ट प्रतिवाद किया। फलतः महाराज की रखैल वैश्या ने उन्हें विष दिला दिया। उन महापुरुष ने विष के प्रभाव से सोलह अक्टूबर सन् १८८३ ई० को शरीर छोड़ा। मरते-मरते अपने घातक के लिये दया का आदेश दे गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस भ्रमण वृतान्त से सिद्ध होता है कि योगियों के अन्वेषण में दयानन्द जी ने उत्तराखण्ड में भ्रमण किया। पहाड़ी मार्गों का क्लेश, वर्फ से ढके पहाड़ों की दुर्गमता, पर्वतीय वनों की भीषणता जैसी कोई भी वस्तु उन्हें मार्ग से पीछे न हटा सकी। यह वह समय था जब स्वामी जी की एकमात्र इच्छा योगी बनने की थी। उत्तराखण्ड से प्रेरणा लेकर उन्होंने आर्ष ग्रन्थों की खोज की तथा उनका अध्ययन किया और वैदिक धर्म के प्रचार में सम्पूर्ण जीवन लगा दिया।

रमणीय हिमाचल प्रदेश

श्रीमती प्रसन्ना पारेख

श्रीमद्भगवत् गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा हैं कि "स्थावराणाम् हिमालयः"—स्थावर वस्तुओं में मैं हिमालय हूं। हिमालय की २५०० कि० मी० लम्वी पर्वत शृंखला अफगानिस्थान से लेकर बर्मा तक एक अर्द्ध-चन्द्राकार में फैली हुई है। यह पर्वत माला अवनी पर सबसे उत्तुंग है, परन्तु भूशास्त्रियों के अनुसार यह आयु में सबसे छोटी है। करीव ५ करोड़ वर्ष पहले यहाँ पर टेथीस नाम का महासागर था जिसमें से हिमालय—पर्वत का उद्गम हुआ था।

हिमालय के पश्चिम भाग में हिमाचल प्रदेश का राज्य वसा हुआ है। हिमाचल प्रदेश के पश्चिम में जम्मू और काश्मीर का पहाड़ी इलाका स्थित है और पूर्व में गढ़वाल के हिमाच्छादित पर्वत—शिखर खड़े हैं। घने जंगल, उछलती नदियां, हरे मैदान, मनोहर सरोवर एवं हिमपर्वतों से छाया हुआ हिमाचल प्रदेश वास्तव में पृथ्वी पर का स्वर्ग है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमाचल प्रदेश में प्रवेश पाने के लिए हम उत्तर पंजाब में पठानकोट तक रेलगाड़ी से यात्रा करेंगे। ऐसे तो चण्डीगढ़ से भी हम हिमाचल प्रदेश की राजधानी शिमला जा सकते हैं, या तो देहरादून से नाहन के रास्ते भी राज्य में प्रविष्ठ हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त यात्री विमान से भी कुल्लु शहर पहुंच सकते हैं। राज्य का पर्यटन विभाग राज्य भर में पर्यटक निवास (टूरिस्ट बंगला) एवं यूथ होस्टल चलाता है। उपरान्त सार्वजनिक निर्माण विभाग एवं वन विभाग के बंगले भी जगह-जगह पर निर्मित हैं, और राज्य के भूतपूर्व महाराजाओं के कुछ राज महल भी अब होटल में परिवर्तित किये गये हैं।

हम लोग पठानकोट से ही हिमाचल प्रदेश में प्रवेश करेंगे। पठानकोट से ८० कि. मी. के मोटर सफर के उपरान्त हम दल्हाउसी पहुंच जाते हैं। सन् १८४८-५६ के दरम्यान भारत के ब्रिटिश वाइसराय लार्ड दल्हाउसी ने इस पर्वतीय नगर की स्थापना की। वृक्षों से छाये पांच पहाड़ों के बीच बसा हुआ दल्हाउसी अल्पव्ययीय (कम खर्चीला) गिरीधाम (हिल स्टेशन) है। यहां पर नैनीताल–मसूरी–दार्जीलिंग जैसे पर्यटकों की भीड़ देखने में नहीं आती। परन्तु दल्हाउसी में भी सुविधाजनक होटल-रेस्तराँ क्लब एवं सिनेमा गृह हैं।

दल्हाउसी के पास ही करीब २ कि. मी. लम्बा तेहरामल मैदान फैला हुआ है, और शहर का टागौर मार्ग चीड़ एवं देवदार वृक्षों की घटाओं से गुजरता है।

अब हम दल्हाउसी से २६ कि. मी. दूर खजियार नामक एक अत्यन्त रमणीय स्थान से मुलाकात करेंगे। ऊंचे-ऊंचे पर्वत एवं घने देवदार वृक्षों के जंगल के बीच एक विशाल तश्तरी जैसा, हरियाली से छाया हुआ मैदान फैला हुआ है। गहरे नीले आकाश की चाँदनी के नीचे मखमल जैसी हरियाली के बीच किसी अंगूठी में जड़े हुए नग की तरह एक मनोहर तालाब शोभायमान है। इस सुन्दर मैदान के छोर पर एक देवी के मन्दिर का सुवर्ण-शिखर सूर्य के प्रकाश में चमकता है जो हमको सरोवर के किनारे तक जाने को आकर्षित करता है। हम अपनी कार से उतर कर सरोवर के किनारे की ओर आगे बढ़ते हैं। परन्तु ओह! हमारे पैर तो हरियाली में अन्दर धंस रहे है। इस सरोवर के किनारे वाच्चा नामक जड़ चारों तरफ फैली हुई है जिस-पर जमी हुई मिट्टी की परत हमको जमीन का आभास दिलाती है। इससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोटान्तिक महिलायें

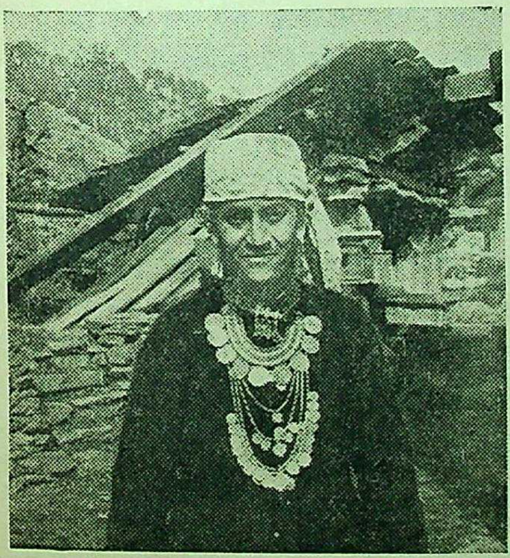

पर्वतीय नारी—गहनों के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी आश्चर्य जनक तो इस सरोवर के बीच तैरता हुआ छोटा सा टापू है जो जड़ों और मिट्टी की परतों से बना है।

अब हम खजियार से और नीचे उतरते जायेंगे और समुद्र की सतह से केवल ९१५ मी. की ऊंचाई पर रावी नदी के किनारे आ पहुंचते हैं। यहां पर चम्बा की रमणीय घाटी नदी के किनारे फैली है। पहले तो चम्बा एक रियासत थी परन्तु अब तो यह हिमाचल प्रदेश का ही अभिन्न अंग है। चम्बा नगरी में भगवान् शंकर एवं विष्णु के प्राचीन मन्दिर स्थित हैं जहां पर दूर दूर से यात्री लोग दर्शनार्थ आते रहते हैं। चम्बा शहर के बीच चौगान नाम का विशाल क्रीडागन है जहां पर शहर के लोग किसी भी धार्मिक या सांस्कृतिक या सार्वजनिक सम्मेलन के लिए एकत्रित होते हैं! पास में ही भूरी सिंह संग्रहालय स्थित है जो कि सुविख्यात कॉंगड़ा और बसौली शैली के चित्रों का अनुपम खजाना है।

रावी नदी के किनारे किनारे पूर्व की ओर यात्रा करके हम चम्बा प्रदेश की प्राचीन राजधानी भरमौर आते हैं। यहां के प्राचीन मन्दिर लाक्षणिक पहाड़ी स्थापत्य-शैली में बने हैं और यहां के लोग भी अत्यन्त सरल एवं मिलनसार हैं। भरमौर से आगे मणि महेश नामक अत्यन्त मनोहर सरोवर आता है जहां पहुंचने के लिए यात्री को दुर्गम पहाड़ पार करने पड़ते हैं। मार्ग की कठिनाई के बावजूद हजारों यात्री प्रतिवर्ष मणि-महेश तीर्थ आते रहते हैं।

अब हमारा यात्रा मार्ग चम्बा से दक्षिण की ओर जाकर चौरीखास होता हुआ हमको नूरपुर ले आता है। नूरपुर कस्बे का पुराना नाम धमेरी था। मुगल सम्राट जहांगीर ने उसका नाम बदल कर अपनी बेगम नूरजहां के नाम से नूरपुर रख दिया था। नूरपुर में हम एक प्राचीन किला देखने जायेंगें, जिसको एक हजार वर्ष पूर्व राजा वसु ने बनवाया था। नूरपुर अपने हस्त उद्योग के लिए प्रसिद्ध है। यहां की शाल एवं ऊनी पश्मीना पूरे हिमाचल प्रदेश में मशहूर है परन्तु दुर्भाग्यवश बाहर के लोगों में इसकी जानकारी कम है।

नूरपुर से हमारा मार्ग सीधा पूर्व दिशा में धरमसाला जाता है। धौलाधर पहाड़ों के एक धार पर एकान्त में बसा हुआ धरमसाला एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्त परन्तु रमणीय नगरी है। धरमसाला दो हिस्सों में बटा हुआ है—निचला धरमसाला व ऊपरी धरमसाला। धरमसाला १००० मीटर से २००० मीटर की ऊंचाई में फैला हुआ है। ऊपरी धरमसाला में आजकल तिब्बत के भूतपूर्व शासन कर्त्ता एवं धर्मगुरु दलाईलामा का निवास स्थान है।

धरमसाला से ११ कि. मी. की दूरी पर दाल सरोवर नामक स्थान है। यद्यपि काश्मीर के दाल सरोवर जितना विशाल यह तालाब नहीं है परन्तु उसकी मौलिक सुन्दरता अवश्य दिखाई पड़ती है। इसके निकट ही एक छोटे परन्तु सुन्दर झरने के करीब भागसुनाथ का लोकप्रिय मन्दिर है।

त्रिउन्ड सदैव हिमाच्छादित धौलाधार श्रेणी की तलहटी पर स्थित है। त्रिउन्ड पहुंचने के लिए हमें वर्फ से ढके मार्ग में करीब ५ कि. मी. वर्फानी रास्ता तय करना पड़ेगा। त्रिउन्ड स्थान से हमें धौलाधार के पर्वत शृंग एवं नीचे की हरी घाटी दृष्टिगोचर होती है। यहां पर एक वन विश्राम गृह भी बनाया गया है।

धरमसाला के दक्षिण में कांगड़ा की प्राचीन नगरी बसी हुई है। पहले यह इस इलाके का मुख्यालय था। प्रचण्ड वेग से बहती बाणगंगा के किनारे बसा हुआ कांगड़ा शहर अपने प्राचीन मन्दिर के लिए सुविख्यात है जिनमें वज्रेश्वरी देवी का मन्दिर प्रधान है। इस मन्दिर का सुवर्ण शिखर दूर से ही दिखाई पड़ता है। इस धर्मस्थल को कई बार लूटा गया था—पहले तो महमूद गजनी ने और बाद में फिरोज तुगलक एवं तैमूर लंग ने उसे लूटा था। पश्चात् महाराजा रणजीतसिंह ने इस प्रदेश में कुछ समय तक शासन किया था। परन्तु इस प्रदेश के सबसे तेजस्वी शासक तो महाराजा संसार चन्द्र कटोच थे जो कि समस्त ललित कलाओं के सुविज्ञ एवं संवर्धक थे। उन्ही के शासन काल में पहाड़ी शैली की चित्रकला का उदय एवं विकास हुआ।

अब हम कांगड़ा शहर से ३० कि. मी. की दूरी पर ज्वालामुखी के प्रसिद्ध तीर्थ स्थान आ पहुंचते हैं। व्यास नदी से थोड़ी सी दूरी पर एक पहाड़ की चट्टान की बगल में ज्वालामुखी मन्दिर निर्मित हुआ है। यहां पर एक बड़ी शिला की दरार में से निकलती प्राकृतिक गैस की ज्योती को ही देवी का स्वरूप मान कर उसकी पूजा एवं आराधना की जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब हम पालमपुर नामक रमणीय नगरी आ पहुंचते हैं जहां पर सुन्दर पर्यटक विश्रामगृह निर्मित किया गया है। पालमपुर के चारों ओर हरे भरे एवं समृद्ध चाय के बागान बिखरे हुए हैं जो इस नगरी की शोभा में अभिवृद्धि करते हैं। पालमपुर की जलवायु सुहावनी है और यहां के बाजार में कांगड़ा घाटी के गडेरिये अपने डाफल कुर्ते एवं शंकु आकार की टोपी में घूमते दिखाई पड़ते हैं। पालमपुर के नजदीक ही न्यूघल-खड है जहां पर बन्डला गाढ़ तंग घाटी में बहती है। वर्षाकाल में बन्डला गाढ़ रौद्र रूप धारण कर लेती है।

पालमपुर से थोड़ी दूरी पर बैजनाथ धाम है जहां कांगड़ा घाटी समाप्त होती है। यहां पर श्री वैद्यनाथ महादेव का सुविख्यात शिवालय है जहां हजारों यात्री प्रतिवर्ष दर्शनार्थ आते हैं। बैजनाथ से २३ कि० मी० की दूरी पर जोगिन्दर नगर की जलविद्युत परियोजना कई वर्षों से चल रही है। यहां से यात्री ट्रालीपर सवार होकर २५०० मीटर की खड़ी चढ़ाई तय कर पहाड़ के धार पर पहुंच सकते हैं। जोगिन्दर नगर में विद्युत विभाग का विश्रामगृह अत्यन्त आरामदायक है।

जोगिन्दर नगर से करीब ५६ कि० मी० की दूरी पर मण्डी शहर बसा हुआ है। मण्डी नगर हिमाचल प्रदेश के केन्द्र में व्यास नदी के बायें तट पर फैला हुआ है और समुद्र की सतह के केवल ८०० मीटर की ऊंचाई होने के कारण यहां की जलवायु काफी ऊष्ण है। मण्डी में कई प्राचीन मन्दिर हैं। परन्तु उनमें से अधिकांश भग्न स्थिति में हैं, जिनका जीर्णोधार आवश्यक है। मण्डी मे एक नया मन्दिर भी निर्मित हुआ है जो तारणा देवी को समर्पित है। यह मन्दिर एक पहाड़ की चोटी पर स्थित है जहां से आस पास के विस्तार का विहंगम दृश्य मिल पाता है।

मण्डी के दक्षिण में करीब ३० कि० मी० की दूरी पर एक अत्यन्त मनोहर ताल स्थित है जिसको रेवालसर कहते हैं। इस सरोवर के बीच कुछ तैरते टापू है जो सरोवर की शोभा बढ़ाते हैं। रेवालसर एक प्रसिद्ध तीर्थधाम है। लोक मान्यता है कि बौद्ध धर्म गुरु श्री पद्मसंभव ने इस पवित्र सरोवर के किनारे काफी समय व्यतीत किया था। इस स्थान पर बौद्ध, हिन्दू एवं सिख यात्री दर्शनार्थ आते रहते हैं। यहां की बौद्ध गोम्पा (बौद्ध मठ) का लामा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृन्द दिन भर पूजा विधि एवं मन्त्रोच्चार करते हैं। एक सिख गुरुद्वारा एवं हिन्दू मन्दिर भी रेवालसर के तट पर उपस्थित है।

अब हम मण्डी से पूर्व दिशा में ओटे होकर उत्तर में कुल्लु की दिशा में प्रस्थान करेंगे। हमारा मार्ग व्यास नदी के किनारे से गुजरता है और यहां का मार्ग तंग होने के कारण खतरनाक भी है। व्यास नदी के दोनों ओर भीषण चट्टाने ३००-३०० मीटर ऊंची दीवार खड़ी कर देते हैं जिनके बीच नदी का प्रवाह रौद्र रूप से बहता है।

अब हम "देवताओं की घाटी" कुल्लु में प्रवेश करते हैं। कुल्लु शहर पहुंचने से पहले ही मार्ग में बजौरा का गांव पड़ता है। जहां पर बागेश्वर महादेव का शिवालय खड़ा है। यह मन्दिर अपने स्थापत्य एवं प्रलम्भ शिल्प के कारण प्रख्यात है। मुस्लिम आक्रमण के कारण इनमें से कुछ शिल्प खण्डित हो चुके हैं।

समग्र कुल्लु घाटी सेव के बगीचों से आच्छादित है और यहां के सेव सारे भारत वर्ष की मण्डियों तक पहुंतते हैं। कुल्लु नगर से ४ कि० मी० पहले ही भून्तर का हवाई अड्डा है जो भारत के अन्य नगरों को कुल्लु घाटी के साथ जोड़ता हैं।

व्यास नदी के तट पर कुल्लु नगर समुद्र सतह से केवल १२०० मी० की ऊंचाई पर बसा हुआ है। कुल्लु शहर दो हिस्सों में बटां हुआ है—सुल्तानपुर और अखाड़ा बाजार। कुल्लु शहर के पास धालपुर मैदान का विस्तृत चौगान है जहां पर दशहरा के अवसर पर विशाल मेला लगता है।

कुल्लु का दशहरा का मेला सुप्रसिद्ध है। इस उत्सव में समस्त कुल्लु के देव-देवियों की मूर्त्तियां सुशोभित पालकियों में बड़े धूमधाम से लाई जाती हैं। दशहरा के अवसर का प्रमुख आकर्षण कुल्लु के श्री रघुनाथ जी की सुन्दर मूर्ति है जो कि मूलतः अयोध्या से लाई गई थी। कुल्लु घाटी के समग्र देव देवियों में श्री रघुनाथ जी सर्वोपरी माने जाते हैं।

दशहरा के प्रथम दिन श्री रघुनाथ जी के स्वरुप को मंत्रोच्चार के साथ एक सुन्दर अलंकृत रथ में विराजमान करते हैं और इस रथ को भावुक यात्री लम्बी रस्सियों से खींच कर दालपुर मैदान में ले आते हैं। इस मेले में कई छोटी छोटी दुकानें खड़ी की जाती हैं, जिनमें आधुनिक वस्तुओं के साथ यहां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की विशिष्ठ शाल, गहने एवं हस्तकला कृतियां बेची जाती हैं।

कुल्लु शहर के सामने एक ऊंचे पहाड़ की चोटी पर बिजली महादेव का सुन्दर शिवालय खड़ा है जिसके प्रांङ्गण में एक ६० फुट ऊचां खम्भा रोपा गया है जो कि वायु-मण्डल से बिजली को आकर्षित करता है। अतः इस शिव मन्दिर का नाम बिजली महादेव रखा गया है।

कुल्लु शहर के उत्तर पूर्व में ४५ कि० मी० की दूरी पर पार्वती नदी की घाटी में मणिकरण तीर्थ स्थान है जहां पर प्राकृतिक गरम पानी के स्रोत आये हुये हैं। यहां के कुण्ड में स्नान करने से यात्रा का श्रम तो दूर होता ही है परन्तु वात-प्रधान रोग भी दूर हो जाते हैं।

अब हम कुल्लु नगर से आगे व्यास नदी के किनारे आगे बढते हैं, और कत्तरायण गांव आ पहुंचते हैं जहां पर सेब के अनेक बगीचे बिखरे हुए हैं और जहां पर ट्राउट मछली का पालन किया जाता है। कत्तरायण के पास हम व्यास नदी पार करके करीब ३०० मीटर की चढ़ाई तय करके नग्गर गांव आते हैं जो कि विख्यात रुसी कलाकार निकोलास रोरिख के कारण प्रसिद्ध बना है। यहां पर एक छोटा सा संग्रहालय है जिसमें श्री रोरिख का छोटा सा चित्र संग्रह रखा गया है। नग्गर के प्राचीन किले को अब पर्यटकों के लिए एक विश्रामगृह में परिवर्तित किया गया है।

अब हम कत्तरायण से मनाली आते हैं जहां पर व्यास नदी की घाटी समाप्त होती है। मनाली एक सुप्रसिद्ध पर्यटन स्थान है जहां पर सारे देश के सैलानी ग्रीष्म ऋतु में एवं शरद काल में बड़ी संख्या में आते हैं। मनाली के पास देवदार के घने वन में देवी का मन्दिर स्थित है जिसका निर्माण लाक्षणिक (हिडम्बा) पहाड़ी शैली में किया गया है। मनाली में दो बौद्ध गोम्पा (मठ) भी हैं जहां पर कई लामा लोग रहते हैं। मनाली से थोड़े ही दूर पर्वतारोहण संस्थान है जहां पर युवक युवतियों को पर्वतारोहण का प्रशिक्षण दिया जाता है। मनाली से तीन कि० मी० दूर वशिष्ठ कुंड है जहां पर गंधक के गरम पानी के स्रोत में यात्री लोग स्नान करते हैं। वशिष्ठ कुंड से और आगे एक रमणीय सरोवर है जहां पर लोकोक्ति के अनुसार भृगुऋषि ने तपस्या की थी।

अब हम कुल्लु घाटी छोड़ कर हिमाच्छादित रोहतांगपास पार करेंगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और लाहुल के वीरान परन्तु मनमोहक प्रदेश में प्रवेश करते हैं। अब लाहुल के मुख्यालय किलोंग तक और इससे आगे भी मोटर सड़क बन गई है। यह विस्तार चन्द्रा एवं भागा नदियों द्वारा सिंचित है और इन नदियों की घाटी में कुछ खेती भी होती है। लाहुल का शेष प्रदेश वंजर भूमि है जहां आबादी बहुत कम है। किलोंग के लोग मंगोल जाति के हैं और अत्यन्त मिलनसार व प्रसन्नचित्त हैं।

किलोंग से आगे नदी पार करके हम कारदंग नामक सुविख्यात बौद्ध मठ देखने जायेंगे जो कि समग्र लाहुल में मशहूर है। इस बौद्ध मठ की दीवारों पर सुन्दर भित्तीचित्र आलेखित हैं और मन्दिर में एक बड़े पीपे में बौद्ध मन्त्र "ओम मणि पद्मे हुंम" असंख्य पत्रिकाओं पर लिख कर ठसाठस भरा हुआ है जिसको भावुक यात्री श्रद्धा से घुमा घुमा कर पुण्य प्राप्त करते हैं।

लाहुल विस्तार में त्रिलोकी नाथ का प्रसिद्ध तीर्थ धाम भी है जहां उदयपुर से पहुंचा जाता है। त्रिलोकी नाथ से चन्द्रभागा की घाटी का विहंगम दृश्य मिलता है। यह नदी आगे जाकर काश्मीर में चिनाव नाम से प्रसिद्ध है। अगस्त माह में त्रिलोकी नाथ तीर्थधाम में एक बड़ा मेला लगता है और यहां के मठ की प्राण प्रतिष्ठा महान धर्म गुरु पद्म संभव ने स्वयं की थी।

अब हम लाहुल की यात्रा समेट कर मनाली लौट आते हैं और वापस मण्डी आकर पूर्व में शिमला की ओर आगे बढते हैं। शिमला आते हुए रास्ते में विलासपुर एवं गोविन्द सागर देखने को मिलते हैं। गोविन्द सागर का विशाल जलाशय सतलज नदी पर भाखड़ा नागल का उत्तुंग बांध निर्मित होने से बन गया है। जब गोविन्द सागर भरा हुआ होता है तब यात्री उस पर नाव से सैर भी कर सकते हैं।

शिमला अब सारे हिमाचल प्रदेश की नई राजधानी है। ब्रिटिश शासन-काल में शिमला ग्रीष्म ऋतु में भारत सरकार की राजधानी हुआ करती थी और दिल्ली के सारे कार्यालय शिमला स्थानान्तरित होते थे। आज भी शिमला की रौनक कम नहीं हुई है। शिमला के चन्द्राकार नगर में विस्तृत बाजार, किले समान सरकारी मुख्यालय, अनेक होटल एवं रेस्तरां, आलीशान कोठियां एवं सिनेमा गृह विखरे हुए हैं। शिमला से २ कि० मी० की दूरी पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाको पहाड़ है जिसकी चोटी पर श्री हनुमान जी का सुन्दर मन्दिर प्रस्थापित है। यहां के जंगलों में हनुमान जी के वंशज अनेक बन्दर मुक्त विहार करते हैं जिनको कभी कभी पर्यटक मुट्ठीभर मूंगफली या चने खिलाते हैं।

शिमला से १५ कि० मी० की दूरी पर कुफ्री स्थान है जहां पर शीतकालीन क्रीड़ाओं का प्रशिक्षण दिया जाता है। कुफ्री के पास ही "वाइल्ड फ्लावर हॉल" का विशाल भवन है जो कि एक समय में लार्ड किचनर का निवास स्थान था। अब यह अट्टालिका आधुनिक होटल में परिवर्तित की गई है।

नारकुण्डा स्थान शिमला से ६४ कि० मी० दूर २७०० मीटर की ऊंचाई पर बसा हुआ है। यहां से एक मार्ग कोटगढ़ जाता है जो सारे देश में अपने सेव के बगीचों के कारण प्रसिद्ध है। नारकुण्डा से यात्रा मार्ग नीचे उतर कर सतलज नदी के किनारे पहुंच जाता है जहां से रामपुर-बुशहर, सरहान एवं कल्पा पहुंचा जा सकता है। कल्पा से आगे शिपकी-ला दर्रा भारत और तिब्बत की सीमा है जहां से पहले भोटिये लोग तिब्बत के साथ व्यापार किया करते थे। यह प्रदेश किन्नौर नाम से जाना जाता है।

शिमला के दक्षिण में करीब ४५ कि० मी० पर चैल नामक कस्बा है जो पहले पटियाला रियासत का हिस्सा था। चैल में एक सुन्दर क्रिकेट मैदान है जो कि सारी दुनियां में ऊंचा माना जाता है। अब हम दक्षिण में आगे बढ़ते हैं और नाहन शहर पहुंचते हैं। शिवालिक पर्वत शृंखला की एक धार पर बसे हुये नाहन के आसपास के घने जंगल एवं गहरी घाटी का मनोरम दृश्य पर्यटक को देखने को मिलता है। नाहन में वर्षा काल के पश्चात् बावन द्वादशी का उत्सव मनाया जाता है।

नाहन से आगे रेणुका ताल नामक एक अत्यन्त रमणीय सरोवर है जहां पर एक छोटा सा पशुओं का अभयारण्य बनाया गया है। पुराणकाल के श्री परशुराम की माता रेणुका देवी के नाम से यह स्थान संकलित है।

अब हम आखिर में हिमालय की उत्तुंग पर्वत शृंखला को छोड़कर पहाड़ों की तलहटी में उतर आते हैं। यहां पर यमुना नदी के धीर गम्भीर प्रवाह के तट पर पाउठां साहिब का प्रसिद्ध सिख तीर्थ-स्थान बसा है। सिख सम्प्रदाय के अन्तिम गुरु श्री गोबिन्द सिंह के स्मरण में यहां का गुरुद्वारा निर्मित किया गया था। गुरु गोविन्द सिंह ने अपनी किशोरावस्था में काफी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय यहां व्यतीत किया था और यहां के गुरुद्वारा में उनके आयुध एवं शस्त्रास्त्र रखे गये हैं। पाउँठा साहिब में बैसाखी का उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है।

इस प्रकार हम हिमाचल प्रदेश के उत्तुंग पर्वत, गहरी नदियां, शस्य-श्यामल घाटियां, प्रसन्न सरोवर, घने जंगल, बर्फीले दर्रे, प्राचीन मन्दिरों एवं सौहार्दपूर्ण जन समूह की भावभीनी विदाई लेकर अपने घर लौट आते हैं।

कुमाउँनी लोक साहित्य

वंशीधर पाठक 'जिज्ञासु,'

हर आंचलिक बोली का लोक-साहित्य अपनी माटी की अलग गंध और अलग रस लिये होता है। यही बात कुमाउँनी लोक-साहित्य पर भी लागू होती है। प्राकृतिक सौन्दर्य की तरह कुमाऊँ की बोली-कुमाऊँनी-भी अपने भीतर तमाम जीवन्त तत्वों को संजोये हुए है। क्या लोक-गीत और क्या लोक-गाथाएँ, सब की अपनी अलग पहचान है कि वे कुमाऊं की हैं, केवल कुमय्यों की हैं।

पद्यात्मक लोक-साहित्य के अन्तर्गत धार्मिक गीत, संस्कार गीत, ऋतु गीत, कृषि गीत, उत्सव गीत, पर्व गीत, मेला गीत, विरह (न्यौली) गीत और बाल गीत आते हैं।

गद्य-पद्यात्मक लोक साहित्य के अन्तर्गत प्रणय-प्रधान काव्य, वीरगाथा काव्य और लोक-काव्य आते हैं।

गद्यात्मक लोक साहित्य में लोक कथाएँ, लोकोक्तियां, पहेलियां, जादू-टोने आदि के मन्त्र सिम्मलित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवभूमि होने के कारण समस्त कुमाऊं क्षेत्र धर्मप्राण है। अतः यहां धार्मिक गीतों की भरमार है। धार्मिक गीतों का विषय पौराणिक गाथाएँ, रामायण की कथाएँ, महाभारत की कथाएँ और स्थानीय देवी-देवताओं की कथाएँ हैं। इन धार्मिक गीतों की लय, ताल और छन्द-विधान अपनी विशेषता रखते हैं। इनके गायक भी समाज के वर्ग-विशेष से संबंध रखते हैं। धार्मिक लोक गीत गायक शिल्पकार वर्ग का होता हुआ भी सवर्णों के मन्दिर के पुजारी और पुरोहित के समान पूज्य होता है। तमाम धार्मिक गीतों में स्थानीय परम्परागत लोक सस्कृति निहित है। ये गीत पर्व-विशेष के अवसर पर ही गाए जाते हैं।

चम्पू लोक-साहित्य में राजुला-मालूसाही की प्रणय गाथा, रमौल तथा वेफौलों की वीर गाथाएं आती हैं। अधिकांश गाथाएँ चातुर्मास में गायी सुनी जाती हैं।

खेतों में निराई-गुड़ाई के समय सामूहिक-श्रम का आयोजन किया जाता है जिसे हुड़किया बौल कहते हैं। इसी अवसर पर अधिकांश वीरों की गाथाएँ हुड़कियों द्वारा गायी जाती हैं। यह हुड़किया-बौल कुमाऊं की अपनी अलग मौलिक चीज है जो भारत की अन्य किसी आँचलिक बोली में दुर्लभ हैं।

कुमाऊं में संस्कारों की संख्या जितनी ज्यादा है उनके अनुपात में संस्कार गीतों की संख्या नगण्य है। विविध संस्कारों के अवसर पर यहां जो संस्कार गीत गाए जाते हैं वे अधिकांश उधार ली हुई सम्पत्ति है। उधार लिये गए ये संस्कार-गीत प्रदेश की निकटवर्ती आंचलिक बोलियों—अवधी, ब्रज और बुन्देलखण्डी—से लिये गये हैं। कुमाऊँ के अपने संस्कार-गीतों की कुल संख्या नौ या दस है। ये हैं :—शकुनांखर, निमन्त्रण-गीत, सांध्य-गीत, मातृका पूजन गीत, सूर्य-जुहार गीत, चौकी पूरन गीत, बटुक गीत, जागरण गीत, कन्या विदाई का गीत और बस।

इन नौ-दस संस्कार गीतों का विधान और गेय शैली बेजोड़ हैं। ये तमाम गीत महिलावर्ग द्वारा सामूहिक रूप से और बिना साजों के गाये जाते हैं। लेकिन इनका शब्द-विन्यास व लय ऐसी अद्भुत है कि बिना साज के भी इनमें लोक-संगीत की अजस्र धारा मुखरित होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ऋतुरैंण' कुमाऊँ के ऋतुगीत हैं। इन गीतों का विषय है वसन्त वर्णन, भाई-बहिन का प्रेम, माँ की स्मृति और मायके की स्मृति। अनुभूति प्रधान गीतों में स्थानीय पुष्पों-प्यूंली, बुरांस स्थानीय पक्षियों-न्यौली, कफ्वा, घुघुती-का विशद वर्णन मिलता है। पक्षियों से अनुनय की जाती है कि वे मैतियों तक विवाहित बेटियों के सन्देश ले जायें। ऋतुरैंण का गायक औजी या ढोली होता है।

न्यौली गीत भी अनुभूति प्रधान और प्रेम परक गीत हैं। साथ ही जीवन चिन्तन की प्रधानता होने के कारण इसमें दार्शनिक दृष्टिकोण विद्यमान रहता है। विलम्बित लय में गाये जाने वाले इस गीत की अपनी अलग सत्ता है, अलग परम्परागत विशेषता है। न्यौली गीत में तुक और छन्दों की अपेक्षा लय का अधिक महत्व है। सच तो यह है कि न्यौली गीत विलक्षण स्वर साधना का प्रतीक है। न्यौली गीत में कोई वाद्य नहीं बजाया जाता। उदासपूर्ण स्वर विस्तार और मंथरता न्योली गीत का आकर्षण है। इतना सब होते हुए भी इसके पीछे कोई बौद्धिक प्रयास अथवा शास्त्रीयता नहीं है।

कुमाऊँ अपनी लोक गाथाओं के लिए काफी प्रसिद्ध है। कुमाऊँनी लोक गाथाओं को विषय वस्तु के आधार पर पांच भागों में बांटा जा सकता है–परम्परागत, धार्मिक, पौराणिक, वीर और दन्त कथाएँ।

मालूसाही और रमौल कुमाऊं की परम्परागत लोक गाथाएँ हैं।

धार्मिक गाथाओं में स्थानीय देवी-देवताओं, भूत-प्रेतों और परियों की कथाएँ आती हैं। गोल्ल, गंगानाथ, हरू, सैम, नन्दा देवी, गरदेवी आदि स्थानीय शक्तियां हैं जिनका जीवनवृत अद्भुत है।

पौराणिक गाथाओं के अन्तर्गत पुराण, रामायण और महाभारत संबंधी प्रसंग आते हैं।

कुमाउँनी लोक साहित्य में वीर गाथाओं का अलग वर्ग है जिनके लिये 'भड़ौ' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'अजू बफौल' और 'हरुहित' का 'भड़ौ' सारे कुमाऊं में प्रसिद्ध है। इनके कथानक स्थानीय इतिहास से सम्बन्धित हैं। अतः इनमें वीरत्व का अद्भुत वर्णन है।

'भड़ौ' में नायक के पराक्रम का वर्णन अतिरंजना और अतिशयोक्ति पूर्ण होता है। युद्ध वर्णन तो अत्यधिक सजीव तथा रोमाँचक होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दंत कथाओं के मामले में कुमाऊँ काफी समृद्ध है। यहां दंत कथाओं की भरमार हैं। देवी-देवताओं, स्थानीय पशु-पक्षियों, नदी-नालों, पोखर-तालों, डांडों-काठों, ऐतिहासिक स्थलों, फल-फूलों, वृक्ष-बेलों, दैत्य-राक्षसों, व्रत-त्यौहारों आदि के संबन्ध में सैकड़ों कहानियां कही-सुनी जाती हैं। ये तमाम कथाएँ आकार में लघु होने पर भी बड़ी रोचक होती हैं जिस कारण श्रोताओं का खूब मनोरंजन होता है। अधिकांश दंत कथाओं का विषय सामाजिक होता है इसलिये बाल-वृद्ध सभी इनमें रुचि रखते हैं। इन दंत कथाओं में युग और समाज का सर्वांगीण वर्णन मिलता है। वीरता, शौर्य, साहस, बलिदान, प्रेम, ईर्ष्या, द्वेष, कलह आदि तमाम मानवीय गुण-दोष इन दंत कथाओं में मिलते हैं।

लोक कथाओं के उपरान्त कुमाऊँनी लोक साहित्य में लोकोक्ति साहित्य का विशेष महत्व है। लोकोक्ति साहित्य के अन्तर्गत कहावतें, मुहावरे और पहेलियां आती हैं।

कुमाउंनी बोली में कहावतों का अक्षय भण्डार है। इनमें लोक जीवन की गहरी अनुभूतियां अत्यन्त सरल, सहज एवं स्वाभाविक रूप से व्यक्त होती हैं।

कुमाउंनी कहावतों की शैली आलंकारिक होने के कारण जन-मानस की अभिव्यक्ति को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करती हैं। इनके कारण कुमाउंनी बोली सक्षम और प्राणवन्त हैं।

विशद भावों को कम से कम शब्दों में व्यक्त करना मुहावरों का गुण है। रोचक और चुस्त होने के कारण श्रोता पर इनका तत्काल प्रभाव पड़ता है। कुमाउंनी मुहावरों में स्थानीय जीवन, परम्पराओं, रूढ़ियों और रीति-रिवाजों की सुन्दर झलक मिलती है। इनके प्रयोग से कुमाउंनी की अभि-व्यंजना शक्ति बढ़ती है, उसमें प्रवाह व प्रांजलता आती है।

कुमाउंनी में पहेलियों को 'आण' कहते हैं। इनमें बुद्धिगत विलास के साथ-साथ मनोरंजन तत्व प्रमुख रहता है। हास्य की तो इनमें प्रधानता है ही।

कुमाउंनी लोकोक्ति साहित्य के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इनमें सामाजिक तत्वों की सर्वांगीण अभिव्यक्ति है। ये कुमाउँनी लोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन की चारित्रिक विशेषता, स्वभाव, अनुभव, रीति-रिवाज, आचार-विचार, प्रथा, परंपरा आदि के अक्षय भण्डार हैं।

कुमाउँनी में लोक-साहित्य की अतुल सामग्री है। लेकिन यह सामग्री कुमाउं की अनपढ़ और पिछड़ी हुई जनता के पास मौखिक रूप में परम्परा से चली आ रही है। पठित और प्रगतिशील वर्ग इसे अपनाने में आज भी संकोच करता है। यही कारण है कि कुमाउनी लोक-साहित्य का पूर्णतः संकलन अभी तक नहीं हो पाया है।

यह कहना भी गलत होगा कि कुमाउँनी लोक-साहित्य के संकलन और संरक्षण का प्रयास नहीं हुआ। अनेक लोक-साहित्य प्रेमी इस दिशा में समय-समय पर प्रयास करते रहे हैं। ऐसे लोगों में सर्वश्री गंगादत्त उप्रेती, देवीदत्त तिवारी, राहुल सांकृत्यायन, रामनरेश त्रिपाठी, देवेन्द्र सत्यार्थी, चन्द्रलाल चौधरी, डा० त्रिलोचन पाण्डे, डा० कृष्णानन्द जोशी आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

यह एक तथ्य है कि लोक-साहित्य के संकलन और संरक्षण का कार्य कष्ट साध्य है जिसमें आस्था, साधना तथा निस्वार्थ भाव से काम करने की लगन होनी चाहिये। यह कार्य वही व्यक्ति कर सकता है जिसे अपनी बोली के प्रति अटूट लगाव व श्रद्धा हो।

हमें नई पीढ़ी के शिक्षित नव युवकों से यह आशा है कि वे कुमाउंनी लोक साहित्य के संग्रह और प्रकाशन का काम अपने हाथों में लेंगे। सुझाव है कि इस दिशा में जो भी प्रयत्न किये जायें वे सामूहिक रूप से हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गढ़वाल के देवी-देवता और जागर गीत

डॉ० गोविन्द चातक

गढ़वाल के स्थानीय देवी-देवताओं की संख्या बहुत अधिक है। इनमें नागर्जा, घंडियाल, कलावीर, हीत, भूमिया, खितरपाल, विनहसरी नगेलो, हनुमान, पांडव, द्रौपदी, निरंकार, खरोल, सिदुवा-विदुवा, भासर, कालो, रेणुका, नन्दा देवी, सिर कंठा, चंद्रवदनी, जालपा आदि मुख्य हैं। रवाईं-जौनपुर क्षेत्र में जाख, महासू, पोखु, कैलू, शिलगूर, शौड़-कुड़िया, भराड़, क्वारिजा, कर्ण आदि देवता भी माने जाते हैं। लोक-भावना में विभिन्न देवता विभिन्न भावों के प्रतीक हैं। उदाहरण के लिये नागर्जा (नागराज, कृष्ण के लिये प्रयुक्त स्थानीय नाम) गढ़वाल के गोपालक समाज में दूध का देवता है। गौ और भैंस से अधिक दूध-घी प्राप्त करने के लिये उसकी मुख्य रूप से पूजा की जाती है और जब वे व्याहिती हैं तो उनके दूध के 'रैक' लगाये जाते है जिसमें नागराजा की पूजा होती है। यही बात रवाईं-जौनपुर के शिलगुर देवता के संबन्ध में भी कही जाती है। पशु-पालक अपने गौ-धन की रक्षा और संवर्धन के लिए उसकी मूर्ति कोट पर लगाकर रखते हैं। कैलू भी पशुओं का हितैषी देवता है। पशुओं के अस्वस्थ होने तथा प्रसव के समय उसकी पूजा सुरक्षा के लिए की जाती है। उसी प्रकार भूमिया/भूमिपाल और खितरपाल/क्षेत्रपाल भूमि के देवता है। उन्हें किसी मांगलिक अनुष्ठान के समारम्भ में तथा खेती की सुरक्षा, जय और यश की कामना के लिए विशेष रूप से स्मरण किया जाता है। रवाईं का जाख देवता, जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, शान्ति और रक्षा का देवता है। भराड़ सन्तति-दाता देवता माना जाता है। छूड़ा गीतों में सन्तानोत्पत्ति के लिए भराड़ देवता से प्रार्थना की गई है। समवयस्क और सुन्दर पति प्राप्त करने के लिए किशोरियां ज्वालपा (/ज्वाला : झालोमालो देवी) की पूजा करती हैं। अन्य स्थानीय देवताओं में नगेला नाग-पूजा का प्रतीक है। रोग-शोक से मुक्ति दिलाने आदि (अपुता पुत्र दिउलू, निवंश धन दिउलू अवाटा वाटो दिउलू) के लिए उसकी पूजा की जाती है। घंडियाल अथवा घंटाकर्ण यक्ष-पूजा का प्राचीन अवशेष है। अन्य देवताओं में भासर, विनसर सम्भवतः शिवरूप हैं। सुरकंडा, नंदा और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चंद्रवदनी देवी के रूप हैं। हनुमान नाथ सिद्ध परम्परा से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है। पाण्डव हिमालय में देवताओं की तरह पूजे और नचाये जाते हैं। हरिजन गोरोल, निरंकार और कालो की विशेष रूप से पूजा करते है।

यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि वहां देवताओं की दो कोटियां स्पष्ट दीखती हैं-एक, शास्त्र-धर्म से सम्बन्धित देवता और दूसरे, लोक-धर्म से सम्बन्धित देवता। शास्त्र-धर्म सम्बन्धित देवता लोक-धर्म में घसीटे अवश्य गए हैं किन्तु वे फिर भी स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं। इनमें गणेश विघ्नहर के रूप में सब से अधिक पूजित देवता कहा जा सकता हैं। किन्तु लोक-जीवन में कृष्ण और शिव अधिक प्रतिष्ठित हैं। यह लोकप्रियता अकारण नहीं है। कृष्ण गढ़वाल से परिचित ही नहीं थे वरन, अपने अन्तिम दिनों में वे गढ़वाल के सेम-मुखेम स्थान पर निवास करने आये थे। जहां तक शिव का प्रश्न है यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि वे हिमालय से सम्बन्धित थे। केदारनाथ किसी समय शिव का मुख्य केन्द्र था। वामन पुराण में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ब्रह्म-हत्या के पाप का प्रायश्चित करने के लिए शिव बद्रीकाश्रम और यमुना तथा सरस्वती के उद्‌गम पर गए थे। दक्ष का यज्ञ गढ़वाल के निकट कनखल में हुआ था, जिसमें सती ने अपना दाह किया था। शिव अकेले देवता हैं, जिनके गढ़वाल में सबसे अधिक मन्दिर हैं। यह तथ्य भी इस सन्दर्भ में ध्यान देने योग्य है कि वे इस क्षेत्र में ऐसे अनेक नामों से पूजे जाते हैं जो अन्यत्र सर्वथा अज्ञात और अप्रचलित हैं। वे विभिन्न स्थानों में कमलेश्वर, कोटेश्वर, वाणेश्वर, रूद्रेश्वर (लुदेसर), भिल्लेश्वर, केदारेश्वर, ओंकारेश्वर, कटकेश्वर, लक्षेश्वर, महासू (रवाई-जौनपुर में), भासर (महेश्वर), बिल्लकेदार, मध्यमेश्वर, तुंगनाथ, कल्पेश्वर, भास्करेश्वर, बूढ़ाकेदार, कालेश्वर आदि नामों से पूजे जाते हैं। ये भिन्न-भिन्न नाम इस बात के द्योतक हैं कि भिन्न-भिन्न जातियों ने शिव को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा। भिल्लकेदार (बिल्लकेदार) तथा भिल्लेश्वर नाम इस बात के प्रमाण हैं। भीलों की भांती किरातों ने भी शिव को अपना देवता माना था, यह इसी से सिद्ध है कि शिव अर्जुन को किरातवेश में ही मिले थे। जनश्रुति इस बात को पुष्ट करती है कि शिव और अर्जुन का युद्ध इसी (कुछ लोगों के अनुसार उत्तर-काशी में) क्षेत्र में हुआ था। श्रीनगर में शिव कमलेश्वर कहलाते हैं। यहीं अलकनन्दा के दक्षिण तट पर शिव नागेश्वर महादेव भी कहलाते है जिसके सम्बन्ध में यह अनुश्रुति है कि वहां पर नागों ने शिव की पूजा की थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका एक और उदाहरण वासुकी गंगा और मंदाकिनी के संगम पर स्थित सोमप्रयाग नामक तीर्थ पर स्थित एकेश्वर महादेव का मन्दिर भी माना जा सकता है। इसी प्रकार आभीरों और गोपों ने शिव को सम्भवतः गोपेश्वर के नाम से प्रसिद्ध किया।

गढ़वाल में शिव-सम्बन्धी अनुश्रुतियां सबसे अधिक मिलती है। एक अनुश्रुति के अनुसार शिव प्रारम्भ में आदि—केदार बद्रीनाथ में वास करते थे किन्तु शिशु रूप धारण कर छल पूर्वक विष्णु ने उनके अधिवास पर अधिकार जमा लिया। तब से वे केदारनाथ में निवास करने लगे। केदारनाथ शिव के द्वादश ज्योतिर्लिगों में एक माना जाता है। शिवपुराण में इस बात का उल्लेख मिलता है कि गोत्र हत्या के पाप से मुक्त होने के लिए पाण्डव यहां शिव जी की आराधना करने आए थे। शिव जी उन्हें दर्शन न देने के लिए भैंसे का रूप धारण कर पृथ्वी में प्रवेश कर भी न पाये थे कि भीम ने उन्हें पकड़ लिया। कहते हैं कि तभी से यहां शिव अपने पृष्ठभाग के रूप में शिला पर प्रतिष्ठित हुए। उनका सिर नैपाल में पशुपतिनाथ के रूप में विख्यात हुआ। उस शिला के खण्डित अंश तुंगनाथ, रुद्रनाथ, मध्यमेश्वर और कल्पेश्वर में स्थापित हुए और ये स्थान पंचकेदार के नाम से प्रसिद्ध हुए। कहा जाता है कि त्रियुगीनारायण में शिव और पार्वती का विवाह हुआ था। केदारखण्ड के अनुसार रूद्रप्रयाग में नारद ने संगीत-विद्या की प्राप्ति के लिए शिव की आराधना की थी। इसी प्रकार कई अन्य स्थानों से भी शिव-सम्बन्धी अनुश्रुतियां मिलती है।

ऐतिहासिक तथ्य भी शिव-सम्बन्धी स्थानीय मान्यता की पुष्टि करते हैं। कत्यूरो राजाओं ने लेखों में अपने को परम माहेश्वर कहा है। कत्यूरियों की राजधानी पहले जोशीमठ और बाद में बैजनाथ में थी। यहां जो भव्य मंदिर और सुन्दर मूर्तियां विद्यमान हैं, उनसे स्पष्ट है कि कत्यूरियों के समय में इस क्षेत्र में लकुलीश सम्प्रदाय के शैवों का प्रभुत्व था (राहुल: कुमाऊं पृ० ६६) 'केदारनाथ सारे भारत ही क्या, जावा और कम्बोज जैसे प्रधान शैव-देशों में एक प्रख्यात और पवित्र तीर्थ-भूमि कीं तरह प्रसिद्ध था (राहुल: हिमालय परिचय (१), पृ० ४४७)।' केदारनाथ के रावल आज भी कर्नाटक के वीर-शैव सम्प्रदाय के होते हैं। कालीमठ पर कभी लकुलीश-पाशुपतों का आधिपत्य रहा, प्रतीत होता है। यहां वर्षों पहले किशोरियों को मन्दिर पर चढ़ाने की प्रथा थी। मध्यमहेश्वर में भी कभी यह प्रथा प्रचलित थी। शिव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को अर्पित ये किशोरियां देवचेलियां अथवा देव रानियां कहलाती थी और आजीवन के मार्म-व्रत धारण कर जीवन-यापन करती थी।

गढ़वाल की शैव-परम्परा आज भी वहां की बेडा (वाद्धी) तथा कुछ अन्य हरिजन जातियों में सुरक्षित है। बेडा जाति के गायक-नर्तक लोग शिव को अपना कलागुरु मानते हैं और उन्हीं की भांति जटा धारण करते हैं। वे बालों को शिव को अर्पित करते हैं। वे एक समारोह का आयोजन किया करते है, जिसे वेडवार्त कहा जाता है। इसी प्रकार कापालिक लोग शिव की पूजा भैरू (भैरव) रूप में करते हैं। मृत व्यक्ति के लिंग स्थापन में भी शिव परम्परा का आभास मिलता है। इसी प्रकार गढ़वाली का 'रूड' शब्द रूद्र से व्युत्पन्न है जो तप्त धूप का अर्थ देता है। रूड में निश्चयतः ऋग्वैदिक रुद्र का संकेत मिलता है।

गढ़वाल में शिव-सम्बन्धी जागर नहीं मिलते किन्तु उनकी पूजा-सम्बन्धी अनेक गीत लोक में प्रचलित हैं। इन गीतों में कोई मौलिकता नहीं—हिन्दू-परम्परा का अनुसरण मात्र है। मांगल-गीतों में शिव का उल्लेख अनेक बार आता है। लोक-कथाओं में शिव-पार्वती की चर्चा विशेष रूप से मिलती है।

शिव की भांति ही इस क्षेत्र में शक्ति को विशेष महत्व मिला है। हिमालय पुत्री पार्वती यहां अनेक नामों से ख्यात हैं। इनमें कुछ नाम इस प्रकार हैं—देवी, काली, कालिक्या, कंकाली, नंदा, सुरकण्डा, नंदा शाकंबरी, चन्द्रवदनी आदि। कालीपीठ, मठाणा (महिष-स्थान) और चन्द्रवदनी आज भी सुप्रसिद्ध शक्ति-पीठ माने जाते हैं। तन्त्र-ग्रन्थों से इस बात का आभास मिलता है कि किसी समय गढ़वाल तन्त्र-साधना का केन्द्र था। कुब्जिका तन्त्र में जो बहुत प्राचीन तन्त्र-ग्रन्थ माना जाता है, शक्तिपीठ के रूप में बदरीनाथ का उल्लेख मिलता है यह पीठ पिंडर नदी के उद्गम के आसपास कहीं रहा होगा। नाभीष्टरतशतम् में कार्तिकेय (पुर) है। ज्ञानार्णव में उल्लिखित १८ शक्तिपीठक में हंसतीर्थ, श्री शैल और क्रौंच पट्टन का नाम भी आता है जो गढ़वाल में ही थे। बदरीनाथ के समान ही केदारनाथ भी सुप्रसिद्ध शक्ति तीर्थों में था। तन्त्र-चूडामणि, शक्तानंदतरंगिणी, प्राणतोषणीतन्त्र, नामोष्टिरशतम्, बृहन्नीलतन्त्र आदि के केदारनाथ का उल्लेख महाशक्ति पीठ के रूप में आया है। बदरी और केदार के साथ गढ़वाल के अन्य शक्तिपीठों को भी गिनाया गया है। इनमें श्री शैल, भृगुपीठ, चन्द्रपुर, पिंडारक वन,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हंसतीर्थ, कालेश्वर, कार्तिकेयपीठ, मैनाक, मंदर आदि उल्लेखनीय हैं। "शक्तिपीठ" ग्रन्थ में इनके बहुत से स्थानों की स्थिति श्री डी० सी० सरकार ने अन्यत्र निर्धारित की है किन्तु यदि उन्होंने विचार-पूर्वक ध्यान दिया होता तो वे इस निर्णय पर अवश्य पहुंचते कि इन पीठों का उल्लेख सदा बदरी और केदार के साथ हुआ है। श्री शैल को वे दक्षिण में ले गए जब कि श्री शैलमेरुपीठ व हिमालय-महागिरिम्' से स्पष्ट है कि वह हिमालय में था। निश्चयतः यह पीठ गढ़वाल के श्रीनगर नामक स्थान पर था, जिसे पुराणों में श्रीक्षेत्र कहकर पुकारा गया है। चन्द्रपुर गढ़वाल की चन्द्रापुरी अथवा चन्द्रवदनी हो सकता है, जो आज भी शक्तिपीठ के रूप में विद्यमान है। पिंडारक बन कुमाऊं-गढ़वाल का ही शक्तिपीठ रहा होगा। प्रापतेषिणी तन्त्र में इसका उल्लेख हरिद्वार और बदरी के साथ किया गया है। बृहन्नील तंत्र में भी इसका उल्लेख आया है। सम्भवतः का भी उल्लेख है। यह पीठ गढ़वाल की सीमा पर कुमाऊं की कत्यूरी घाटी बैजनाथ में स्थित मालूम होता है। इसी प्रकार तन्त्र ग्रन्थों में भृगुपीठ का उल्लेख सर्वदा कैलास-हिमालय के पीठों में आया है। भृगुपतन अथवा भृगुपंथ (भैरवापि भी) गढ़वाल का वह सुप्रसिद्ध तीर्थ है जहां केदारनाथ के यात्री भृगुपर्वत को दरार में गिराकर देवता को अर्पित करते थे। 'केदारकल्प' के अनुसार इस प्रकार आत्मघात करने वाले भक्त सीधे रुद्रलोक पहुंचते थे। ओकले ने इस महायात्रा का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था। यह पीठ भैरवापि के नाम से भी प्रसिद्ध है। 'पीठ निर्णय' में भैरव पर्वत पर स्थित पीठ का उल्लेख मिलता है। संभव है, दोनों एक ही हों। कालीपीठ का उल्लेख भी 'पीठ निर्णय' में आया है।

तंत्र-ग्रन्थों में शक्ति के विभिन्न नाम मिलते हैं। उनके अनुसार यह श्रीशैल में श्रीरूप में, बद्रीनाथ में श्री विद्यारूप में, पिंडारक वन में वन्या और सुरसा रूप में, केदार में वरदा अथवा मार्गदायिनी तथा चन्द्रपुर में सिता नाम से प्रसिद्ध थी। गंधमादन पर वह कामाक्षी अथवा कामाचारिणी कहलाती थी। यह भी उल्लेख मिलता है कि वह हिमालय में मुंदा, नंदा, शिवा-नंदा, शुभानंदा, सुनंदा, सभानंदा तथा नंदिनी भी कहलाती थी। गढ़वाल में इन्हीं नामों की परम्परा में पार्वती नंदा कहलाती है और हर वर्ष उसकी जात मनाई जाती है जो नंदापाती कहलाती है। कत्यूरी राजा अपने को इसी नंदा भगवती के सेवक कहलाने में गौरव का अनुभव करते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(देखिए ललितशूर का ताम्रलेख)। टिहरी गढ़वाल में मसूरी से कुछ मील दूर सुरकंडा नामक स्थान पर वह सुरकंठा (असुरकंठा) अथवा सिरकडा (शिरखंडा) के रूप में विराजती है। नरेन्द्रनगर के पास कूजापुरी में यही असुरसंहारिणी देवी कुब्जिका के रूप में पूजित है। त्रियुगीनारायण के निकट वह शाकभंरी देवी के रूप में ख्यात है। राहुल जी ने टिहरी में भी शाकंभरी क्षेत्र माना है (हि० प० पृ० १००)। 'पीठनिर्णय' में कांची देश में देवी को कंकालि नाम से प्रख्यात बताया गया है। गढ़वाल में भी जयदेव-जगद्देव के पवाड़े में कँड़ी-कंकाली का उल्लेख होता है। देवी के इन विभिन्न रूपों में काली, कंकाली तथा कलिक्या (कालिका) को हिमालय में भय की दृष्टि से देखा जाता है।

देवी तथा नंदा सम्भवत: पार्वती के दो ऐसे रूप है, जिनके प्रति हिमालय में बड़ी भक्तिभावना दिखाई देती है। देवी रोग-शोक का निवारण करती है। नंदा की जात गढ़वाल तथा कुमाऊँ में भाद्र शुक्ल अष्टमी को मनाई जाती है जब नंदाष्टमी का मेला लगता है। यह अनुश्रुति है कि नंदा दक्ष प्रजापति की सात कन्याओं में से एक है। नंदाष्टमी को इस देवकन्या को नंदागिरि पर स्थित अपने श्वसुर गृह के लिए विदा किया जाता है। इसीलिए इस अवसर पर नन्दा की जात मनाई जाती है और उसकी डोली सजाकर पठाई जाती है। इस अवसर पर नन्दा पाती गाई जाती है। देवी के इस विविध रूप में सम्भवत: कालिंका (कालिका) का रूप ही अधिक प्रचलित है। उनकी पूजा के लिए नवरात्रि में उठवाड़ होती, चक्र बनाया जाता है और भैंसे की बलि दी जाती है। 'अठवाड़' पर औजी वादक ढोल दमामा बजाते हुए देवी की यशोगाथा का गायन करते हैं।

किसी समय शैव और शक्ति परम्परा ही हिमालय में प्रमुख रही होगी। इसके अतिरिक्त राम की प्रतिष्ठा भी सम्भवत: बहुत बाद में हुई है। यही कारण है कि वहां, राम-सम्बन्धी अनुश्रुतियों का सर्वथा अभाव तो नहीं किन्तु उनका बाहुल्य नहीं है। यद्यपि क्षेत्र-बिशेष में रघुनाथ और भरतवाली (भरत) की स्थानीय जागर-पद्धति की नृत्यमयी पूजा का उल्लेख बेरेमेन ने किया है, किन्तु राम को गढ़वाल में लोकप्रियता नही प्राप्त हुई है। केदार-खण्ड में देवप्रयाग का महात्म्य वर्णन करते हुए लिखा गया है कि वहां प्राचीन काल में देवशर्मा नामक ब्राह्मण ने तपस्या की थी, जिससे प्रसन्न होकर राम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावण-वध के उपरान्त वहां आए थे। देवप्रयाग में रघुनाथ जी का सुप्रसिद्ध मन्दिर हैं। अनुश्रुति है कि राम श्रीक्षेत्र भी गए थे और वहां श्रीनगर के कमलेश्वर नामक स्थान पर उन्होंने शिव जी को एक सहस्त्र कमल चढ़ाए थे। रामा सिराई क्षेत्र में राम को विशेष महत्व दिया जाता है। देवप्रयाग के पास स्थित दशरथ का डांडा, सीतोनस्यूं (सीतावन) तथा वाल्मीकीश्वर क्षेत्र भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। सीतोनस्यूं में सीता के पृथ्वी-प्रवेश का मेला बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है। रावण के सम्बन्ध में यह जनश्रुति है कि वह जोशीमठ के समीप तपस्या करने आया था। यह क्षेत्र आज भी दशमोलि के आधार पर दसोली कहलाता है। राम के परम भक्त हनुमान तो सीधे बंदरपूछ जा पहुंचे। इस सम्बन्ध में जनश्रुति है कि लंका-विजय के पश्चात् अयोध्या लौटने पर वे इस पर्वत पर चले आए और तब से यहां तपस्या करते हैं। कहते हैं, आज भी प्रति वर्ष एक वानर अयोध्या की हनुमानगढ़ी से यहां उसकी सेवा के लिए आता रहता है। इसी प्रकार, गढ़वाल के द्रोणगिरि को ही द्रोणांचल माना जाता है। यहां से लक्ष्मण को शक्ति लग जाने पर हनुमान संजीवनी लाए थे। वह पर्वत (२३१८४ फुट) नन्दादेवी के उत्तर-पश्चिम और नीति के दक्षिण-पूर्व में स्थित है। कहा जाता है कि मध्व या आनन्द तीर्थ बद्रिकाश्रम से राम की एक प्रतिमा लाये थे (भण्डारकरः वैष्णव, शैव तथा अन्य मत, पृ० ५३)।

राम-सीता सम्बन्धी लोकगीत प्रायः गढ़वाल के सभी भागों में प्रचलित है। मुख्यतः ये गीत कथात्मक हैं।

सृष्टि और ब्रह्म की व्याख्या

गढ़वाल के धार्मिक लोक-गीतों में सृष्टि और ब्रह्म की चर्चा अधिक नहीं हैं, किन्तु देवी, शिव और तंत्र-मंत्र से सम्बन्धित गीतों में इस सम्बन्ध में कई उक्तियां मिलती हैं। इनमें सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम वर्णित है और उसका श्रेय अलग-अलग देवताओं को दिया गया है। निरंकार गीतों में अण्ड सृष्टि की विचारधारा को मुख्यता दी गई है। इसका मूल कोल जाति की चिन्तन परम्परा में ढूंढा जा सकता है (मजूमदार और पुशलकरः वैदिक एज, पृ० १५२)। पुराणों में भी इसका उल्लेख मिलता है (डा० अग्रवाल : मार्कण्डेय पुराण का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ११६)। इस दृष्टि में सोनी गरुड़ी और ब्रह्मगरुड़ की गढ़वाली गाथा परम्परा का ही निर्वाह करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संध्या और प्रभाती

गढ़वाल के कई भागों में सुबह-शाम को नौबत बजाई जाती है जो संध्या और प्रभात की सूचना देती है। यह कार्य औजी या बाजगी (वादक) करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कभी इन अवसरों पर गीत भी गाये जाते रहे होंगे। रवाई-जौनपुर में संध्या को गीत गाये जाने की परम्परा विशिष्ट अवसरों पर आज भी सुरक्षित है। 'फूलदेइ' के अवसर पर प्रभात में गीत गाये जाते हैं। किन्तु यहां हम उन गीतों की चर्चा करना चाहते हैं जो संध्या और प्रभात को पूजा-भाव से गाये जाते हैं।

संध्या को दीप बालना और आरती करना एक धार्मिक अनुष्ठान माना जाता है। गीतों को देखने के पश्चात् ऐसा प्रतीत होता है कि संध्या को सुहागवन्ती स्त्रियां देवता और अपने पति के नाम दीप बालती थीं और उसकी या देवता की वंदना करती थीं।

प्रभात गीतों में जगाने का भाव मुख्य है। इनमें प्रकृति की विविध शक्तियों और देवताओं को जागृत होने के लिए उद्बोधन दिया गया है।

इन प्रभात कालीन और संध्या गीतों की एक विशेषता यह भी है कि इनमें शिव, पार्वती, गणेश, सीता, राम आदि देवताओं की पूजा की गई है।

स्थानीय त्यौहार और लोक-गीत

गढ़वाल में सभी प्रमुख हिन्दू-त्यौहार मनाए जाते हैं। किन्तु उनमें फूल-संक्रांति, विषुवत् संक्राति, मकर संक्राति, पापड़िया संक्राति, घोरल्डिया संक्राति, रक्षाबन्धन, नन्दाष्टमी, जन्माष्टमी, शिवरात्रि, नवरात्र, दिवाली, वसंतपंचमी आदि मुख्य हैं। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि संक्रति (मकरैंणी) मुख्यतः नहाने से सम्बन्धित हैं। इन दोनों संक्रातियों के दिन टिहरी, श्रीनगर, उत्तर-काशी, देवप्रयाग आदि तीर्थो में स्त्री-पुरुष दूर-दूर से स्नान के लिए आते हैं और मेले में नाच-गाकर घर लौटते हैं। इन अवसरों पर लोकगीत गाए जाते हैं।

दिवाली पर नृत्य और गीतों में प्रकट होने वाला उल्लास देखने योग्य होता है। गढ़वाल में दिवाली को बग्वाल भी कहते हैं। कुछ भागों में दो दिवालियां मनाई जाती है। दूसरी दिवाली पहली से एक महिने बाद आती है और उसे रिक्क बग्वाल (ऋक्ष दीपावली) कहा जाता है। कहते हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रीछ राम से एक महीने बाद अयोध्या पहुंच पाये थे। दिवाली के अवसर पर गढ़वाल में लोग भेलों (मशालों) से खेलते है और देव-मन्दिरों के सामने नाचते-गाते हैं। इस अवसर पर नाते-रिश्तों में बंधे विभिन्न जाति के लोगों में गाली-गलोज भी चलता हैं।

कुछ त्योहारों का सम्बन्ध स्पष्टतः ऋतुओं और फसलों से है। उनमें धार्मिक भावना की अपेक्षा समृद्ध जीवन का उल्लास ही अधिक व्यक्त हुआ है। इन त्योहारों में फूलदेई, माघ पंचमी, वंसत पंचमी मुख्य हैं। रवांई में सारा माघ का महीना नाच गाकर बिताया जाता है। इसी प्रकार अन्य भागों में चैत के महीने भर फुलहारियां देहलियों पर फूल चढ़ाती और संध्या को वसन्त के स्वागत के गीत गाती हैं। कृषि प्रधान समाज में इन त्योहारों का कुछ न कुछ धार्मिक महत्व भी रहा है। यह इसी से सिद्ध है कि माघ पंचमी को गृह-द्वारों को जौ के पौधे सजाए जाते हैं और उन्हें पंचदेवों को अर्पित किया जाता है—'जो ल्यी पंच नाम देवता।'

वसन्त-पंचमी को भी यही धार्मिक महत्व प्राप्त है। प्राचीन काल में इस अवसर पर सीता-यज्ञ होता था। गढ़वाल में इस दिन हल चलाने का मुहूर्त करते हैं जिसे हलजोतो कहा जाता है। इस अवसर पर किसान अपने हल की पूजा करता है। यह पूजा गृह्यसूत्रों में वर्णित कृषि कर्मण, लांगल योजन अथवा हलाभियोग अनुष्ठानों की परम्परा का अनुसरण करती हैं। अथर्वेद के तीसरे कांड के १७ वें सूक्त में इसका सजीव वर्णन किया गया है।

त्योहारों के अवसर पर विशिष्ट स्थानों में प्रायः मेले लगते हैं। मेलों में जो गीत गाये जाते हैं, उनमें धार्मिक पथ की अपेक्षा लौकिक जीवन का उल्लास ही प्रमुख होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कुमाउनी'-भारतीय आर्य भाषाओं की खिचड़ी भाषा

(एक भाषा वैज्ञानिक विवेचन)

प्रेमसिंह नेगी

भारतीय आर्य भाषायें भारोपीय परिवार की शतम वर्ग की हैं। इन भाषाओं की जननी संस्कृत है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से भाषा को चार भागों में बांटा गया है : राष्ट्रभाषा, भाषा, विभाषा और बोली। उदाहरणार्थ भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी है। प्रान्तीय भाषाओं को भाषा का दर्जा दिया गया है, जैसे–बंगला, तमिल आदि। विभाषा या उपभाषा का क्षेत्र अपेक्षाकृत छोटा होता है। एक ही प्रान्त में कई विभाषायें हो सकती हैं, जैसे उत्तर प्रदेश में बृज, अवधि आदि। बोली का दर्जा बिल्कुल सीमित होता है। इसका अपना कोई लिखित साहित्य नहीं होता, हां लोक साहित्य अवश्य होता है। कुमाउनी भाषा इसी बोली के अन्तर्गत आती है। यही हमारा विवेच्य विषय भी है।

कुमाऊनी भाषा की वैज्ञानिक व्याख्या से पूर्व हमें इसके इतिहास पर एक नजर डालनी होगी। कुमाऊं के इतिहास में यहां के मूल निवासियों को लेकर इतिहासकारों ने यक्ष, किन्नर, किरात आदि से लेकर खस आदि जातियों तक की चर्चा की है। मूलनिवासियों को लेकर इतिहासकारों में जो मतभेद है, वह हमारा विवेच्य बिषय नहीं। लेकिन इस तथ्य पर दो राय नहीं कि कोई तीन- साढ़ेतीन सौ वर्ष पूर्व से यहां उत्तर प्रदेश के मैदानी भागों, पंजाब, बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र आदि क्षेत्रों से बहुत से लोग आकर बस गये। स्वभावतः इस क्षेत्र की भाषा, संस्कृति पर उस काल में बराबर बाह्यान्तर प्रभाव पड़ता रहा।

भाषा विज्ञान का नियम है कि किसी भी भाषा के अवयव-ध्वनि, पद, अर्थ, वाक्यविन्यास आदि में समय-समय पर परिवर्तन होता रहता है। इस परिवर्तन को भाषा विज्ञान 'विकास' कहता है। यहां विकास का अर्थ भाषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की उन्नति न होकर मात्र परिवर्तन से है। परिवर्तन से भाषा की उन्नति भी हो सकती है और अवनति भी।

भाषा परिवर्तन का कारण जन संसर्ग की विभिन्नता भी है, जिसकी कुमाउनी भाषा में प्रमुख भूमिका रही है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कुमाऊं में अन्तरप्रान्तीय विभिन्न भाषा भाषी जनों का सम्मिलन पिछली शताब्दियों में कई बार हुआ है। यही कारण है कि यहां की भाषा में द्रुतगति से परिवर्तन हुआ। नवागत समुदाय और यहां के मूल निवासियों में भाषा के आदान-प्रदान से प्रत्येक ऐसे ससर्ग के साथ ही मूल कुमाउनी भाषा हर वार अपना रंग वदल कर समाज में आयी। हर बार इन नवागत भाषा भाषियों के शब्द, अर्थ ध्वनि आदि इस भाषा को अभिनव रुप देते रहे।

इससे इस अनुमान की पुष्टि होती है कि वर्तमान में कुमाउनी बोली का जो रूप हमारे सामने है वह अपने प्रारम्भिक चरण में सर्वथा भिन्न रही होगी। उदाहरणार्थ कुमाऊं के मूल निवासियों और खड़ी बोली बोलने वालों के सम्मिलन से मूल कुमाउनी में परिवर्तन हुआ होगा। इसी प्रकार बंगला, मराठी, गुजराती पंजाबी, राजस्थानी भाषा भाषी लोगों के संसर्ग से कुमाउनी भाषा के शब्द, ध्वनि आदि बार-बार प्रभावित हुए होंगे। कालान्तर में ये सभी भाषायें, इनके शब्द, ध्वनि अर्थ आदि एक दूसरे में गड्डमड्ड हो गये।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि जिन भाषाओं के सम्मिलन से आधुनिक कुमाउनी भाषा बनी है, उन आमेलित भाषाओं के शब्द आदि जैसे के तैसे धरे नहीं रह गये हैं। इसका कारण यह होता है कि एक भाषा भाषी दूसरे की भाषा के उच्चारण को पूर्णतः जल्दी आत्मसात नहीं कर पाता। इससे शब्दों के अर्थों, ध्वनियों आदि में स्वाभाविक परिवर्तन हो जाता है।

कुमाउनी भाषा के एक ही वाक्य में उपरोक्त कई भाषाओं का प्रभाव आज स्पष्ट मालूम होता है। उदाहरणार्थ—'छोटी बहिन गाय को चुगाने जंगल ले गई।' को कुमाउनी में यों कहा जायेगा—'नानि बैणि गोरू के वण चराण लिगे।' इस वाक्य में 'बैणि' का हिन्दी की 'बहिन' की अपेक्षा पंजाबी के 'पैण' से सादृश्य है। 'गाय' को बंगाल में भी 'गोरू' ही कहते हैं। अन्य शब्द हिन्दी के परिवर्तित रूप हैं। इस प्रकार उक्त एक ही वाक्य में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी, बंगला और पंजाबी का स्पष्ट प्रभाव है। एक अन्य उदाहरण से बात और साफ हो जायेगी–'यह तुम्हारी पत्नी है।' का कुमाउनी अनुवाद–'यो तमरि सैणि छ्।' जब कि गुजराती में कहा जायेगा–'ये तमारी पत्नी छे।' इस वाक्य में कुमाउनी के तमरि और छ्' में तथा गुजराती के 'तमारी' तथा 'छे' मे काफी समानता है। कुमाउनी की तरह गुजराती में भी प्राय: अन्त्य 'न' का 'ण' हो जाता है। जैसे—

हिन्दी	गुजराती	कुमाउनी
घना	घणा	घण
पल्टन	पल्टण	पल्टण

वाक्य विन्यास और अर्थ सादृश्य का एक और उदाहरण प्रस्तुत है :–

हिन्दी	बंगला	कुमाउनी
१–मैं पानी पीता हूं	२–आमि जौल खाबो	३–मैं पाणि खानू।

सम्बन्ध कारक की विभक्ति 'का' 'की' 'के' कुमाउनी में अंग्रेजी के अपष्टापी एस ('S') जैसे 'ब्रदर्स बुक' तथा बंगाल के 'अर्धरात्रेर तोरा' की तरह अलग न कह कर शब्द का ही अंग बन जाती है, जैसे–'बिकि भैकि किताब।' 'भाई की' से 'भैकि' हो गया।

अत: उपरोक्त कतिपय उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि कुमाउनी भाषा के प्रत्येक अंग-'शब्द,' ध्वनि, अर्थ, पद, वाक्यविन्यास में भारतीय आर्य भाषाओं का व्यापक प्रभाव है।

वैज्ञानिक भाषा में भाषा के विकास के लिये उत्तरदायी उन मूल मुद्दों का अब संक्षेप से यहां जिक्र किया जायेगा, जिसकी वजह से भारतीय आर्य भाषाओं की खिचड़ी ने कुमाउनी का वर्तमान रूप हमें दिया। भाषा वैज्ञानिकों ने यह प्रमाणित करने की कोशिश की है कि भाषा का विकास दो कारणों से होता है–'बाह्यान्तर और अभ्यान्तर।' बाह्यान्तर कारणों का जिक्र संक्षेप में ऊपर किया जा चुका है। अब, संक्षेप में ही अभ्यान्तर कारणों पर प्रकाश डाला जायेगा।

कुछ भाषा वैज्ञानिकों का मत है कि प्रत्येक मनुष्य शरीर के गठन की दृष्टि से दूसरे से भिन्न होता है। उसके उच्चारण के अवयवों की नाप उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मस्तिष्क से भिन्न होती है। इसी कारण ध्वनियों के उच्चारण में भी भिन्नता सम्भव है। किन्तु यहां यह बात परीक्षा की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। महाराष्ट्र के पन्त आदि ब्राह्मण जो दो ढाई सौ वर्ष पूर्व यहां आये, उनके बंशज आज उतनी ही शुद्ध कुमाउनी बोलते हैं, जितना कि बहुत पहिले से बसी हुई यहां की क्षत्रिय जातियों की सन्तानें। यही नही, पाकिस्तान बनने पर जो पंजाबी कुमाऊं में शरणार्थियों के रूप में आये, उनकी दूसरी ही पीढ़ी आज कुमाउनियों की तरह ही शुद्ध कुमाउनी उच्चारण करती है।

दूसरा कारण यह बताया जाता हैं कि अधिक प्रयोग से शब्द घिस जाते हैं और धीरे धीरे भाषा में स्वाभाविक परिवर्तन होने लगते हैं।

तीसरा कारण कहा गया है कि बोलने वालों के मानसिक स्तर में परिवर्तन होने से विचारों में परिवर्तन होता है और विचार परिवर्तन से अभिव्यजंना की शैली में भी अन्तर पड़ता है।

उपरोक्त अभ्यान्तर कारण कुमाउनी भाषा को वर्तमान रूप देने में चाहे जिस अंश में भी सहायक हुए हों, पर चौथा कारण जिसे प्रयत्नलाघव कहा जाता है, का असर कुमाउनी भाषा के विकास में सर्वाधिक रहा है। आमतौर पर कम से कम प्रयत्न में अथवा थोड़े से थोड़े शब्दों में अधिक से अधिक भाव व्यक्त करने का वक्ता का स्वभाव होता है। इससे ध्वनि परिवर्तन हो जाती हैं, दीर्घ शब्द संक्षिप्त होकर रह जाते हैं। कुमाउनी भाषा में प्रयत्न लाघव का जितना प्रभाव है, उतना शायद ही किसी अन्य भाषा में हो। उदाहरणार्थ हिन्दी में—'तेरी दीदी कहां गई?' का कुमाउनी भाषा में प्रयत्न लाघव के कारण हो गया—'तेरि दिदि कां गे?' सारी दीर्घ मात्रायें ह्रस्व होकर रह गई। एक उदाहरण और लीजिये—

हिन्दी- भिखारी को एक पैंसा दे दो।

कुमाऊनी- भिकारिकें एक पैंस दिदे।

लघु-गुरू मात्रिक गणना के अनुसार हिन्दी के उपरोक्त वाक्य में १८ मात्रायें हैं और कुमाऊनी अनुवाद में मात्र ग्यारह मात्रायें। शब्द संख्या में भी अन्तर है।

भावातिरेक में भी ध्वनि का रूप विकृत हो जाता है। जैसे हिन्दी में मां बाप बच्चे के 'पांव' को प्यार से 'पइयां' कह देते हैं। कुमाउनी में भी 'बाल'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(बालक) से 'बाब' (अन्त 'ल' का व') 'बाब' से 'भाउ' और 'भाउ' से 'भै' हो गया है।

प्रयत्नलाघव से वर्ण विपर्यय भी हो जाता है। जैसे–लखनऊ– को बहुत से लोग 'नखनऊ' कह जाते हैं। थरुवाट में तो मैंने थारू लोगों को 'आदमी' का उच्चारण 'आमदी' कहते अक्सर सुना है। इसी प्रकार कुमाउनी भाषा में भी 'पिशाच' को 'पिचास' कह दिया जाता है।

जब दो समान ध्वनियां पास-पास आती हैं तो अनजाने ही एक का लोप हो जाता है। जैसे हिन्दी में 'बड़ी जीजी' से 'बड़ीजी' और बंगला में 'बौड़ दी' हो जाता है। ऐसे ही कुमाउनी में भी 'ठुली दी' कहा जाता है।

'स्त्र' 'स्न' आदि संयुक्ताक्षर उच्चरण में सदैव बाधक रहे हैं। इन शब्दों के उच्चारण की सुविधा के लिए कोई स्वर पूर्व लग कर अनजाने ही सहायता कर जाता है। जैसे 'इस्त्री', 'इस्कूल', 'इस्नान' आदि। कुमाउनी में इस प्रक्रिया के साथ ही संयुक्ताक्षरों को बिषम कर दिया जाता है। जैसे– इस्त्री (लोहे की) के स्थान पर इसतिरि और इस्कूल के स्थान पर इसकूल कहा जाता है।

शब्दों का विकास व्याकरण के नियमों से भी हो जाता है। जैसे 'गाय' से 'गायें' और 'माली' से 'मालिन'।' व्याकरण की दृष्टि से हिन्दी की तरह ही कुमाउनी के लिंग भेद भी नियमबद्ध नहीं हैं। हिन्दी में 'सविता' जहां स्त्री लिंग है वहां 'सूर्य' पुंलिंग है। इसी प्रकार कुमाउंनी में भी गाय हो चाहे बैल, बकरी हो चाहे बकरा, भैंस हो यां भैंसा–सभी को पुलिंग में कहेंगे। जैसे गोरू ऐगों, जती (भैसा) न्हेगो। बोकी (बकरा) मरिगो, भैंस व्यैगो आदि। 'चद्रमा' हिन्दी में पुलिंग है, लेकिन कुमाउनी में 'जून' स्त्री लिंग है। हिन्दी जुबान में जहां 'चन्द्रमा' 'चन्दा मामा है' वहां कुमाउनी में चांद को 'जून दीदी' कह कर नन्हें मुन्नों को खुश किया जाता है। 'जून' शब्द के सदृश 'खून' शब्द कुमाउनी में यथावत् प्रचलित हैं। 'जून' जहां स्त्री वाचक है वहां 'खून' पुरुषवाचक है। कहेंगे–'खून ऐगो।' 'जून' का स्त्रीलिंग होने का कारण सम्भवतः स्त्री के सुन्दर मुख का उपमान होना है।

शब्दों के अर्थ का विकास या परिवर्तन अर्थ विस्तार से, अर्थ संकोच से अथवा अर्थादेश से होता है। कुमाउनी बोली में भाषावैज्ञानिक विवेचन के आधार पर अर्थ परिवर्तन निम्न कारणों से होता है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) कभी कभी शब्द का प्रधान ग्रर्थ संक्रमरण होते होते दूसरे ग्रर्थ के रूप में प्रकट होता है। कुमाउनी में 'सौंकार' हिन्दी के 'साहुकार' से ग्राया हैं। इसका ग्रर्थ था–'धनी व्यक्ति।' कुमाउनी भाषा में मूलधन को इसीलिये 'सौं' कहा जाता है। धनी व्यक्ति वाद में 'माननीय श्रेष्ठ व्यक्ति' का वाचन हो गया। फलस्वरूप 'सौंकार' शब्द 'चोर' शब्द के बिलोमार्थ में भी प्रयुक्त होने लगा। जैसे कुमाउनी में प्रयोग है–चोर छै कि सौंकार। ग्रर्थात चोर है या ईमानदार। इसके ग्रतिरिक्त ग्रामीरण ग्रंचलों में भूत उतरवाने के लिये 'जागर' लगवाने वाला परिवार के कर्ता को देवता के रूप में नाचने वाला व्यक्ति 'सौंकार–सौंकार–' कह कर पुकारता है। यहां इसका ग्रर्थ 'मुख्य व्यक्ति' से होता है।

(२) पीढ़ी परिवर्तन के काररण भी ग्रर्थ परिवर्तन हो जाते हैं। हिन्दी के जेवनार (भोज) शब्द से उसी ग्रर्थ में कुमाउनी में 'ज्योंनार' बना। कालांतर में 'ज्योंनार' का ग्रर्थ मांसयुक्त भोज हुग्रा ग्रौर ग्रब 'ज्योंनार' का ग्रर्थ ग्राम देवताग्रों के मन्दिरों में दी जाने वाली पशु वलि तक ही सीमित रह गया है।

(३) कभी कभी प्रकरण द्वारा भी शब्दों के ग्रर्थ में परिवर्तन होते हैं। बिसाती की दुकान पर 'पाट' मांगने वाले को लहंगे पर लैस (बैल) के रूप में लगाई जाने वाली सर्पाकार डोरी दीजायेगी। पर गेहूं के घास की चटाई मोस्टा में प्रयुक्त होने वाला 'पाट' एक पेड़ विशेष की छाल है। कपड़े की दुकान पर ग्राठ 'पाठ' का लंहगा मांगने वाली गांव की गोरी को वजाज ग्राठ गज या ग्राठ मीटर कपड़ा देगा। घराट या चक्की का 'पाट' ग्रपने स्थान पर ग्रलग ग्रर्थ रखता है। इसी प्रकार जहां नारी सौंदर्य के लिये 'बान' शब्द का प्रयोग होता है वहां घराट के प्रकरण में 'बान' शब्द का ग्रर्थ 'बांध' से होगा। ऐसे ही कपड़े का 'थान' ग्रौर नन्दादेवी के 'थान' का भिन्न भिन्न ग्रर्थ है।

(४) नम्रता प्रदर्शन के काररण भी शब्द के ग्रर्थ का विकास होता है। ग्रगर गांव के पधान जी से कहें कि– ग्रापने ग्रालीशान मकान बनाया है, तो वह जबाव में नम्रतापूर्वक कहेंगे–'कहां हो, बस, द्वि ढुंग टेकि राखी, ख्वर लुकौंणाक लिजी। यानी–'दो पत्थर भर खड़े किये हैं सर छुपाने के लिये।'

(५) ग्रशोभन व ग्रश्लीलता से बचने के लिये भी शब्दों के ग्रर्थ परिवर्तित होते हैं। उदाहरणार्थ गर्भिणी नारी को 'गर्भिणी' न कह कर हिन्दी में 'पांव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारी होना' और अंग्रेजी में 'टु बी इन फैमिली वे' कहा जाता है। इसी प्रकार इसी अर्थ में कुमाउनी में–'गोठ पन जानेर छ्' कहा जाता है।

(६) व्यंग्य में भी अर्थ परिवर्तन होते हैं यथा, छिछोरे को 'ठुल भैंस' (बड़ा आदमी) कह दिया जाता हैं।

(७) भावावेश में नन्ही बच्ची को 'च्यापणी' कहा जाता है, हालां कि इसका अर्थ होता है 'गाढ़ देना।'

(८) अलंकारों के प्रयोग से भी शब्दार्थ परिवर्तन हुआ करते हैं। गिड़गिड़ाकर क्षमा याचना करने वाला व्यक्ति कहता है–'मैं पाणि है पतल छूं।' या 'सात हाथ लम्ब हुनूं।' अर्थात् 'पानी से पतला हूं।' साथ हाथ लम्बा होता हूं।'

अर्थ परिवर्तन के कारणों के बाद अब हम संक्षेप में ध्वनि विकार के कारणों पर प्रकाश डालेंगे :–

प्रत्येक भाषा की ध्वनियों में समय-समय पर जो परिवर्तन होता रहा है, वह उसकी अपनी कुछ विशेषताओं के कारण होता है। भिन्न-भिन्न भाषाओं में होने वाले ध्वनि विकार के कारण भी भिन्न होते है। यहां हम केवल उन नियमों की चर्चा करेंगे जिससे कुमाउनी भाषा प्रभावित हुई हैं।

(१) मात्रा भेद–दीर्घ स्वरों से ह्रस्व होना–कुमाउनी में दीर्घ से ह्रस्व होना सबसे अधिक लागू होता है। हिन्दी के लभभग ९५ प्रतिशत दीर्घ स्वर कुमाउनी में ह्रस्व के रूप में प्रयुक्त होते हैं। जैसे 'मीठा' से 'मिठ,' 'कीड़ा' से 'किड़' 'बीड़ी' से 'विड़ि' 'जूठ' आदि। लेकिन ह्रस्व से दीर्घ के उदाहरण कुमाउनी में विरले ही मिलेंगे। जैसे–'कुकुर' से 'कुकूर' आदि।

(२) लोप–व्यंजन वर्ण लोप के प्राकृत और अंग्रेजी में प्रचुर उदाहरण होते हुए भी हिन्दी में ऐसे उदाहरण प्रायः नहीं हैं। लेकिन कुमाउनी में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं। यथा :–

हिन्दी	कुमाउनी	हिन्दी	कुमाउनी
मधु	मौ	कह	कौ
घाँव	पौ	रह	रौ
तवा	तौ	साह (जाति)	सौ आदि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) विशेष ध्वनि बिकारः– कुमाउनी भाषा में कुछ ध्वनि विकार विशेष हैं। प्रायः हिन्दी शब्दों के आरम्भ व मध्य में स्थित 'न' का 'ण' हो जाता है। जैसे 'पानी' का 'पाणि', 'भनक' का 'भणक', 'मन' (तौल) का 'मण', । किन्तु 'मन' (अंतःकरण) का 'मण' न हो कर 'मन' ही रहता हैं। ऐसे ही 'कान' से 'काण' तो हो जाता है पर 'कान' से 'काण' नहीं होता, कान ही रहता है। इसी प्रकार सुदूर ग्राम्यांचलों में हिन्दी शब्द के अन्तिम 'ल' का 'व' हो जाता है। जैसे 'दाल' का 'दाव', 'थाल' का 'थाव', आदि। लेकिन अपवाद यहां भी है 'गाल' का 'गाव' नही होता, 'गालड़' होता है। इसी प्रकार 'छाल' का भी 'छाव' न होकर 'छाल' ही रहता है।

(४) उच्चारण की दृष्टि से कुमाउनी में बलात्मक स्वराघात का प्रकरण अत्यन्त रोचक है। हिन्दी में ऐसे उदाहरण या तो प्रश्न वाचक वाक्यों में अथवा सवैया छन्दों के गणों में स्पष्ट समझ में आते हैं। 'जैसे क्या तुम जाओगे ?' इसमें 'जाओगे' का उच्चारण ऊंचे स्वर से होगा। इसी प्रकार निम्न मात्रिक छन्द का उदाहरण दृष्ठव्य है:–

अवधेश के द्वारे सकारे गई, सुत गोद के भूपति ले निकसे।

इस छन्द में 'के' 'रे' 'रे' 'कै' 'लै' को ह्रस्व उच्चारण यत्र तत्र होते रहते हैं,

जैसे:–

काव (दीर्घ) का अर्थ है काल (मृत्यु)
काव (ह्रस्व) का ,, कौआ
डाव (ह्रस्व) का ,, पेड़
डाव (दीर्घ) का ,, ओला आदि।

ये ह्रस्व उच्चारण स्वराघात हीन हैं, भले ही इनकी मात्रायें दीर्घ लिखी जाती हैं।

अध्ययन सामग्री एवं स्थानाभाव के कारण कुमाउनी भाषा का भाषा वैज्ञानिक विश्लेशण अधिक विस्तार के साथ यहां न हो सका। वैसे जहां तक मैं समझता हूं कुमाउनी भाषा का वैज्ञानिक विश्लेषण बहुत आवश्यक है। इस पर शोध कार्य की आवश्यकता है। इससे न केवल महत्वपूर्ण नये तथ्य प्रकाश में आवेंगे अपितु यह कार्य राष्ट्रभाषा हिन्दी की श्रीवृद्धि में भी सहायक होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गढ़वाल के विजेता सैनिक

● अजय सिंह रावत

गढ़वाली इतिहास का हर एक पृष्ठ अपने सूरमाओं की कहानी से भरा-पूरा है, शौर्य यहां पर सजीव हो उठता है। यहां के सूरमाओं ने अपने ही इतिहास को नहीं वरन् अंग्रेजों के इतिहास को भी गौरवान्वित किया है – गोबर सिंह तथा दरबान सिंह के रूप में:–

प्रथम विक्टोरिया क्रौस विजेता – श्री दरबान सिंह

कैप्टन जे० इबाट ने अपनी पुस्तक 'द हैण्डबुक औन गढ़वालीज' में सैनिकों के लिए 'स्टौर्म ट्रुप्स औफ दी आलाइज' कहा है। इसी पुस्तक में आगे गढ़वाली सैनिकों के गुणों का वर्णन करते हुए, उन्हें प्रत्येक अवसर पर सचेत, कार्य में अग्रगामी, प्रत्येक भयावह परेशानी को झेलने को तत्पर, उत्सुक, आज्ञाकारी, अनुशासन पूर्ण कहा गया है।

श्री दरबान सिंह नेगी भी इन्ही सूरमाओं में से एक थे। उन्हें प्रथम विश्व युद्ध में असाधारण वीरता के लिए ब्रिटिश साम्राज्य ने विक्टोरिया क्रौस से सम्मानित किया। इस पदक को प्रथम विश्वयुद्ध में प्राप्त करने वाले केवल पांच भारतीय थे। श्री दरबानसिंह नेगी का जन्म सन् १८८७ ई० में कफाड़तीर, पट्टी कड़ाकोट (पौड़ी) में हुआ था। बहुत कम शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त वे लैन्सडाउन गये और वहीं से सेना में भर्ती हो गये। सन् १९१४ ई० में जब प्रथम महायुद्ध छिड़ा, उस समय वे १–३९ गढ़वाल राइफल्स में नायक थे। उसी वर्ष उन्हें फ्रान्स भेजा गया। फ्रान्स में फैस्टूवर्ट के समीप २५ दिन खाइयों में रहकर शत्रु का सामना किया। २३ नवम्बर सन् १९१४ को जर्मनों ने अंग्रेजों के एक महत्वपूर्ण ठिकाने पर कब्जा कर लिया था। इस इलाके पर सहायता के लिए इनकी दो टोलियां बुलाई गई। श्री दरबान सिंह जर्मन अस्त्र-शस्त्रों की बौछारों की परबाह न करते हुए अपनी टोली सहित आगे बढ़ते रहे। घायल हो जाने पर भी उन्होंने आगे बढ़ना न छोड़ा। शत्रु की लाशों से खाइयों को पाटते हुए चार बजे प्रात: (२५नवम्बर १९१४) को उन्होंने करीब ३०० गज लम्बी खाई जर्मनों से छीन ली। इस युद्ध में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत से जर्मन सैनिक वीरगति को प्राप्त हुए, १५० सैनिक कैदी बनाए गए और बहुत सी युद्ध सामग्री हस्तगत हुई। यह सब श्री दरबान सिंह नेगी की रणकुशलता का परिणाम था कि उन्होंने इतनी शीघ्र विजय प्राप्त की और अंग्रेजी सेना को भारी हाँनि उठाने से बचा लिया।

इस अनुपम वीरता के फलस्वरूप उन्हें जार्ज पंचम ने अपने हाथों से लन्दन में विक्टोरिया क्रौस देकर सम्मानित किया। श्री चन्द्रमोहन रतूड़ी ने इनकी प्रशंसा में निम्न पद रचे—

जागे नि सुद्दे गढ़ तू र तू भी,
सुद्दे नि बाकी गढ़ की सरस्वती।
सुद्दे नि औत्र्यारगढ़ मां कव्यों तुम,
भी० सी० हि ह्वै गै दरबान सिंह ज।
गढ़ का सुछत्र्यों खुश हवा गण्यों गयैं,
सब क्षत्रियों माँ तुम ही शिरोमणि।
अलभ्य भी० सी० पदवी स्वयं जब,
सम्राट दे दों दरबान सिंह क।
प्रफुल्ल होवा गढ़ की सत्यों तुम,
सब जगत कर दो तुम कू नमोनम।
ज्यू की कुख्यों माँ 'गढ़वाल रैफल',
जन्मे र शूरो दरबान सिंह यो।
तेरा जु भाई गढ़ का पशू जना,
शिमला भसूरो मिंज बोझ ढ्वै रहेन।
फुलू सि हल्दा बविग्येन आज वो,
त्वै कैक त्वै कै दरबान त्वै करी।

इस घटना से भारतीय सेनाओं और विशेषकर गढ़वाली सैनिकों में एक नए उत्साह का संचार हुआ। सम्पूर्ण गढ़वाल अपने को गौरवान्वित अनुभव करने लगा और उस माँ की कोख को सराहने लगा जिसमें इस वीर श्रेष्ठ ने जन्म लिया। इसी बात का समर्थन श्री रतूड़ी की ऊपर्युक्त कविता में किया गया है।

श्री दरबान सिंह नेगी १९२३ ई० तक सेना में रहे और सूबेदार पद पर से उन्होंने अवकाश ग्रहण किया। सन् १९३१ से ३५ तक वे गढ़वाल जिला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोर्ड के निर्वाचित सदस्य रहे। अपने समाज की उन्नति के लिए वे सदा प्रयत्नशील रहे। कई मेधावी और निर्धन छात्रों को उन्होंने व्यक्तिगत रूप से आर्थिक सहायता दी। उन्हीं के प्रयत्न से १९४६ ई० को पैतोली स्थान में एक जूनियर हाई स्कूल की स्थापना हुई। २४ जून सन् १९५० को, उनका देहवसान हो गया।

संसार का सबसे तरुण शहीद —श्री गोबरसिंह

श्री गोबरसिंह नेगी शौर्य एवं वीरता के आकाश में चमकता हुआ वह सितारा है जिसने सबसे कम उम्र में वीरता का सर्वोत्तम पुरस्कार विक्टोरिया क्रौस प्राप्त कर भारत को गौरवान्वित कर दिया। अंग्रेजों ने सार्जेन्ट जे.हैना को विक्टोरिया क्रौस विजेताओं की श्रेणी में सबसे कम उम्र (२२ वर्ष) वाला घोषित किया है जिनका अनुमोदन श्री नर्मदेश्वर सिन्हा ने अपनीं "वार इन पिक्चर सीरीज हीरोज एण्ड परसनैलटीज" में किया है जो कि सन् १९४४ में 'हिमालय पबलिकेशन्स पटना' से प्रकाशित हुई।

श्री गोबर सिंह का अवसान बीस वर्ष की उम्र में हो गया था। इस तथ्य की सत्यता को प्रमाणित करने के लिए उनके जीवन पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

श्री गोबर सिंह मन्जूड़ ग्राम (टिहरी गढ़वाल) के निवासी श्री बद्री सिंह नेगी के तृतीय पुत्र थे। इनका जन्म सन् १८९५ में हुआ। बाल्यावस्था से ही इनका रुझान खेलों की ओर था। सोलह साल की अवस्था में इन्होंने प्रताप नगर (टिहरी गढ़वाल) के राजसी उद्यान में कार्यारम्भ किया। सन् १९११ से १९१३ तक उक्त उद्यान में ही नौकरी करते रहे। सन् १९१३ के अक्टूबर माह में अपनी नौकरी त्याग कर श्री गोबर सिंह सेना में भर्ती हो गए। इनकी बटालियन का नाम २/३९ गढ़वाल राइफल्स था। अचानक ही विश्व युद्ध की ज्वालाओं ने समग्र संसार को घेर लिया और श्री गोबर सिंह की यूनिट ने २१ सितम्बर १९१४ को भारत से कूच कर दिया। यह टुकड़ी शत्रु से जूझने के लिए १३ अक्टूबर १९१४ ई० को फ्रांस पहुंची। मित्र राष्ट्रों की सेनाओं ने १० मार्च १९१५ को 'न्यूव शैपल' नामक ग्राम पर आक्रमण की कार्यवाही प्रारम्भ की क्योंकि इस गांव में जर्मन लोगों ने भयंकर किलेबन्दी कर रखी थी। 'जय बद्री बिशाल' के तुमुल नाद से गढ़वाली सैनिकों ने सर्वप्रथम हमला किया। २/३९ गढ़वाल राइफल्स शत्रु के मोर्चे की तरफ बढ़ी। पलक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झपकते ही बड़ी फुर्ती के साथ उसने २०० गज लम्बा रास्ता पार किया और जर्मन खाइयों के निकट पहुंच गई। जर्मन मशीन गनें धुंआधार आग उगल रही थीं, तोपखाने की धाँय-धाँय से भूमि कांप रही थी, जर्मन वायुयान आकाश में ताण्डव कर रहे थे, किन्तु बद्री विशाल के वे रणबाँकुरे लाल रक्त की होली खेलते हुए, सिर पर कफन बाँधे एक के बाद दूसरी खाई को हस्तगत करते जा रहे थे। बात की बात में तीन खाइयां अधिकृत हो गई। मौत के दीवाने जब चौथी खाई की ओर बढ़े तो दुश्मन बौखचा गया और उसने अपनी सम्पूर्ण शक्ति उस चौथी खाई की रक्षा के लिए झौंक दी। चारों ओर आग ही आग। लाशों से जमीन पट गई। शौर्य और मृत्यु की अद्भुत आँख मिचौनी हो रही थी। इस बीच ठा० गोबर सिह की टुकड़ी के नायक की मृत्यु हो गई, फिर भी वह वीर घबराया नही और स्वयं टुकड़ी का नेतृत्व किया। चारों ओर जैसे गोबर सिंह छा गया। हर विजित खाई पर सर्व प्रथम वीर गोबर सिंह का ही कदम पड़ता था। चौथी खाई पर भी 'जय बद्री विशाल' के घोष के साथ यह सजग सेनानी कूद पड़ा। जिसे मृत्यु का भय न हो, वह असम्भव को भी सम्भव कर देता है। अन्त में चौथी खाई पर भी इनका अधिकार हो गया, किन्तु इस युद्ध की अग्नि में गोबर सिंह का नश्वर शरीर सन् १९१५ में होम हो गया, परन्तु मानव इतिहास उनकी वीरता के कृत्यों से सदैव के लिए अमर हो गया। अंग्रेजों ने उनकी वीरता की गाथा नाम्नांकित शब्दों में व्यक्त की है :-

For most conspicious bravery on the 10th March 1915 at Neuve Chapelle, during our attack on the German position, he was one of the bayonet party with bombs, who entered their main trench and was the first man to go around each traverse, driving back the enemy until they were eventually forced to surrender. He was killed during the engagement. [No, 1685 Rifleman Gobar Singh Negi, V.C. 2nd Batallion, 39th Royal Garhwal Rifles, Village Manjuer, Tehri Garhwal]

पं० विश्वम्भर दत्त उनियाल जी ने श्री गोबर सिंह के सम्बन्ध में प्रस्तुत प्रशस्ति उचित ही लिखी है :-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मंजूड को गबरू गोबर सिंह यो छ,
वै पावु को भड़ सुलाड़ित वीर ई छ,
यो दिव्य भीम भड़ रत्न शिरोमणी छ,
क्षत्राणि वीर बन्धु की विष गाँठ भी छ॥
वीराभिमन्यु फिर वो रण मां बढ़ीगो,
चों ओर शत्रु दल से पर सेहा:धिरीगो।
माई को लाल फिर भी बढ़दो चलीगो,
वी क्षत्रि आण पर धर्म धुरीण ह्वैगो॥
ठैरा घुमोंद खुंकरी इतना हि बोले,
सर्दार सब थड़ थड़ा भय से कँपीग्यन्।
छोड़ा हत्यार नित स्वर्ग अभी पठोंदों,
आज्ञा मिजे सब ह्वैयन तब हाथ जोड़ी॥
चालाक जर्मन घुट्यां झट हाथ जोड़ी,
बोल्दान दास शरणू अब छों तुमारी।
वो भूर वीर रणशूर सपुत प्यारो,
ऐजाद बात मंग यूँ कपटी भणों की॥
ठैरा जरा खुँकरि मैं मड़ माँ घुसोंदों,
या भूलनी प्रलय की बिजली गिरीगें।
यूँ देखि गोवर थक्यूँ मुसकाण लँगे,
मौका भलो जरमनी भड़ु को मिलीगे॥
खिसोन पिस्टन निकाल बम्मन चलौण,
वो क्रूर जर्मन धड़ा धड़ गोवरू तैं।
मर्गीय गबरू य बोलि निकाले खुँकरीं,
द्वी चार काटि हंसदो हंसदो मरीगे॥
संसार से चलद वो स्व सफेद कीर्ति,
ऊंचो हिमालय अथाह अकास सेया।
वै खून सागर मथे झट बेन देखे,
धौली ध्वजा अमर कीर्ति दिगन्त फैले॥
तू धन्य है जनम सार्थक धन्य तेरो,
मां बाप धन्य छन ज्यूंकु सपूत छैं तू।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गढ़वाल धन्य जननी जख वाँकिला तू,
जै कि सुकीर्ति इनि जर्मन वीर गाँदन ।।
शावास वीर शिर आज उठे हमारो,
गढ़वाल धन्य फिर आज हुये तुमारो ।
सर्वान्तकारि यमराज छ कौरण वाला,
हे वीर नौ अमर पुण्य वरणे तुमारो ।।

कुमाउँनी लोक साहत्य के वातायान से

रमेशचन्द्र पन्त

प्रकृति-देवी की गोद में मानव जीवन के जन्म के साथ ही साहित्य का जन्म हुआ है । चिरन्तन प्रवाहमान जीवन के साथ ही साहित्य भी मानव हृदय के बिचार और भावना की सृष्टि के अनुरूप बिकसित होता आया है । अतः चिरकाल से चली आ रही मानव की सृजनात्मक रसात्मकता को विशाल अर्थों में हम 'साहित्य' कह सकते हैं । यदि हम यह देखें कि साहित्य की वास्तविक कौन सी परिस्थितियां होतीं हैं तो, इसका उत्तर देना टेढ़ी खीर ही होगा, क्योंकि नील गगन की तरह अनन्त, समुद्र की तरह अथाह गहरी साहित्यिक निधि को परिसीमाओं में बांधना इसके अजस्र विकास के साथ अन्याय करना है, फिर भी साहित्यधारा के मूल में स्थित होकर हम एक ही साहित्य और एक ही मूल की दो धाराओं को देखते हैं–

प्रथम, लोक साहित्य, द्वितीय अभिजात साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक साहित्य ही मानव मन के हिमांचल से निकली हुई उस सहज एवं प्राकृतिक सुरसरि की धारा के समान है, जो चिर-अतीत से मानव के मन में रसधारा प्रवाहित करती हुई अनन्त लोक-जीवन को आप्लावित करती आ रही है। अभिजात साहित्य उसी जाह्नवी के पवित्र एवं अजस् धारा से निर्मित नहरों के समान हैं, जो मानव समाज के अभिजात एवं उदात्त कहाये जाने वाले समाज को आनन्दित करती है।

विश्व के किसी भी भाग को ले लें वहां के लोक-साहित्य ने ही सहस्रों वर्षों से वहां के लोक-जीवन में निरन्तर जीवन का संचार किया है। इसी लोक साहित्य ने विश्व के महान साहित्यकारों को जन्म देकर, विषयवस्तु देकर विकास की प्रेरणा और विकास के लिए उचित वातावरण देकर फलने-फूलने में सहायता प्रदान की है। उदाहरण के लिए जर्मनी के 'निवेलुंभेनलडि' नामक बीर काव्य को देखें या फिनलैण्ड की पन्द्रह सौ ई० पूर्व की हजारों लोक-कथाओं को सुनें, या विश्व के सुसभृद्ध फ्रैन्च साहित्य के देहात में जाकर वहां के लोकसाहित्य का आस्वादन करें, या फिर यूगोस्लाविया के गुलस्यारों की 'तंत्री' सुनें तो, इस बात में किंचित सन्देह नहीं रह जायेगा कि लोक-साहित्य ने अभिजात साहित्य के जन्म व विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया है। विदेशों में ही नही अपने देश में राम व कृष्ण की लोक-कथाओं, राजा उदयन सम्बन्धी प्रेम-पूर्ण लोक कथाओं तथा बौधि-सत्व की जन्म जन्मान्तर की दन्त-कथाओं ने कितनी बड़ी साहित्यिक समृद्धि को जन्म दिया है।

'इस प्रकार इसमें दो मत नहीं हो सकते कि लोक-साहित्य ही परवर्ती अभिजात साहित्य की जननी है।'

इसी शरणि में कुमाउँ का सुसमृद्ध लोक साहित्य भी रखा जा सकता है। कुमाऊँ का लोक साहित्य भी भारत के किसी अन्य लोक साहित्य मराठी, बंगला, भोजपुरी, व्रज, अवधी, मैथली राजस्थानी आदि से किसी प्रकार अपनी सम्पन्नता में कम नहीं हैं। कुमाउँ का अंचल उत्तर प्रदेश के पश्चिमोत्तर श्रृंखलाओं में स्थित २९° ३०° अक्षाँस रेखाओं के ८०° देशान्तर रेखाओं के पास स्थित है। नैनीताल, अल्मोड़ा, पिथौरागढ़ तीन जिलों का प्रदेश कुमाऊँ कहलाता है। नैनीताल के तरायी भाग में बाहर से आये लोगों के बस जाने से मैदानी भाग की संस्कृति पूर्ण रुप से कुमाऊँनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं कही जा सकती हैं। इसी प्रकार उत्तर में भोटिया जातियों की भी अपनी सांस्कृतिक परम्पराएँ भिन्न हैं, क्योंकि इनका सम्बन्ध प्रारम्भ में तिब्बती लोगों के साथ अधिक रहा। कुमाउँ प्रदेश की उत्तरी सीमा तिब्बत चीन से मिली हुई है और दक्षिणी सीमा पीलीभीत, बरेली, रामपुर व मुरादाबाद के मैदानी जिलों से मिली हुई है। इसकी पूर्वी सीमा को कालीनदी (शारदा) नैपाल से अलग करती है। पश्चिमी भाग में उत्तर प्रदेश के पौड़ी व चमोली जिले हैं। हिमालय का प्रांगण भाग होने के कारण यहां की प्राकृतिक शोभा अद्भुत है। केवल वर्षा पर निर्भर सीढ़ीदार खेतों में कृषि की दशा अधिक समुन्नत नहीं कही जा सकती है। जीवन कठोर होने के कारण यहां के अधिकांश लोग जीवकोपार्जन के लिए घर से बाहर हैं।

परिश्रमसाध्य यहां के लोग अध्यवसायी, कर्मठ एवं निष्ठावान हैं। प्रकृति की दिव्य सुषमा से प्रभावित यहां का लोक-जीवन निराला है। यहां की अपनी बोली हैं जो ब्रज एवं अवधी की तरह हिन्दी की उपभाषा है। यह बोली राजस्थानी के अधिक निकट है। इसमें ६० प्रतिशत से बढ़कर संस्कृत के तत्सम शब्द किंचित् बिकास के साथ प्रयुक्त हुए हैं। स्वर बहुल एवं अनुस्वार प्रचुरता के कारण बोली में अत्यन्त मधुरता है। यह भूमि अतीत काल से महर्षियों की तपोभूमि के रुप में हमारी बैदिक संस्कृति की चिरउन्नायिका भूमि रही है। देवताओं की बिहारस्थली, शिवजी की माया भूमि, कालीदास की अल्कापुरी और पाण्डवों के स्वर्गारोहण के प्रवेश द्वार के रूप में प्राचीन समय से ही सुविदित रही है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में वर्णित यक्ष, गन्धर्व किन्नर, किरात, नाग व खशों की आदि भूमि रही है। वास्तव में खश लोग ही कुमाउँ के आदिवासी हैं। ये खश ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों में बराबर रूप से विद्यमान हैं। भारत में जब बिदेशी शको, हूणों, मंगोलों, मुसलमानों व अंग्रेजों के हमले हुए और उन्होंने हमारे देश में एक सुदीर्घ काल तक शासन किया, अपनी धार्मिक कट्टरता एवं संकीर्णता के कारण इन्होंने हिन्दूओं की वैदिक संस्कृति एवं धर्म पर प्रहार करना शुरू किया तो भारत के विभिन्न स्थानों से वैदिक धर्म में आस्थावादी लोग अपनी सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित रखने के लिए समय-समय पर इस पर्वतीय प्रदेश में आ बसे।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों से दीर्घकाल तक समय-समय पर लोगों का आगमन होता रहा। यह क्रम १९ वीं शदी के मध्य तक चलता रहा। इसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण कुमाउं की संस्कृति में अनोखे वैविध्य के दर्शन होते हैं। कालान्तर में सभी वाहर से आयी हुई जातियां एक ही संस्कृति के रंग में रंग गयी। अतः कुमाउंनी संस्कृति विविधता में एकता धारण किए हुए हैं, जिसकी स्पष्ट छाप यहां के लोक साहित्य में देखने को मिलती है। यहां का जीवन कष्ट साध्य होने पर भी उत्सव व पर्वों तथा अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं की रंगीनियों से परिपूर्ण है। इन्हीं विशेषताओं से यहां का लोक जीवन अनुप्राणित होता आया है। जहां एक ओर यहां के लोक देवताओं, प्राचीन बीर भल्लों, सुभटों तथा अमर प्रेम में जीवनोत्सर्ग होने वाले प्रेमियों ने यहां के लोक प्रवन्ध काव्य को जन्म दिया तो, दूसरी ओर प्रकृति की दिव्य सुषमा, जीवन संस्कारों, ईश्वर भक्ति, वात्सल्य प्रेम एवं प्रेमी-प्रेमिकाओं के संयोग व वियोग के उन्मुक्त उद्गारों ने ही मुक्तक छन्द का रूप धारण कर साहित्य की प्रबन्ध काव्येत्तर धारा को विकसित किया है।

यदि हम बीसवीं शताब्दी की विज्ञान की पैशाचकी उन्नति का चश्मा उतार कर देखें तो, भारत के अतीत तक हमें यह दृष्टिगोचर होगा कि 'लोक' व 'वेद' दो ही भारतीय लोक-जीवन के प्रकाशस्तम्भ रहे है। वैदिक परम्परा में जो निहित नहीं है, उसे लोक व्यवहार की विशाल कसौटी में कसा जाता था। अतः वैदिक सत्य से लौकिक सत्य का हमारे जन-जीवन में अधिक सम्मान रहा है। 'लोक' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है। जैसे इहलोक, परलोक, तीन लोक, जन-जीवन, संसार और देखने के अर्थ में। विशाल जन समाज के सीमित लोगों को छोड़कर अन्य सारा जन-जीवन लोक जीवन के नाम से अभिहित किया जाता है। इस प्रकार लोक जीवन की सीमा अपार है, और उसका प्रारम्भ मानव मात्र के उद्भव की तरह अतीत के गर्भ में समाया हुआ है। आदि काल से लेकर अधुनातम सुसभ्य जीवन के प्रारम्भिक छोर तक लोक जीवन व्याप्त है और लोक जीवन की वाणी का विलास ही लोक-साहित्य है। लोक साहित्य का निर्माण लोक जीवन के द्वारा लोक जीवन के लिए किया जाता है। लोक साहित्य का सच्चा साहित्यकार आचार्य मम्मट के निम्न कथन की पुष्टि करता है।

'काव्यं यश से अर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये,
सद्यः परिनिवृत्तये कान्तासम्भितयोपदेशयुजे।'

वेदों की ही तरह लोक साहित्य भी अपने मूल एवं वास्तविक रूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रुति परम्परा से विकसित हैं। इसको लिपिबद्ध करने के प्रयास बहुत कम हुए हैं। मौखिक परम्परा से संचारित होने के कारण लोक साहित्य में परिवर्तन एवं परिवर्द्धन को प्रवृति सहज रूप से पायी जाती है। इसी कारण लोक साहित्य में पाठ-भेद एवं श्रुति-भेद बहुलता से पाया जाया है। लोक जीवन के गायक ही लोक साहित्यकार हैं। सम्पूर्ण लोक-जीवन का लोक साहित्य के प्रणयन और विकास में योगदान रहता है। यह कितनी अद्भुत बात है कि अनन्त लोक-जीवन को आनन्दित करने वाले लोक साहित्य के किसी भी साहित्यकार ने यश का लोभ न करते हुए अपना नाम भी नहीं छोड़ा, और अपनी व्यष्टि को समष्टि में मिलाने का संकल्प ही ले लिया।

श्रुति परम्परा से विकसित होने के कारण कुमाउँ का लोक-गायक या लोक साहित्यकार अपने साहित्य को 'दन्त वेद' 'दन्त भारत' या 'गान्धर्व' कहता है, जो कि कुमाउँ के लोक साहित्य का सार्थक नाम है। कुमाउँ के लोक साहित्य को स्थूल रुप से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

प्रथम, प्रबन्ध—इसमें कुमाऊँ की लोक गाथाएें आती है।

द्वितीय, मुक्तक—इसमें समस्त लोक गीत, तंत्र मंत्र साहित्य, मुहावरे, लोकोक्तियां, पहेलियां, समस्याऐं तथा अन्य प्रकीर्ण विधाऐं ली जा सकती हैं।

प्रबन्ध काव्यों में लोक-गाथाऐं ही सर्वस्व निधि हैं। ये सभी काव्यात्मक, संगीतात्मक, तथा गेयतत्व से पूर्ण हैं। लोक गाथाओं को भी चार भागों में विभक्त करना, विषयवस्तु के आधार पर अधिक समिचीन होगा।

बीर गाथाऐं—इनमें कुमाउँ के प्राचीन बीर राजाओं, भल्लों, एवं सुभटों लोक-नायकों की वीरता पूर्ण गाथाऐं आती हैं। जिसमें रमौल, सम्यावहेत, रणुवाँ रौत, बफौल गाथाऐं, भगुवा रौत, नारसिंह व धना, पुरुख पन्त, तथा अन्य स्थानीय कोटों के नायकों की गाथाऐं आदि प्रसिद्ध हैं।

प्रेम गाथाऐं—इसमें 'मालूशाही' का अमर प्रेमाख्यान व 'गङ्नाथ' की प्रेम गाथा आती है। यद्यपि गङ्नाथ गाथा धार्मिक भावना से भी सम्प्रेषित है, परन्तु मूल वस्तु विन्यास और उद्देश्य की दृष्टि से प्रेम गाथा में रखना अधिक सार्थक है।

देव गाथाऐं—इसमें कुमाउँ के लोक देवता एवं देवियों की गाथाऐं आती हैं। ये लोक देवी, देवता कुमाउँनी लोक-जीवन को जीवन्त प्रेरणा और आर्त्तजनों को सहज उपचार एवं सान्त्वना देते हैं। इसमें कुमाउँ के प्रसिद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवी देवता, नौंलिग वञ्जैंण गथा, हरु-सैंभ, गोल्ल, कालसिण, छुलमल, ऐड़ी, परी, गढ़-देवी तथा नागगाथाऐं इत्यादि प्रसिद्ध हैं।

धर्म गाथाऐं—धर्म गाथाओं में हिन्दू धर्म की रामायण एवं महाभारत की गाथाऐं अपने निराले रूप से लोक-तत्त्व से युक्त हैं। यह जानकर आश्चर्य होता है कि कुमाउँनी लोक-साहित्यकार ने महाभारत गाथा में कौरव पाण्डवों के पारस्परिक दांव पैंच दिखाते हुए भी कुरुक्षेत्र का नर संहार न दिखाकर हस्तिनापुरी व जैतंपुरी (इन्द्रप्रस्थ) में पाण्डव व कौरवों को पृथक-पृथक राज्य देकर 'राजसूय यज्ञ' करवाया हैं।

मुक्तक साहित्य में लोक-गीतों की परम्परा आती है, जो कुमाउं के लोक जीवन के अधरों से प्रतिदिन लाखों बार गाये जाते हैं। लोक-गीतों में कृषि गीत, ऋतु गीत, जीवन संस्कार सम्बन्धी गीत, भक्ति गीत, वात्सल्य गीत तथा प्रणय गीत प्रमुख रूप से आते हैं। कुमाउनी के मंत्र एवं तंत्र साहित्य में कुछ गद्य और चम्पू के दर्शन होते हैं। अधिकांश रूप से यहां का लोक साहित्य काव्यात्मक है।

कुमाउंनी लोक साहित्य लोक जीवन से निकली सीधी, निर्मल अभिव्यक्ति है। इसमें न तो कहीं पाण्डित्य प्रदर्शन का वोझिलपन है, न तो रस का तिरस्कार ही है। स्वाभाविकता, सहजता, मधुरता, सर्वोपरि रसात्मकता कुमाउं लोक साहित्य का प्राण है। भावपक्ष में प्राय: सभी रसों का परिपाक हुआ है केवल शान्त रस का अभाव है, वीर रस वीर गाथाओं में भरा पड़ा है। श्रंगार रस की धारा यत्र-तत्र अपने विविध रूपों में उमड़ती है। यों तो श्रंगार के संयोग एवं विप्रलम्भ का सुन्दर परिपाक हुआ है, किन्तु वियोग पक्ष कहीं-कहीं इतना प्रबल हो गया है कि करुण एवं विप्रलम्भ में अन्तर कर पाना कठिन है। ध्वन्यात्मकता, वाग्वैदग्धि और लोक तत्व (स्थानीय तत्व) का तो इस साहित्य में गहरा प्रभाव है। स्थानीय लोक-जीवन व प्रकृति का सुन्दर चित्रण हुआ हैं। सारा कुमाऊं लोक साहित्य भाव पक्ष की अपार सम्पन्नता से कूट-कूट कर भरा हुआ है। भाव पक्ष के इस मूल्यांकन के लिए लोक साहित्य के माप दण्ड स्थापित करना अधिक युक्तियुक्त होगा।

कुमाउनी लोक साहित्य कलापक्ष का भी बहुत अधिक धनी है। इसमें कलापक्ष को अधिक संवारने के लिए हठपूर्ण खींचतान नहीं है। स्वाभाविकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं इसका एक अंग बन गया है। अलंकारों में सादृश्यमूलक और वक्रोक्ति मूलक अलंकार अधिक हैं। जहां तक छन्दों का प्रश्न है, विशुद्ध रूप से कुमाउनी लोक साहित्य तुक व छन्द बन्धन से मुक्त है। लोक-गीतों में कहीं-कहीं तुक मिलाने के लिए एक चरण अप्रसंगिक रूप से जोड़ दिया जाता है। ताल, लय, स्वरात्मकता, संगीतात्मकता एवं गेयतत्व प्रधानता कुमाउनी लोक साहित्य की संस्कारगत निधि है। प्रकृति चित्रण में स्थानीय प्रकृति का आलम्बन एवं उद्दीपन दोनों ही रूप सुलभ हैं, परन्तु उद्दीपन रूप की प्रधानता है। मुहावरे एवं लोकोक्तियों के कारण भाषा में लाक्षणिकता की चमक दिखाई देती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि कुमाउनी लोक साहित्य कला प्रदर्शन के लिए रचा गया हो, स्वाभाविकता व सहजता इसकी कला का प्राण है।

कुमाउं प्रदेश विविधता में एकता धारण किये हुये है। संस्कृति, इतिहास भाषा-विज्ञान, मानव शास्त्र आदि के लिए कुमाउनी लोक साहित्य का महत्त्व अन्यतम है। प्रेम काव्यों में यह बात विशेष रूप से देखने को मिलती है कि प्रेम-मार्ग में प्रेमी की अपेक्षा प्रेमिका अधिक सक्रिय है। गङ्नाथ को भाना मालूशाही की राजुली (राजुला) इसके क्रमशः उदाहरण हैं। यहाँ के लोक जीवन की अपनी मान्यतायें, धारणायें, जीवन मूल्य और परम्परायें हैं जिनसे यहां का लोंक-जीवन अनुप्राणित होता आया है, जो यहां के लोक साहित्य की स्वभावगत विशेषता है। लोक तत्व, आंचलिकता, स्थानीय प्रकृति, संस्कार, वेष-भूषा व मानव तथा मानवेत्तर प्रवृत्तियों का सुन्दर चित्रण हुआ है। वस्तुतः लोक तत्व या स्थानीय तत्व ही लोक साहित्य की सांस्कृतिक विरासत है।

कुछ वर्ष पूर्व लोक साहित्य को प्राकृत या देहाती समझकर उसके प्रति उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था। केवल आलंकारिक साहित्य की ही महत्ता समाज में थी। समय आने पर लोक साहित्य की महत्ता ने अपने महत्त्व को स्वयं प्रकाशित किया। साहित्य में लोक साहित्य के महत्त्व को समझकर इस ओर अध्ययन की प्रवृत्ति बढी है। देश विदेशों में लोक साहित्य के अध्ययन की रूचि इसका प्रमाण है। भारत में लोक साहित्यों, राजस्थानी, व्रज, अवधि, मैथली, भोजपुरी आदि में पर्याप्त अध्ययन हुआ है या हो रहा है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु हम इसे अध्ययन का प्रारम्भ ही कहेंगे। बहुत से लोग अब लोक साहित्य के संकलन, सम्पादन एवं अनुवाद कार्यो में लगे हुए है, जिनमें सम्पादक, पत्रकार, साहित्य प्रेमी, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालयों के छात्र लोक साहित्य सेवीसंस्थान, राज्य एवं केन्द्रीय सरकार के सूचना विभाग, आल इण्डिया रेडियो का लोक साहित्यिक कार्यक्रम इत्यादि प्रयास सराहनीय है।

विदेशों में तो 'फोकलोर सोसाइटियां' इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है। आशा है कि अपने देश में भी शिक्षण संस्थाओं, एवं संस्थानों के द्वारा विभिन्न लोक साहित्यों के अध्ययन की प्रवृत्ति को उत्साह मिलेगा। सरकार भी अपने कार्य-कलापों व योजनाओं को जन-जन तक पहुंचाने और जन-साधारण की भावनाओं को निकट लाने के लिए लोक साहित्य के अध्ययन में अधिकाधिक सहायता देगी। अब समय निकट है स्वदेशी ही नहीं अपितु समस्त विश्व के लोक साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन करके मनुष्य मात्र को एकता, विश्व बन्धुत्व और प्रेम मार्ग में प्रवृत किया जायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गढ़वाली का गौरव काव्य--भूम्याल

डा० गोविन्द चातक

हिमालय का गढ़वाल क्षेत्र वनों और पहाड़ों की भूमि माना जाता रहा है। यहां आदमी भी रहते हैं, इसका ध्यान सुविधा भोगी शासकों और उच्च वर्ग के लोगों को कभी रहा ही नहीं। पहाड़ों की चर्चा या तो सैलानियों के संदर्भ में की जाती रही है या फिर जंगलों के। सैलानी वहां अपनी गंद छोड़ जाते हैं और जंगल सरकारी नीलामी में ठेकेदारों के पेटों में चले जाते हैं और फिर पहाड़ी लोग सिर्फ रह जाते हैं–दिल्ली, देहरादून, मसूरी, बम्बई, कानपुर की सड़कों पर खाक छानने के लिए, होटलों और घरों में बर्तन मांजने के लिए ! तब 'पहाड़ी मुंडा/छोकरा' उन पहाड़ों का प्रतिनिधि बनकर मैदानी आंखों में रूढ़ हो जाता है–वे सोचते हैं, यही पहाड़ है, पहाड़ ऐसे ही होते हैं उससे बाहर वे जैसे है ही नहीं।

वस्तुतः ऐसा वे लोग सोचते हैं जिन्होंने ऐश्वर्य की मदांधता में शोषण को अपनी जागीर मान लिया है। वे भूल जाते हैं कि प्रकृति के जिस निष्पाप वातावरण में पहाड़ों के बेटे पलते हैं, उसमें मानव के आन्तरिक विकास की अमित संभावनाएं हैं। इसीलिए युगों से पहाड़ की धरती अनादि काल से विभिन्न मानवीय भावभूमियों, कोमल करुण अनुभूतियों, ज्ञान के प्रस्फुटन और मानवता की गहरी जड़ों का पोषण स्थल रहा हैं। हाल ही में पहाड़ों विशेषत : गढ़वाल के लोक जीवन की झांकी को प्रस्तुत करने वाली कुछ किताबें इस अहसास को जगाती हैं। इन पुस्तकों में एक पुस्तक है अबोध बन्धु बहुगुणा की काव्य कृति–भूम्याल (प्रकाशक : हिमालय कला संगम यू. बी. ६५ (डी) जवाहर नगर दिल्ली–७ पृष्ठ १८२, मूल्य १० रु०, विशेष संस्करण २० रु०)। यह काव्य गढ़वाली गाथाओं के नायक जीतू बगड्वाल पर आधारित है।

जीतू बगड्वाल गढ़वाली लोक मानस के उलार-दुलार, हौंसिया जवानी, धरती के जीवन में सपनों को रोपने की आकांक्षाओं और मोहक परिणति के ऐन वक्त पर उनकी करुण त्रासद परिणति का प्रतीक रहा हैं। न जाने कब से मध्य हिमालय का पहाड़ी जन धान की रोपाई के वक्त ढोल-दमामा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रौर ग्रौजी के कण्ठ स्वर में जीतू की गाथा कह रहा है। मूल गाथा ग्रब युगों का सफर तै करते हुए इतनी छन चुकी है कि उसका रोमानी पक्ष ही बच रहा है। शायद वही तत्व लोकजीवन के ज्यादा नजदीक भी है—खेती से ग्रन्न ग्रौर नारी से मन प्राप्त करनें का। जीतू उद्दाम का धनी। ब्रज के कृष्ण जैसा छैला ग्रौर बांसुरी का बजैया। कृष्ण की बांसुरी उसके सारे जीवन में कसक छोड़ गई। जीतू की बांसुरी उससे जिन्दगी ही छीन ले गई। कहते हैं जीतू के खेतों की रोपनी होती थी। मुहूर्त निकालने के लिए गया तो ज्योतिषी ने कहा। 'घर के किसी व्यक्ति के हाथ रोपनी का दिन नही निकल रहा है। सिर्फ शोभनी के हाथ जुड़ती है।' शोभनी जीतू की बहन थी ग्रौर वह दूर कई पहाड़ों के पार व्याही थी। जीतू उसको लिबाने को चल पड़ा तो उसकी तिला नाम की बकरी ने छींक दिया। जीतू ने सुना ग्रनुसूना किया ग्रौर बहन को लिवाने चल दिया। शोभनी की एक ननद थी भरुणा (बरुणा), पयूंली की कली सी। हवा सी हलकी ग्रौर पानी सी पतली। जीतू उसके रूप पर मोहित था। उसकी दया-माया जीतू की राह की रौंस बनी थी। किन्तु नियति ने उसके लिए कुछ ग्रौर ही सोच रखा था। बहुत थका हुग्रा जब वह सैंथल की थाती में पहुंचा तो थकान से चूर वह पेड़ की छांव में बैठा। ग्रास-पास की सुरम्य प्रकृति ने न जाने उसकी उलरिया जवानी में कैसी उमंग भरी कि उसने ग्रपनी बांसुरी निकाली ग्रौर बजाने लगा। वह बांसुरी क्या थी, मोहनी माया थी। जड़-चेतन मोहित हुग्रा, ग्रौर फिर एक ग्रनहोनी होकर रही। ग्राछरियों (ग्रप्सराग्रों) की टोली पक्षियो के झुण्ड की तरह न जाने ग्रचानक कहां से उतरी ग्रौर जीतू पर टूट पड़ी। उनके ग्रागोश में जीतू एक स्वप्न से जागा तो उसे खेतों की रोपनी के दिन, बहिन शोभनी ग्रौर भरुणा की याद ग्राई। ग्राछरियां उसे हर ले जाएंगी तो इनका क्या होगा? उसने उनसे मोहलत मांगी। 'ग्राज मुझे जाने दो। ६ गते ग्राषाढ़ मेरे खेतों की रोपनी है। मैं बहिन शोभनी को लिवाने जा रहा हूं। तुम उस दिन खेत में ग्राना' ग्राछरियों ने उसे छोड़ दिया। जीतू बहिन के गांव गया। भरुणा से प्रेम ग्रालाप हुग्रा। जीतू बहिन को लेकर घर ग्राया। रोपनी का दिन ग्राया। वादे के मुताबिक ग्राछरियां ग्राई ग्रौर जीतू को हर ले गई। हल लगाते ही जीतू, हल-बैल ग्रौर सब लोग खेत में ही कहीं डूब गए। इस तरह एक जवानी मिट गई। प्रणय की ग्रधूरी ग्राकांक्षा को लेकर, ग्रौर सबके लिए एक कसक लेकर कि वह एक ग्रल्हड़ जवानी को नहीं भोग पाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अबोध बन्धु बहुगुणा ने लोक की इसी गाथा को लेकर उसका नया संस्कार किया। उन्होंने जीतू की लोकस्मृति में धूमिल होती प्रक्रिया को चमका कर उसके व्यक्तित्व के आयाम उभारे हैं। जीतू गढ़वाल के लोकमानस में अत्यन्त जीवंत चरित्र है। कुछ भागों में उसे देवता भी माना जाता है और उसे 'नचाया' भी जाता है। रोपनी के अवसर पर गाँव-गाँव में खेतों में ढोल दमामा बजाते हुये औजी-वादक उसके गीत गाते हैं। वस्तुतः कोई रोपनी इसके बिना अधूरी मानी जाती है। इससे अनुमान कर लेना कठिन नही कि जीतू लोकनायक रहा होगा। बहुगुणा जी ने ठीक ही उसकी अवधारना लोक-देवता, भूमि-देवता 'भूम्याल' (भूमि-पाल, क्षेत्रपाल) के रूप में की है। जीतू के भूमिपाल रूप को ही उन्होंने उभारने की कोशिश की है। कृषि प्रधान समाज में भूमि सबसे महत्वपूर्ण वस्तु कही जा सकती है। कवि ने उसकी कल्पना एक छोटे-मोटे राजा, गढ़पति, सामन्त या राजन्य के रूप में की है। पिता जब अधिकार सौंपता है तब राज्य में दुर्व्यवस्था थी। जीतू पहली बार भूमि जन-जन को सौंपता है। पिता और पुत्र में विरोध होता है। दोनों में जो वार्तालाप होता है, वह भले ही आधुनिक गणतांत्रिक विचारधारा को व्यक्त करता है, किन्तु वह जीतू के लोकदर्शी व्यक्तित्व को उभारता है। वह घोषणा करता है : जिस राज में दौलत सेठों की मुट्ठियों में बन्द हो, जहां अधिकार कहने भर को हैं, पर इन्सान ढोरों की तरह जिन्दगी जी रहे हैं ऐसे राज्य का क्या करें ? आज से, सबको बता दो राज्य जीतू का नहीं। सबका साझा है। कोई भी एक आदमी कई आदमियों की बराबरी नहीं कर सकता, इस प्रकार जीतू सेठों-थोकदारों, कमीण और कारिन्दों के नीचे दबी जनता की मुक्ति का स्वप्न देखता है। उसके प्रयत्नों से एक बार पहाड़ों पर नया सूरज आ खिलता है। पर यही प्रकाश समाज विरोधी उलूकों के लिये हैरानी पैदा करता है और वे जीतू के विरुद्ध षड्यंत्र करने लगते हैं। रोपनी के लिये जीतू बहिन को बुलाने जाता है तो वे लोग रैंथल की थात में पानी के घड़े में विष मिला देते है। विष की उसी स्थिति में आछरियाँ आती हैं और उस पर मुग्ध हो जाती हैं और वे उसे अपने स्वर्ग चलने को कहती हैं किन्तु जीतू अपनी धरा का मोह व्यक्त करता है और कहता है कि तुम्हें अगर मेरा साहचर्य चाहिये तो मेरे खेतों में आओ। हम सब मिलकर खेतों में काम करेंगे। जीतू बहिन को लिवाने जाता है; पर साथ में प्रेयसी भरूणा को भी ब्याहकर ले आता है। लोग गांधर्व विवाह का विरोध करते हैं पर अभी विवाह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की मेंहदी मिटी भी न थी कि ६ गते आषाढ़ रोपनी के दिन आछरियां आती हैं। खेतों में हल लगाते ही वे उसे हर ले जाती हैं।

स्पष्ट है कि बहुगुणा जी ने मूल कथा को एक अर्थ देने का प्रयास किया है। यह अर्थ जीतू को एक जन-सेवी व्यक्ति और भूमि को सबकी साझी मां समझने वाले लोकनायक का रूप देता है। उसके माध्यम से कवि ने एक ओर धरती पर जन-जन के समान अधिकार का मुद्दा उठाया है, दूसरी ओर उन समाज विरोधी शक्तियों का भी चित्रण किया है जो नये समानता के स्वप्न को निस्सार करने के लिये कटिबद्ध रहते हैं। 'दुंद' सर्ग में कवि ने युग की सारी राजनैतिक और सामाजिक विसंगति को उभारा है। इन सारे सन्दर्भो में कभी-कभी जीतू मिथक और लोकगाथा का जीतू नही रह जाता। बल्कि ऐसा लगता है जैसा जीतू हमारे युग में रह रहा है। वस्तुतः इस काव्य ने प्राचीन लोकगाथा को आधुनिक भाव-बोध दिया है। इस सम्वध में कुछ लोगों को आपत्ति हो सकती है। किन्तु कवि ने अपनी ओर से उसकी पूरी संगति बिठाने की कोशिश की है। मूलगाथा भाव और घटना मात्र थी, काव्य के रूप में इसमें युगीन चिन्तन का भी समावेश हो गया है। ऐसा सहसा अनुचित भी नहीं है क्योंकि आज के बौद्धिक युग में जीवन दृष्टि वैसे भी महत्वपूर्ण हो गयी है। पुस्तक के उपसंहार में कवि ने अपने काव्य के एक और परोक्ष अर्थ की ओर भी संकेत किया है। 'जीतू बिमल हंस, भरणा च माया, छ शोभनी शाँति .... व विराग ननिया। 'व्यक्ति शाँति की ओर जाता है, किन्तु माया में पड़ जाता है। इस आध्यात्मिक अर्थ को काव्य में से कोई निकालना चाहे तो निकाल सकता है। किन्तु प्रश्न यह है कि कौन अर्थ मूल्यवान है और ध्वनित अर्थ की तुलना में निहित अर्थ कहीं अधिक जीवन्त हो सकता है।

जीतू का सामाजिक व्यक्तित्व काव्य का सबसे अधिक लक्ष्य बना है किन्तु उसके जीवन का वैयक्तिक प्रसंग ही काव्य का प्राणतत्त्व बनता है। यह वैयक्तिक जीवन प्रसंग है–भरूणा से उसका प्रेम। कवि ने जीतू और भरूणा के किशोर वय के प्रेम को बहुत ही सशक्त और सजीव भाषा में पहाड़ी लोकजीवन के सहज परिवेश में उभारा है। सारी अभिव्यक्ति शब्दों की आंचलिक अभिव्यक्ति और उससे उभरे विम्ब, संवाद, भाव-मुद्राएँ- मूकचेष्टाएँ सब गढ़वाल की लोक-जीवन की धरती में रमी बसी हैं। दोनों की प्रणय की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभूतियों का स्थानीय परिवेश और क्रिया-कलाप जिस आंचलिकता को उभारता है वह निश्चयत: भावमयी है। देवदार-चीड़ और बुरांसों के वनों में फूलों की मधुमय घाटियों में उभरता यह प्रेम निसर्ग लीला की भांति अकलुष औंर निर्दोष होकर फलता-फूलता है। संयोग का जितना समर्थ चित्र उतारा है उतना ही विरह का भी। एक पूरे सर्ग में भरूणा के विरह को वाणी मिली। इस विरह वर्णन में अनुभूति की वारीकियां हैं किन्तु सबसे अधिक प्रभावित करती है भरणा की व्यवहार बुद्धि। उसके जीवन में भी किसी गोपी की तरह एक भ्रमर गीत प्रसंग आता है। एक भौंरा चुपके से उसकी वेणी में आकर बैठ जाता है। वह वेणी को हिलाकर उसे भगा देती है और उसके साथ एक मीठी खीझ भी उठती है और फिर याद आता है वह भौंरा जीतू। वह भौंरे को लक्ष्य कर कुछ कहती है। भाभी शोभनी सुन लेती है। पूछती है, कौन है वह? भरणा सब कुछ छिपा देती है। मैं तो गीत की कोई कड़ी गा रही थी। यही नही अन्य अभिव्यक्तियों में लोक-जीवन और लोक व्यवहार मुखर हो उठता है। शोभनी भरणा को यह बताए बिना नहीं रहती कि तुझे अभी व्याह की क्या पड़ी है। मायके में जो दिन बिता लिए वही तो हंसने खेलने के दिन हैं। फिर तो सारी जिन्दगी ससुराल को भेंट हो जाती है। तब मायके वाले भी बेटी को भुला देते हैं। इस प्रसंग में एक तरफ भरणा के मन में उठने वाली जीतू की याद और दूसरी तरफ शोभनी की मायके की याद जैसे नारी जीवन की दो विडम्बनाएं बनकर सामने आती हैं। क्या विचित्र मनोविज्ञान है नारी का, कि एक ओर वह प्रिय का साथ ग्राहने के लिए मायका छोड़ने को आकुल दीखती हैं और दूसरी ओर जब ससुराल आ जाती हैं तो मायके की याद सताने लगती है। मायके और ससुराल में यों बंट जाना क्या नारी की विडम्बना नहीं है? और तब प्रश्न उठता हैं—किसकी पीड़ा बड़ी है?—भरणा की या शोभनी की? दोनों कितनी सहज हैं। 'भूम्याल' में भरणा का उद्दाम यौवन और रूप की अर्चना अधिक सार्थक हुई है। विरह के गीत गाती भरणा जीतू के लौटने की तैय्यारी देखते ही स्वयं भी साथ चलने को उद्यत हो जाती है। माता-पिता के आक्रोश और लोगों की उठती उंगली को यह सब तरह से सह लेती है और दुल्हिन के रूप में सामने खड़ी हो जाती है, सलज्ज भी और सशक्त भी।

हैंसदि मुख्न इथै खड़ि ह्वै जब,
ब्यौलि जरा-सि नजर कखरेंदी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोनि कि टुकड़ि-सि मुखड़ि निमाणि च,
धौंपेलि लम्बि बिराजदि वेन्दी ।

पैरू छमाछम छन झाँवरि बावरि,
घाघरि घेरलि घस्स ल्ह्वसेंदी ।

मांगलू भौंण, समौण-सि सासु कि,
देखिकि चुल्ला नजर तरसेंदी ।

रूप की यह राशि, जीतू की यह नई नवेली दुल्हिन चाहे जीवन और यौवन को न भोग सकी किन्तु भरण की त्रासदी ने उन्हें जैसे लोक में हमेशा-हमेशा के लिए अमर बना दिया ।

'भूम्याल' का काव्य एक और आयामी चरित्र है, जीतू की मां सुमेरा। अल्हड अनगढ बेटे के प्रति सुमेरा के मन में सदा चिन्ता बनी रहती है। कवि ने 'ममता' सर्ग में उसके वात्सल्य को सहज अभिव्यक्ति दी है। उसे एक ओर अपने उजाड़ खेतों की चिन्ता है, दूसरी ओर ससुराल में व्याही शोभनी की और साथ ही अपने उद्दंड बेटे की भी जिसे वह शोभनी को लिवाने उसकी ससुराल भेजना चाहती है। वह अपशकुन होते देखती है तो आशंका से उसका दिल टूटने लगता है। यहीं जीतू का वह पौरुष भी उभरता नजर आता है जो हर बाधा की चुनौती स्वीकार करता है। बेटे के पौरुष से मां के हृदय की पीड़ा को जैसे एक शीतल स्पर्श मिल जाता है। सुमेरा वह पहाड़ी मां है जो बात-बात पर पुत्र के लिए आशंका करती है। उसे रोकती नहीं। पर हिदायतों की भड़ी लगा देती है। वह यह कहना भी नहीं भूलती कि वांसुरी साथ न ले जाना। खैंट में आछरियां रहती हैं, बटोहियों को हर ले जाती हैं।

सुमेरा अमित ममत्व की शक्ति को प्रकट करती है किन्तु उसका दूसरा बेटा, जीतू का ही छोटा भाई, नानिया विराग का जीवन जीता है। वह मनुष्यों से दूर जंगल में रहता हैं और अकेला जीवन अपने लिए चुनता है। यह जीवन आदिम मानव जैसा है या विरक्त ज्ञानी पुरुष जैसा, यह कहना मुश्किल है। पर नानिया जैसे दोनों के मिले-जुले रूप को लिए हुए जीने में मग्न है। जब जीतू और उसके परिवार का अंत आता है तो दूर से उसे अपने गांव में किसी उत्सव का सा आभास होता है। तब अचानक उसके मन में एक राग सा लगता है कि भाई ने उत्सव किया था तो उसे क्यों नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुलाया। वह उलाहना लेकर चल पड़ता है किन्तु सर्वनाश की लीला देखकर वह नियति की कठोरता को आंकने लगता है। विरागी भी कितना रागी हो सकता है, यह नानिया की पीड़ा से मुखर होता है। किन्तु रागी जीतू कितना विरागी था, यह भी 'भूम्याल' का एक बहुत बड़ा तथ्य है।

बहुगुणा जी ने जीतू की कथा को जो नया रूप दिया है उसमें जीतू का विषाक्त जल का पीना, आछरियों द्वारा हरण करना, जीतू का राजन्य रूप में प्रतिष्ठित करना आदि है। आज के युग को देखते हुए सबसे कठिन प्रसंग मुझे आछरियों का लगता है। गढ़वाल में आछरियां उन मृत भटकती आत्माओं को कहते हैं जो अल्पायु में ही मर जाती हैं। यह माना जाता है कि खैट आदि गुफाओं में ये रहती हैं-सुन्दर स्त्रियों की तरह चलती-फिरती हैं। ये कभी पुरूषों पर मुग्ध हो जाती हैं तो उसे उड़ा ले जाती हैं या स्वयं उनके घरों में आ जाती हैं। एक धारणा यह भी हैं कि वे अनिष्टधारणी होती है। जिस पर मुग्ध होती हैं उसके अंग-प्रत्यंग में घुस जाती है और उसका खून पी जाती हैं। बहुगुणा जी ने आछरियों के इसी मिले-जुले रूप को अभिव्यक्त किया है। उन्होंने जीतू के बांसुरी बजाने पर आछरियों के आगमन और उनके रूप का बड़ा वैविध्य पूर्ण चित्रण किया है। आछरियां जीतू को स्वर्ग चलने को कहती हैं किन्तु भूमिपुत्र जीतू भूमि का गुणगान करता हुआ उन्हें अपने साथ भूमि पर खेती-किसानी करने का आमन्त्रण देता हैं, किन्तु स्वर्ग का जीव धरती पर रहने की इयत्ता को क्या समझता। वे निश्चित तिथि को आकर उसे स्वर्ग ले जाती हैं। लोकगाथा में आछरियों के अन्त में आने और हरण की विनाश-लीला का बड़ा करुण और भयावह वर्णन किया है। अपने स्वार्थ के लिए आछरियां मानव की विनाश-लीला की सूत्रधारिणी बनती है-यह जीवन का कितना विचित्र सत्य है कि एक का भोग दूसरे की मृत्यु है। बहुगुणा जी ने उस विनाश-लीला का चित्रण नहीं किया। वस्तुतः उस दृश्य को आजकल के वैज्ञानिक बौद्धिक युग के पाठको के लिए प्रस्तुत करने में हिचक गए। मैं बड़ी उत्सुकता से उसको पढने के लिए लालायित था। किन्तु कवि ने विवरण की अपेक्षा सूचना तथा नानिया की प्रतिक्रिया को व्यक्त करके ही संतोष कर लिया। यही बात एक और प्रसंग के सम्बन्ध में मुझे लगती रही। जीतू बहिन को लिवाने के बहाने एक बार फिर अपनी प्रेयसी भरणा को मिलने जाता है। यह प्रथम मिलने के बाद की स्थिति है। पर अब की बार परिस्थति बड़ी विषम है। जीतू के सामने आछरियों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न है और मरण की आशंका भीं। इसको वह झुठला भी दे तो भी अब की बार के दोनों के मिलन को कवि ने अछूता छोड़ दिया। कुछ छंन्दों में भरणा की भावना तो व्यक्त हुई है, पर जीतू का मौन अखरता है। होने वाली त्रासदी के सन्दर्भ में जीतू की भावना का भी अपना मूल्य हो सकता है।

इन विवादों में पड़ना ठीक नहीं कि यह प्रबन्ध काव्य खंड काव्य है या महाकाव्य है। किन्तु इतना निश्चित है कि यह एक सफल काव्य है और महाकाव्य या प्रबन्ध काव्य रूपों की एक बहुत बड़ी शर्त को यह काव्य पूरा करता है। इसमें गढ़वाल के समग्र जातीय जीवन, सांस्कृतिक संवेदनों और सामाजिक रीति नीति, आशा आकांक्षाओं का प्रतिनिधि चित्र प्रस्तुत हुआ है। कुछ चीजों का विस्तार, कुछ चिन्तन मनन और सामाजिक तत्व को जोड़ने का प्रयास करके भी विचारशील कवि और नई सामाजिक संरचना का स्वप्न देखने वाली दृष्टि का संकेत प्रस्तुत करता है। लोक भाषा में आधुनिक चिन्तन को व्यक्त किया जा सकता है। यह भी इस काव्य की शक्ति का सूचक है। राजनीति, समाजनीति' विराग, दर्शन, सब एक ऐसे ढाँचे में ढल जाते हैं कि अभिव्यक्ति की क्षमता शैली और भाषा के कारण काव्य में घुलमिल जाती है। ऐसे स्थलों को छोड़ भी दें तो 'भूम्याल' में सरस प्रसंगों की कमी नहीं है जिनमें शुद्ध काव्य की सुरसरि निश्छल भाव से प्रवाहित होती है - इस काव्य की शक्ति इस बात में हैं कि यह धरती का काव्य है और इसका कवि वैदिक युग का 'माता भूमि पुत्रीऽहं पृथ्विव्या,' कहने वाला कोई धरती का वरदपुत्र है। यह काव्य हमें युग का संकेत देता है, किन्तु इसके सबसे सुन्दर अंश वे हैं जो हमको अतीत में ले जाते हैं—उपनिषदों, वेदों के युग में और आदिम सभ्यता की उजली गुफाओं में। भूमि के प्रति यह भावना पढ़कर मुझे लगा मैं वहीं हूं।

हर वर्ष हम अन्न धन को समेर दे,
दे फूल फल दे, दे घास लखड़ा।

हे रत्नगर्भा दे धातु नाना,
दे हमे जड़ी बूटि आरोग्यकारी।

जिस तरह से कवि हल-बैल, खेती-पाती वाली जिन्दगी का वर्णन करता है और उनको धरती के प्रति निष्ठा व्यक्त करता है वह जीवन का सबसे बड़ा कवित्व है। गढ़वाल की प्रकृति, त्योहार के हास-उल्लास और विविध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रिया-कलापों का कवि ने वहां की भूमि के परिवेश में सही चित्र उतारा है। जीतू और भरणा के रूप और प्रेम-अभिव्यक्ति के चित्रण में कवि ने अपूर्व क्षमता दिखाई है। उस प्रेम की सांकेतिक अभिव्यक्ति प्रकृति के माध्यम से करवा कर कवि ने उसकी अपूर्व व्यंजना की है :

फूल गैने फूल फौटियों मा,
बोण हैंसगे बहार मा रे।
भक्क पवन लगुलि पर अंग्वाल,
बासगे हिलांस धार मा रे।
+ + + +
छाला दुई गाड एक उटणी,
जान एक द्वी अंद्वार मा रे।

इस काव्य की एक बहुत बड़ी सिद्धि इसकी आंचलिक भाषा में भी है। वैसे हीं संस्कृत के शब्द भी आ गये हैं पर वे अधिक नहीं। कई शब्द तद्भव रूप में आ जाने के कारण भी गढ़वाली की प्रकृति में खप जाते है। किन्तु कवि ने ढूंढ-ढूंढ कर ऐसे देशज आंचलिक शब्द समूह को लेकर इस काव्य की रचना की है कि वे पाठक के सोये संस्कारों को जगाते हैं और लोक जीवन की सुधर अनुभूतियों में रमाते हैं। कुछ शब्द काव्य की सर्जनात्मक क्षमता को उजागर करते हैं जैसे, अबिडो, लुसेणु, अंठोस, धौंदयटि, झरपर, बिगरैलो, अयणा, लैंदी, क्वासो, वाकवाणी, रँगसटेणू, धीत, बुंडणु तींदी, स्याणी, गेड़, चिंड़ग, फिंगा, खौल बींडणू, फैमला, पतगेणू रिठौलु, उलार, पलेख, सेली, संच रुंगड़णु, फौटि, डबखणू, भिटि, सुर्मणा, अनासुर्त कुतगौणु, कुतगलि, छोपणू, सौंली, गगराणी, झलकामुंडी, सौंदिष्ट, अंदूवार दंदोल, कठर, चिल्सपिल्स, ज्यूंदाल, दन्कणु, छौंपणु, दिप्प, अग्वाल, ठसगणू, थोरो, जांठो, टोटगो, लूछणू, देसपल्ट, खैरी, बिन्द, फंड, फुंड, गाणी, विरड़णू, विजोक, अन्द्रताल, कत्वली, सांग, अगल्यार, भेंटुली, वाडुलि, फंचि, लिकौण आदि सैकड़ों ऐसे शब्द हैं जो लोकमानस में हिलोर पैदा करने की भावात्मक क्षमता रखते हैं। ध्वन्यात्मक शब्दों की गढ़वाली में बहुलता है। कवि ने ऐसे शब्दों का सुन्दर प्रयोग किया है। भाषा के प्रयोग की एक विशेषता यह भी है कि उसमें लयात्मकता है और ऐसे छन्दों का प्रयोग हुआ है जो भाषा को प्रवाह देते हैं। कई छन्द व्रजभाषा काव्य में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बपोती की भाँति प्रयुक्त होते रहे हैं। गढ़वाली में उनका प्रयोग कितना सफल रहा है, इसका एक उदाहरण लीजिए।

जालो कख ? हम पाणि का तौलू मि,
माछा को जाल जिवालु बिछौला।
जालो अगास त गीड़ो लगै कि
सड़म् चढ़ि भेलू उदैं लमडौला।
जालो पतालू त मूला को घेंड-सि,
खौणिक खैंचला थच्च चुलौला।
छिर्कलो। छिल्ला का मुट्ठा जगैकि
भिरात पहाड़ु का पेट खुज्यौला।

भाषा और छंद विधान के सौंदर्य के अतिरिक्त प्रतीक और बिम्ब विधान की दृष्टि से भी पुस्तक में कई प्रयोग हुए हैं। कुछ आलंकारिक प्रयोगों की आंचलिक छटा भी गुरुता प्रदान करती है। कुछ प्रयोग देखने लायक हैं :

(१) सगोर की भांडि छई बिचारी,
पर ढन्डकदी छै त पैंदाल पाणी।

(२) गाड, छालौं बीच जनि सभू उठदि दौ जांद समै,
जब अंग्वाल्ठी तुमन मारी छै त मी तैं सुध नि रै।

(३) फिग्वाल-सी फैकों सुद्दि फिरणा।

(४) धार मा घर औंदि बगत,
गैणि-सी टपरालि वा।
बोणु भीजलि चम्म लटुली,
सिंटुलि सी फबतालि वा।

कुल मिलाकर 'भूम्याल' गढ़वाली काव्य साहित्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गढ़वाल के हिन्दी कवि मोलाराम

● अबोध बन्धु बहुगुणा

परिचय

औरंगजेब के बड़े भाई दारा का पुत्र सुलेमान शिकोह (सलेमशाह) अपने बाप की सेना के सहयोग के लिये जब गढ़वाल के राजा पृथिपत शाह (सन्-१६४६-१६६० ई०.) के समय में सन् १६५८ में श्रीनगर गढ़वाल गए तो उसके साथ दिल्ली के दो मुस्सर श्यामदास और हरदास भी गए थे। उन्हीं की चौथी पुस्त में अर्थात् श्यामदास जी के केहरीदास, उनके हीरालाल और हीरालाल के पुत्र मंगतराम के घर में मोलाराम श्रीनगर गढ़वाल में उत्पन्न हुए। मोलाराम ने अपने पिता मंगतराम जी से ये शब्द कहलाए हैं :-

दिल्ली आदि निकास है तौंवर हमारी जात
आये थे गढ़वाल महिं सलेमशाह के सात

रीतिकाल के सुप्रसिद्ध कवि मतिराम (जन्म सन् १६१७ ई.) ने अपना परम मनोहर ग्रन्थ 'रसराज' इन्हीं मंगतराम जी को भेंट किया था जिसके आधार पर कि उन्होंने तथा उनके पुत्र मोलाराम ने अनेक चित्र बनाए थे।

मोलाराम का जन्म श्रीनगर गढ़वाल में सन् १७४३ ई. में हुआ माना जाता है किन्तु उनके पुत्र ज्वालाराम ने जयपुर नरेश सवाई जयसिंह (सन् १६९९-१७४३ई.) के यहां जाने का उल्लेख किया है। इस तथ्य को मध्य नजर रखते हुए प्रो० शम्भुप्रसाद बहुगुणा का मत है कि मोलाराम का समय सन् १७०० ई. से लेकर १८२५ तक मानना चाहिए।

मोलाराम ने बचपन से ही अपनी माता रामोदेवी से रामभक्ति का पाठ पढ़ा था –

रामोदेवी मात प्राथ मोहि योही पढ़ाइयो
तात राम मंगते ले अंक में बिठारी के

अपने उस्ताद रायसिंह से उन्होंने श्रीनगर में चित्रकला और चंडिका की उपासना विधि सीखी। उन्हें उनके उस्ताद ने बतलाया कि चंडी के भजन बिना निस्तार नहीं हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगदम्ब के भजन बिन होवे न कुछ सुधारा
मादर, पदर, बिरादर सब सुबाब का पसारा

अपने कुल की रीति और अपने व्यक्तित्व को मोलाराम स्वयं ही स्पष्ट करते हैं –

साधन को साध कहैं, सन्तन को सन्त कहैं
सिद्धन को सिद्ध कहैं झूठे हम नाहीं हैं
सूरन को सूर कहैं कायर सो दूर रहैं
प्रेमिन के प्यारे हम असूढ़न के नाहीं है
मनमथ कै पंथ चलै सन्तन के सग मिलैं
ज्ञानिन के चेले हम निन्दक के नाहीं हैं
कहै मोलाराम पलक सारी मैं आम रहें
जैसन को तैसे हैं मृतक हम नाहीं हैं।

श्रीनगर में इन्होंने अपनी एक चित्रशाला बनाई थी और उसी में ये कला साधना में रत रहते थे। चित्रकार और कवि के अतिरिक्त वे एक अच्छे दार्शनिक थे तथा राजनीति कला में भी प्रवीण थे।

रचनाएं

मोलाराम हिन्दी, फारसी, और संस्कृत के अच्छे जानकार थे और उनकी रचनाएं इन तीनों ही भाषाओं में उपलब्ध होती हैं तथापि अधिकांश कृतियां हिन्दी में ही हैं और वे चार प्रकार की मिलती हैं -

१. वे कविताएं जो उन्होंने अपने बनाये चित्रों पर लिखी हैं;

२. गढ़वाल राज्य के इतिहास तथा समकालीन परिस्थितियों के बारे में-

जिसमें उनका वह काव्य-ग्रन्थ सबसे प्रमुख है जिसका जिक्र कि विविध लेखकों ने गढ़राज वंश आदि नामों से किया है। उनके नाहण के राजा को भेजे गये पत्र और नेपाल के जनरल भीमसेन को भेजी गई 'श्रीनगर दुर्दशा' नामक रेखताकंद में रची गई लम्बी अर्जी तथा अंग्रेजी राज्य के बारे में लिखे अन्य पद भी इसी श्रेणी में आते हैं।

---

(१) गढ़वाल की दिवंगत विभूतियां-पृष्ठ १११

(२) सुन्दर असुन्दर-पृष्ठ ५६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. आध्यात्मिक-श्री बुद्धिवल्लभ थपलियाल इस बारे में लिखते हैं कि इस प्रकार के उनके सात हस्तलिखित काव्य ग्रन्थ अब तक प्राप्त हो चुके हैं। इनमें सबसे बड़ा ग्रन्थ 'मन्मथ सागर' है। इसकी पृष्ठ संख्या २०० से अधिक है। अन्त के कुछ पृष्ठ फट गए हैं। शेष पुस्तकों के नाम मालूम नहीं किए जा सके क्योंकि सबके आदि और अन्त के पृष्ठ फटे हुए हैं और पृष्ठों के शीर्षभागमें पुस्तक का नाम नहीं दिया हुआ है।

४. अनूदित-इस श्रेणी में उनके द्वारा किया गया अभिज्ञान शाकुन्तलम् का हिन्दी अनुवाद आता है।

५. ऋतु-वर्णन, आदि

प्रो० शम्भुप्रसाद बहुगुणा उनकी रचनाओं की संख्या पच्चीस तक बतलाते हैं किन्तु अभी तक पूरी रचनाएं प्राप्त नहीं हो सकी हैं।

तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियां

मोलाराम गढ़वाल के चार महाराजाओं अर्थात प्रदीपशाह, ललितशाह, जयकृतशाह और प्रद्युम्नशाह के शासन-कालों (चारों का शासन काल १७१७ से लेकर १८०४ तक) में कार्य करते रहे और इन सभी राजाओं ने उन्हें यथेष्ट प्रोत्साहन व निश्चित धनराशि आदि देकर उन्हें आर्थिक चिंताओं से मुक्त रखा।

गढ़वाल ने विषम परिस्थितियों के जो बड़े-बड़े झटके खाये हैं उनमें से सन् १७९५ का 'बावनी' (सम्वत् १८५२) नाम से विख्यात भीषण अन्नकाल मोलाराम के जमाने में पड़ा। उन्होंने सन् १८०३ (सम्वत् १८६०) के भाद्रपद का लगातार सात दिन सात रात तक का वह भू-कम्प और मूसलाधार वर्षा भी देखी थी जिसमें गढ़वाल की सात प्रतिशत जनता मरी थी :

साठ साल भू-कम्पहि भयो
शहर बजार महल सब ढयो
भार पाप को पड्यो महाई
परजा जीवन ब्रह्म हत्याई

उन्होंने गृह-युद्धों में फसे महाराज प्रद्युम्नशाह को गोरखों से हार खाकर वीर गति को प्राप्त होते देखा और फलस्वरूप गढ़वाल पर सन् १८०४ में गोरखों का राज्य हो गया इसके बाद सन् १८०५ में वहां अंग्रेजों का राज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गया। गढ़वाल दो भागों में विभक्त हो गया, एक टिहरी राज्य और दूसरा भाग अंग्रेजी सल्तनत में मिला।

सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में गोरखा आक्रमण से पूर्व गढ़वाल की राजधानी श्रीनगर का मोलाराम के पूर्वजों ने "गुलजार" देखा था। मोलाराम के शब्दों में उस समय गढ़वाल में शेर बकरी एक घाट पानी पीते थे :–

करते थे रोज मर्रे सब लोग रोजगार,
साहू रिणी थे राजी चलता था सब बिहार।

किन्तु गोरखों का अधिपत्य होने पर गढ़वाल की हालत बिगड़ गई, उसे बुरे दिन देखने पड़े। नेपाल के जनरल भीमसैन के नाम (१८०५ और १८१५ के बीच) मोलाराम द्वारा लिखी अर्जी के निम्नलिखित शब्दों में यह बात स्पष्ट होती है :

उजड़ पड़ा है जब सौं नहि सहर अमाली,
हाटे पचास साठ बसे और सबै खाली।
किरसान के न बीज बयल पास रही कौड़ी,
भाजे सभी मधैस को रैय्यत भई कनौनी।

रैय्यत के घर न पैसा कंगाल सब भये,
तांबा रहा न काँस माटी के चढ गए।
टुकड़े का पड़ा सांसा मघेश बढ़ गए,
कपड़ा रहा न तन में भंगेले बि सड़ गये।

मोलाराम एक ऊंची श्रेणीं के विद्वान् और राजनीतिज्ञ के रूप में इन राज्य शक्तियों को सन्मार्ग बतलाते रहे, किन्तु उन्होंने इनकी सलाह पर ध्यान नहीं दिया––

समझे जो समझाया नाहीं,
पाछे पछतावे मन माहीं।
हंसे लोक सब हांसी होवे,
बिनसै काज राज सब रोवे।
प्रदीपशाह जू ने नहिं मानि,
लग्यो रोग तन महिं पैछानी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ललितशाह लालची भये,
सिगरो गढ़ लुंठन करि गये ।
पड़ी न पूरी फौज रखाई,
चढ़ी जिधर कों भजि के आई ।
ताके क्लेश प्राण धन गयो,
सुजस जग में नहिं भयो ।
संतति को वह पापँ लाग्यो,
जैक्रतशाह जो गढ़ सो भाग्यो ।
राज खोय प्रद्युम्नहि लीन्यो,
ताके पाप पराक्रम कीन्यो ।

इसी प्रकार जब गोरखों ने गढ़वाल को सर कर लिया और उनके आतंक के सामने उनके विरुद्ध साधारण-सी बात कहना भी जान पर खेलने के बराबर खतरनाक था, मोलाराम ने गोरखा–सरदार से स्पष्ट रूप में ऐसे शब्द कहे—

प्रद्युम्न प्राक्रम दुहूं लड़ाये,
तिन पैं काजी तुमहू आये ।
तुम हूं बूझी मसलत हमकों,
जथा बुद्धि दीनी हम तुमकों ।
हमरे मित्र फिरंगी नाहीं,
हमरो बैर न तुम्हरे माहीं ।
हमरो सिंह तहां न पठायो,
हमनो तुमकों नाहिं बुलायो ।

उस काल की समाज की प्रमुख शक्तियों की भी मोलाराम ने लम्बे हाथों खबर ली है :

ऐसे खसिया दुज हैं गढ़ के,
जानत हैं घर ही में लड़के ।
पर काज बिगाड़त है अपनो,
सिर पाप चढ़ावत हैं अड़ि कै ।
यहि तें यो गढ़वाल गयो,
कटि आपस मांहि मरें लड़ि कै ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग्रेजों के गुण दोषों का वर्णन भी उन्होंने बहुत ही खुले रूप में किया है:

धसा जब सौं हिन्दोस्तां में फिरंगी सैयर करता है
जमी जागीर रौंजीना सभी का फेंर करता है,

× × × ×

कमीना पास रखता है षिरद मन्दान का दुश्मन
मायल है वाजनी ऊपर, चु चीस्में सेर करता है

रहैं अलमस्त आला मैं शराबी औ कबार्बा है
षलक मैं आप मोलाराम शायर बैहर करता है

अंग्रेज मुल्क की तसवीर को कैसे बदल रहे हैं और उसके भीतर उनकी नीयत क्या है उसका भी संकेत मोलाराम करते हैं:

हिकमत सभी हि जाने जंजीर तो फंसाना
लड़ते हैं जहां जांय के लेते हैं खजाना

छुटते हैं बम्ब गोला, लेते हैं किला छीन
देते हैं उसे ढाय के चिनते हैं जो नवीन

× × × ×

मुसकिल पड़ी सभी कौं कुछ जात ना कही
गुलाम को सलाम मोलाराम हो रही

× × × ×

आलम के न्याव नहीं, नगरी में भाव नहीं
रैय्यत कौं था व नहीं पाप भकाभोर है

घर-घर में माच्यो सोर, ठेर-ठेर कागा रोर
औषद नहीं करत कोय रोग यह कुठोर है

राष्ट्रीय भावना

परतन्त्रता के बन्धन में जकड़ी भारत भूमि को स्वतन्त्र करने के लिए भारतेन्दु के "आओ सब मिलिके रोवै भाई" से भी बहुत पहले उन्नसवीं सदी के प्रथम चरण में मोलाराम ने राष्ट्रीय चेतना की ज्योति प्रज्ज्वलित की। उन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों को ललकारा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्द में न रह्यो कोय, हिन्दू मुसलमान दोय,
दीन्यो है तषत खोय कम्पनी बुलाई है।
आई है ढापू, ढाप लीनी है वसुधा माप,
येक चडसा भरि मांगि, सारी धरती दबाई है।
बिरता जगीर सब तगीर भई लोगन की,
कहत मोलाराम फूट घर–घर में फैलाई है।
येक नहीं होतें मिलि रोग नहीं खोते,
पग पग में गोते पाहिं अकल की कोताई है।

प्रेम और शृंगार

रीतिकाल के सौंदर्योपासना के युग में अन्य कवियों की तरह ही मोलाराम के काव्य विषय भी प्रेम, शृंगार, राज प्रशस्ति, नीति और रीतिकालीन पद्धति की शक्ति, आदि रहे हैं। उनमें भी भाषा की चमत्कार प्रियता अलंकारों का मोह आदि उसी परिपाटी का है। मोलाराम ने भावना की सुकुमारता पर भले ही कहीं कहीं ध्यान दिया हो किन्तु अनुभूति की सत्यता एवं कल्पना की मौलिकता पर उतना ध्यान नहीं दिया जितना कि उक्ति की वक्र व्यंजना की ओर दिया। काव्य की आत्मा रस से हटकर कवि की दृष्टि कला की ओर गई है। चित्रकार कवि मोलाराम के मोर प्रिया, मस्तानी, वासक शैय्या नायिका, कृष्ण का राधा से मिलन, अभिसारिका नायिका, उत्कठिता नायिका शीर्षक, जैसे अनेक चित्रों पर लिखी कविताओं मे नायिका भेद के उत्तम साहित्यिक शब्दचित्रों के नमूने प्राप्त होते हैं। यथा :

उत्कंठा ताको कहैं सोधे अपनो प्रान,
किह कारन आये नहीं प्रिय संकेत स्थान।
कै धौं मम प्रीत प्रतीत लहै,
कै धौं कछु कहुं सौं क्रोध भरे।
कै धौं व्रत वासर आजि भयो,
कैं धौं अपने गृह काज करैं।
घोर घनघोर चहुं ओर नीर घोर शब्द भारी,
भय–कारी निज देह ना दिखात है।
मूसल जलधार यहां परत है फुवार,
उरु मिली झनकार अत दामिनि जंमात है।
लिपट्यो पग नाग पत फटात है कंटक में,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुभ्रत नहि तोहि, मूम भूषण गिरात है।
कहत मोलाराम खड़ी भूतन की बैन,
अरी जोगन के भोगन तू निसंख चली जत है।

* * * * *

मस्तानी चाल मस्त शराबी बैठी अपने खाने में,
सुने राग भुकि भांकि रही सखि प्याला दे दस्ताने में।
पिवत भर भर फिर फिर मांगत है तरातर दाने में,
कवि पिवत मोलाराम मुसव्वर खैंची तसवीर रिभाने में।

स्पष्ट है कि मोलाराम की कविता और चित्रकला का चोली दामन का साथ रहा है। मनोरंजन के साधनों की अप्राप्यता में उस काल के पर्वतीय राजाओं की प्रेमवासना की तृप्ति के लिए पहाड़ी कलाकारों ने कोकशास्त्रीय ढंग के अनेक गुप्त चित्र बनाए। यद्यपि मोलाराम के ऐसे किसी चित्र का अब तक उल्लेख नहीं मिलता, फिर भी यह सत्य है कि राधाकृष्ण को केवल साधारण विलासी नायक नायिका के रूप में मानने वाले उस युग में मोलाराम ने भी उनको आलम्बन मानकर उत्कट शृंगार भावना की अभिव्यंजना की है।

प्रकृति चित्रण

अपने चित्रों पर लिखी कविताओं में ही नहीं अन्यत्र भी मोलाराम ने ऋतुओं और प्रकृति के उद्दात रूप को सजीव ढंग पर अंकित किया है। बारहमासा के रूप में लिखे "गोपी विरह वर्णन" में और अन्य पदों में प्रकृति के साथ मानव-हृदय का तादात्म्य स्थापित करने में वे सफल हुए हैं:

गिरि के भये भरना मनो,
नैना सभी के रोवते ।
गोपन हि सूनी सब भई,
नन्दलाल के मन मोहते ।

भक्ति भाव

जीवन के अन्तिम दिनों में मोलाराम को आर्थिक निश्चिन्तता न रही। इनके गढ़वाल नरेशों द्वारा दिए आर्थिक अनुदान गोरखा गवर्नर ने बंद कर दिए। अस्तु अपनी पहले की कमाई और उपलब्ध साधनों पर ही इन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीनगर में ही जीवन के अन्तिम दिन बिताने पड़े। वृद्धावस्था और आर्थिक चिन्ता ने इनमें स्वभावतः विरक्ति और आध्यात्म भावना को बल किया और इन्होंने उस काल में आध्यात्म और मनस्तत्व संबंधी काव्य रचे। उनमें से "मन्मथ सागर" सबसे बड़ा और प्रमुख ग्रन्थ है और अन्य छः अनाम हैं। ये सभी ग्रन्थ मोलाराम की व्यक्तिगत आध्यात्मिक अनुभूतियों के उद्गार हैं।

मोलाराम ने इस क्षेत्र में "मन्मथ पंथ" नामक एक नये पंथ की सृष्टि की और उसी के प्रवर्तन और प्रतिपादन हेतु उक्त सभी ग्रंथो की रचना की। श्री बुद्धिवल्लभ थपलियाल के शब्दों में मौलाराम ने अपने (इन) सभी ग्रंथों में अपने को संत और साधु लिखा है। उन पर संत मत, सिद्धों और नाथों का बहुत प्रभाव पड़ा है। स्थान स्थान पर नौ नाथ और चौरासी सिद्धों का जिक्र आया है। मोलाराम के "मन्मथ–मत" या मन्मथ पंथ की अधिष्ठात्री देवी जगदम्बा है। प्रसन्न रूप में उन पर शक्ति मत का भी प्रभाव पड़ा है।"

स्थान–स्थान पर कवि ने अपनी निष्पृहता और निर्भीकता का परिचय दिया है। अपनी कला और अपनी अधिष्ठात्री देवी जगदम्बा के अतिरिक्त उन्हें किसी की परवाह नहीं है। जगदम्बा स्तवन में उन्होने स्थान–स्थान पर विनय और प्रणति के करुण उद्गार प्रकट किए हैं।[1]

डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के शब्दो में मोलाराम का यह मन्मथ पथ मनस्तत्व और दर्शन के उच्च सिद्धान्तों पर टिका हुआ एक शुद्ध साधना-माग है। इसमें प्राचीन परम्परा से आती हुई उन बातों का मोलाराम ने सिद्धान्त रूप में सम्वत् १८५० के लगभग उल्लेख किया था जिनको मनस्तत्व के क्षेत्र में बड़े-बड़े विद्वान समझ रहे हैं कि हम ही पहले-पहल आविष्कार कर रहे हैं।[2]

स्वयं मोलाराम ने भी अपने इस मन्मथ पंथ के बारे में लिखा है :–

मन्मथ को पंथ ऐसो इमृत को सार जैसो,
जानत है सोई सत ब्रह्म को विलासा है।

---

(१) गढ़वाल की दिवगत विभूतियां (पृष्ठ १११–११२)

(२) योग प्रवाह–डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्तक काव्य

अपने आश्रयदाता राजाओं को प्रसन्न करने के लिए उनकी रुचि के अनुसार मोलाराम ने संभवत. किसी भी ऐसे पद की रचना नहीं की जिसमें कि उनके चापलूसी व्यक्तित्व का परिचय मिलता हो। मोलाराम उस काल के एक सशक्त व्यक्ति थे। स्वयं राजा के भाई प्रतीतमशाह टिहरी से तीस मील चलकर श्रीनगर में उनकी चित्रशाला में चित्रकला सीखने आते थे। तत्कालीन राजा स्वयं उनके पास आकर निवेदन करते थे और उन्होंने अपनी काव्य कला के द्वारा उनकी पूरी पूरी सहायता की। महाराज जयकृतशाह (१७८०-१७८५) के देहरादून के फौजदार घमंडसिंह द्वारा उनके विरुद्ध विद्रोह किए जाने पर महाराज के निवेदन पर मोलाराम ने नहाण के राजा जगप्रकाश से सहायता मांगने के लिए "गज ग्राह" चित्र बनाकर उसमें निम्नलिखित कविता लिखी :

जगप्रकाश तुम भानु सम,
हमहुं तम कियो ग्रास।
ग्राह गह्यो ज्यों गजहिं को,
घमंडसिंह दियो त्रास।
सूर पै सूर सामन्त पै सामन्त,
भीड़ में वीर पै वीर पधारे।
कीच के बीच में हाथी फंसे,
ताको हाथ दे हाथी निकारे।
इहै छन्द हम दियो बनाई,
चित्र सहित लिखि दियो पठाई।

मोलाराम की रचनाओं ने गढ़वाल के कला साहित्य को अमर किया है। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के गढ़वाल पर जो राजनीतिक अन्धकार छाया हुआ था उसके बावजूद उन्होंने कला साहित्य और ज्ञान की मशाल को प्रज्वलित रखा।[1] इसी कारण अपने समय में उनका संबंध कान्तिपुर (नेपाल), अल्मोड़ा, दिल्ली, जयपुर और लखनऊ से रहा है।

(१) भक्तदर्शन—गढ़वाल की दिवंगत विभूतियां (पृ० ८५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषताएं और मूल्यांकन

१. हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के प्रथम चरण (भारतेन्दु युग) में भी विभिन्न साहात्यिक रूढ़ियों से ग्रस्त ब्रजभाषा काव्य की भाषा बनी रही। इस काल की पुरानी धारा के कवियों में भारतेन्दु से पूर्व ब्रजभाषा के कवियों में चित्रकार-कवि मोलाराम का नाम सर्व प्रथम है। उन्होंने 'गढ़-राजवंश' की रचना की।

२. मोलाराम को यह बात बार-बार अखरती रही कि जहां वे रह रहे थे वहाँ उस काल सौंदर्योपासना का युग नहीं था और ग्राम लोगों में उनकी गुण-ग्राहकता न थी। फिर भी, उन्होंने प्रेम और शृंगार, राज-प्रशस्ति, नीति और रीतिकालीन पद्धति की भक्ति आदि अपनी कविता के विषय बनाए और उसमें भाषा की चमत्कार-प्रियता, अलंकारों का मोह आदि दिखाकर, रीतिकालीन परिपाटी का अनुसरण किया।

३. शिव, राम, दुर्गा आदि की स्तुतियों में प्रदर्शित भक्ति के अतिरिक्त मोलाराम ने मन्मथ पंथ चलाया जिसमें उनकी व्यक्तिगत आध्यात्मिक अनुभूतियों के उद्गार हैं।

४. संयोग में प्रकृति का खिला हुआ उन्मादकारी रूप और वियोग में उसका त्रासदायक रूप दिखाकर मोलाराम ने प्रकृति का उद्दीपन रूप में जो चित्रण किया वह नायक—नायिका को मानसिक दशा के अनुकूल किया है।

५. भावना की सुकुमारता, अनुभूति की सत्यता एवं कल्पना की मौलिकता पर मोलाराम ने उतना ध्यान नहीं दिया जितना कि उक्ति की वक्रता पर दिया। काव्य की आत्मा रस से हटकर कवि की दृष्टि कला की ओर गई है।

६. आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने हेतु उनकी रुचि के अनुसार कुछ एक ही पदों में काव्य रचना करके वे मनोरंजन या उद्देश्य की पूर्ति करने वाले अद्वितीय मेधावी व्यक्ति थे।

७. रजवाड़ों के परस्पर विद्रोहों का वर्णन ही नहीं पुरिया नैथाणी जैसे वीरों की प्रशस्ति भी मोलाराम ने गाई है।

८. उनके कवि ने मानव की प्रेरणा, उमंग, भावना और सौंदर्य-प्रियता को शब्दो में अभिव्यक्ति दी और उन्हीं भावों को उनके चित्रकार ने चित्रों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंकित किया। इस प्रकार मोलाराम की कविता और चित्रकला का चोलीदामन का साथ है।

९. मोलाराम गिने-चुने निर्भीक और निष्पक्ष देश-भक्तों में से एक थे और अपने समय में वे वहां के राजाओं को बराबर चेतावनी और सलाह देते रहे हैं। वे समाज के सच्चे हितैषी थे।

१०. देश भर में फैल रहे फिरंगी शासन का भारतेन्दु युग आरम्भ होने से पहले अपनी लेखनी से घोर विरोध करने वाले सर्वप्रथम हिन्दी कवि के रुप में भी मोलाराम के रुप में एक महान शक्ति इस देश में अवतरित हुई थी।

कामिट पर्वत शिखर पर

कु० चन्द्रप्रभा ऐतवाल

आज सम्पूर्ण विश्व का मानचित्र जब बदलता नजर आ रहा है तब मुझे अपने बचपन के वे दिन याद आते हैं जब प्रातः की स्वर्णिम रश्मियां गगन-चुम्बी पर्वत शृंखलाओं का शृंगार करती थी और मेरे मन में भाव उठता था कि क्या ही अच्छा होता कि मैं उस चोटी पर पहुंचती और सूर्य भगवान के घर को देख लेती। अबोध अज्ञानी, मेरे शिशुत्त के विचार कभी-कभी अगम्य चोटी में मुझे चढ़ा देते थे। मैं विचारों में ही फिसलकर कहीं दूर जब गिर जाती थी तो अचानक लगता था 'यह सज दिवास्वप्न है।' पुस्तक पढ़ने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए सामने रहती थी कि अनजाने विचारों का कुहराम मच जाता था और सफल पर्वतारोही की तरह अभियान में निकल जाती थी। मां की आवाज से विचारों का क्रम टूटता था या कभी-कभी छोटे-बड़े भाई-बहिन विघ्न बनकर आते थे तो लगता था 'ये मेरे पहले नम्बर के दुश्मन हैं, मेरा स्वर्ग छीन लिया।' सन् १९७७ को कामिट की चोटी में विजय प्राप्त करने पर मुझे लगता था 'कहीं मां आवाज देकर' मेरे इस यतार्थ को दिवास्वप्न न बना दे। भाई-बहिन तो नहीं जो मुझे झट से उतार देंगे,।

पहाड़, पर्वत एवं चोटियाँ मेरे जीवन के एक अंग हैं, इन्होंने मेरे मन का, शरीर का निर्माण किया अतः उनसे प्यार होना स्वाभाविक ही है। बचपन के कौतुक को पूर्ति करने का विचार जीवन के विद्यालय में कभी सो जाता कभी अत्यधिक तीव्र बनकर मन को विचलित कर देता। संयोग से श्री कर्नल एल०पी० शर्मा ने मुझे प्रारम्भिक प्रशिक्षण के लिए सन्१९७२ में प्रोत्साहित किया। जैसे योगियों को अपने योग से, भोगी को भोग से, ज्ञानी को ज्ञान से जैसे लगाव हो जाता है उसे दूसरा नहीं दिखाई देता वैसे ही मुझे पर्वतारोहण का ही कार्यक्रम सोते,जागते, पढ़ते आकृष्ठ करने लगा। सन् १९७५ में नेहरु पर्वतारोहण संस्थान, उत्तरकाशी में उच्चतम प्रशिक्षण प्राप्त किया। वेबी शिवलिंग १६००० फीट, बन्दरपूंछ जिसकी ऊंचाई २०८२० फीट, केदारडोम जिसकी ऊंचाई २२४१० फीट, आपगामी जिसकी ऊंचाई २४१३० फीट है, शिखरों पर विजय प्राप्त कर छोटी-छोटी सफलतायें प्राप्त की।

योगी जैसे समाधि स्थिति में ब्रह्म का साक्षात्कार करके आनन्द से संसार में खो जाता है पर्वतारोही प्रत्यक्ष नंगी आँखों से पर्वतो के अलौकिक सौंदर्य का अवलोकन कर ब्रह्म का साक्षात्कार करके आनन्द से अभिभूत हो जाता है उससे पूछो कैसे लगा? क्या था वह? यह नहीं बोल सकता। जो अनुभव होता है वह तो गूंगे का स्वाद है। सन् १९७६ में इण्डो जापान की महिलाओं का अभियान दल कामिट की चोटी पर विजय के लिए चला था। मैं भी एक सदस्य थी किन्तु निरन्तर मौसम खराब होने के कारण आगामी शिखर जिसकी ऊंचाई २४१३० फीट हैं पर चढ़ने से सफल न हो सके, तत्पश्चात् हमें वापस लौटना पड़ा। भारतीय अभी इस तकनीकी में पीछे हैं। जापान के आक्सीजन सिलिण्डर पोर्टरों की सहायता से अपना सामान स्वयं ढोना चाहे तो ढो सकता है। भारतीय सामान भारी होता है जिसे ऊंचाई में ले जाना कष्ट प्रद होता हैं। यह अनुभव विशेष कर इस अभियान में मुझे हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्वतों की शृंखलाओं से सुशोभित भारत का उत्तरांचल साहसिकता एवं वीरता के लिए आर्यावृत में शुयस प्राप्त है। भारत में इसका श्रीगणेश भी १९५३ में श्री तेनजिंग नोरमे शेरपा के नेतृत्व में हुआ किन्तु कामिट अभियान में उत्तर भारत की मैं एक मात्र पर्वतारोहीं थी। इससे मुझे लगा कि इस ओर उत्तरी भारत का पर्वतीय जनमानस जागरूक नहीं है जबकि वह संसार में एक उदाहरण बनने का श्रेय प्राप्त कर सकता है।

हाँ, तो इस सफल अभियान में ६ सदस्य थे। तीन महिलायें बम्बई की रहने वाली थी। उनमें एक डाक्टर, एक टेक्सटाइल में सेल्स गर्ल थी, दो देहली की अध्यापिकायें, एक छात्रा एव गृहिणी थी। उत्तरी भारत की राजकीय इण्टर कालेज उत्तरकाशी की अभियान व्यवसाय वाली मैं एकाकी महिला थी। यह अभियान इण्डियन माउण्टेनियरिंग फाउन्डेसन के नेतृत्व में दिनाँक १५ मई १९७७ को दिल्ली से सम्पूर्ण तैयारी करने के पश्चात् चला। ऋषिकेश, रुद्रप्रयाग होते हुए जोशिमट पहुंचे। रात्री विश्राम पश्चात् दिननाथ का तिमिरात हारक स्वरूप हुआ। हमने जोशीमठ से आगे दो दिन पैदल यात्रा के पश्चात् हल्के बादलों से अभिमण्डित देखा, चन्द्रमा को देखकर चकोर, बादलों को देखकर मयूर की भाँति मेरे साथी सदस्यों का मन आनन्द की अनुभूति में निमग्न हो गया। मैंने पिछले वर्ष भी इस इष्ट देव के दर्शन किये थे अतः मन ही मन में भगवान् से प्रार्थना करने लगी कि इस बार मौसम अच्छा रखना।

हमारा अभियान अब अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ने लगा। बेस कैंप में हमने आगे के कैम्पस के लिए सामान अलग किया। फिर हम प्रथम पड़ाव की ओर अग्रसर हुए। प्रथम पड़ाव में प्राकृतिक सौंदर्य का अवलोकन कर अपनी अतृप्त सौंदर्यानुरागी नेत्रों की पिपासा संतुष्ट कर हमने आनन्द का अनुभव किया। पोर्टर प्रथम से द्वितीय पड़ाव के लिए सामान ले गये। पर्वतारोहण पक्षी के रैन बसेरे की तरह हैं। रोज ढूंढो, रोज बदलो, जैसे कुआं खोदो रोज पानी पियो, हमेशा पहले दिन पड़ाव में विश्राम करो फिर पोर्टर के साथ अगले पड़ाव के लिए सामान ले जाते हैं। कभी-कभी पहले दिन का खोजा हुआ पड़ाव बिन्दु खो जाता है तो फिर क्या खोजो ?

दूसरा पड़ाव कुछ कठिनाईयों का गुलदस्ता लिए था। संकरी घाटी में स्थित था और आदमी तो आदमी अंधड़ में बर्फ के चट्टान भी उड़ते हुये से दिखाई दे रहे थे। १९वीं सदी से पूर्व का सैनिक अपने शत्रु को सामने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखकर बन्दूक, तोप, तीर और कमान से परास्त करता था । २१वीं सदी में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष शत्रु का बोध रहता है किन्तु पर्वतारोही का शत्रु खराब मौसम और आंधी होती है । कब जीवन लीला से खेल जाय कुछ पता नहीं । कोई भी वचाव साधन सफल नहीं होते । सायं-सायं की अविरल आवाज में १५०० कि० मी० की तेज रफ्तार की आंधीं कब उड़कर ले चलेगी, कब आक्सिजन लेने की जरूरत महसूस हो, कुछ पता नहीं । कोई भी बचाव साधन सफल नहीं होते । अनजाने में कब वर्फ की चट्टान हमारे पडाव को अपने में ले समा जाय कुछ भी तो पता नहीं । ऐसा ही था हमारा दूसरा पड़ाव । सम्पूर्ण रात्री भगवान के स्मरण में बीतती । गृहस्थ के निर्माण में एवं योग ब्रह्म की प्राप्ती में ऐसी तपस्या नहीं करनी पड़ती होगी जैसी पर्वतारोहण में । किन्तु समय बीतते ही फिर उसी जोखिम के साथ समय की याद कर उसके लिए मन तड़पने लगता था ।

तीसरा पड़ाव स्वर्गीय सुषमा से अभिमन्डित था । वहां से देववन एक, देववन दो, माना पीक, कामिट पीक तथा अधिगामी पीक की पर्वत श्रृंखलायें दृष्टिगोचर होती थी । इन पर्वतों से छिपा हुआ हमारा तीसरा पड़ाव चाहरदीवारी से घिरे दुर्गम दुर्ग से किसी भी दृष्ठि से कम न था । हिममंडित पर्वतों की तलहटो में कहीं कहीं हिम तरल रूप में झील के नीले पानी से सुशोभित था । ऐसा लगता था कि मानो सम्पूर्ण स्वर्ग इसी में निहित हैं ।

अगले दिन चौथे पड़ाव की खोज जारी हुई । पर्वतारोहण में भविष्य के पड़ाव का अन्वेषण पहले दिन होता है और यह कार्य भी दिन में १२ बजे से पूर्व ही हो जाना चाहिए । वाद में अधिकतर मौसम खराब हो जाता है और यह कार्य १२ बजे तक नये पड़ाव की खोज कर उससे पहले वाले पड़ाव में आजाना होता है क्योंकि वर्फ के पिघल जाने से धंसने का डर रहता है । नये पड़ाव की खोज में रास्ता बनाने के लिये जब सीधा कठोर पहाड़ सामने आता है और विकल्प-कुछ नहीं रहता तो आशा एवं निराशा का मानसिक द्वन्द मनोबल को ललकारने लगता हैं । खूंटे गाडो तो किसी तरह गड़ते नहीं, कील चुभती नहीं । रोप में फिसल ही नहीं हो पाती । दूसरा बन्द निहारों । नायक को सभी अनुगामी विरुद्ध अनुशासित सन्यासी के शिव की तरह उसके अनुसरण करते है । एक दूसरे से बन्धे रास्ता बनाते बिगाड़ते आगे बढ़ते हैं । चौथा पड़ाब निश्चित किया । तीसरे में वापस आकर भोजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर आराम किया, कपड़े सुखाये। पोर्टरों, व शेरपाओं के सहयोग से सभी सामान चौथे पड़ाव में अगले दिन पहुंच गया।

चौथे से पांचवे पड़ाव के बीच टेकनिकल कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, कहीं पर एक दम सीधी चट्टान तथा कहीं पर वर्फीली शिला रास्ते में रोक लगाये। अतः हमें १०० मीटर तक चट्टान पर तथा १०० मीटर तक वर्फ की शीला में रस्सी को फिट करना पड़ा।

पांचवे पड़ाव में झन्झावात एवं वर्फीली आंधी बड़ी तीव्र गती से प्रवाहित हो रही थी कि हमें यह आभास होने लगा कि कहीं तम्बू हमारे सहित उड न जाय। विकट परिस्थिति ने हमारे मनोंबल को दृढ़ता प्रदान की।

पांचवें पड़ाव से हमने छटे पड़ाव की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में वर्फ की दरारें स्थान स्थान पर उपस्थित होकर हमको भयभीत करने लगी। तेज आंधी अपनी प्रबल शक्ति द्वारा हमें बैठा देती थी। हमने सतत अभ्यास एवं भय को तिलांजलीं दी। ईश्वर का स्मरण करते हुये अपने अन्तिम पड़ाव की ओर बढ़ चले।

भारतीय एव विदेशी पर्वतारोही इस पर्वत शिखर को अपने साहसिक कदमों से विजित कर ही चुके थे। हां रमणी, अबला और वह भी भारतीय इस पर पहली बार अपनी शक्ति परिक्षा कर रही थी। हमारे साथ दो आई. टी. बी. पी. के सुबेदार श्री भगतसिंह व हवालदार श्री प्रहलादसिंह भी थे, वड़े साहसी। पोर्टरों और शेरपाओं की दुनियां, पर्वतों की दुनियां। उन्होंने तो इसका अनेक बार अतिक्रमण कर ही लिया था। इस बार कुछ ऐसी घटना घटी कि हमारे अधिकतर शेपवा भी बिमार हो गये जिससे सत्तु इस कैंप में पूर्ण आहार बना। पर्वतारोहण के समय मैं हमेशा अपना सम्पूर्ण सामान अपने आप ढोया करती हूं चाहे कितनी भी ऊँचाई पर क्यों न होऊँ। प्रतिदिन नैमितिक क्रियायें पूर्ववत करती हूं। आक्सिजन की आवश्यकता भी इस यात्रा में मुझे अभी तक नहीं पड़ी है।

छटे पड़ाव से लक्ष्य तक पहुंचने में हमें नरम वर्फ का सामना करना पड़ा अतः एक कदम आगे बढ़ने के लिए हमें १०य१२ बार तक उसी वर्फ को याद करके तब कदम बढा पाते थे। इस प्रकार तीन चार बार ही रास्ता बना पायी। इस रास्ते को बनाने में अधिकतर शेरपा, लख्या छिरिन व सुवेदार का हाथ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस कारण अगले प्रातः हम बहुत जल्दी लक्ष्य की ओर रवाना हुए क्योंकि हमने सफलता हासिल कर ली। मन में उत्साह था किन्तु किसे बतायें। ऐसा प्रतीत होता था कि अरबों का खजाना है। पर किसे लुटायें। मात्र अनुभव स्वानुभूति का विषय बन रहा था। प्रातः हुई, कदम बढ़े, एक सहयोगी हिम्मत हारने लगी। साहस करके उसे खीचतें हुये ३-३० बजे अपराह्न हम अपने लक्ष्य पर पहुंचे। उस समय हम थे श्री सुबेदार भागसिंह, श्री छिरिन लक्ष्या, कुमारी त्रिती बबी, कुमारी भारती बर्जी, कुमारी चन्द्रप्रभा एतवाल।

पाचों आनन्द से अभिभूत थे। जी चाह रहा था, कोई संसार को बतलाये कि हम कुशल है। हमने अपना प्राणो से प्यारा राष्ट्रीय ध्वज आई. एम. एफ. की आवाज वहां विजय की सूचना के लिये गाढ़ा, अभिवादन किया। श्री सुबेदार भागसिंह ने अपना अभिष्ट सफलता के उपलक्ष्य में पवन शुत हनुमान की मूर्ति, कु० बनर्जी ने हनुमान को पैन्डोल तथा मैंने अपने हाथ की चूढ़ी; बिल व टोपी का चढ़वाया। आहा वह था आनन्द का एक क्षरण जो वर्णनातीत हैं। कहते हैं सभी कि क्या अनुभव हैं ? कह नहीं सकते उस आनन्द ही आनन्द को जो शब्दों से परे हैं।

जोखिम की जिन्दगी के बाद मिलने वाला वह आनन्द सर्वदा स्मरणीय है। छटे पड़ाव पर लौटने का समय हो रहा था क्योंकि पर्वत शिखर पर अधिक समय कोई नहीं रह सकता था। हाथ पैर जम कर ठन्डे न हो जांय, वायु उसे उडा कर इस अन्तहीन विश्व में कहीं न ले चलें। ऊपर चढ़ना जितना कठिन है नीचे उतरना उतना ही दूभर कार्य हैं। एक फिसला तो मन फिसल जायेगा। सारे रास्ते बन्द हो जायेंगे। अतः एक एक कदम थक थक कर रहना होता है। वापस आते समय मौसम खराब होने से चारों ओर का दृश्य कुछ भी दिखाई नहीं दिया और हमारा छटा पड़ाव भी हमें नहीं दिखाई दिया। हम एक दूसरे का नाम लेकर चिल्लाने, सिटी बजाने लगे तो कैम्प से भी उसी प्रकार की आवाज आयी। अतः आवाज के सहरे सभी साथी ७-३० बजे सायं छटे कैम्प में पहुंचे।

दूसरे दिन सभी अन्य लोग वापस चौथे पड़ाव में रहे। मैं अन्य दो साथियों के साथ तीसरे पड़ाव पर लौट आई। मौसम खराब होने के कारण जो जिस पड़ाव में था वहां आराम किया। दूसरे दिन अन्य सदस्य तीसरे कैम्प

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आये। उसके बाद मैं अन्य तीन सथियों के साथ पहिले कैम्प में लौट आई। अन्य सदस्य कैम्प एक में रहे।

इस प्रकार हमारी हिम मणियों की यह स्मरणीय यात्रा पूरे एक माह की रही।

चन्द्रसिंह गढ़वाली

अजयसिंह रावत

"मेरी उम्र पैंसठ साल की है। आपने चौदह रुपये मासिक मुझे पेंशन दी है। क्या मैं यह समझूं कि हमारे गणतन्त्र राज्य ने मेरे लिए उपरोक्त पेंशन ही उचित और काफी समझी....? मैं आपके भेजे हुए पेंशन के पत्र को वापिस करता हूं.... क्षमा।"

यह था सटीक जवाब उत्तर प्रदेश सरकार को एक शौर्यवान सैनिक का, जिसने अपनी किशोरावस्था से अधेड़ावस्था तक की पूरी अवधि मातृभूमि को अर्पित कर दी। जिसकी सम्पूर्ण चेतना केवल भारतवर्ष को फिरंगियों के चंगुल से मुक्त करा पाने के भावभीने स्वप्न को साकार कर पाने के सार्थक प्रयत्नों में समाहित हो गई थी। किसी को क्या खबर है कि जिस जमीन पर आज हमारे आजाद कदम थिरक रहे हैं, उसे हासिल करा पाने में एक सैनिक का पूरा वजूद मिट्टी में मिल गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटी सी एक झोपड़ी में एक परिवार सिमटा, सहमा बैठा था। झोपड़ी के फर्श से आसमान के सितारे साफ दिखलाई दे रहे थे। अगर पानी बरसता तो बेरोकटोक अन्दर ही आता। छोटे छोटे बच्चे रोटी की प्रतीक्षा में आतुरता से मां की ओर टकटकी लगाए देख रहे थे। घर का पिछला एक मात्र बैल मर चुका था। उसकी जगह किसी तरह जिस दूसरे पशु की व्यवस्था हुई थी, वह भी जर्जर हो चला था—घर के मालिक की तरह। जिसका गाण्डीव, कभी केवल प्रत्यंचा की टंकार ध्वनि मात्र से दुश्मनों के दिल में दहशत पैदा कर देता था, आज वह जिन्दगी से परेशां, थकाहारा एक कोने में बैठा अपने सम्पूर्ण अतीत का लेखा जोखा कर रहा था। सामने एक पत्र पड़ा था जिसमें उसकी दिलेरी की कीमत आंकी गई थी। उस पत्र के अनुसार जो कि २५ जुलाई १९५५ को उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से उसे मिला था। राज्यपाल को इसके लिए बड़ी प्रसन्नता थी कि चन्द्रसिंह गढ़वाली को अब चौदह रुपये मासिक पेंशन मिलेगी।

शायद किसी भी देश का इससे बड़ा दुर्भाग्य और नहीं हो सकता। उस समय जब तथाकथित स्वतन्त्रता सेनानियों को सरकार उदारतापूर्वक ताम्रपत्र बांटने में तुली हुई थी—उनकी प्रशस्ति व्याख्या के तौर पर क्या किसी को ख्याल आया था खुदीराम बोस, चन्द्रशेखर आजाद, चाफेकर बन्धुओं का जो अपने भाग्यपत्र में ही बलिदान का दस्तावेज लेकर इस भूपटल पर अवतरित हुए थे। इसी शृंखला की एक और कड़ी हैं वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली, जिसकी जिन्दगी के एक एक कण में अजेय शौर्य की कहानियां खुदी हुई हैं, किन्तु भारतीय स्वतन्त्रता समर में उसका नाम तक नहीं लिया जाता।

इस वीर सिपाही की शौर्य यात्रा प्रारम्भ होती हैं पेशावर से। अप्रैल १९३० में चन्द्रसिंह की बटालियन 'सैकिन्ड रायल गढ़वाल राइफल्स' को पेशावर शहर में तैनात किया गया—कारण, उन दिनों कांग्रेस वहां सक्रिय हो चुकी थी। चन्द्रसिंह को कांग्रेस के नाम से ही प्रेम था। जब किसी के कोट के बटन पर कांग्रेस के झंडे का निशान देखते तो उसका बड़ा आदर करते। स्वयं भी खद्दर की बनियाइन और जांघिया पहनते थे। वह वर्दी के नीचे होती थी, इसलिए किसी अफसर के देख लेने का डर नहीं था। एक दिन उन्हें पता चला कि १२ अप्रैल को पेशावर शहर में कांग्रेस की एक बहुत बड़ी सभा का आयोजन होगा। चन्द्रसिंह सभा के सम्बन्ध मे सुनकर उतावले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो पड़े और निश्चित दिन सभा के स्थान पर पहुंच गए। इस सभा में निर्णय लिया गया "...कि हम विदेशी कपड़ा नहीं पहनेंगे, विदेशी चीजों को इस्तेमाल नहीं करेंगे। शराब और दूसरी नशीली चीजों को हाथ नहीं लगाएंगे। विदेशी माल और शराब बेचने वालों को यह सूचित करते हैं कि अगर वो २२ अप्रैल तक विदेशी माल बेचना बन्द नहीं करेंगे, तो कांग्रेस की ओर से उनकी दूकानों पर धरना दिया जाएगा।"

इस के तुरन्त बाद जब १६ अप्रैल १६३० को गांधी जी की आज्ञा से सारे भारत में नमक कानून तोड़ा जा रहा था, पेशावर कांग्रेस कमेटी ने बिदेशी माल बायकाट और नमक कानून भंग करने के लिए शाही बाग में सभा की। चन्द्रसिंह ने इस सभा का भी जायजा लिया तथा उपरोक्त स्थानों पर जो कुछ हुआ उसका वर्णन कम्पनी में लौटकर चन्द्रसिंह ने अपने साथियों के सामने किया। इस प्रकार चन्द्रसिंह छावनी से शहर में आते-जाते और जनता के भाव मालूम करके छावनी में पहुंचाते। असहयोग आन्दोलन के कारण शहर में जो कुछ हो रहा था, उसकी सूचना वे सिपाहियों को देते तथा उन्हें चैतन्य होने की प्रेरणा देते। उनकी ही प्रेरणा के फलस्वरूप सैंकिड रायल गढ़वाल राइफल्स के ६० सिपाही व छोटे अफसरों ने त्याग पत्र लिख दिए कि हम पेशावर शहर में असहयोग आन्दोलन को दमन करने के बजाय इस्तीफा दाखिल करते हैं। इस्तीफे का पत्र अभी कमांडिग अफसर के पास प्रस्तुत नही हो पाया था। मामला विचाराधीन था।

किन्तु जब २२ अप्रैल १६३० को सैंकिड बटालियन फालिन की गई और उनको छावनी से पेशावर शहर में जाने को कहा गया, तो सिपाही सशस्त्र खड़े रहे, टस से मस नहीं हुए। गढ़वाली अफसर बगलें झांकते रहे। जब बड़े अंग्रेज अफसरों को स्थिति का पता लगा, तब खलबली मची। ब्रिगेडियर पहुंचे सैंकिड रायल गढ़वाल राइफल्स की दो प्लाटूनों के ६० सिपाहियों को लारियों पर बैठाकर-शहर के लिए रवाना होने का हुक्म हुआ।

हवलदार चन्द्रसिंह ने १७ सिपाहियों के इस्तीफे का कागज पेश कर दिया। बाकी सैनिकों के दस्तखत वाला कागज प्रस्तुत नहीं हो पाया।

ब्रिगेडियर समझ गया, गढ़वाली सिपाही अब हमारे लिए नहीं लड़ेंगे। उनको हथियार छोड़ने को कहा गया। उन्होंने पहले इन्कार किया। पिछे विवश होकर क्वार्टर गार्ड में रख दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि ६०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गढ़वालियों पर 'म्यूतिनी' का अभियोग लगाया गया तथा सारी सैकिंड बटालियन काकुल (एबताबाद) में नजर बन्द कर दी गयी। बाद में पेशावर काण्ड के हीरो चन्द्रसिंह गढ़वाली को 'जिन्दगी भर काला पानी, सारी जायदाद जब्त, ओहदेदारी से उतारकर सिपाही दर्जे में रखना, सिपाही से नाम काटकर खारिज कर देना' की सजा सुनवाई गई।

इस तरह पेशावर का विद्रोह, विद्रोहों की एक शृंखला पैदा करता है, जिसका भारत को स्वतन्त्र कराने में भारी हाथ है। सन् १८५७ ई० के बाद वह पहली घटना थी जबकि भारतीय सैनिकों ने अपने देश के विरुद्ध अपनी बन्दूकें इस्तेमाल करने से इन्कार कर दिया। उस वक्त सारा देश अंग्रेजों के खिलाफ था, किन्तु सशस्त्र क्रांति के लिए नहीं। यदि उसकी सम्भावना होती तो इसमें शक नहीं कि एक-एक गढ़वाली सैनिक अपने प्राणों की बाजी लगा देता। पेशावर के इस विद्रोह से प्रेरित होकर नेता जी द्वारा संगठित आजाद हिन्द फौज में सम्मिलित होने में गढ़वाली सबसे पहले रहे। तीन हजार गढ़वाली सैनिकों ने भर्ती होने का निश्चय किया। यह एक साधारण सी बात नहीं कि बीस हजार भारतीय सिपाही जो जापानियों के कैदी बने थे, जिन्होंने भारतवर्ष को स्वतन्त्र करने का बीड़ा उठाया था। आजादी की प्रेरणा जो उस वक्त मिली, उसने द्वितीय महा युद्ध के समाप्त होते ही भारतीय नौसेना में विद्रोह कराकर अंग्रेजों को दिखला दिया, कि अब तुम्हारे प्रशिक्षित भारतीय सैनिक तुम्हारे लिए नहीं बल्कि देश की आजादी के लिए अपने हथियार उठायेंगे।

जिस आजाद हिन्दुस्तान की हम आज सन्तान हैं, उसको हांसिल करवा पाने में परोक्ष रूप से कदाचित सबसे बड़ा हाथ इसी पेशावर कांड का है..... और वीर चन्द्र सिंह गढ़वाली निर्विवाद रूप से इसी पेशावर कांड के प्रेरणा स्त्रोत और जनक थे।

किन्तु भारतीय इतिहास, जो केवल परिभाषाओं तक ही सीमित रह गया है, इतिहास के ठेकेदार जो घटनाओं के क्रमवद्ध संग्रह को ही इतिहास मानते हैं, भूल जाते हैं कि इतिहास हमारे उस मानसिक पटल में जन्म लेता हैं जहां व्यक्तिगत संदर्भ समय चक्र की अवहेलना कर समय बिन्दु में समस्त मानवता का केन्द्रीकरण कर देते हैं,..........शायद इतिहास की उन कड़ियों में नाम अनजाना, अनबुझा, अछूता सा ही रह जाएगा। भारतीय जनता अपने उत्तुंग शिखरों के प्रहरी, उत्तराखण्ड के सूरमाओ से अनविज्ञ रह जाएंगे, उनकी वीरता एवं शौर्य के नगाड़ों से उनकी उदासीनता की नींद टूट नहीं पाएगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत के आधुनिक बराहमिहिर श्री मुकुन्द दैवज्ञ

सत्यप्रसाद बड़थ्वाल

वर्तमान काल में प्राचीन शास्त्र के महान् ज्ञाता एवं अन्वेषक ऋषि बराहमिहिर की समता पाने वाले श्री देवेज्ञ ने वास्तव में ज्योतिष शास्त्र के इतिहास में नया अध्याय जोड़ा है। एक सामान्य परिवार में जन्मे व अभावों में पले व्यक्ति को केवल ज्योतिष शास्त्र में एक लाख से अधिक श्लोक लिखने का गौरव प्राप्त है, जो अपने आप में एक आश्चर्य है। आपने अभी तक ४४ पुस्तकें लिखी हैं। जिनमें से साधनो की कमी के कारण आपने तीन पुस्तकें गोयल एण्ड कम्पनी दरीवाकला दिल्ली को प्रकाशनार्थ विक्रय कर दी हैं। अथक प्रयास करने पर भी आपको अभी तक १२ ग्रन्थों को प्रकाशित करने में सफलता मिली है। शेष २९ ग्रंथ आपकी हस्तलिपी में बन्द कमरे में प्रकाशन की प्रतीक्षा में कैद हैं। आपके साहित्य का मूल्यांकन कर पाना मेरे सामर्थ्य की बात नहीं क्योंकि हीरे की परख जौहरी ही कर सकता है। यहां मैं आपके साहित्य का नाम रूप परिचय दे रहा हूं। जो इस प्रकार है:—

(१) जातक सार वि०स० १९९२, प्रकाशित
(२) मुकुन्द विनोद सारिणि सन् १९२७ ई० अप्रकाशित
(३) आयुर्दाय संग्रह सन् १९३० ई० अप्रकाशित
(४) एकोद्दिष्ट सन् १९३१ ई० अप्रकाशित
(५) मुकुन्द विलास सारिणि सन् १९३० ई० अप्रकाशित
(६) श्राद्ध पद्धति सन् १९३१ ई० अप्रकाशित
(७) मकरन्दवती सन् १९३१ ई० अप्रकाशित
(८) बृहद्होडा चक्रम् सन् १९३२ ई० प्रकाशित
(९) ज्योतिष शास्त्र प्रवेशिका सन् १९३१ ई० अप्रकाशित
(१०) पंचांग मंजूषा सन् १९३२ ई० प्रकाशित
(११) बृहद् ज्योतिष शास्त्र प्रवेशिका सन् १९३२ ई० अप्रकाशित
(१२) अष्ट वर्ग संग्रह सन् १९३३ ई० अप्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१३) पद्धति कल्पवल्ली सन् १९३५ ई०, अप्रकाशित
(१४) ज्योतिषसार संग्रह वि०सं० १९७२, अप्रकाशित
(१५) जातक पारिजातादि संग्रह वि० सं० १९७८, अप्रकाशित
(१६) नष्ट जातक संग्रह वि० सं० १९७४, अप्रकाशित
(१७) दशा मंजरी सन् १९३९ ई०, प्रकाशित
(१८) मुकुन्द पद्धति सन् १९४४ ई०, प्रकाशित
(१९) आर्या सप्तशति वि० सं० १९७४, प्रकाशित
(२०) ताजिक योग संग्रह सन् १९४५ ई०, प्रकाशित
(२१) व्यापार रत्नम् सन् १९४५ ई०, अप्रकाशित
(२२) मुकुन्द कृतया संस्कृत व्याख्या समलंकृतम्
(२३) ज्योतिष रत्नाकरम्, सन् १९५७ ई०, प्रकाशित
(२४) जातक सूत्रम् वि० सं० १९९६, अप्रकाशित
(२५) ज्योतिसालवम् वि० सं० १९९६, प्रकाशित
(२६) बाल बोध दीपिका , अप्रकाशित
(२७) जातक भूषणम् , अप्रकाशित
(२८) अष्टक वर्ग निवन्ध वि० सं० १९९९, अप्रकाशित
(२९) पीयूष धारा (जातक भूषणम् की टीका) अप्रकाशित
(३०) मनोरमा (अष्टवर्ग निबन्ध की टीका) वि. सं. २०००, अप्रकाशित
(३१) भाव मंजरी सन् १९६९ ई०, अप्रकाशित
(३२) मधु व्रता सन् १९६९ ई०, अप्रकाशित
(३३) मुकुन्द कोष (१०७ भाग) ८००० पृष्ठ १०५ वाँ भाग लिंगानुशासन वर्ग, प्रकाशित मूल्य १२ रूपये
(३४) कोषनामावली (पद्यात्मिका) वि० सं० २०१५, प्रकाशित
(३५) कोषनामावली (गद्यात्मिका) वि० सं० २०१५, अप्रकाशित
(३६) ज्योतिष शब्दकोष वि० सं० २०२० मूल्य ९ रुपये, प्रकाशित
(३७) भू-वलय चक्रम् अप्रकाशित
(३८) लम्पाक शास्त्रम् (संशोधित) प्रकाशित
(३९) आश्वारूढी (घोड़े पर बैठकर) सूर्य/चन्द्र ग्रहण की दशा व समय बताना, अप्रकाशित
(४०) श्री मल्लारि दैवज्ञ द्वारा रचित ग्रन्थ की टीका, अप्रकाशित
(४१) ईष्ट लग्न निर्णय, अप्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४२) शरत्पर्व दीपिका, अप्रकाशित
(४३) प्रशव चिन्तामरणी, अप्रकाशित
(४४) आशुबोधा (आर्या सप्तति की टीका) प्रकाशित

श्री दैवज्ञ द्वारा रचित ग्रन्थों में यद्यपि सभी अपने अपने स्थानों पर विषयानुसार महत्वपूर्ण है तथापि श्रेष्ठ स्थान ज्योतिस्तत्यम् को दिया ज़ा सकता है जो अपने नामानुकूल ज्योतिष का मूल तत्व है। यह दो भागों में प्रकाशित है। दूसरे महत्व का ग्रन्थ मुकुन्द कोष है जो १०८ भागों में विभाजित हैं। १०७ भाग निर्मित एवं १०८ वां भाग निर्माणाधीन है। इस ग्रन्थ का केवल १०५ वां भाग लिंगानुशासन वर्ग ही प्रकाशित है। इस सम्पूर्ण ग्रन्थ के पृष्ठों की संख्या ८००० है। आपकी रचना आर्य्या सप्तति तो जयपुर विश्वविद्यालय के आचार्य पाठ्यक्रम से सम्बन्ध है।

तत्कालीन मु० मन्त्री डा० सम्पूर्णानन्द जी ने जब आपके साहित्य का अवलोकन किया तो उ० प्र० सरकार ने आपको ४० रु० प्रतिमाह देना प्रारम्भ किया जो बढकर १७० रु० प्रतिमाह कुछ वर्ष पूर्व तक आपको मिलता रहा। यह अब प्रसाशनिक लापरवाही के कारण नवीनीकरण न हो पाने से बन्द हो गया है।

लिंगानुशासन वर्ग के प्रकाशनार्थ भारत सरकार से आपको ३४०० रु० अनुदान प्राप्त हुआ और ज्योतिष शब्दकोष के लिए ३८१३ रु०, जो कि पुस्तक के प्रकाशन व्यय का ६०% है। भारत सरकार ६०% अनुदान पर आपके समस्त साहित्य को प्रकाशित करने को उत्सुक है। लेकिन साधन बिहिन विद्वान लेखक के पास ४०% भी कहां? क्योंकि आपके समस्त साहित्य के प्रकाशन पर कई लाख रु० व्यय होंगे। एक मात्र ज्योतिषतत्यम् के प्रकाशन पर २५ हजार रुपये व्यय हुए। जो कि इनको अनन्य भक्त व ग्रन्थ के टीका कार देवप्रयाग के वासी श्री चक्रधर भट्ट ने चरणों में श्रद्धा पूर्वक र्समिपत किये। उसके अतिरिक्त श्री भट्ट ने गुरू जी के लिए आपके मूल गांव खंड में एक सुन्दर आश्रम का निर्माण कराया। जिस पर १५ हजार रुपये से कम खर्च नहीं हुए होंगे। आश्रम में जड़ित शिला पर निम्न शब्द अंकित हैं :

"बदरीश पुण्य देशे जाहन्त्या उतर तटे।
गुरूणा श्री मुकुन्दानों निवासाय श्रयः कृत·।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चक्रधरेण भट्टेन देवप्रयाग वासिना ।
वर्षे मेघा भ्रदोस्तुल्ये राधे शुक्लादि जातिथौ ।।
"वि० सं० २०१७ बैषाख शुक्ल अक्षय ३ गुरुवार" ।।

इस महान् संस्कृत कवि एवं ज्योतिषी का जन्म ग्राम खंड (गढ़वाल) में कार्तिक २४ मंगलवार सम्वत् १९४४ को हुआ । बाल्यकाल विभिन्न परिस्थितियों एवं स्थानों में बीता । प्रारम्भिक शिक्षा गढ़वाल व लाहौर में प्राप्त की । साहित्य साधना ग्राम खंड व देवप्रयाग में हुई । अपना परिचय मुकुन्द पद्धति में आप स्वयं इस प्रकार देते हैं :

'गढ़वाल देशस्य ढांगू मंडलान्तगर्त खन्ड ग्राम निवासी बड़थ्वाल बंसातस-श्री पंडित रघुवर शर्मात्मज मुकुन्द राम शर्मा प्रणीता'

"गढदेशे जाह्नह्वि वाल कूले खंडा मिधे सवराथेऽभवध श्री कीर्ति देव्यास्तनुजो मुकुन्द राकेऽक्ष वेदे ।"

९० वर्षीय श्री दैवज्ञ जी को केवल साहित्य से मोह हो ऐसा नहीं । अभी तक आप सत्संग का भरपूर आनन्द ज्ञान के आदान-प्रदान करने में लेते हैं । देश के विभिन्न विद्वान आपके दर्शनो एवं रचनाओं का लाभ उठाने आश्रम में आते रहते हैं । इस अवस्था में भी आपकी स्मृति शक्ति को देखकर दाँतों तले अंगुली रखनी पड़ती है । आपका आश्रम हरे भरे खेतों से घिरा है जो आपके सुकोमल ह्रदय, प्रकृति प्रेम एवं रचनात्मक बृति का द्योतक है । ठीक इसके समानान्तर आपके परिवार में दो पुत्र, दो पुत्रियाँ (विवाहित) हैं । सुपुत्र को दिल्ली प्रशासन में प्रथम श्रेणी के एस० डी० एम० के पद पर आसीन होने का गौरव प्राप्त है । दो प्रपौत्र इन्जीनियर हैं । परिवार में सात स्नातकोतर हैं, जो आपकी सांसारिक सफलताओं (सामाजिक स्थिति) का परिचायक है । लेकिन स्वाभिमानी होने के कारण आप किसी पर भार बनना नहीं चाहते ।

देश की जनता, विद्वत्‌गण, गढ़वाल वि० वि०, सरकार एवं साहित्य प्रेमियों का उनके प्रति क्या कर्तव्य है पाठक स्वयं अपनी बुद्धि रूपी तुला में तौल लेंगे, ऐसी आशा है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मदानी कलाकार श्री अवतारसिंह पवांर

डा० बनारसीदास चतुर्वेदी

कवींद्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने सुप्रसिद्ध हिन्दी लेखक श्री शिबानी की बड़ी बहिन श्री जयन्तीदेवीं से, जो उन दिनो शान्ति निकेतन में पढ़ती थी, कहा था:–"हमारे आश्रम का कोई भी छात्र या अध्यापक कहीं जायेगा तो वह वहां एक छोटा सा शान्तिनिकेतन स्थापित करेगा।" बहन जयन्ती जी उन दिनों बुन्देल खन्डी बालक बालिकाओं को कुंडेश्वर, टीकमगढ में पढा रही थी और तभी उन्होने यह बात मुझे बतलाई थी। गुरूदेव की इस आकांक्षा को अनेक आश्रम वासियों ने किसी न किसी रूप में पूरा करने का प्रयत्न किया है। उनमें सर्वोपरि हैं श्रद्धेय काका साहब कालेलकर, जो पक्के अर्थो में परिब्रजक हैं, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक राजदूत हैं। वे शांतिनिकेतन से ही महात्मा जी के आश्रम को गये थे। उनके समकालीन थे आचार्य श्री क्षितिमोहन सेन, जिन्होंने सन्त कवियों के जीवन संदेश को देश देशान्तरों में फैलाया था। शांतिनिकेतन के द्विजदीन बन्धु एन्डूज के बारे में हमारे पाठक जानते ही हैं और बन्धुवर हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का सांस्कृतिक कार्य भारत भर में विख्यात है ही। अस्वस्थ होते हुए भी कविवर जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द निरन्तर साहित्य सृजन करते ही रहते हैं।

पर जिन्हें अभी अपेक्षाकृत कम लोग जानते हैं, पर जो आगे चलकर कला जगत् में अक्षय कीर्ति के अधिकारी होंगे, वे हैं आचार्य अवतारसिंह जी, जो उच्चकोटि के चित्रकार तथा मूर्तिकार दोनों ही हैं। वे शांतिनिकेतन के स्नातक हैं जहां उन्होंने पांच वर्ष तक शिक्षा प्राप्त की थी और अध्यापन कार्य भी किया था। आजकल लखनऊ विश्वविद्यालय कला विभाग के अध्यक्ष का पद सुशोभित कर रहे हैं।

चित्रकला एवं मूर्तिकला का मेरा ज्ञान नगंण्य है। (इस कारण भी श्री अवतारसिंह जी की विशेष योग्यता के बारे में हम कुछ नहीं कह सकते) पर हम इतना अवश्य कहेंगे कि वे जीवन की कला के भी महान् आचार्य हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गीय नवीन जी ने कहा था "अरे ! अर्पण ही इस जीवन का क्रम है और ग्रहण में मृत्यु निहत है। प्रतिफल केवल भ्रम ही है"। नवीन जी की उक्ति को चरितार्थ करने वाले व्यक्तियों की तलाश में मैं भी रहा हूं। श्री अवतारसिंह जी का जीवन इस मन्त्र की व्याख्या है। अपने जीवन में इसे उन्होंने भली-भाँति चरितार्थ किया है।

उनके जीवन में एक विचित्र घटना का संयोग घटित हुआ। वे टिहरी राज्य वंश के हैं। फौजी ट्रेनिंग के लिए देहरादून में पढ़ रहे थे। परीक्षा में उत्तीर्ण होने में केवल चार महीने बाकी थे कि उनके कान में खराबी आ गई, जो बहुत इलाज करने पर भी दूर नहीं हुई। इसलिए उन्हें सैनिक शिक्षा से निवृत कर दिया गया। पर सेना विभाग को जो घाटा हुआ वही भारत के सांस्कृतिक क्षेत्र के लिए बड़ा मुनाफा सिद्ध हुआ। जब श्री अवतारसिंह जी ने प्रथम बार आचार्य श्री नन्दलाल बसु के दर्शन किये तो उनके सैनिक रंग ढंग का आचार्य जी पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा और उन्होंने दबी जबान से केवल इतना ही कहा, "आपने अपनी बृत्ति चुनने में कुछ भूल तो नहीं की।"

सम्भवतः उनका अभिप्राय यही था कि वे कला क्षेत्र में व्यर्थ ही आये हैं। पर आगे चलकर वही आचार्य महोदय अपने शिष्य की योग्यता पर मुग्ध हो गये। लेकिन यह दक्षता भी अवतारसिंह जी को घोर परिश्रम के बाद मिली। उन्होंने अपनी कक्षा में प्रथम कोटि का सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया था। यही नहीं उनकी नियुक्ति के लिये बाबू सम्पूर्णानन्द के प्रयत्न से उक्त विद्यालय में एक नवीन स्थान की सृष्टि की गई।

इधर कुछ दिनों में हमें श्री अवतारसिंह जी के निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और उनकी लगन, परिश्रम शीलता एवं उदारता को देखकर हम दंग रह गये।

अभी उस दिन भगवान् गौतम बुद्ध की अधूरी मूर्ति के नीचे बैठे वे कह रहे थे, "मैं तो सवेरे सात बजे सीढ़ी पर चढ़कर ऊपर के तख्तों पर बैठना चाहता हूं और रात के आठ बजे उतरना, पर क्या किया जाय सीमेंट ही नहीं मिलता।"

बन्धुवर ललिताप्रसाद जी ने जब उनसे कहा कि बीच में कुछ भोजन तो कर लिया करें, खाली पेट काम करना तो ठीक नहीं, तो वे बोले खाने के बाद तो मुझे नींद आ जाती है। अभी कल ही उन्हें ११ बजे से ५ बजे तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तख्ते में टंगा हरना पड़ा सो भी कड़ी धूप में रहना पड़ा, सीमेंट का काम करते हुए हाथ फटने लगते हैं और कभी-कभी हरारत भी आ जाती है। एक दिन पूर्व रात में उन्हें हरारत रही थी फिर भी वे सवेरे अपने काम पर हाजिर थे, एक मेहनती मजदूर की तरह।

और यह परिश्रम वे स्वान्त:सुखाय ही कर रहे हैं। सर्वथा निस्वार्थ सेवा उनके जीवन का मूलमन्त्र बन चुकी है। जब हजारों की संख्या में बंगाल के शरणार्थी भारत आ रहे थे, अवतारसिंह ने दूरदर्शिता से काम लेकर बंग बन्धु मुजीवर रहमान, कविवर नजरूल इस्लाम तथा कवीन्द्र रवीन्द्र की मूर्तियां बनाकर सरकार को भेंट कर दी थीं और उनका जगह-जगह प्रदर्शन हुआ था।

बंगलादेश के युद्ध में उन्होंने अपनी सेवाएं अर्पित की थी पर वे लिए नहीं गये। लेकिन एक काम उन्होंने किया। लखनऊ स्टेशन पर पहुंचकर वे युद्ध पर जाने वाले सिपाहियों के सजीव रेखा चित्र पाँच-सात मिनट में तैयार करके उन्हें भेंट कर देते थे और इस प्रकार कोई ४०० रेखाचित्र उन्होंने भेंट किये। उन सैनिकों को इस भेंट से बहुत संतोष हुआ और किसी-किसी ने कहा भी 'आपकी इस भेंट को जीवन भर नहीं भूलेंगे'।

श्री अवतारसिंह जी की कुल आयु ५२ वर्ष की हैं, उनका जन्म १४ जनवरी १९२९ को हुआ था पर इतनी अल्प आयु में ही उनकी कीर्तियां भारत के भिन्न-भिन्न भागों को सुशोभित कर रही हैं। धन जमा करने के प्रति उनमें कोई मोह नहीं है न ही वे धन को केवल अपने ऐश व आराम में व्यय करते हैं। दोनों ही पति पत्नी कमा रहे हैं और धन, शिक्षा, कला, अध्ययन व प्रसार के लिए देश भ्रमण में ही व्यय हो रहा है। उनके जीवन का लक्ष्य ही यह है कि धन नदी के जल प्रवाह की तरह बहाना चाहिये न कि तालाब के जल की तरह एकत्रित रह कर केवल एक विशेष शहर व व्यक्ति का ही बनकर रह जाय। वे स्वयं व उनके द्वारा कमाया धन कला एवं शिक्षा में ही कुछ काम आ सके यही उनका लक्ष्य है। श्री अवतारसिंह जी के हृदय में धन जमा करने के प्रति कोई मोह नहीं। अपनी पैतृक सम्पत्ति को, जो टिहरी राज्य में थी, उन्होंने तिलांजली दे दी और उनकी यह प्रतिज्ञा है कि वे अपनी सन्तानों के लिऐ भी कोई धन सम्पत्ति विरासत में न छोड़ेंगे। श्री अवतारसिंह जी जैसे सुयोग्य मूर्तिकार भारत भर में पांच सात भी न होंगे और यदि उन मूर्तिकारों से बुद्ध भगवान् की इतनी बड़ी मूर्ति बनाने को कहा जाता तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे सहस्त्रों रुपये पारिश्रमिक के रूप में मांगते।

एक बार उत्तर प्रदेश के भू०पू० राज्यपाल श्री गोपाल रेड्डी, जो शांति-निकेतन के छात्र रह चुके हैं, लखनऊ में उनके महाविद्यालय में स्वयं ही पधारे और उनसे पूछा, 'पवांर जी' आजकल आप क्या कर रहे हैं ? उन्होंने संक्षिप्त सा उत्तर दिया 'नौकरी' !

पवांर जी सरकारी नौकरी की सीमा को जानते हैं और अपना कर्तव्य ईमानदारी से निभाने के बाद जो समय तथा शक्ति शेष रहती है उसे वे निस्वार्थ सेवा में बिताते रहते हैं।

नरेन्द्रनगर (टिहरी) में उन्होंने शिव के नन्दी की मूर्ति बना दी थी और पौड़ी (गढ़वाल) में गवर्नर रेड्डी साहब की। (क्योंकि रेड्डी साहब ने गढ़-वाल कमिश्नरी का निर्माण किया था।) बिना एक पैसा लिए वे एक मामूली मजदूर की तरह इसमें जुटे हैं।

बिडला हाउस में महात्मा जी के मृत्यु स्थल पर जब चित्रों के बनाने का सवाल उठा तो यह पुण्य कार्य पवांर जी तथा उनके दो साथियों को सौंपा गया था। शहीद भवन जबलपुर को उन्हीं के द्वारा चित्रित चित्र सुशोभित कर रहे हैं। लखनऊ के राजभवन में वहीं के सूचना विभाग से तथा जू में उनके चित्रों तथा मूर्तियों के दर्शन हो सकते हैं। देश के विभिन्न भागों में उनकी कलाकृतियों की प्रदर्शनियां हो चुकी हैं एवं कला मर्मज्ञों द्वारा उनकी उचित प्रशंसा हुई है।

लखनऊ विश्वविद्यालय में भी उनके चित्र हैं और कला महा-विद्यालय में तो हैं ही। कोटद्वार में बैरिस्टर मुकन्दीलाल जी के यहां उनके कई चित्र हैं। बिना माँगे भी वे अपने चित्रों का दान करते रहते हैं। कानपुर वालों ने किसी कला उत्सव में उन्हें निमन्त्रित किया तो उन्होंने स्वयं ही कहा "मैं गुरूदेव कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ का एक चित्र बनाकर आपको भेंट करूंगा।"

घोर परिश्रम से अर्जित अपनी छुट्टियों का सदुपयोग वे इस प्रकार कर लिया करते हैं।

अवतारसिंह बड़े स्वाभिमानी हैं और कलाकारों की हार्दिक कोमलता उनमें बड़ी मात्रा में पाई जाती है। उत्तर प्रदेश के एक भू. पू. मन्त्री महोदय ने उन्हें पुलिस की मदद से उनके घर से निकलवाना चाहा तो पवांर साहब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यन्त उद्विग्न हो गये और उन्होंने अपने द्वारा निर्मित लेनिन की महान् मूर्ति को, जिसमें उनके पांच महीने लग गये थे, जमीन पर गिरा दिया। इसके कुछ दिनों बाद उस मन्त्रिमंडल का पतन ही हो गया। यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्रधान मन्त्री श्रीमति इन्दिरा गांधी ने उनको अपनी मूर्ति बनाने की अनुमति प्रदान की थी और तीन दिन तक डेढ डेढ घन्टे बैठी रहीं। यह सौभाग्य किसी मूर्तिकार को अभी तक प्राप्त नहीं हुआ।

एक बात और भी उल्लेख योग्य है। वह यह है कि पवांर साहब की धर्मपत्नी श्रीमती प्रभादेवी भी अखिल भारतीय कीर्ति प्राप्त कलाकार हैं। वे ग्वालियर के स्व० रामशरण वर्मा की पुत्री हैं। पवांर साहब ने अन्तर्जातीय विवाह किया था।

इस दम्पति की अद्भुत दानशीलता के और भी अनेक उदाहरण हैं। अभी एक सप्ताह तक श्रीमती प्रभा पवांर ने कोटद्वार के ३० छात्रों को वास्तु कला की निःशुल्क शिक्षा प्रदान की थी।

सुप्रसिद्ध कलाकार स्व० खास्तगीर ने उन्हें लखनऊ आने को प्रेरित किया था और पवांर साहब स्व० सम्पूर्णानन्द जी के कला प्रेम की अत्यन्त प्रसंशा करते रहे हैं। आचार्य नन्दलाल वसु, मूर्तिकार रामकिंकर जी तथा शान्ति-निकेतन के अन्य महापुरूषों को कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करते रहते हैं। सुप्रसिद्ध कलाकार श्री सुधीर खास्तगीर ने संक्षेप में उनका परिचय देते हुए बताया था, "क्षेत्रीय राजपूत वंश की दृढता, पहाड़ी आदमियों जैसी सरलता और सच्चे कलाकारों जैसी हार्दिक कोमलता का विचित्र सम्मेलन पवांर साहब में पाया जाता है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रकारिता में उत्तराखंड के पर्वतीयों का स्वातंत्र्यपूर्व योगदान

● स्व० चन्द्रशेखर बडोला

उत्तर प्रदेश के पर्वतीय अंचल 'उत्तराखण्ड' में पत्रकारिता का श्रीगणेश करने का श्रेय अलमोड़ा नगर को प्राप्त हुआ। कुछ प्रवुद्ध व्यक्तियों के प्रयत्नों से वहां पहले १८७० में एक डिवेटिंग क्लब की स्थापना हुई और फिर अगले वर्ष (१८७१) से बुद्धिवल्लभ पंत के संपादकत्व में 'अल्मोड़ा अखवार' का प्रकाशन आरम्भ हुआ। आगे चलकर इसके संपादन का दायित्व क्रमश: मुंशी इंतिआज अली, जीवानंद जोशी, सदानन्द सनवाल, विष्णुदत्त जोशी और बद्रीदत्त पाण्डे ने निभाया। सरकार की शासन नीति के समर्थन के अतिरिक्त शैक्षिक, सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं तथा राजनैतिक गतिविधियों को उजागर करना भी इस पत्र की नीति रही। अनन्तर इस पत्र ने विशेषत: बद्रीदत्त पांडे के सम्पादकत्व में कुली–बेगार प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई और साथ ही राजनैतिक मसले भी लिए। शासन की खूब आलोचना तो हुई ही, उसमें शासकों के काले कारनामों का पर्दाफास भी किया गया। १९१८ के होली अंक में इस अखबार में एक गजल छपी, जिसमें तत्कालीन जिला अधिकारी लोमस साहब की ऐय्याशी और तानाशाही के विषय में इस आशय की खबर थी कि जब वे स्याही देवी के जंगल में शिकार खेलने के बहाने सुरा और सुन्दरी में मदहोश थे, तब शराब लाने में देरी करने पर उन्होंने एक कुली को गोली मारकर घायल कर दिया। इस खबर ने चिनगारी का काम किया। लोमस साहब इस पर बड़े रुष्ट व उत्तेजित हुए। अपने बचाव में लोमस साहब ने कहा कि वे छर्रे से मुर्गे मार रहे थे, किन्तु उनकी दलील लचर निकली। इस पर वे और ज्यादा भड़क उठे। प्रकाशक सदानन्द सनवाल को त्यागपत्र देना पड़ा। फिर से अखबार छापने के लिए एक हजार की जमानत मांगी गई जो न दी जा सकी और ४७ वर्ष से प्रकाशित होता आया 'अलमोड़ा अखबार' बन्द हो गया। इस प्रसंग में गढ़वाल के एक समाचार पत्र ने चुटकी ली थी–'एक फायर में तीन शिकार, कुली, मुर्गी और अल्मोड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखबार।'

गढ़वाल क्षेत्र में पर्वतीयों द्वारा पत्रकारिता की दिशा में सर्वप्रथम उद्योग बीसवीं सदी के आरम्भ में हुआ जब गिरिजादत्त नैथानी ने मई १९०२ में लैंसडाउन से 'गढ़वाल समाचार' नाम से एक मासिक पत्र का सम्पादन व प्रकाशन आरम्भ किया। पहले यह पत्र मुरादाबाद से मुद्रित हुआ करता था। प्रसार-दृष्टि से अधिक सुविधा व जन-सहयोग मिलने की आशा से इस पत्र का कार्यालय कोटद्वार लाया गया किन्तु इससे कुछ भी अन्तर न पड़ सका। स्वयं इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। इन्हें जन-सहयोग भी पर्याप्त न मिला और प्रकाशन के दो वर्ष पूरे होने से पूर्व ही यह समाचार-पत्र बन्द हो गया।

पूर्व १९०१ में देहरादून के कुछ उत्साही गढ़वाली युवकों के प्रयासों से गढ़वाल यूनियन (गढ़वाल हित प्रचारिणी सभा) की स्थापना हो चुकी थी। इस संस्था के मुख-पत्र के रूप में देहरादून से मई १९०५ में 'गढ़वाली' मासिक पत्र का जन्म हुआ। सम्पादक मण्डल समिति में थे तारादत्त गैरौला, चन्द्रमोहन रतूड़ी और गिरिजादत्त नैथानी। कुछ समय बाद विश्वंभरदत्त चंदोला भी 'गढ़वाली' के सम्पादक मण्डल में सम्मिलित हुये। इन महानुभावों के लेखन व सम्पादन कौशल के कारण ही 'गढ़वाली' प्रथम श्रेणी का पत्र समझा जाने लगा। प्रकाशन से पूर्व लेख रचना सामग्री सम्पादक मण्डल के प्रत्येक सदस्य के अवलोकन में आती थी और आवश्यक संशोधन के बाद सबकी सहमति से छापी जाती थी। बीच में सारा दायित्व गिरिजादत्त नैथानी पर आ पड़ा, जिसे इन्होंने बड़ी योग्यता से निभाया। किन्तु बाद में 'गढ़वाल यूनियन' के संचालकों में तीव्र मतभेद हो जाने से वे १९१० में उससे अलग हो गये। किन्तु पत्रकारिता का जोश इनकी रग-रग में था। उसके बिना ये रह नहीं सकते थे। इसलिए कुछ व्यक्तियों के सहयोग से इन्होंने पूंजी एकत्र की और फरवरी १९१२ में दुगड्डा (गढ़वाल) में स्टौवल प्रेस लगाया और फरवरी १९१३ से 'गढ़वाल समाचार' का फिर से प्रकाशन आरम्भ किया। इनके योग्य एवं कुशल सम्पादन के कारण यह पत्र अन्य जिलों में भी प्रसिद्ध हो गया और १९१४ तक प्रकाशित होता रहा। उधर 'गढ़वाली' पत्र को विश्वंभरदत्त चदोला अन्तिम दौर तक चलाते रहे।

इसी बीच १९०६ में विशालमणि थपलियाल ने पौड़ी में बद्रीकेदार प्रेस स्थापित किया था। १९०७ में वहां से सदानन्द कुकरेती (सिलोगी के सन्त)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सम्पादन में 'विशाल कीर्ति' मासिक पत्र प्रकाशित होने लगा था। कुकरेती जी की मृत्यु के बाद स्वयं विशालमणि थपलियाल ने 'विशाल कीर्ति' का सम्पादन किया। एक ही क्षेत्र (गढ़वाल) से तीन-तीन समाचार-पत्रों के निकलने पर तरह-तरह के विवाद वितण्डें उठ खड़े हुए। इससे सार्वजनिक जीवन में अव्यवस्था होने की आशंका बढ़ी। तभी दिसम्बर १६१४ में कोटद्वार में उस समय के प्रमुख गढ़वाली नेताओं की सभा हुई। एकता लाने की दृष्टि से इस सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया कि 'गढ़वाल यूनियन' व 'गढ़वाल भ्रातृमण्डल' आदि सभी गढ़वाली संस्थाओं को मिलाकर 'गढ़वाल सभा' के नाम से एक ही संस्था बनाई जाय और तीनों प्रेसों को 'गढ़वाली प्रेस' देहरादून में सम्मिलित कर दिया जाय और तीनों समाचार पत्रों को मिलाकर देहरादून से 'गढ़वाली' को जारी रखा जाय और उसे साप्ताहिक कर दिया जाय। ऐसा ही हुआ। 'गढ़वाल समाचार' को 'गढ़वाली' में सम्मिलित कर दिये जाने पर गिरजादत्त नैथानी को एक बार फिर 'गढ़वाली' सा० का सम्पादक नियुक्त किया गया लेकिन फिर वे बहुत थोड़े ही समय (जनवरी १६१५ से १६१६ तक) उसका सम्पादन कर पाये। सम्पादकीय नीति में मतभेद पैदा हुए और ये फिर निराश होकर 'गढ़वाली' से पृथक हो गये। इसके बाद १६१७ से इन्होंने 'पुरुषार्थ' मासिक का प्रकाशन सम्पादन आरम्भ किया। इसका मुद्रण बिजनौर से और प्रकाशन कभी दुगड्डा से और कभी नैथाणा से होता था। यह पत्र किसी तरह रुक-रुक कर १६२१ तक चल पाया। मृत्यु (१६२७) से कुछ पूर्व इसे स्थायी व नियमित रूप से चलाने के उद्देश्य से वे इसका बस एक ही अंक निकाल पाये थे। देश सेवा के लिये पत्र सम्पादन के क्षेत्र में एक बार प्रविष्ट होने पर वे अन्त तक डटे रहे और संकुचित सांप्रदायवाद व जातिवाद पर प्रचंड शब्दावली द्वारा सदैव कड़ा प्रहार करते रहे। भारत को स्वतन्त्रता मिलने की आशा से अधिकांश भारतीय नेताओं व महापुरुषों ने प्रथम विश्व युद्ध में ब्रिटिश सरकार को सहयोग देने की नीति बरती थी। इसी भावना से तारादत्त गैरोला ने भी सरकार को सहयोग दिया। ये जिला युद्ध सहायक समिति के मन्त्री थे। इसी नाते इन्हें जिला फौजी पत्रिका (डिस्ट्रिक्ट वार शीट) का सम्पादक भी नियुक्त किया गया।

उधर 'अलमोड़ा अखबार' के बन्द हो जाने के कुछ माह बाद ही १६१८ में अलमोड़ा से बद्रीदत्त पाण्डे के संपादकत्व में 'शक्ति' समाचार-पत्र का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशन आरम्भ हुआ। इस पत्र ने निर्भीक रूप एवं पूरी शक्ति से समाज में स्वराज के लिए शंखनाद किया। आगे चलकर इस पत्र के सम्पादन में मोहन जोशी, रामसिंह धौनी, दुर्गादत्त पाण्डेय, मनोहर पन्त, पूरनचन्द्र तिवाड़ी, देवीदत्त पन्त, कृष्णचन्द्र जोशी, मथुरादत्त त्रिवेदी और कैलाशचन्द्र ने अपना भरसक सहयोग दिया। अंग्रेजी शासन की तीखी आलोचना करने के कारण 'शक्ति' के अधिकांश सम्पादकों को कारावास की यातनाएं भी सहनी पड़ी।

गढ़वाल के क्षत्रिय समाज की सेवा के निमित्त रायबहादुर जोधसिंह नेगी के प्रयत्नों से १९२० में 'गढ़वाल क्षत्रिय छात्रवृत्ति ट्रस्ट' स्थापित हुआ। इन्होंने अपने उद्देश्यों के प्रचार के लिए प्रतापसिंह नेगी के सम्पादकत्व में १९२२ से 'क्षत्रिय वीर' पाक्षिक पत्र प्रकाशित किया। यह पत्र १९३८ तक रुक-रुक कर चलता रहा। बाद में इसका सम्पादन क्रमशः कोतवालसिंह नेगी एवं शंकरसिंह नेगी ने किया। इसी बीच कानपुर के विद्यार्थी जीवन में डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने कोतवालसिंह नेगी के सहयोग से पर्वतीय छात्रों की ओर से 'हिलमैन' नाम से एक अंग्रेजी पत्र का सम्पादन किया। इससे पूर्व १९१८-१९ के लगभग डॉ० बड़थ्वाल ने श्रीनगर के छात्र जीवन में एक हस्तलिखित पत्रिका 'मनोरंजिनी' का भी सम्पादन किया था। इसी दौरान बैरिस्टर मुकन्दीलाल ने गढ़वाल क्षेत्र में 'तरुण कुमाऊँ' पत्र के द्वारा कुली बेगार आन्दोलन को सम्पन्न बनाया।

१९२८ के लगभग कृपाराम मिश्र 'मनहर' ने 'गढ़देश' पत्र का सम्पादन प्रकाशन आरम्भ किया और भारतीय कांग्रेस का संदेश घर-घर पहुंचा कर स्वराज आन्दोलन को गति दी। १९३० में देवकीनन्दन ध्यानी ने मुरादाबाद से 'विजय' सा० का सम्पादन प्रकाशन आरम्भ किया। इस पत्र के कुछ ही अंक निकल पाये थे कि ये स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े और 'विजय' का प्रकाशन अवरुद्ध हो गया।

स्वाधीनता संघर्ष में योग देने के उद्देश्य से उन्हीं दिनों पीताम्बर पाँडेय के सम्पादन में अल्मोड़ा से 'जागृत जनता' का प्रकाशन आरम्भ हुआ और बाद में हल्द्वानी से होने लगा। १९३० में मोहन जोशी द्वारा प्रकाशित 'स्वाधीन प्रजा' सा० भी इसी परम्परा में आरम्भ हुआ। इनकी प्रचण्ड आग्नेय लेखनी के कारण इस पत्र से ६००० रु. की जमानत मांगी गई और पत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्द करना पड़ा। बाद में कृष्णानन्द शास्त्री ने कुछ समय तक इसे प्रकाशित किया। अल्मोड़ा से ही कुछ ऐसे पत्र-पत्रिकाओं का भी प्रकाशन हुआ जो शासन के पक्षधर थे। इनमें उल्लेखनीय है कुमाऊं-कुमुद (१९२२ से ४५ तक) और 'समता'। 'समता' की नीति अब परिगणित जाति वर्ग के लोगों के हित संरक्षण तक सीमित है। इस बीच १९३६ में एक बालोपयोगी पत्रिका 'नटखट' का प्रकाशन भी हुआ, मदन मोहन एवं भुवनचन्द्र जोशी के सम्पादन में।

युद्ध के निमित्त जन-सहयोग प्राप्त करने के आशय से शोबनसिंह जीना, मोहनलाल वर्मा, जीवनचन्द्र पाँडेय व मोहनचन्द्र जोशी के सम्पादकत्व में 'राष्ट्रीय युद्ध मोर्चा' के तत्वावधान में 'पताका' का प्रकाशन शुरू किया गया। युद्ध समाप्त होते ही इसका प्रकाशन बन्द कर दिया गया। १९३६ में साम्यवादी दल के महासचिव पी०सी०जोशी ने 'राष्ट्रीय मोर्चा' का प्रकाशन किया। ज्यों ही रूस द्वितीय महायुद्ध में सम्मिलित हुआ यही (राष्ट्रीय मोर्चा) 'जन-युद्ध' के रूप में कांग्रेस की नीति के विमुख जाने लगा। युद्ध समाप्ति के बाद यह पत्र 'जनयुग' के नाम से प्रकाशित होने लगा। कांग्रेस समाजवादी दल के कार्यों को जन-जन तक पहुंचाने के लिए रानीखेत से जयदत्त वैला के सम्पादन में 'प्रजा-बन्धु' सा० का प्रकाशन आरम्भ हुआ, जो कुछ समय तक ही चल सका। लगभग उसी समय राजेन्द्रनाथ भट्ट के सम्पादन में और अखिल-भारतीय मौन पालक संघ के तत्वावधान में अंग्रेजी का एक द्विमासी पत्र 'इडियन बी जर्नल' प्रकाशित हुआ।

इधर गढ़वाल से अनुसूया प्रसाद बहुगुणा एक राष्ट्रीय समाचार पत्र प्रकाशित करना चाहते थे। इस विचार से ये बम्बई से एक प्रेस खरीद कर पौड़ी लाये। इनके अनुरोध पर १९३४ में देवकीनन्दन ध्यानी ने स्वर्गभूमि प्रेस नाम से डिक्लेरेशन दिया पर दुर्भाग्यवश तभी उनका असामयिक देहान्त हो गया। तब नवम्बर १९३६ में पौड़ी से महेशानन्द थपलियाल ने 'उत्तर-भारत' पत्र प्रकाशित किया। १९३८ में करांची ने प्रवासी गढ़वाली पं० महेशचन्द्र शर्मा ने अपने ज्योतिष कार्यालय से 'प्रोफेसी' मासिक पत्रिका (अंग्रेजी) प्रकाशित करना आरम्भ किया। इनकी भविष्यवाणियां प्रायः सत्य निकलती थी, अतएव यह पत्रिका देश–विदेश में बहुत लोकप्रिय हुई। देश के विभाजन के पश्चात् ये अहमदाबाद आ गये और अंग्रेजी के अतिरिक्त इन्होंने १९४७ में गुजराती में 'भविष्यवाणी' का प्रकाशन सम्पादन शुरू कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया। १६३८ के आसपास गढ़वाल में हरेन्द्रसिंह रावत, प्रयागदत्त धस्माना, कुंवरसिंह नेगी 'कर्मठ', योगेश्वर प्रसाद बहुखंडी ने मिलकर एक प्रेस खोलने का निश्चय किया और फलस्वरूप 'हिमालय प्रकाशन मण्डल' संस्था स्थापित हुई। कलमसिंह नेगी के संरक्षकत्व में भक्तदर्शन एवं भैरवदत्त धूलिया के संपादकत्व में १६३६ की बसन्त पंचमी के दिन 'कर्मभूमि' का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इस पत्र ने गढ़वाल के नवयुवक बुद्धिजीवियों को आकृष्ट किया और स्वाधीनता संघर्ष का आह्वान करने में गढ़वाल क्षेत्र का नेतृत्व किया। कालान्तर में इस पत्र को कुन्दनसिंह गुसांई, ललिता प्रसाद नैथानी, नारायणदत्त बहुगुणा व श्रीदेवसुमन का संपादन सहयोग मिला, किन्तु १६४२ के सेंसर के प्रहार के कारण यह बन्द हो गया। अनन्तर संपादक त्रय (श्री भक्तदर्शन, श्री धूलिया, श्री नैथानी) ने इसे पुर्नजिवित किया। १६५२ में श्री धूलिया जी ने श्री भक्तदर्शन व श्री नैथानी जी से इस पत्र का पूरा दायित्व अपने ऊपर ले लिया। श्री योगेश्वर धूलिया का भी इस पत्र में सहयोग रहा। आज कल श्री भैरवदत्त धूलिया संरक्षक व संपादक हैं शरदचन्द्र धूलिया।

१६३६ में ही कुछ गढ़वाली महानुभावों की पेशकश पर 'गढ़वाल प्रकाशन मण्डल' की स्थापना हुई। अनुसूया प्रसाद बहुगुणा जी भी उसमें शामिल हुए। इस मण्डल की ओर से कुछ दिन 'नवप्रभात' पत्र का प्रकाशन हुआ। इस प्रकार गढ़वाल में एक सुन्दर प्रेस व उत्कृष्ट समाचार-पत्र की आकांक्षा में बहुगुणा जी ने अपनी काफी पूंजी गवां दी। १६४६ में आचार्य भगवती प्रसाद पांथरी ने आचार्य गोपेश्वर कोठियाल, श्री तेजराम भट्ट के सहयोग से देहरादून से 'युगवाणी' सा० का प्रकाशन आरम्भ किया। इस पत्र ने विशेषतः देहरादून व टिहरी तथा पौड़ी गढ़वाल में जन-जागृति की। बाद में श्री पांथरी काशी विद्यापीठ चले गये और श्री कोठियाल ने संपादन व प्रकाशन आदि का पूरा दायित्व स्वयं संभाला लिया। इस पत्र में संपादन सहयोगी पहले चारुचन्द्र चन्दोला रह चुके हैं और आजकल हैं—श्री गोविन्द नेगी 'आग्नेय'।

इससे पूर्व १६४४ में देहरादून मे आचार्य भगवती प्रसाद पांथरी, आचार्य गोपेश्वर कोठियाल और दामोदर प्रसाद थपलियाल के सत्प्रयत्नों से 'गढ़वाली साहित्य परिषद' की स्थापना हुई। दामोदर प्रसाद थपलियाल ने १६४६ में 'फ्योंली' नाम की एक गढ़वाली पत्रिका का संपादन आरंभ किया किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्थिक संकट के कारण कुछ समय बाद ही इसका प्रकाशन अवरुद्ध हो गया। गढ़वाली साहित्य सृजन व संवर्धन में 'फ्यौंली' पत्रिका ने अच्छी पहल की थी।

स्वातंत्र्य पूर्व युग में जन-जागृति व बौद्धिक उत्थान की दिशा में उत्तराखंड के प्राय: सभी पत्रों व पत्रकारों का योगदान आदर्श एवं अनुकरणीय रहा है। पर्वतीय अंचल की पत्रकारिता क्षेत्र में जो यह गौरवमयी परम्परा एवं प्रेरक भूमिका रही है उसके विस्तृत व गहन अध्ययन एवं आकलन की महती आवश्यकता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इस सेवा-क्षेत्र में पर्वतीयों के प्रयासों में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई है। दूसरे पत्रों व प्रकाशनों में भी आज अनेक पर्वतीय पत्रकार संपादन व व्यवस्था के महत्वपूर्ण दायित्वों के निर्वाह में संलग्न है। इसके साथ ही उनसे यह भी अपेक्षित है कि वे शेष समाज की गतिविधियों, विविध कार्य क्षेत्रों में संपन्न व संपधमान कार्यों और योजनाओं के प्रचार-प्रसार में अपने साधनों और उपकरणों को उपयोग में लायें। अनेक प्रवासी पर्वतीय संस्थाएं भी स्मारिकाओं, पत्रिकाओं एवं पुस्तकों आदि के प्रकाशन द्वारा अपने समाज में बौद्धिक चेतना का उद्बोधन करने में सक्रिय हैं और अपने सीमित साधनों से इस तरह पारस्परिक संपर्क, सहयोग, आदान-प्रदान की भावना को सम्पुष्ट कर रही हैं। उन्हें सुचारु रूप से चलाने व संरक्षण सहयोग देने की संभावनाएं किस तरह बढाई जा सकती हैं, इसके लिए अन्य उपाय भी ढूढे जाने चाहिए ताकि समाज के प्रत्येक वर्ग, कार्य क्षेत्र तथा वाङ्मय के प्रत्येक पक्ष के साथ न्याय हो सके। शायद यह तभी संभव है, जब समन्वय दृष्टि से प्रत्येक पत्र एक निश्चित मार्ग व नीति अपनाये, जो एक विशिष्ट दिशा में उन्मुख हो। इससे उसमें एक विशिष्टता, विलक्षणता आयेगी और इस तरह पत्र-पत्रिकाएं एक दूसरे के लिए बाधक नहीं रहेंगी, प्रत्युत पूरक सिद्ध होगी और तभी वे सच्चे अर्थ में समाज व राष्ट्र के निर्माण में सहयोग दे सकेंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी रामतीर्थ की साधना भूमि उत्तराखण्ड

विद्यानन्द प्रसाद

वेदान्त केसरी स्वामी रामतीर्थ का सर्वप्रथम हिमालय यात्रा का शुभारम्भ अगस्त सन् १८९८ के ग्रीष्मकाल में हुआ। उन दिनों उनके मन में अत्यधिक ब्रह्मानुराग की भावना उमड़ रही थी, इसलिये वे उत्तराखण्ड की पवित्र धरती हरिद्वार पधारे। यहाँ से ऋषिकेश की ओर चल पड़े। ऋषिकेश में दो-तीन दिन ठहर कर तपोवन में विश्राम किया। वहीं सत्यनारायण मन्दिर के समीप 'ब्रह्मपुरी' नामक सघन जंगल है। सामने भागीरथी का कलकल निनाद ध्वनित होता रहता है। यहां पर मैंने दो गुफायें देखी, जिनमें लिखा हुआ पाया 'यह राम मस्जिद' है। वस्तुतः यह नितान्त निर्जन, शान्त और मनोरम है। इसी स्थल पर श्री स्वामी जी आत्म साक्षात्कार का दृढ़ संकल्प करके बैठ गये और बोले'—हे ब्रह्मानन्द! राम अब तेरे द्वार पर धरना देकर बैठा है। 'राम' मजनूं न बनकर तुझे लैला बनायेगा'। यही पुण्यतोया पुलीनस्थ पर सितम्बर में भाद्र पद शुक्ल पूर्णिमा के दिन उन्हें 'आत्मानुभव' प्राप्त हुआ। यह स्थिति उन्हें जिस समय और जिस स्थान में प्राप्त हुई थी, उस समय और उस स्थान का उन्होंने इस प्रकार वर्णन किया है—"गंगा किनारे बैठा हूं। एक ओर घना जंगल है, खिले हुये पुष्प देखने से जान पड़ता है कि वन देवी मानो स्मित हास्य कर रही है।······· उपनिषदों का काम हो चुका। ब्रह्मानन्द प्राप्त हुआ। हे लेखनी! क्या तुझमें इतनी सांमर्थ्य है कि तू इस आनन्द का ठीक-ठीक वर्णन करे? मैं धन्य हूं। धन्य हूं!! आजतक अज्ञान के कारण मुझे मेरे प्रिय श्री कृष्ण का अच्छी तरह से दर्शन नहीं होने पाया; पर आज उसका खूब अच्छी तरह दर्शन हो गया। वह नंगा और मैं भी नंगा। छाती से छाती सटाकर हम दोनों परस्पर खूब मिले। हे अस्थि चर्म के हृदय! तू बीच से निकल जा, जिसमें जीव और शिव की भेंट पूर्ण तादात्म्य हो। हे भेद द्रष्टे माये! दूर! दूर रह। मैं प्यारा, प्यारा··········,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहा! क्या ही आनन्द है। नेत्रों से आनन्दाश्रू की धारा बह रही है।[1] 'ब्रह्मपुरी' जंगल ऋषिकेश से करीब छः मील की दूरी पर टिहरी गढ़वाल के अन्तर्गत देवप्रयाग मार्ग पर स्थित है। यहीं मुझे साहित्य में वर्णित अपनी शोभा के लिए प्रख्यात् हिमालय की रम्यता की अनुभूति हुई। कविकुल कालिदास ने जिस नगाधिराज हिमालय का वर्णन किया है। उत्तर दिशा में स्थित इस देवानाम प्रिय नगराज का दर्शन पहली बार कर कवि द्वारा वर्णित हिमालय को वास्तव में समझ सका। एक ओर साहित्यिक संस्कार, दूसरी ओर प्रकृति का निर्वाक सौंदर्य और रामतीर्थ की पुण्य स्थली में विचरण करने का सुख लगा, जैसे मैं उस परिवेश का अंग बन गया हूं। इस पवित्र वनस्थली का दर्शन कर मैंने भी रामतीर्थ के पावन संसर्ग का अप्रत्यक्ष लाभ उठाकर अपने को धन्य समझा।[2]

श्री स्वामी जी की द्वितीय हिमालय पर्यटन का श्रीगणेश जुलाई सन् १६०० में होता है।

जुलाई १६०० ई० में नौकरी इत्यादि छोड़कर वे वन को पधारे। स्त्री, पुत्र आदि उनके साथ हुए। स्वामी शिवगणाचार्य, लाला तुलाराम (पश्चात् स्वामी रामानन्द), लाला गुरूदास (बाद में स्वामी गोविन्दानन्द) और अमृतसर निवासी निक्के शाह उनके साथ चले और नारायणदास जी को भी 'राम बादशाह' ने अपने साथ 'अलिफ' का झंडा लेकर चलने की आज्ञा प्रदान की।[3] लाहौर से सब लोग चलकर सीधे हरिद्वार पहुंचे।[4] पुनः हरिद्वार से देवप्रयाग होते हुये टिहरी की ओर चल दिये। टिहरी पहुंचने के उपरान्त एकान्तिक शोध की प्रेरणा का प्रकाश उनके मन में जाग्रत हो उठा। स्वामी

---

१. श्रीगणपति कृष्ण गुर्जर-स्वामी रामतीर्थ की जीवनी और व्याख्यान, प्रकाशक-बाल बोध कार्यालय, बीबी हटिया काशी, सन् १६१४ ई० पृष्ठ ३७—३८।

२. विद्यानन्द प्रसाद-हिन्दी सन्त साहित्य के विकास में स्वामी रामतीर्थ का योगदान, राँची विश्व-विद्यालय में प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध, पृष्ठ प्राक्कथन से उद्धृत।

३. श्री नारायण स्वामी-जीवन चरित श्री स्वामीरामतीर्थ, प्रकाशक-श्री स्वामी रामतीर्थ पब्लिकेसन लीग, लखनऊ, १६३४ ई०, २८२।

४. वही, पृष्ठ २८४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी किसी एकांत स्थान की खोज करने लगे। खोजते-खोजते एक अत्यन्त रमणीक और विशाल वाटिका में भागीरथी के किनारे नितांत एकांत पर्णकुटी निर्मित थी। इस कुटिया को कलकत्ता के सेठ मुरलीधर जी ने एकान्त निवास करने वालों के निमित्त बनवाया था। टिहरी से दो मील की दूरी पर अठूर गांव के समीप यह कुटिया है। कुछ काल तक मुरलीधर के उद्यान में रहने के उपरान्त सभी साथियों को त्याग कर अर्द्धरात्रि को अकेले उत्तरकाशी चल दिये। कुछ दिनों के बाद आप लौट आये।

'सन् १६०१ के जनवरी मास में उन्होंने द्वारिकामठाधीश श्री शंकराचार्य के उपदेशानुसार संन्यास ग्रहण किया। अब 'तीर्थराम' जी का नाम 'रामतीर्थ' हुआ। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि तीर्थराम जी के सन्यासाश्रम ग्रहण करते समय उनके साथी नारायण स्वामी भी थे। उन्होंने स्वामी जी के वस्त्र पर अब आनन्द से गेरूआ रंग चढ़ाया था। इस प्रकार तीर्थराम जी अब 'स्वामी रामतीर्थ' हुए। [1]

सन्यास ग्रहण के फौरन बाद एकान्तिक साधना की इच्छा से वे किसी अन्य स्थलों में निवासनार्थ सोचने लगे। कारण स्वामी जी के दशनार्थ भक्तों की भीड़ अत्यधिक होने लगी थी। अत एकांत भंग होता देखकर 'राम' १४ जून १६०१ ई० को यह स्थान त्यागकर एक दूरवर्ती एकांत स्थान पर टिहरी से लगभग ६ मील की दूरी पर ठीक गंगा तट के समीप 'बमरौगी गुफा' में रहने लगे और अपने साथियों में से किसी को इस स्थान परिवर्तन की सूचना नहीं दी। यद्यपि डाक द्वारा नारायणदास जी के पास लाहौर में अपने लेख भेजते रहे। इस प्रकार समस्त लेख दो पुस्तकों ('सुलह की जंग, गंगा तरंग', 'जल्वा-ए-कुहसार' व 'कैलाश कूक') में प्रकाशित करके जब जुलाई मास में नारायणदास जी टिहरी वापस आये, तो राम को सेठ मुरलीधर की वाटिका में अर्थात पहले स्थान में न पाकर बड़े आश्चर्य चकित हुये। इधर-उधर पता लगाने और पूछने पर ज्ञात हुआ कि राम कुछ सप्ताहों से "बमरौगी गुफा" में रहने लगे हैं। तब नारायणदास जी वहां गये। जब वहाँ पहुंचे तो उस समय राम को गंगा तट पर लेटे हुये पाया। उनके मुख मण्डल पर ऐसा अपूर्व आनन्द प्रदीप्त हो रहा था, जिससे स्पष्ट होता था कि वे आनन्द समाधि में

१. श्री गणपति कृष्ण गुर्जर-स्वामी रामतीर्थ की जीवनी और व्याख्यान, पृष्ठ ४५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निमग्न हैं। थोड़ी देर बाद खूब धूप चढ़ आने पर जब राम समाधि से चेतन अवस्था में आये, तो नारायणदास जी को देखकर मुस्कराते हुये बोले-'रात से राम यहाँ लेटा है, प्रातःकाल ४ बजे जब गंगा जी किनारे पर अधिक चढ़ आई और सो रहे राम के चरणों को छूने लगी, तो राम की नींद खुल गई। उसी समय प्रभात वायु ने चित्त की मुग्धावस्था को अत्यन्त बढ़ा दिया, और मस्त दिल तरह-तरह की गजलों में उमड़ पड़ा। उन गजलों को लिखते-लिखते जब मन और मस्तिष्क अपनी कल्पना की सीमा का उलघन करवाए, तो इधर लेखनी गिर पड़ी और उधर शरीर बालुका पर लेट गया।[1] मैंने अपने शोध-प्रबन्ध में "बमरौगी गुफा" के बारे में उल्लेख किया है-'टिहरी से छः मील की दूरी यानि उत्तरकाशी मार्ग पर सिराई गांव स्थित "बमरौगी" की गुफा है, जहाँ स्वामी जी ने तप किया, काव्य और लेख लिखे। यह गुफा प्रकृति प्रदत है। इसके सम्बन्ध में किंवदन्ती है कि इस गुफा में स्वामी शंकराचार्य जी ने कभी योगसाधना की थी। इस गुफा के नीचे गंगा की अजस्त्र धारा प्रवाहित होती रहती है। प्रकृति के नितांत एकांत सौंदर्य की कथा करती हुई परमहंस जी का यशोगान करती हुई मंदाकिनी की धारा किसी को भी आकर्षित कर सकती है। ऐसा मैंने स्वयं अनुभव किया है।[2]

स्वामी जी के पट्ट शिष्य श्री नारायण स्वामी जी लिखते हैं कि-'इस प्रकार इस "बमरौगी गुफा" में कुछ मास रहने के पश्चात् भादो गते १ संवत् १९५८ तदनुसार (१६ अगस्त, १९०१ ई०) को राम बादशाह, नारायणदास और तुलाराम जी को साथ लेकर यमुनोत्री, गंगोत्री, त्रियुगी नारायण, केदारनाथ बदरीनारायण की यात्रा के विचार से रवाना हुये। पहले पहल रामबादशाह भादो गते २१ तदनुसार, ५ सितम्बर १९०१ ई० जन्माष्टमी को यमुनोत्री मन्दिर पहुंचे। वहाँ का मनोहर दृश्य सबको ऐसा प्यारा लगा कि कोई भी वहाँ से शीघ्र चलने को तैयार न हुआ, इसलिए राम बादशाह ने वहीं ठहरने की आज्ञा प्रदान की और सब वहीं ठहर गए। राम बादशाह ने 'उष्णगुफा' में रहना पसन्द किया और नारायण दास व लाला तुलाराम जी को एक लकड़ी के मकान में, जिसे कोठार कहते हैं, रहने की अज्ञा मिली। लगभग दो

१. श्री नारायण स्वामी-जीवन चरित श्री स्वामी रामतीर्थ, पृष्ठ ३००,३०१

२. विद्यानन्द प्रसाद-हिन्दी सन्त-साहित्य के विकास में स्वामी रामतीर्थ का योगदान, राँची विश्व-विद्यालय के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध-पृष्ठ प्राक्कथन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्ताह सब लोग वहां रहे। इसके पश्चात रामबादशाह को यमुनोत्री के ऊपर 'सुमेरु पर्वत' की जो 'बन्दरपूछ' के नाम से प्रसिद्ध है, सैर करने की उमंग उठी और वहां की खूब सैर की।[1]

सुमेरु पर्वत को सुनहरी पहाड़ भी कहते हैं। इसके सम्बन्ध में स्वामी रामतीर्थ लिखते हैं –

"ए संसार के लोगों, किसी भी दुनिया की चीज का ऐसा सौंदर्य नहीं जो कि सुमेरु का जरा भी मुकाबला कर सके। परन्तु जब अपने अन्दर असली और परमआत्मा को देखोगे तब प्रकृति तुम्हें नमस्कार करेगी और किसी देवता की भी क्या मजाल कि तुम्हारी आज्ञा मानने से इन्कार करे।[2] सुमेरु की चढ़ाई काफी कठिन थी। कहीं चढ़ाई थी और कहीं उतार। कभी मार्ग तक मिलना कठिन हो जाता था। साहस के साथ उन्होंने चढ़ाई की। चलते-चलते वे एक ऐसे स्थान से पहुंचे जहां बर्फ ही बर्फ थी। वहाँ पहुंचकर उन्होंने प्रकृति के इस मनोरम दृश्य का पूर्ण आनन्द उठाया। उनके साथियों ने उनकी पूरी तरह देख-भाल की।[3]

यमुनोत्री पहुंचने पर वहां के मनोहर दृश्य का जो प्रभाव राम के चित्त पर पड़ा, उसे उन्होंने नीचे लिखे पत्र में प्रकट किया है—

'इस ऊँचाई पर उर्द की दाल नहीं गलती, न दुनिया की ही दाल गलती है। अत्यंत गरमागरम स्रोतों की धार, प्राकृतिक उद्यान की पुष्पावली का दृश्य अथवा सुषुमा प्रसार झरनों की बहार तथा चमकदार चाँदनी को ले जाने वाले स्वेत दो पट्टे (झागफेन) और उनके नीचे आकाश की रंगत को लजाने वाली यमुना रानी की गात (तन) बात-बात में काश्मीर को मात करते हैं। अब शार (झरने) तो तरंगें वेखुदी (निरभिमानता की लटक) में नृत्य कर रहे हैं। यमुना रानी साज बजा रही है। राम शांहशाह गा रहा है—

हिप हिप हुर्रे। हिप हिप हुर्रे।। †

---

१. नारायण स्वामी-जीवन चरित श्री स्वामी रामतीर्थ, पृष्ठ ३२०, ३२१

२. विश्वम्भर सहाय प्रेमी-हिमालय में भारतीय संस्कृति, पृष्ठ १३७

३. वही, पृष्ठ १३७

† प्रस्तुत कविता यमुनोत्री मन्दिर में लिखी गई थी, इसलिये पहले उस स्थान का वर्णन किया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब देवन के घर शादी है, लो ! राम का दर्शन पाया है।
पा-कोवाँ नाचते आते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥१॥[1]

सुमेरू (बन्दर पूछ हिमालय) की सैर के बाद राम यमुनोत्री मन्दिर आये। यमुनोत्री से नीचे लगभग १०-१२ मील की दूरी पर 'घरसाली' ग्राम है। वहां हम सब पहुंचे। इस गांव से गंगोत्री के दो रास्ते हैं, एक ऊपर हिमालय के साथ-साथ जिसका नाम "छायाँ" या "बामसरू-मार्ग" है और केवल पगडंडी है, बिना जानकारी के कोई उस मार्ग से चल नहीं सकता, दूसरा मार्ग उत्तरकाशी की ओर जाने का है। यह अच्छी चौड़ी सड़क है और यमुना नदी के किनारे-किनारे चलता है, इस रास्ते से यात्री लगभग १०-१२ दिन में गंगोत्तरी पहुंच सकता है, पर हिमालय के मार्ग से केवल दो-तीन दिन के भीतर-भीतर। सब लोग उत्तरकाशी वाले सहज रास्ते से जाने के स्थान पर ऊपर हिमालय के निकट वाले मार्ग से १६ सितम्बर, १६०१ ई० को गंगोत्तती को चले और दो दिन बाद अर्थात् १८ सितम्बर, १६०१ ई० को "धराली" गाँव में पहुंचे। इस गाँव से लगभग १२ मील की दूरी पर गंगोत्री है, जहाँ से सब लोग १६ सितम्बर को पहुंच गए। इस दुर्गम मार्ग और बंदर पूछ की तुसार मंडित सैर का सविस्तार वर्णन राम ने अंग्रेजी में अपनी लेखनी से पुस्तकाकार किया है।[2]

'हिमालय में भारतीय संस्कृति' नामक ग्रन्थ में उल्लेख मिलता है कि– 'उन दिनों यमुनोत्री से गंगोत्री जाने में साधारणतया दस दिन लगते थे, परन्तु स्वामी जी एक छोटे मार्ग से तीन दिन में ही गंगोत्री पहुंच गये। कहा जाता है कि इस मार्ग से उस समय तक किसी अन्य व्यक्ति ने यात्रा नहीं की थी। पर्वतीय भाई इस मार्ग को 'छाया मार्ग' कहते हैं। मार्ग में उन्होंने पर्वतीय गुफाओं में विश्राम किया। मार्ग में उनको कोई झोपड़ी तक न मिली। परन्तु वे साहस के साथ गंगोत्री पहुंच गये।

उन्होंने गंगोत्री से भेजे एक पत्र में वहाँ की प्राकृतिक छवि का वर्णन करते हुए लिखा है—

"गंगोत्री पर प्यारी गंगा की लहरों और प्राकृतिक नजारों को कौन बयान फर सकता है? बर्फ से ढके हुए पहाड़ और निर्दोष देवदार के

१. नारायण स्वामी-जीवन चरित्र श्री स्वामी रामतीर्थ, पृ० ३२०-३२१ ।

२. वही, पृ० ३३५ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊंचे और पतले पेड़ उनकी सहेलियां हैं। उनकी पवित्र हवा शक्ति प्रदान करती है। वह दिल को खुश और आत्मा को ऊँचा करती है। वहाँ इस सत्य को महसूस करना आसान है कि भगवान् पत्थर में है और पौधे में भी। वह सब जगह और सब में है।"

एक अन्य पत्र में वे लिखते हैं—

"आज कल स्वामी राम एक अच्छी झोपड़ी में रहता है। यहां रामबूटी बड़ी कसर (अधिक मात्रा में) से होती है। चिड़ियाँ और दूसरे पक्षी सारे दिन चह-चहाते रहते हैं। जलवायु स्वास्थ्यप्रद है। गंगा के गीत और पक्षियों की चह-चहाहट से हर वक्त स्वर्गीय त्यौहार लगा रहता है। केदारनाथ और बदरीनारायण के तीर्थों ने राम बादशाह को अनेक बार बुलावा दिया है लेकिन प्यारी गंगा जुदाई का ख्याल आते ही उदास हो जाती है—इसलिये राम उसे नाराज नहीं करना चाहता।"[1]

गंगोत्री के निकट 'धराली' गाँव में पूरे एक मास रहने के बाद सब लोग १९ अक्टूबर, १९०१ ई० को बूढ़ेकेदार और त्रियुगीनारायण के मार्ग से केदारनाथ गए और वहां से बदरीनारायण में सब लोग दीपमालिका के ठीक एक सप्ताह पहले अर्थात् ३ नवम्बर, १९०१ ई० को पहुंचे। उस मास में सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण दोनों साथ-साथ पड़े थे। सूर्यग्रहण के दिन स्नान के पश्चात् 'राम' की लेखनी से एक गजल निकली, जो इस प्रकार है—

इश्क का तूफाँ बपा है, हाजते-मय खाना नेस्त।
खूं शराबो, दिल कबावो, फुरसते पैमाना नेस्त॥

जिस समय 'राम' बद्रीनारायण से लौटने लगे, तो मथुरा से एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था कि स्वामी शिवगणाचार्य ने वहाँ यमुनातट पर एक "शांति आश्रम" स्थापित किया है और वे शीघ्र ही बड़े दिनों की छुट्टियों में वहाँ एक धर्म महोत्सव करना चाहते हैं, जिसमें स्वामी जी को उस धर्म सम्मेलन का मुख्य सभापति मनोनीत करना चाहते हैं। स्वामी जी बद्रीनारायण की यात्रा समाप्त करके मैदानों में लौट ही रहे थे कि उन्होंने

१. विश्वम्भर सहाय प्रेमी-हिमालय में भारतीय संस्कृति, प्रकाशक-राम दुलारे वाजपेयी, अध्यक्ष चैतन्य प्रकाशन, ११९/१३६, कृष्णनगर, कानपुर, प्रथम प्रकाशन दिसम्बर, १९६५ पृ० १३५, १३६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह निमन्त्रण स्वीकार कर लिया, और अलमोड़ा के मार्ग से वे २५ दिसंबर को मथुरा पहुंच गये।[1]

श्री स्वामी जी की उत्तराखण्ड की तृतीय यात्रा का शुभारम्भ मई, सन् १९०२ ई० से होता है।

श्री चिरंजीलाल असवाल अपने एक निबन्ध में लिखते हैं कि–'मई १९०२ में स्वामी जी फिर मंसूरी के रास्ते टिहरी रियासत में आये। टिहरी गढ़वाल की यह उनकी तीसरी यात्रा थी।[2] टिहरी के रास्ते में विविध स्थानों पर (जो मनोहर और विचित्र दृश्यों से सुशोभित थे) कुछ-कुछ दिन ठहरते गए। टिहरी से लगभग ग्यारह मील की दूरी पर देहरादून की ओर एक पड़ाव "कौड़िया चट्टी" कहलाता है। उस पड़ाव पर कीले की तरह का एक पुराना महल है, जो कई वर्षों से टूटा पड़ा है। इस स्थान का दृश्य अत्यंत मनोहर और आनन्द दायक देखकर राम ने अपना आसन वहीं जमा दिया और रायबहादुर साहिब भी राम के साथ उस स्थान के नीचे पड़ाव के बगल में रहने लगे, ताकि राम के पास कुछ एकांत अभ्यास करें। किन्तु कदाचित वन के कष्ट न सह सकने के कारण अथवा किसी अन्य कारण से रायबहादुर साहब कुछ दिनों के बाद मैदान में लौट गए, और राम बादशाह अकेले उस घोर वन में एकांत सेवन करते रहे। इन्हीं दिनों में टिहरी के महाराज साहब किसी आवश्यक कार्य के लिये वायसराय साहब से मिलने देहरादून आ रहे थे। मार्ग में वे इस "कौड़िया पड़ाव" पर पहुंचे और वहां राम बादशाह के निवास का समाचार पाया, तो राम के दर्शनों की इच्छा उनके हृदय में उत्पन्न हुई।[3] उन्होंने स्वामी जी को अपने शिविर में बुलवाया और उनसे धार्मिक विषयों पर चर्चा की। धर्म के सम्बन्ध में महाराज की जो शंकायें थीं उनको स्वामी जी ने दूर

---

१. श्री नारायण स्वामी—जीवन चरित्र श्री स्वामी रामतीर्थ, पृ० ३२६, ३२७।

२. स्वामी रामतीर्थ जन्म शताब्दि स्मारिका, टिहरी (टिहरी गढ़वाल), १९७४ ई०, पृ० २०।

३. नारायण स्वामी–जीवन चरित्र श्री स्वामी रामतीर्थ, संस्करण १९३४ ई०, पृ० ३४२, ३४३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दिया। महाराज ने स्वामी जी से अनुरोध किया कि वे उनके साथ कुछ और दिनों तक ठहरें। स्वामी जी ने महाराज के अनुरोध को स्वीकार कर लिया। और जब महाराज देहरादून से वापस आये तो वे स्वामी को अपने साथ अपनी ग्रीष्म कालीन राजधानी 'प्रताप नगर' ले गये। वहां महाराज ने स्वामी जी के लिए जंगल में एक कुटिया बनवाई, जहां वे कुछ समय तक ठहरे। प्रताप नगर में स्वामी जी और महाराज की कई घण्टों तक धार्मिक विषयों पर चर्चा होती थी। उसी समय महाराज को विदित हुआ कि जापान में एक बहुत बड़ा धार्मिक सम्मेलन होने वाला है। उन्होंने उस सम्मेलन में भाग लेने के लिए स्वामी जी को तैयार किया। स्वामी जी ने अपनी अनुमति दे दी और महाराज ने अपने खर्चे पर उनको जापान भेज दिया।

२८ अगस्त, १९०२ को वे स्वामी नारायण के साथ जापान के लिए रवाना हुए। कुछ समय तक जापान में रहने के पश्चात वे अमेरिका गये जहां वे करीब दो वर्ष तक रहे। वहां से दिसम्बर १९०४ ई० में वे बम्बई पहुंचे।[1]

परमहंस श्री स्वामी रामतीर्थ जी महाराज की अन्तिम हिमालय यात्रा का श्रीगणेश सन् १९०५ से होता है। गंगा के स्नेहिल, प्रकृति के सहचर, हिमालय के परम उपासक के रूप में स्वामी जी का मन पुनः एकान्त वास करने के निमित्त व्यग्र हो उठा।

श्री श्याम जी गोकुल वर्मा जी लिखते हैं कि-"वे घुमक्कड़ की भांति प्रतिदिन हरिद्वार तथा उसके आस-पास के स्थानों के दर्शनों के लिए घूमते रहते थे। 'चण्डी मन्दिर' उन्हें बहुत पसन्द आया था। गंगा के पार पर्वत की चोटी पर यह स्थान शान्त और एकान्त होने के कारण उन्हें अत्यन्त प्रिय हुआ। यहीं रहकर वे साधना में जुट गए। इस वर्ष काश्मीर जाने का विचार उन्होंने छोड़ दिया। यहां रहकर उन्होंने उर्दू में तीन पुस्तकें लिखी। इनमें उन्होंने अपने सिद्धान्त सम्बन्धी विचारों का संकलन किया था।

नवम्बर १९०५ में स्वामी राम ने नारायण को साथ लिया और ऋषिकेश चले गये। राम वहां से बद्रीनारायण की ओर चल पड़े। वे साधना के

---

१. स्वामी रामतीर्थ जन्म शताब्दि स्मारिका, टिहरी, (टिहरी गढ़वाल) सन् १९७४, पृष्ठ २०-२१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हेतु श्रेष्ठ स्थान की खोज में लग गए। ऋषिकेश से ३० मील की दूरी पर बद्रीनारायण के मार्ग पर "व्यास आश्रम" नामक स्थान उन्हें बहुत भला लगा। यह स्थान गंगा और व्यास गंगा के संगम पर स्थित है। गंगा के पार स्वामी जी ने अपने लिये तीन कुटियाएं बनवाई।

कुछ पंडितों ने आक्षेप किया था कि स्वामी राम ने जब संस्कृत का अच्छा अभ्यास नहीं किया और वेदान्त सम्बन्धी ग्रन्थों का मूल रूपों में अध्ययन नहीं किया, तो वे वेदान्त के विषय में प्रमाणिक रूप में व्याख्यान कैसे दे सकते हैं?

स्वामी राम के भावुक हृदय पर यह बात लग गई थी। वे तो सत्यप्रिय सत्यकाम, सत्यान्वेष्टा थे। अतः उन्होंने विधिवत् संस्कृत व्याकरण, संस्कृत भाषा, संस्कृत साहित्य तथा वेद उपनिषद्, वेदान्त-गीता, दर्शन शास्त्र आदि का मूल रूप में अध्ययन आरम्भ किया।

वे वेद मन्त्रों का उच्चारण करते थे। इन दिनों जो कोई, उनके दर्शनार्थ जाता, तो कहता-"देखो व्यास ऋषि वेद पाठ कर रहे हैं।" एक वर्ष बाद उनसे मिलने जो भी संस्कृत के पंडित गये, वे उन्हें देखकर चकित थे कि इतने अल्प-काल में स्वामी राम ने इतना व्यापक अध्ययन कैसे पूरा कर लिया। स्वामी राम ने प्राचीन प्रणाली के अनुसार वेदों के परम्परागत भाष्यों का अध्ययन किया। साथ ही पाश्चात्य जगत् की आलोचनात्मक तथा नूतन शोधात्मक पद्धतियों से उन पर नया प्रकाश भी डाला।[1]

व्यास आश्रम के निवास के अनन्तर उनका अधिकाँश समय संस्कृत शब्दों की व्युत्पत्ति और व्याकरण के नियमों में ही बीतता था। वे वैदिक मन्त्रों के सौंदर्य के उपभोग में ही तल्लीन रहते थे।

उन्होंने वशिष्ठ आश्रम में मुझ से कहा था– 'राम की इच्छा एक पुस्तक लिखने की हैं, जिसमें 'वेद' के सभी सुन्दर मन्त्रों का प्राचीन प्रणाली के अनुसार भी अर्थ हो और उन पर राम की अपनी व्याख्या भी।[2]

---

१. श्री श्याम जी गोकुल वर्मा-स्वामी रामतीर्थ (जीवनी), प्रकाशक, अरविन्द प्रकाशन, २०५, चावड़ी बाजार, दिल्ली-६। संस्करण-७३, पृष्ठ १०३-१०४।

२. प्रो० सरदार पूर्ण सिंह-'दी स्टोरी ऑफ स्वामी राम' अनुवादक दीन दयालु श्रीवास्तव-'स्वामी राम जीवन कथा, प्रकाशक श्री रामतीर्थ प्रतिष्ठान लखनऊ,-पृष्ठ-२२७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती उनकी जिह्वा पर आसीन हो गई। यहां के प्राकृतिक सौंदर्य ने उनको और भी आविभूत कर दिया और वे उस आलौकिक शक्ति से तादात्म्य की अनुभूति करने लगे।[1] श्री नारायण स्वामी जी लिखते हैं कि 'इस पड़ाव के ठीक सामने टिहरी राज्य की सीमा पर एक बड़ा भयानक और सघन वन है, जो 'बी' वन के नाम से प्रसिद्ध है। ऐसा माना जाता है कि इस वन में लोक विख्यात महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास ने तप किया था, इसी-लिए इसमें एक टूटा स्थान भी 'व्यास आश्रम' के नाम से प्रसिद्ध है।

इसलिए स्वामी राम ने इस वन को एकांत सेवन के लिए पसन्द किया और वहां ही डेरे लगा दिए।[2] मैंने स्वयं 'बी' नामक सघन जंगल एवं रमणीक स्थल का भ्रमण किया। 'बी' नामक जंगल देवप्रयाग मार्ग स्थित बछेली-खाल ग्राम के नीचे है। इसी वन में श्री स्वामी जी ने वेदों का गूढ़ अध्ययन, मनन और निदिहयासन किया था।

फरवरी, १९०६ ई० को स्वामी रामतीर्थ ने व्यास आश्रम से टिहरी को प्रस्थान किया। वे अधिक ऊंचे एकान्त और शान्त स्थान में वास करना चाहते थे।

टिहरी राज्य के महाराज ने उनका हार्दिक स्वागत किया और कुछ दिन वहीं रुकने की प्रार्थना भी की। वे कुछ दिन वहां रुके और महाराज का अतिथ्य स्वीकार किया।

यहाँ से वे वशिष्ठ आश्रम गए। यहीं उनका पड़ाव था। यह स्थान टिहरी से लगभग ६० मील दूर तथा बारह-तेरह हजार फीट की ऊंचाई पर अवस्थित था। यह स्थान सब दृष्टियों से स्वामी जी को सुन्दर लगा।

वे जिस गुफा में रहते थे, उसके पास ही एक झरना बहता था। यह स्थान हिम रेखा से ऊपर था। देवदार, केदार और चीड़ के वृक्षों से आच्छादित अत्यन्त रमणीक था। कोई तीन मील दूर गांव से एक युवक आता और स्वामी जी के लिए भोजन बना जाता था।

---

१. स्वामी रामतीर्थ जन्म शताब्दि स्मारिका, टिहरी (टिहरी गढ़वाल) १९७४, पृष्ठ २१।

२. नारायण स्वामी-जीवन चरित श्री स्वामी रामतीर्थ, प्रथम संस्करण १९३४, ई०, पृष्ठ ३८३, ३८४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पर्वत से केदारनाथ, बदरीनाथ, सुमेरु, कैलाश और गंगोत्री-यमुनोत्री स्पष्ट दिखाई देते थे।[1] एक दिन वे नारायण स्वामी तथा पूर्णसिंह को साथ लेकर पवांली कांटा होकर "बुद्ध केदार" की हिम शिलाओं को देखने के लिए चल पड़े। 'बसून' की चोटी पर चढ़ने के बाद ये लोग हिम रेखा के ऊपर विस्तृत हरे-भरे मैदान में पहुंच गये।

परन्तु यह स्थान इतना सुहावना था और राम को इतना प्रिय था कि वे इसे छोड़ने को तैयार न थे। राव बैजनाथ को अपने एक पत्र में, स्वामी जी ने इस स्थान की सराहना करते हुये लिखा था-"...... यह आश्रम हिम रेखा के ऊपर है। एक अत्यन्त सुन्दर स्त्रोत, वशिष्ठ नामक गंगा ठीक राम की गुफा के नीचे बहती है। निर्भर में पाँच-छः जल प्रपात हैं। स्त्रोत की घाटी को मानों शिव ने स्वयं अपने हाथों से कठोर चट्टानों को तोड़-फोड़ कर प्रायः दो दर्जन सुन्दर तालाबों का निर्माण किया हो। पहाड़ियों पर जंगल के सीधे-सादे, प्रकाश प्रेमी, विशालकाय वृक्ष तने हुए खड़े हैं, जिनकी हरियाली उस समय भी कम नहीं होती, जब कि छः-छः फुट ऊँची वर्फ की तहें उनके ऊपर जम जाती हैं। वही निस्सदेह उस वनमाली कृष्ण की दया और प्रेम के सर्वथा योग्य पात्र हैं।

भगवान् महादेव के बच्चे-कोमल हृदय पक्षी और हरे कन्धों वाले पेड़ ही यहाँ राम के एकमात्र साथी हैं।[2]

स्वामी राम ने उस ऊँचाई से भी कुछ मील और ऊपर जाकर एक गुफा में अपना दरबार लगाया, किन्तु नारायण स्वामी ने इस ऊँचाई से उतर कर नीचे श्री भृगुगंगा के किनारे अर्थात् वहां से पांच मील की दूरी पर आसन जमाया। स्वामी राम ने अपने कई पत्रों में उक्त स्थान को 'Garden of Fairies' अर्थात् 'अप्सराओं का उद्यान' लिखा है।[3]

श्री स्वामी जी के परम प्रिय पट्ट शिष्य श्री नारायण स्वामी ने प्रमाणिक तथ्यों का उल्लेख करते हुए लिखा है—'जिस गुफा में स्वामी जी महाराज रहते थे, वह लगभग बारह सौ फीट की ऊँचाई पर थी। इस गुफा के ऊपर

---

१. सन्तराम वत्स्य—स्वामी रामतीर्थ—प्रकाशक—सन्मार्ग प्रकाशक दिल्ली-७ पृष्ठ १३७।
२. श्री श्याम जी गोकुल वर्मा-स्वामी रामतीर्थ (जीवनी) पृ० १०५-१०६।
३. श्री नारायण स्वामी-जीवन चरित्र श्री स्वामी रामतीर्थ, पृ० ३८८-८६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ओर गुफा थी, जिसमें एक बड़ा अजगर साँप रहता था। स्वामी की गुफा के आगे एक घाटी पड़ती थी और घाटी पार करके ठीक सामने ऊँचाई पर एक दूसरी गुफा थी, जिसमें सिंह रहता था और कभी-कभी अपने घर में राम के दर्शन कर लेता था, कभी राम की गुफा के आगे से भी अपनी तेजी में घूम जाता था। गुफा का मुख बड़ा चौड़ा था, अतः वह न किसी पशु से सुरक्षित हो सकती थी और न वर्षा से। अस्तु! वन के पशु तो राम के बहुत प्यारे वरन् राम रूप ही थे, उनसे सुरक्षित होने की राम को कोई आवश्यकता न थी, और न राम की इच्छा के विरुद्ध वह कुछ कर सकते थे।[1]

इन एकांत यात्राओं की चर्चा करते हुए आपने स्वयं लिखा था—"निर्भयता में विचित्र चमत्कार हैं। निर्भय दृष्टि शेर को भी वश में कर लेती है। मैं हिमालय की घाटियों में एकाकी घूमता रहा हूं। वन के हिंसक पशु, शेर चीते, रीछ आदि से कई बार भेंट हुई है, किन्तु मुझे कभी किसी ने हानि नहीं पहुंचाई, क्योंकि मैं उनसे डरा नहीं। जब उनसे आँख मिली, निर्भय-भाव से मैं उन्हें देखता रहा, चेहरे पर घबराहट नहीं लाया और डर कर भागा भी नहीं। मेरे अपलक देखने पर वे जानवर स्वयं भाग गए।"[2] जून, १९०६ के अन्त में स्वामी जी ने जो पत्र लिखा, वही उनका अन्तिम पत्र था। उसमें उन्होंने खिखा था—"·······ब्रह्मभाव में स्थित होने पर यह सारा संसार ही सौन्दर्य का स्फुरण, आह्लाद का प्रकाश, आनन्द की बहिया सा बन जाता है। जब दृष्टि की ससीमता नष्ट हो गई तब फिर हमारे लिए असुन्दर कुछ भी नहीं रह जाता। सारा संसार ही निर्मल और सुन्दर हो उठता है। प्रकृति की शक्तियाँ सचमुच हमारे हाथ-पैर और अन्य इन्द्रियों की भांति काम करने लगती हैं।

आत्मा ही आनन्द है, वही सब कुछ है। अतः आत्म साक्षात्कार का अर्थ है कि हम अपनी ही आत्मा को सच्चिदानन्द मानें, जो सम्पूर्ण संसार के परदों में झांक रहा है।[3] उन्हीं दिनों स्वामी जी के परम भक्त पूरन जी, पं० हरि शर्मा और अमृतसर के पं० जगतराम जी उनके दर्शनार्थ पर्वत पर गये थे। उसका विवरण "सदुपदेश" मासिक पत्र में प्रकाशित हुआ। ये तीनों

१. श्री नारायण स्वामी-जीवन चरित्र, श्री स्वामी रामतीर्थ, पृ० ३८९-३९०
२. विनोद-स्वामी रामतीर्थ, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली। पृ० ४५।
३. श्याम जी गोकुल वर्मा-स्वामी रामतीर्थ (जीवनी)। पृ० १०७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त लाहौर से देहरादून और राजपुर होकर मंसूरी के पहाड़ पर चढ़े और वहां से ४० मींल कीं दूरीं पर अवस्थित टिहरी नामक स्थान में आ पहुंचे। धनोल्टीं से आगे बढ़ने पर बहुत हीं सुन्दर वन मिला। श्री हरि जी ने लिखा है कि "वहां हजारों प्रकार के फूल थे। उनकी शोभा अपूर्व थी। उनके नाम भी सुन्दर थे। झरनों में कल-कल नाद के साथ बहता हुआ रूप, हरा स्वच्छ जल, विकट वन्य-भूमि, हिमाच्छादित गंगोत्रीं के शैल-शिखर आदि को मैं कभीं भी भूल न सकूंगा।" १

हरि जीं के पहुंचने के पश्चात् स्वामी जीं ने एक पहाड़ी लड़के को बुलाकर चार सेर दूध जल्दी ला देने को कहा। तदुपरान्त वे बोले—"बेटा! उत्तरकाशी यहां से दो दिन के रास्ते पर है। पवांली कांठा का प्रसिद्ध पर्वत यहां से २८-३० मींल है। केदारनाथ का मन्दिर भी दो दिन के रास्ते पर है। ये स्थान तुम्हें बताने के लिये 'राम' ने चुन रखे हैं। चलते हुए चलेंगे। अन्य किसी स्थान पर भले हीं पहुंचा न जा सके, तो भीं पवांली-कांठा का पर्वत देखने के लिये तो अवश्य जाना ही पड़ेगा।"

दूध आते ही वह सबको दिया गया। दो-तीन प्याला दूध नारियल के छिलके में लेकर स्वामी जी ने दिया। तत्पश्चात् जोर से हंसकर बोले—दुनियां में जहाँ-तहाँ आनन्द ही फैल रहा है। सारी खटपट जाती रही। अहा! कैसीं शान्ति है! आज राम तुम्हें फिर से कुछ कहना है, हरि जी की तरफ देखकर फिर बोले—चारों वेद यहां रखे हुए हैं। 'राम' ने ये ग्रन्थ अनेक बार पढ़े और सच पूछा जाय तो अन्ततः ब्रह्मविद्या के सिवा अन्य कुछ भी 'राम की दृष्टि में नहीं पड़ता।' १

अक्टूबर, १९०६ ई० के आरम्भ में स्वामीं जी महाराज एक सप्ताह के भीतर-भीतर टिहरी आ गए और नारायण स्वामी सारा सामान कुलियों पर रवाना करने के बाद वहां से चले। इसलिये स्वामी जीं के आने के पांच दिन बाद पहुंचे। स्वामी जी महाराज, महाराजा साहिब टिहरी के सिमलासू बगींचे में जहां वशिष्ठ आश्रम को जाने से पहले उतारे गए थे, उसी में फिर उतारे गए और वहीं नारायण स्वामी भी उनकी सेवा में दो सप्ताह तक रहे।

---

१. योगिराज उमेशचन्द्र जी द्वारा सम्पादित—'धर्मोपदेश' प्रकाशन—श्री रामतीर्थ योगाश्रम, दादर, बम्बई-१४, पृ० १९-२२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वशिष्ठ आश्रम से वापस आये लगभग दो सप्ताह ही बीते होंगे कि राम स्वामी के हृदय में फिर जोर से एकान्त निवास की तरंग उठी। इस तरंग पर उन्हें ऐसा स्थान चुनने की सूझी जो हर ऋतु में रहने योग्य हो, और टिहरी नगर के निकट होते हुये भी बिल्कुल एकान्त हो, जिसमें बार-बार स्थान बदलना न पडे। स्वामी जी की अन्त:करण की अवस्था अब बहुत बढ़ी चढ़ी थी, इसीलिए वह ऐसा स्थान चुनना चाहते थे कि जहाँ से फिर उनको जीवन पर्यन्त हिलना न पड़े। इसके साथ ही उनको गंगा तट बहुत प्यारा था और गंगा रानी से इतना अधिक प्रेम था कि कुछ ही महिनों से अधिक उनका हृदय, उसका वियोग सहन न करता था। इसलिये गंगा के किनारे बहुत से एकान्त स्थान उन्होंने देखे, अन्त में "मालीदेवल" गांव के निकट एक स्थान पसन्द किया, जो बिल्कुल एकान्त था और गांव से तीनों ओर घिरा हुआ था। यह स्थान लगभग एक सौ वर्ष से बड़े-बड़े महात्माओं का एकान्त स्थान बना हुआ था। इस स्थान पर एक प्रसिद्ध संन्यासी महात्मा केशवाश्रम जी ने लगभग पचास वर्ष तक लगातार एकान्त निवास किया था और इसी स्थान पर एक सौ वर्ष से अधिक आयु भोगने के पश्चात उन्होंने शरीर त्यागा था।

इस प्रकार लगभग एक सौ वर्ष से यह एकान्त स्थान पहले ही से बड़े-बड़े प्रसिद्ध, उदारचित्त और एकान्तवासी महात्माओं का निवास स्थान होता चला आया था, और उनकी कुटियाओं के चिह्न भी अभी तक विद्यमान थे। एक कुटिया रहने योग्य अभी तक थी। यह सब देखकर स्वामी राम का मन भी यहां रहने को भर आया। ऊपर लिखी उत्तमताओं के अतिरिक्त और भी जिन दृष्टियों से यह स्थान स्वामी राम को पसन्द आया, वे ये हैं—"यहाँ गंगा-रानी दक्षिण की जगह उत्तर को बहती हैं, जिससे वह उत्तरवाहिनी कहलाती है। दूसरे गंगा तट पर मैदान इतना विशाल और समतल है कि जो पहाड़ों में मिलना अत्यन्त दुर्लभ ही नहीं, वरन् असम्भव सा है। तीसरे यह सार्वजनिक सड़क और गांव से लगभग एक मील की दूरी पर है। चौथे यह एक किनारे पर तीनों ओर से गंगा से घिर जाने के कारण प्रायद्वीप दीखता है। इन समस्त गुणों के कारण राम का मन प्रभावित होने से उन्होंने अपने साथियों को एक छोटी सी कुटिया अपने लिए बनवाने की आज्ञा प्रदान की और उस कुटिया का नक्शा (मानचित्र) भी अपने कर कमलों से बनाकर उनको दे दिया।[1] लेखक ने स्वयं इस रमणीक स्थल का पर्यवेक्षण किया है।

१. श्री नारायण स्वामी-जीवन चरित श्री स्वामी रामतीर्थ, पृष्ठ-३९७-३९८-३९९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्प्रति इस कुटिया का नाम "राममठ" रखा गया है।

श्री नारायण स्वामी को उन्होंने शीघ्र ही आज्ञा प्रदान की कि "बमरौगी की गुफा" नारायण के एकान्त वास के लिए उपयुक्त स्थान है। इसलिए जब तक राम, इधर (मालीदेवल गांव के निकट) रहे, तब तक नारायण वहां बमरौगी की गुफा में एकान्त अभ्यास करता रहे।[1] टिहरी निवासी श्री चिरंजीलाल असवाल ने अपने एक निबन्ध में प्रमाणिक तथ्यों का उल्लेख करते हुए लिखा है—'१४ और १५ गते असौज सम्बत् १९६३ तदनुसार २९ और ३० सितम्बर १९०६ को स्वामी राम हमारी दुकान से स्वयं कुछ सामान ले गये। उन्होंने दस आने की एक धोती और तीन आने का एक तौलिया खरीदा। इससे यह स्पष्ट होता है कि स्वामी जी ३० सितम्बर १९०६ तक मालीदेवल की कुटिया में ही रहे। मालदेवल हमारी कुटिया से करीब दो मील की दूरी पर है। जब महाराज कीर्तिशाह को यह विदित हुआ कि स्वामी जी मालीदेवल चले गये तो उन्होंने सेमलासू में उनकी रुचि के अनुसार एक कोठी को निर्मित करवाने का तुरन्त आदेश दिया। जब यह कोठी बन ही रही थी स्वामी जी, महाराज के अनुरोध करने पर इसमें रहने लगे। यह कोठी सिमलासू में है और गोल कोठी के नाम से प्रसिद्ध है।

इन दिनों स्वामी जी के साथ पडियार गांव अठूर के निवासी स्वर्गीय पं० भोलादत्त थे। वे उनका खाना बनाते थे। स्वामी नारायण को स्वामी राम ने बमरौगी गुफा में योगाभ्यास करने के लिये भेज दिया था। स्वामी जी अपनी कुटिया से भिलंगना में स्नान करने के लिए जाते थे। यह नदी स्वामी जी की कुटिया से करीब डेढ फलांग की दूरी पर है। १७ अक्टूबर १९०६ को स्वामी जी भोलादत्त के साथ भिलंगना में नहाने के लिये गये किन्तु पानी में पैर फिसलने से वे एक भंवर में फंस गये। उन्होंने उस भंवर से बाहर निकलने का प्रयत्न किया किन्तु न निकल सके। भोलादत्त जी किनारे पर खड़े स्वामी जी की धोती को हाथ में लिये यह सब देख रहे थे। स्वामी जी को पानी में फंसा देखकर वे सहायता के लिए इधर-उधर दौड़े और चिल्लाये किन्तु वहां कोई नहीं था। इतने में स्वामी जी ॐ का उच्चारण करते हुये भोलादत्त के सामने जल में विलीन हो गये।[2]

---

१. श्री नारायण स्वामी—जीवन चरित्र श्री स्वामी रामतीर्थ, पृष्ठ-३९७ ३९८-३९९।

२. स्वामी रामतीर्थ जन्म—शताब्दि स्मारिका, टिहरी, (टिहरी गढ़व १९७४, पृष्ठ २२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्त-साहित्य के विद्वान डा भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव' जी ने ठीक ही लिखा है–'राम का शरीर गंगा बहाये लिये जा रही हैं और राम मस्ती में ॐ! ॐ! की ध्वनि कर रहा है। आज भी हिमालय के वन-पर्वत, गिरि गह्वर में स्वामी राम की ध्वनि गूंज रही है। अमेरिका, जापान और मिस्र वाले आज भी उस बादशाह को स्मरणकर भगवत्प्रेम में पागल होकर पूछ बैठते हैं–

O Grave ! where is thy victory ?
O Death ! where is thy sting ? [1]

हिमशृंङ्गों की सुरम्य घाटी के रमणीक वातावरण में विहार करने वाले हिमालय और गंगा के स्नेहिल, कोटिश: वंदित संत कवि स्वामी रामतीर्थ शंकराचार्य की भाँति आये तो थे, केवल ३३ वर्ष की अल्पायु लेकर, किन्तु इसी अल्प जीवन में हमारे अन्तस्तल पर अपने स्वर्गीय व्यक्तित्व की अमिट छाप अंकित कर गए। सम्प्रति टिहरी स्थित सिमलासू बाग, जो 'रानीबाग' 'चन्द्रभवन' और 'गोल कोठी' के नाम से भी जाना जाता है, उस पवित्र 'रानीबाग' में 'स्वामी रामतीर्थ संग्रहालय' की स्थापना की गयी है। यह उल्लेख हो चुका है कि स्वामी जी ने भृगुगंगा यानि भिलंगना के पावन तट पर जल समाधि ली थी। भृगुगंगा का वर्तमान नाम 'रामगंगा' है। इसी स्थल के समीप टिहरी-श्रीनगर (गढ़वाल) मार्ग पर स्थित, टिहरी नगर से तीन किलोमीटर दूर सिमलासू की गोलकोठी के समीप संगमर्मर निर्मित "दीप स्तम्भ" है, जिस पर स्वामी राम की अन्तिम वाणी–'मृत्यु का आह्वान' अंकित है।

जल समाधि लेने से कुछ क्षण पहले उनकी लेखनी से निम्नांकित शब्द उद्भूत हुए:–

"ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, गंगा, भारत, हे मृत्यु देव ! मेरी यह देह भले ही ले जाओ, मुझे इसकी तनिक भी पर्वाह नहीं। मुझे अन्य देहों का अभाव नहीं। चन्द्र की निर्मल किरणों में रूप हरी देह धारण कर मैं आनन्द से विहार करूंगा। जंगल, नदी और निर्झरों के रूप में मैं गाता फिरूंगा। समुद्र की उत्ताल तरंग बनकर में उछलूंगा-नाचूंगा। आनन्द विस्तारक मंद वायु तथा

---

१. डा० भुवनेश्वरनाथ 'मिश्र माधव'–सन्त-साहित्य और साधना, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-संस्करण, १६६६, पृष्ठ २७६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीतल सुगन्धित वायु मैं स्वयं ही हूं। ये सब मेरे विभिन्न स्वरूप ही हैं।"[1]

किसी ने क्या सुन्दर लिखा है–

"पहाड़ों की चटानें कर रही हैं शोर वादी में।
है अब तक प्यारा स्वामी रामतीरथ जल समाधि में।।"

---

१. योगिराज उमेशचन्द्र जीं द्वारा सम्पादित-धर्मोपदेश, प्रकाशक-श्री रामतीर्थ योगाश्रम, दादर, बम्बई-१४, पृष्ठ २५।

स्मृतियों के झरोखे से

सरला बहिन

श्री शान्तिलाल जी का जन्म इस शताब्दी के प्रारम्भ में, राजकोट के एक सज्जन तथा आध्यात्मिक वृति में परिवार में हुआ था।

वे जब काफी छोटे थे तब उनके पिता जी ने सन्यास लेकर घर छोड़ दिया और बाद को उनका कोई पता नही चला।

शान्तिलाल जी के चाचा ने उन्हें बहुत प्रेम से अपने बच्चों के साथ पाला। इस बालक की सदवृत्तियों, अध्ययनशीलता तथा दृढ़ता को देखकर, उनके चाचा काफी प्रभावित हुए और उनके लिये एक उज्वल भविष्य की कल्पना करते रहे। अतः उस कल्पना को मूर्त रूप देने के लिये वे शान्तिलाल जी को अच्छी शिक्षा पाने के लिये पश्चिम को भेजने का विचार कर रहे थे।

उस उज्वल भविष्य के लिये शान्तिलाल जी को कोई आकर्षण नहीं था। वे एक दूसरे द्वन्द से गुजर रहे थे। एक तो बचपन से हिमालय की चोटियों तथा गुफाओं का आकर्षण और अब युवावस्था में, साबरमती के सन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का आकर्षण । आखिर में वे इस दूसरी कल्पना को अपनाने के लिये साबरमती के सन्त के पास पहुंचे और तब से वे जिन्दगी भर के लिये उनके ही बने ।

साबरमती में कताई बिनाई का प्रशिक्षण लेकर, शान्तिलाल जी आश्रम के सदस्य बनकर आश्रम की तरफ से भावनगर में एक कताई बिनाई केन्द्र चला रहे थे । हाल ही में मैं इतफाक ही भावनगर में थी, तो वहां के पुराने साथी अभी तक भी बहुत प्रेम और आदर से उनकी याद करते थे और उनके समाचार पूछते रहते थे । इससे मालूम होता है कि वहाँ पर उन्होंने लगन, प्रेम और श्रद्धा से काम किया होगा ।

लेकिन वहां पर काम करते करते हिमालय की ये पुरानी आकांक्षाएं मन में और हृदय में लगी रहीं । वे बापू से भी उसकी चर्चा किया करते थे । आखिर में एक साल बापू ने उन्हें हिमालय में घूमने के लिये तीन माह की छुट्टी दी थी, तब १९२८ गरमी के दिनों में वे अलमोड़ा पहुंचे थे ।

उन दिनों में गांधी जी के भतीजे श्री प्रभुदास गांधी अलमोड़ा में क्षय रोग का इलाज कर रहे थे । उनके द्वारा काफी जल्दी में सब राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं के साथ सम्पर्क हुआ था । लेकिन स्वर्गीय श्री मोहन जोशी (जिन्हें गांधी जी ने 'भारतीय ईसाई समाज के पुष्प' की उपाधि दी थी) के साथ विशेष आकर्षण हुआ । ये दोनों मिलकर राष्ट्रीय आन्दोलन और विशेष करके ऊनी-खादी के उत्पादन और उपयोग के प्रचार के लिये मिलकर दूर देहातों में घूमे थे ।

उन दिनों श्री मोहन जोशी जिला परिषद के अध्यक्ष थे और वे स्कूलों में ऊनी कताई का काम दाखिल करके अलमोड़ा में एक बिनाई शाला भी चलाना चाहते थे । उन्होंने बापू से श्री शान्तिलाल जी की सेवाओं की माँग की और बापू ने सहर्ष शान्तिलाल जी को अलमोड़ा में काम करने के लिये इजाजत दी । बस तब से युवावस्था का द्वन्द सुलझ गया—हिमालय पहाड़ों में राष्ट्रीय काम करने का उन्हें अवसर मिला ।

इससे पूर्व बापू की इजाजत से शान्तिलाल जी ने शादी की थी । अब दूर गुजरात से छोटी उम्र में भक्ति बहिन इधर अलमोड़ा पहुंच गयी थी । शान्तिलाल जी ज्यादातर दौरे में घूमते रहे । भक्ति बहिन वर्षों तक अकेली अलमोड़ा में रहती थी, लेकिन वे घबराई नहीं । हिम्मत में अपनी पड़ोसिनों के साथ बहुत अच्छी तरह मिलकर रहती थी । सिर्फ हिन्दी ही नहीं, बल्कि पहाड़ी भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

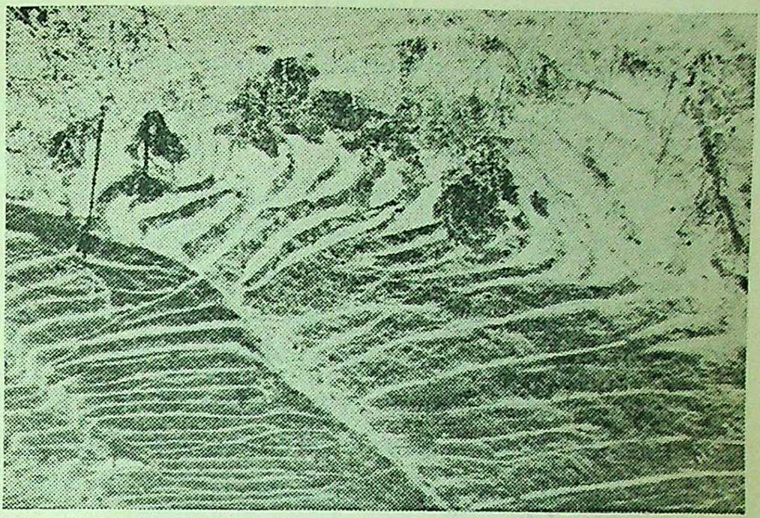

हिमालय के सीढी नुमा खेत

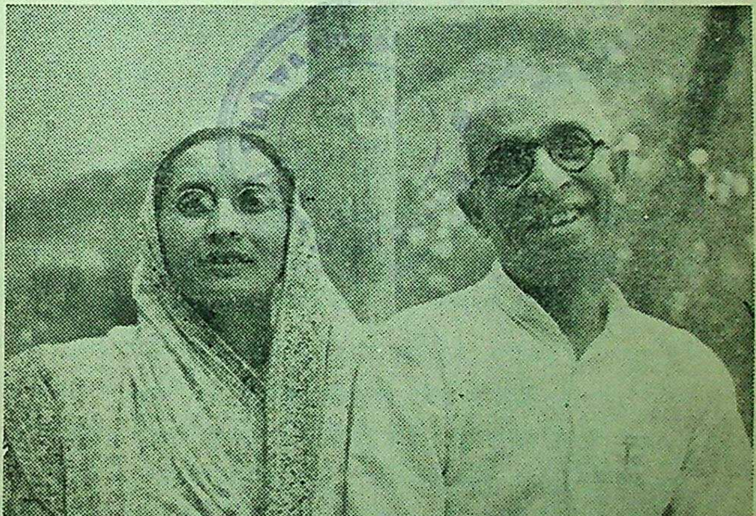

श्री शान्तिलाल त्रिवेदी अपनी धर्मपत्नि भक्ति बहिन के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतनी अच्छी तरह बोलने लगी कि कभी-कभी लोग शान्तिलाल जी से पूछते थे "आपने गुजरात से आकर एक पहाड़ी बहिन के साथ विवाह कैसे किया ?"

वे कभी अपने पतिदेव के कामों में बाधक नहीं रही। सिर्फ एक साल जब शान्तिलाल जी ऊन खरीदने के लिये जोहार दार्मा को जाने के लिये निकलने को तैयार हो रहे थे, उस दर्मियान में, ८–१० दिनों में उनके तीनों बच्चों का देहान्त हुआ था। अब भक्ति बहिन ने कहा, "अब इस दर्मियान में इस ताजे दुखः को लेकर मैं यहाँ पर अकेली नहीं रह सकती हूं।" उस समय उन्हें गुजरात पहुंचा कर समय पर लौटना असम्भव था, तो शान्तिलाल जी ने कहा, "अच्छा, तुम भी मेरे साथ ऊपर चलो"। तब उस लम्बी पदयात्रा में भक्ति बहिन ने पहाड़ के खण्डहरों में साथ दिया। पिण्डारी हिम खण्ड को भी गयी और पदयात्रा को अच्छी तरह निभाया।

१९२८ में गांधी जी अल्मोड़ा तक आये। तब शान्तिलाल जी ने उनकी तैयारी में एक मुख्य भूमिका अपनाई तथा १९२९ में जब बापू दुबारा आये तब वे एक हफ्ते तक कोसानी के डाक बंगले में रहे। वहां पर उन्होंने 'अनाशक्ति योग' की भूमिका लिखी और कार्यकर्ता उन्हें डोली में उठाकर बागेश्वर तक भी ले गये थे। उन्हें उठाने वालों में स्वर्गीय श्री गोविन्दवल्लभ पन्त भी शामिल थे।

१९३२ में नमक सत्याग्रह के दिनों में अल्मोड़ा में वन सम्बन्धी आन्दोलन चलाने के साथ-साथ (क्योंकि पहाड़ी जीवन में नमक से ज्यादा महत्त्वपूर्ण स्थान जंगलों का ही है) जंगलों पर पाबन्दी होने के विरुद्ध अल्मोड़ा की नगरपालिका के भवन के सामने झण्डारोहण की व्यवस्था हुई थी।

स्वभावत; श्री शान्तिलाल जी उसी रोज वहां पर हाजिर थे। बाद को उन्होंने दो लोगों से–गांधी जी से तथा श्री कृष्ण प्रेम से–एक ही प्रश्न पूछा, 'बहादुर और कायर में क्या अन्तर है?' दोनों ने एक ही उत्तर दिया, 'बहादुर अवश्य कांप उठता है, लेकिन भागता नहीं है।' इससे पता चलता है कि जब लाठी उनके शरीर पर गिरने लगी, तब उनकी मानसिक स्थिति क्या थी !

लाठी का प्रहार मुख्य तौर पर उन पर और श्री मोहन जोशी पर पड़ा था। श्री मोहन जोशी की खोपड़ी पर फ्रेक्चर आया। श्री शान्तिलाल जी की दो पसलियों तथा एक पांव पर फ्रेक्चर हुआ। अन्य लोगों को भी चोटें लगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्तिलाल जी ग्रस्पताल में ग्रलग कमरे में रखे गये थे। उस समय भक्ति बहिन के प्रसव का भी समय था। उन्हें भी उसी कमरे में भर्ती किया। डाक्टर ने शान्तिलाल जी से कहा "ग्राप करवट बदलियेगा।" उन्होंने कहा "मैं हिल नहीं सकता हूं।" तब डाक्टर ने कहा "तब ग्रांखें बन्द कीजियेगा" ग्रौर उसी हालत में एक बालक का जन्म हुग्रा।

उस लाठी चार्ज के बाद शान्तिलाल जी की एक विशिष्टता यह रही कि वे चलाने वाले सब ग्रधिकारियों के साथ मिलते रहे ग्रौर भारतीय तथा ग्रंग्रेजों, दोनों के साथ वर्षों तक उनका ग्रच्छा सम्पर्क रहा।

ग्रस्पताल में डाक्टर को संतोष नहीं था। कि क्या उनकी हड्डियां ठीक ढंग से जुड़ गई हैं या नहीं? ग्रतः एक्सरे के लिये उन्हें रानीखेत को ले जाने की व्यवस्था हुई। जब उन्हें बेंच में लिटाया जा रहा था, पुलिस ने हुक्म दिया, "तुम लोगों के नारों को बन्द कर दो।" शान्तिलाल जी ने इन्कार किया तो उन्हें सीधे वापस ग्रस्पताल में ले जाया गया ग्रौर जिन्दगी भर उनकी उन हड्डियों में काफी दर्द रहा है।

थोड़े दिन बाद श्री मोहन जोशी के दिमाग में गड़बड़ी हुई ग्रौर १९४० में उनका देहान्त हो गया।

राजनैतिक फेर में जिला परिषद के चुनाव में गड़बड़ी हुई। कांग्रेस की हार हुई ग्रौर जिला बोर्ड में कताई-बुनाई का काम बन्द हुग्रा। तब दो साल के लिए शान्तिलाल जी को हिमालय छोड़ना पड़ा। गोला गौकरणनाथ में उन्होंने श्री जमुनालाल बजाज की चीनी मिल में मजदूरों के बीच में सामाजिक कल्याण का काम किया।

बाद में श्री गांधी ग्राश्रम मेरठ ने ग्रल्मोड़ा पहाड़ों में ऊनी कताई-बुनाई केन्द्रों को खोलना तय किया ग्रौर श्री शान्तिलाल जी से उस काम को उठाने की विनती की, तब सहर्ष स्वीकार करके वे एक बार ग्रौर ग्रपने प्यारे पहाड़ों को लौट ग्राये थे।

१९४१ में मैं भी बापू की इजाजत से स्वास्थ्य सुधार की दृष्टि से श्री गांधी ग्राश्रम चनौहा पहुंची थी। तब से श्री शान्तिलाल जी से प्रत्यक्ष परिचय हुग्रा। इससे पूर्व की कहानी मुझे उनकी मजेदार गप्पों से मालूम हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधारण कद का पतला दुबला शरीर, चमकदार श्वेत टोपी। उनके परिवार के सब लोगों के बाल जवानी में सफेद हो जाते हैं। खूब मस्ती से हंसते-हंसते अपना परिचय देते थे, "राष्ट्रीय आन्दोलन में तीन हड्डियां टूटी, एक आंख और एक कान भी फूटा, यह है मेरी जिन्दगी की कमाई।" एक बार उनकी सफेद टोपी भी एक किस्सा बनी। सरकारी ऊन खरीदने के लिये जोहार दार्मा को जाने की बात थी। काफी रुपया नकद साथ ले जाने का सवाल था। जिलाधीश ने कहा, "तुम गारन्टी दे दो।" अपनी सफेद टोपी को उठाकर जिलाधीश के सामने मेज पर पटककर उन्होंने कहा, "यह मेरी गारन्टी है, इसके सिवा मुझसे कोई दूसरी गारन्टी नहीं मिलेगी" और वे सरकारी ऊन खरींदने के लिये नही गये ।

मेरे पहुंचते ही वे मुझे गांधीं जयन्ती में खादी बिक्रीं के लिये अल्मोड़ा ले गये थे। अल्मोड़ा कीं लगभग छः मील लम्बीं धार पर चढ़ाई-उतार में सुबह से शाम तक प्रभात फेरी के बाद घूमना, सुबह-शाम को विशिष्ट लोगों को भण्डार में आकर कपड़ा खरीदने का आह्वान, करना दिन में अन्य कार्यकर्ताओं के साथ मुहल्लों में और बाजारों में खादी की भारी गठड़ीं उठाकर घूमना, इस पर खाने-पींने का न कोई समय न कोई ठिकाना। कभी-कभी दिन में कई बार नाश्ता, कभी-कभी दिन भर फाका, अल्मोड़ा में जिस कारण से घूमो, लेकिन वहां पर घूमने का यह अर्थ।

उसके थोड़े दिन बाद ऊन खरीदने के लिये जोहार दार्मा की सालाना यात्रा का समय आया। मुझे साथ जाने का निमन्त्रण मिला। विलायत में अक्सर छुट्टी को पदयात्रा में बिताने के बाद, अब दस साल के बाद पदयात्रा का मौका मिला और यह भी उन सुन्दर पहाड़ों और जंगलों के बीच में, कितना आनन्द! और शान्तिलाल जीं जैसे व्यक्ति के साथ। सब जगह एकदम प्रेम और आदर का स्वागत, एक दम घनिष्ठता, मानों मैं भी पहाड़ों की ही बनी हूं। घूमते-घूमते दिन भर गप्प, अपने अनुभवों में बड़े विनोदी की मजेदार संस्मरण रामायण, महाभारत पुराणों की कहानियां इत्यादि।

भक्ति बहिन के साथ पहाड़ के ढालपर एक बहुत तंग पगडण्डी में घूमते-घूमते, भक्ति बहिन सामने, शान्तिलाल जी पीछे। सामने उनकी ओर आ रहे हैं एक भैंस और उसके पीछे उसका ग्वाला। "तुम अपनी औरत को हटाओ।" "मेरी औरत गिर जायेगी, तुम अपनी भैंस को हटाओ।" विवाद चलता रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आखिर में भैंस को अकल आयी और वह अपने आप नीचे की ओर हट गयी। सैकड़ों छोटी-मोटी मजेदार कहानियां, समय बड़े आनन्द से बीत गया।

मुन्स्यारी को पहुंचने की सुबह को, तीन बजे गिरगांव में डाक बंगले से उठकर, कालामुनी की चोटी तक पंचचूली पर सूर्योदय देखने के लिये पहुंचना था। हम अंधेरे में पहुंचे। बड़े मजे से, 'तुम मुझे अपना मफलर दे दो अपने दस्ताने दे दो ! बस अब मैं सो जाता हूं। उजाला होने पर मुझे उठा देना।' और दो मिनट में मजे से लेटकर गहरी नींद में सो गये।

मुन्स्यारी में पन्द्रह-बीस दिनों तक ठहरना पड़ा। सुबह को पायुं (जापानी चेरी) के फूलों से लदे पेड़ों के नीचे, श्वेत पंचचूली के सामने पढ़ने, लिखने का काम, दोपहर को खाना खाकर मुन्स्यारी के विभिन्न गांवों में लोगों से मिलकर, नमकीन, चाय और सत्तू के स्वागत से, तिब्बत के समाचार तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के समाचारों का आदान प्रदान होता, घर-घर में बिल्कुल भाई-भाई जैसा सम्बन्ध। भाईयों और बहिनों में गांधी जी तथा अन्य नेताओं के ताजे समाचार पाने की भूख से आश्चर्य होता था। बहिनों में अपने परम्परागत कदम को अब नया राष्ट्रीय महत्व मिला और कातते-कातते ये गर्व से नयी कताई के गीत गाती रहती थी। उन्हें 'ज्ञान' की बहुत पिपासा थी। हर साल तिब्बत को जाने के खतरनाक मार्गों पर घूमने से उनकी आंखों में एक दूर-दर्शिता की झलक मिलती थी, जो मैदान के लोगों की आंखों में नहीं मिल सकती है, और गुजरात से आये हुये एक व्यक्ति ऐसे हार्दिक तरीके से मिल रहे हैं—हमारी राष्ट्रीय एकता का कैसा प्रतीक था।

उसी समय अल्मोड़ा के मुख्य नेता श्री हरगोविन्द पंत सत्याग्रह से जेल से छूटने के बाद घोड़े पर सवार होकर वहां पहुंचे। पहली सभा में उन्होंने गर्व से कहा, "आज बावन साल की उम्र में मुझे प्रथम बार मुन्स्यारी पहुंचने का सौभाग्य हुआ।" जब गुजरात से आये श्री शान्तिलाल जी वर्षों में हर साल पैदल पहुंचते थे और मैं भी अब पहाड़ में दो माह तक रहने के बाद पहुंची। उस समय में यह स्थान कितना दूरस्त मालूम होता था।

मुन्स्यारी से गोरी गंगा के एकान्त किनारे पर तीन दिनों की सुन्दर यात्रा और फिर मेले का शोरगुल और पहाड़ों से राष्ट्रीय नारे कितने जोश से गूंजते थे। बस व्यापार गौण, राष्ट्रीय आन्दोलन प्रमुख है, ऐसा लगता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ से ऊपर धारचूला तक जाना हुआ। लेकिन व्यापारी लोग अब तक तिब्बत से लौटे नहीं, तो ऊपर रूँग तक गये और कुछ दिन वहां पर राष्ट्रीय विचार की शिक्षिका रुकमणी बहिन के पास रहे।

जोहार में राष्ट्रीय आन्दोलन और आर्य समाज के प्रचार से काफी सौहार्द लगा। लेकिन दार्मा में एक बिलकुल दूसरा वातावरण था। रंग वग याने युवकों और युवतियों के एक प्रकार का पारम्पारिक नाईट क्लब वहां था।

एक दिन शाम के समय शोशा गांव में पहुंचते पहुंचते खूब चिल्लाहट सुनाई दी, सारा गांव खाली था, उसमें कोई नहीं मिला। लोगों के लौटने पर मालूम हुआ कि हाल ही में रंग वंग में दूसरे गांव के लड़कों ने इस गांव की लड़कियों के साथ का एक लड़की को भगाने का सलूक किया। आज वही कार्य सम्पन्न हुआ।

सुबह को हम उस गांव में गये। लड़की को वापस लाने के आशय से। हमें बताया गया कि रात को शादी हुई। लड़की बिलकुल राजी है। अब वह किसी सूरत में वापस नहीं आ सकती है। "आप लोगों ने ऐसा क्यों किया," पूछने पर, उत्तर मिला कि उसके पिता जी ने उसे देने से इनकार किया तो हम उसे उठा लाये हैं। मानो ऐसा करना एक साधारण बात हो।

वहाँ से हम रूंग पहुंचकर सुधारक शिक्षिका रूकमणी देवी के पास रहे। बहुत रमणिक दृश्य था। विलायत के पार्कलैन्ड की याद आती थी, वहां की बहिनों को उद्योगशीलता देखकर आश्चर्य होता था। सुबह को चार बजे या इससे भी जल्दी उठकर ये अपने राँच पर लगती थी। दिन भर खेतो में और जंगलों में काम करके शाम को खाना बनाकर बाद को आग तापती तापती ये आधी रात तक अपना तकुआ चलाती रहती थी। भाइयों और बहिनों, सब के प्रेम की वर्षा हम लोगों पर पड़ती थी, क्योंकि इतनी दूर क्षेत्र तक पैदल चलकर और कौन आता होगा।

फिर ऐसी पगडण्डी से, जिसके बारे में एक बहिन ने अपने पतिदेव से कहा, "आप मुझे कैलाश तक पहुंचाकर सुरक्षित वापस लाये हैं, लेकिन मुझे मारने के लिये इधर लाये हैं।" हम नारायण आश्रम तक पहुंचे, यह सोचकर कि अब लोग एक दो दिन में अवश्य तिब्बत से वापस पहुंच जायेंगे। लेकिन इधर भी काफी दिनों तक ठहरने का अवसर मिला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रम अभी ही बन रहा था। मन्दिर तक भी कच्ची झोपड़ी। नारायण और उनके साथी इस नये जीवन के उमंग में मस्त थे। उस मस्ती में श्री नारायण, या शान्तिलाल जी, कौन आगे हैं यह समझना कठिन था। दिन भर श्वेत हिमालयों के सामने धूप सेक कर कताई, लिखने, पढ़ने का काम सूर्यास्त को देखकर मन्दिर में मस्ती से "नारायण नारायण ओम" बहुत देर तक गूंजता रहता था फिर बाद में खाना खाकर शाम को कच्ची झोपड़ी में विशाल "कैम्प फायर" जैसी आग की रोशनी में गपशप, कतुआ, मस्ती से "नारायण नारायण ओम" गुंजता रहता था। इतने प्रेम और भक्ति के वातावरण में रहना मेरे लिये एक नया अनुभव था। शान्तिलाल जी के लिये वह स्वाभाविक था। उस मस्ती में ही उनके जीवन की सफलता और सन्तोष की झलक मिलती थी। इसमें उनके जीवन की आकांक्षाओं की पूर्ति होती थी।

आखिर में नीचे धारचूला तक और कुछ दिनों तक तिब्बत से लौटे हुए व्यापारियों के बीच में रह कर, ऊन खरीद करने बागेश्वर की ओर, और फिर चनौदा वापस आये।

यह एक ऐसी यात्रा थी जिसके लिये श्री मोहन जोशी को छोड़कर शायद ही कोई और पहाड़ी नेता तैयार हो सकता था। लेकिन यह शान्तिलाल जी का वार्षिक कार्यक्रम था, और इसलिये उन दूर इलाकों में लोग उनपर इतना विश्वास और प्रेम करते थे और उसमें वे अपने जीवन की सफलता और आनन्द पाते थे।

जैसे हम जौलजीबी से अस्कोट की ओर ऊपर चढ़ रहे थे, वैसे ही मुड़कर, गोरी और काली नदियों के संगम को देखकर वे कहने लगे, "पता नहीं अगले साल भी यहां पर आना होगा।" यह एक भविष्यवाणी जैसी हो गयी थी।

उत्तरायणी को बागेश्वर मेले में भी कितना जोश! और हम दोनों पर कितने प्रेम की वर्षा! मैं, शान्तिलाल जी के साथ लम्बी पदयात्रा में घूम रही हूं। सेवाग्राम से आयी हुई हूं, इससे ज्यादा परिचय की लोगों को जरूरत नहीं थी।

समय बीतता गया, मानसून की शुरूआत में घनघोर वर्षा में कोसी नदी में बाढ़ आ गयी। सोमेश्वर का पुल टूट गया। उस समय आचार्य कृपलानी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुचेता बहिन के साथ प्रथम बार पहाड़ में अपने गांधी आश्रम को देखने आये हुये थे। लौटने में उन्हें बस तक पहुंचाने के लिये नदीं पार करने के लिये उन्हें गूंजती हुई प्रचण्ड धारा को पार करने के लिये पीठ पर उठाकर ले जाना पड़ा।

वे ९ अगस्त की ऐतिहासिक बैठक में जाने के लिये लौट रहे थे। बहुत जल्दी में खबर आयी थी कि गाँधी जी और सब नेता लोग गिरफ्तार हुए हैं। गांधी जी "करो या मरो" का नारा देकर गये हैं। चारों ओर हलचल हो रही है–कहीं पुल तोड़ा गया, कहीं आगजनी हुई।

गांधी आश्रम के कार्यकर्ताओं में भी जोश चढ़ा। शान्तिलाल जी बहुत मुश्किल से उन्हें काबू में रख पा रहे थे। (व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने के लिये गांधी जी ने उन्हें इजाजत नहीं दी थी, उन्हें रचनात्मक कार्य करते रहने की हिदायत दी थी। इसलिए वे अभी तक उस हिदायत को मानना अनिवार्य समझ रहे थे। हिंसा और तोड़-फोड़ का कार्यक्रम भी उन्हें समझ में नहीं आ रहा था।)

सालम और सल्ट में गोलियाँ चली—कई लोग मर गये थे। वहाँ के गांवों में स्त्रियों को हद ही तकलीफ का सामना करना पड़ रहा था। अल्मोड़ा जेल खचाखच भर गया था। फिर भी शान्तिलाल जी अपने कार्यकर्ताओं को अपने दैनिक कार्य में रोक पा रहे थे! अत्याचार का विरोध करने का हिंसा नहीं, रचनात्मक कार्यक्रम है।

नजदीक के कुछ लीसा टाल फूंक दिये गये थे। आश्रम वासियों पर शंका करके इलाका हाकिम गोरा पलटन लेकर पहुंचे। गांव वाले उन पर प्रहार करना चाह रहे थे। शान्तिलाल जी ने उन्हें रोका–किसी को आश्रम के अहाते में नहीं आने दिया। कार्यकर्ताओं के साथ अपने प्यारे झण्डे को (जिसके लिए १९३२ में उन्होंने लाठी की मार सहन की थी) घेरकर, शांति से पुलिस को उसे गिराने दिया। वे चाहते थे कि किसी भी कीमत पर अपने इलाके के निर्दोष निवासियों पर गोलीं न चले, और वे इसमें सफल रहे, लेकिन हम अच्छी तरह समझ सकते हैं कि अपने आश्रम के झण्डे को गिरते देखकर उनके मन में कितनी गहरी वेदना और द्वन्द चल रहा होगा। शान्ति से उन्हें गिरफ्तार करके, आश्रम पर ताला लगाकर पलटन वाले उन सबको अपनी गाड़ियों में भरकर ले गये थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तय हुआ था कि उनकी गैरहाजरी में भक्ति बहिन ऊपर चौड़ा में कुछ मित्रों के साथ रहेंगी। लेकिन दमन की परिस्थिति देखकर लोगों ने घबड़ाकर शर्त लगाई कि वह हमारी बहिनों की तरह मिल के कपड़े पहनें, खादी को पहिनना छोड़ दें।

उस समय भक्ति बहिन के पास एक छोटा सा बालक था (जिसकी बाद को मृत्यु हुई)। उनका सिर्फ एक बेटा, (जिसे उनकी जेठानी जी ने बम्बई में पाला) अन्त तक बचा रहा। लेकिन उन्होंने दृढता से कहा, "हालांकि मुझे आंदोलन में कुछ नहीं करना है, न मुझे सरकार के विरुद्ध कुछ करना है, लेकिन मैं किसी भी हालत में खादी पहिनना नहीं छोड़ सकती हूं।" तब कई स्थानों पर उन्हें सुरक्षित रखने के सुझाव आये और असफल रहे। अंत में जब शान्तिलाल जी का तबादला अल्मोड़ा जेल से बरेली को हुआ, तब उन्होंने बम्बई जाकर अपनी जेठ-जेठानी के पास रहना तय किया।

शान्तिलाल जी और कुछ कार्यकर्ता नजरबन्द थे। इस गांव वालों के साथ-साथ आश्रम के पांच कार्यकर्ताओं पर भी लीसा टाल पर आग लगाने का आरोप था। उस सिलसिले में अल्मोड़ा को आना जाना होता रहा। अन्त में वहां पर गांधी आश्रम पर भक्ति बहिन के साथ डेरा डालना पड़ा। सख्त सजायें दी जा रही थी, किसी को मौत की सजा, किसी को बीस साल की सजा और १००० रु० जुर्माना, वातावरण भयावह था। कोई भी वकील, जो अपने को गिरफ्तारी से बचा पाये हो, उनकी पैरवी के लिए खड़े होने को तैयार नहीं थे। मुश्किल से मैं एक मुखतियार को तैयार कर सकी, और जब हम लोग पैरवी करने के लिये जेल की अदालत में पहुंच गये तो सब लोग चौंक उठे। पैरवी करने में अदालत का तमाशा देखकर आश्चर्य होता था। लेकिन पैरवी होने से अपेक्षाकृत हल्की सजा मिली। कमिश्नर ने गांधी आश्रम के कार्यकर्ताओं को फांसी पर लटकाने की धमकी दी—उन्हें सिर्फ पांच साल की सजा और २०० रु० का जुर्माना हुआ।

तब गांवों में घूमने का चक्कर परिवार के लोगों को सांत्वना देने के लिए लगने लगा। बहिनों और बच्चों की असहाय हालत को देखकर (उनकी जमीन, घरेलू सामान और जेवर नीलाम होने लगे थे) किन्तु बहिनों की हिम्मत और सहन शक्ति को देखकर आश्चर्य होता था। आसपास के गांवों में घूमकर अल्मोड़ा को पैदल आने जाने में मिर्तोला आश्रम से होकर आना या जाना, यह क्रम चला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९४३ के अन्त में एक दिन कौसानी को लौटने के मार्ग पर मैं मिर्तोला में रुकी थी। एकदम समाचार मिला कि शान्तिलाल जी जेल से छूट कर अलमोड़ा पहुंचे हैं और मुझे तुरन्त बुला रहे हैं। मैं सोलह मील चढ़ाई-उतार में दौड़कर गयी, तब उन्हें खूब जोश और मस्ती में पाया। छूटने पर वे गिरफ्तारी के स्थान के लिए टिकट ले सकते थे या जन्म स्थान के लिये। पहले स्वभावत: उन्होंने राजकोट का टिकट मांगा, अपने परिवार से मिलने के लिए, लेकिन जब टिकट कटने लगे तो एकदम उन्हें ख्याल आया कि मेरे साथियों के बच्चों की हालत देखे बिना मैं अपने बच्चे के पास कैसे जा सकता हूं ? तो वे अलमोड़ा आ गये थे, और अब बरौरो, कत्यूर, सालम और सल्ट में घूमने के लिए इच्छुक थे। मैं भी अपने कार्यक्षेत्र को बढ़ाना चाहती थी और कभी से सालम को जाने की इच्छा थी। लेकिन सालम का नाम सुनकर लोग इतने भयभीत थे कि कोई भी वहां के एक ऐसे व्यक्ति का नाम मुझे देने को तैयार नहीं था जो मुझे जेल वालों के घर का पता बतला सके। हालांकि सालम में रोज दर्जनों लोग अदालत इत्यादि के कामों से आते जाते रहते होंगे। इसलिए तब तक मैं वहां पर नहीं जा पाई थी।

अब तय हुआ कि पहले मिलकर बरौरो, कत्युर में घूमकर हम फिर सालम चलेंगे। लेकिन खाली हाथ कैसे जाया जाय ? इसलिए तय हुआ कि मैं सीधे कौसानी को लौटूंगी और शान्तिलाल जी अलमोड़ा में चन्दा करेंगे।

कुछ दिन के बाद, जब वे कौसानी आये तो वे ७००/८०० रु० अपनी जेब में लेकर आये। शायद ही किसी ने उन्हें मदद देने से इन्कार किया होगा, यहाँ तक कि कई सरकारी अधिकारियों ने भी सहर्ष "गुप्त दान" दिया था।

वे दो, चार दिन कौसानी में मेरे साथ ठहरे थे और वे मेरे साथ जंगल से लकड़ी लाने तथा नल से पानी लाने के काम में मदद देते रहे। वे कहने लगे "जो काम गांधी जी मुझसे नहीं करवा पाये, वही काम तुमने मुझसे ही करवाया।"

गांव में उन्होंने गीली आंखों से बच्चों का कष्ट देखा, लोगों को सांत्वना देकर उनके परिवार वालों की ताजी खबर देकर उन्हें आवस्थ किया और खूब प्रेम पाया।

सालम के खण्डहरों में घूमकर वहां के कष्ट की कहानियाँ सुनकर तथा जेल जाने वालों की हिम्मत की कहानियाँ सुनकर, उनमें अत्यन्त दुःख और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यन्त जोश, दोनों उमड़ा। एक बूढ़े की भावना को देखकर, वे जोश से चिल्लाये–'वाह! बहादुर बेटे के बहादुर बाप !'

लौटने में हम मिर्तोला के मार्ग से आये। वहां पर उनका स्वागत खूब भक्ति और प्रेम से हुआ। यशोदा भाई और श्री कृष्ण प्रेम के साथ पुराने संस्मरणों की याद ताजी आयी। मन्दिर के सौंदर्य से उसमें की प्रेम और भक्ति से श्री कृष्ण प्रेम के गूंजते हुए भजनों से वे भाव बिभोर हुए। हम मिलकर आस पास के जंगलों में घूमे। एक रोज दण्डेश्वर में खिचड़ी बनाकर वन भोज किया। अन्त में बिन्सर के मार्ग से अल्मोड़ा को लौटने निकले।

बिन्सर में हिमालय का भव्य दर्शन करके रात को वहां पर पड़ाव में रहने का विचार था। लेकिन हिमालयों पर बादल लगे थे और इतफाक से सब दुकानें बन्द थी। खाली में चौकीदार मिला नहीं–आगे बढ़ना पड़ा। अन्त में लगभग दस बजे रात को हम हीरा डुगड़ी एक मित्र के यहां पहुंचे थे।

दूसरे दिन उधर के मित्रों से मिलकर तथा कुछ घन्टों तक श्री आनन्दी माई माँ की स्नेही प्रेम वर्षा पाकर, हम यह सोचकर अल्मोड़ा पहुंचे कि कल हम सल्ट के लिए निकलेंगे, और वहां से शान्तिलाल जी अपने परिवार से मिलने के लिए बम्बई को चलेंगे। लेकिन विधाता का विधान दूसरा था। वहां पहुंचकर हम खाने को बैठे कि हमारे मेजवान ने आकर खबर दी कि घर पर पुलिस का घेराव हुआ है। खाना खाकर शान्तिलाल जी का वारन्ट सामने पेश किया गया (वास्तव में थानेदार उसे लेकर मिर्तोला तक हमारे पीछे पहुंचे थे, लेकिन आश्रम की पवित्र भावना को सोचकर उन्होंने वहां पर वारन्ट लेकर आना ठीक नहीं समझा और लौटने के मार्ग में वे कहां तक हमारे बराबर चल सकते थे ?) रात को ग्यारह बजे मैंने शान्तिलाल जी को थाना पहुंचाकर उनसे विदाई लीं। उस दर्मियान वे अल्मोड़ा जेल में नजरबन्द रहे। मुझे कोसानी में अपने बंगले से दो मील के घेरे से बाहर नहीं जाने का हुक्म मिला और उस पाबन्दी को तोड़कर मैं खुद जेल पहुंची।

दो महीने की नजरबन्दी काटकर शान्तिलाल जी रिहा हो गये, लेकिन गांधी आश्रम को सूचना मिली कि यदि वे अल्मोड़ा में घूमते रहेंगे तो वे फिर गिरफ्तार हो जायेंगे। इसलिये बच्चों से मिलने की छुट्टी के बाद, गांधी आश्रम ने उन्हें काम करने के लिये काशमीर को भेजा था।

मुझे सिर्फ दो माह की सजा हुई, और अप्रैल में छूटने पर मैंने तय किया कि मैं बम्बई में उनसे तथा उनके परिवार से मिलूंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहां पर पहुंच कर मैंने पाया कि वे राजनैतिक पीड़ितों के लिये चन्दा करने की तैयारी में काफी व्यापक सम्पर्क कर रहे हैं।

वहां पर भी घर घर घूमने का मौका मिला। आश्चर्य होता था कि एक गुजराती साथी, इस प्रकार गांधी जी की भक्ति से अपने जीवन को हिमालयों में मस्ती और आनन्द, त्याग और प्रेम से बिता रहे हैं, लोग कितना भावुक हो जाते थे! (मुझे तो वह एक साधारण स्वाभाविक बात लग रही थी, देश की धनी बस्तियों से बचकर, आनन्द का जीवन बिताने का अवसर ऐसे विशेषाधिकार (Privilege) मिलने से मैं कृतज्ञता से भरती थी।) इधर भी दिन भर पैदल, बस, रेल से भटक कर, मस्ती के संस्मरण और दो तीन हफ्तों में लगभग ३००० रु० का कोष इकठ्ठा हुआ।

उसके बाद मैं पहाड़ को लौटी और शान्तिलाल जी आश्रम के काम के लिये काशमीर गये।

जेल से छूटते समय मुझे सूचना मिली कि मैं चाहूं तो भारत में जहां चाहूं घूम सकती हूं—लेकिन मुझे अल्मोड़ा जिले में घूमने नहीं दिया जायेगा।

कुछ दिनों तक मैंने नैनीताल जिले में कस्तूरबा निधि के लिये चन्दा इकट्ठा करने में मदद की, लेकिन दिल में संतोष नहीं हुआ और दो चार माह के बाद सालम जाने पर, लौटने पर मैं फिर गिरफ्तार हुई। इस बार मुझे एक साल की सजा मिली। उस दर्मियान में शान्तिलाल जी के आखिरी छोटे बालक का देहान्त हुआ था। अब सिर्फ बम्बई में पलने वाले पुत्र बचे थे। उस वियोग को शान्तिलाल जी ने दृढ़ता से सहन किया। भक्ति बहिन ने भी कम धीरज का प्रदर्शन नहीं किया।

अक्टूबर १९४५ में जेल से छूटने के बाद मैं सीधे गावों में घूमने गयी। सालम में भयभीत वातावरण को देखकर मैं अकाक रह गयी। किसी को मुझ से बोलने की हिम्मत नही थी। रात को मैं एक पेड़ के नीचे पंखी में लिपटकर लौटने लगी। तब उस "बहादुर बाप" ने चुपके से मेरे पास आकर कहा "बहिन जी, आपके लिये खाना बनाकर रखा है, बिस्तर भी आपके लिये तैयार है। लेकिन सुबह को उजाला होने पूर्व निकल जाइये और से मत कहिये कि आप रात को कहां रही।"

सालम से मैं बागेश्वर मेले के लिये सीधे गांव के साथियों के साथ निकली और वहां पर श्री शान्तिलाल जी ऊपर से ऊन खरीद कर लौटकर पहुंचे थे। इधर भी और ऊन खरीदनी थी। अब वे कायम तौर पर पहाड़ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहने के लिये लौटे। रास्ते में एक खुपिया ने मेरे साथ कुछ अन्यायी बर्ताव किया, इससे वे नाराज होकर सीधे डी. एस. पी. के पास गये। डी. एस. पी. इतफाक से उनका पुरारा मित्र था, जो लाठी चार्ज के समय में थानेदार रहे।

तब शान्तिलाल जी फिर गांधी आश्रम चनौदा के काम को संभालने लगे। सरकारी तालाबन्दी इत्यादि से जो हानि आश्रम को सहन करनी पड़ी, उसके लिये सरकार पर एक लाख की हानि का मुकदमा चलाकर वे उसमें जीत गये थे।

तब वे फिर आश्रम की तरफ से गांवों में कताई बिनाई का काम चलाने लगे। (वैसा ही, पहली बार जब वे जेल से छूट कर गांवों में घूम रहे थे। तो उन्होंने खुश होकर देखा कि आजकल घर घर में कतुआ चल रहा है। वे कहने लगे–"इतने वर्षों तक गांधी आश्रम का काम करके "कातो! कातो!" चिल्लाते चिल्लाते, बड़े मुश्किल से लोग मानते थे। लेकिन अब सरकार ने गांधी आश्रम चनौदा में काम भी बन्द किया और घर घर में गांधी आश्रम चलने लगा है।") यह काम करते करते वे स्थानीय अन्यायों, घूसखोरी, काला बाजारी, गरीबों तथा हरिजन जातियों के शोषण के विरुद्ध आवाज उठाते रहे। मैंने लक्ष्मी आश्रम, कौसानी में बुनियादी तालीम का काम शुरू किया था। उसमें वे काफी दिलचस्पी लेने लगे और चन्दा करने के लिये जगह जगह मेरे साथ घूमने लगे। एक साल हम कलकत्ता गये। दूसरे साल लखनऊ और कानपुर। सब जगह उनका परिचय निकलता था, पुरानी यदि नहीं हुई, तो नयी होती ही थी। कभी असफल होकर नहीं लौटना पड़ा।

समर्पित कार्यकर्ताओं के सामने अक्सर एक ही प्रश्न उठता है। योगक्षेम के लिये संस्था का सहारा लेना पड़ता है। अब सवाल उठता हैं, क्या वह सस्था उन्हें अपने समर्पित कार्य को पूरा करने का अवसर दे रही है, या क्या ये संस्था के कार्यकर्ता हैं ? तो अब गांधी आश्रम में आवाज सुनाई देने लगी 'अब अहाड़ के कार्यकर्ता पहाड़ के काम में सीमित नहीं रहेंगे, उन्हें मैदान में भी काम करने को तैयार होना पड़ेगा।' कई बार प्रभाव डालने से मामला टल गया, लेकिन आखिर में शान्तिलाल जी का तबादला मथुरा के भण्डार को हुआ।

विस्तार से सामाजिक काम करने वाले को अब गज नापने में काफी संकुचितता महसूस होना स्वाभाविक था। लेकिन फिर भी अनुशासन मानकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने वफादारी से किसी प्रकार अपने को संभाला और मथुरा के सार्वजनिक जीवन में भी एक स्थान पा गये। लेकिन फिर वहां से उनका तबादला देहरादून के छोटे भण्डार में हुआ। यह दूसरा धक्का उनसे सहा नहीं गया। आखिर में बीमार होकर उन्हें गांधी आश्रम को छोड़ना पड़ा।

पहाड़ में आकर वे कुछ स्वस्थ हुए और अल्मोड़ा में एक मित्र के मकान में दो छोटे कमरों में रहने लगे। कुछ दिनों के बाद वे गांधी तत्व प्रचार का काम करने लगे (वैसा ही—उन्हें उस काम के सिवा जीवन में और क्या काम करना था ?) लेकिन एक औपचारिक सम्बन्ध के साथ आजीविका का साधन भी जुड़ गया था। लेकिन काम चलाने के लिये, उन्हें अपने योगक्षेम के सिवा और कुछ नहीं मिला था। उस छोटे मकान में वे अपनी ही थोड़ी सी निजी पुस्तकों से प्रचार का काम करते रहे। लेकिन आखिर में, निरीक्षण होने पर गांधी शान्ति प्रतिष्ठान को रिपोर्ट दी गयी कि यह केन्द्र बेकार है। उसमें कोई साधन नहीं हैं। अतः उसे बन्द किया जाए।

उस धक्के के बाद शान्तिलाल जी को दो बार बड़ा जबर्दस्त हृदय का दौरा हुआ था। सिर्फ भक्ति बहिन की भक्तिमय समर्पित सेवाओं की वजह से वे बच पाये थे। नहीं तो और कोई उम्मीद नहीं थी। (वैसा ही, उस समय तक भक्ति बहिन भी पुराने दमे के रोग से काफी परेशान रहती थी। लेकिन शान्तिलाल जी सेवा में तल्लीन रह कर वे अपने कष्टों को बिलकुल भूल जाती थी।)

तब से शान्तिलाल जी साल के नौ महीनों तक अल्मोड़ा में रहकर, रोज धीरे धीरे, हांफते हांफते, ऊपर बाजार तक चढ़ते हैं तथा "जनदर्शन" के लिये गांधी आश्रम के खादी भण्डार में बैठते हैं।

देहातों से काफी पुराने मित्र उनसे मिलने आते हैं (हालांकि अब पुराने साथियों की संख्या धीरे-धीरे घटने लगे है।) और अब भी वे अत्याचार और शोषण के विरूद्ध कड़ी आवाज उठाते रहते हैं।

उन्हें साहित्य प्रकाशन का भी शौक हो गया है। उन्होंने तीन स्मृति ग्रन्थों का सम्पादन किया—नारायण स्वामी स्मृति ग्रन्थ, अल्मोड़ा में राष्ट्रीय कार्यक्रम के बारे में स्मृति ग्रन्थ तथा अल्मोड़ा के एक एक स्वतन्त्रता सैनानियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का संक्षिप्त विवरण। उस सम्पादन कार्य में वे उतनी सावधानी और सूक्ष्मता से काम करते हैं, जितना उन्होंने जीवन भर में हर काम में किया है।

जिस प्रकार वे धार्मिक व्यक्ति हैं, उस प्रकार के वे मार्मिक और प्रभावशाली लेखक भी हैं। लेकिन अब धीरे धीरे अपनी भक्ति भावना के बावजूद भी वे काफी कठिनाई से पुराने वेगों को शान्त करके विरक्ति की ओर बढ़ रहे हैं।

उनके जीवन की एक बड़ी थाति गांधी जी के लिखे पत्र थे। यह उनके लिये एक अनमोल थाति थी। लेकिन हाल ही में उन्होंने अलमोड़ा कालेज के शोध विभाग को उन्हें अन्य कागजातों के साथ समर्पित किया है—इससे पता चलता है कि अब आखिरी दिनों में उनके जीवन की वृति और दिशा क्या बन रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिरयात्री—श्री सुन्दरलाल बहुगुणा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परम संकल्प

● सुन्दरलाल बहुगुणा

१४ मई को भागीरथी के उद्‌गम स्थल गोमुख में मैंने लोक जीवन के अपने दीक्षा गुरू अमर शहीद श्री देव 'सुमन' और प्रेरणा स्त्रोत तथा मार्ग दर्शक गुरूजनों व साथी-सहयोगियों का पुण्य-स्मरण करके अपना जीवन हिमालय के पर्यावरण की रक्षा के लिए समर्पित करने का संकल्प लिया है। मैं प्रकृति और मनुष्य के बीच प्रेममूलक सम्बन्धों की स्थापना के लिए कार्य करूंगा। जहां प्रकृति का विनाश होता हो, उसका प्रतिरोध करूंगा। यह कार्य भागीरथी की प्रचण्ड धारा के विपरीत तैरना जैसा है, परन्तु मुझे विश्वास है कि आप जैसे प्रकृति प्रेमियों के सक्रिय सहयोग से यह पूरा होगा।

पिछले चार-पांच वर्षों से हिमालय के पर्यावरण की रक्षा का सवाल चिपको आन्दोलन के माध्यम से प्रकाश में आया है, परन्तु मुझे लगता है कि उसकी मूल भावना – पेड़ और मनुष्य एक बड़े परिवार के सदस्य हैं – आज की भोगवादी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था पर प्रहार करने वाली है और इसलिए इस विचार के विरोध में सब शक्तियों का संगठित होना स्वाभाविक ही था। इस विरोध से तत्कालिक लाभ के लिए भावी पीढ़ियों के हितों का बलिदान हो रहा है, जो सर्वोदय के दो प्रत्यक्ष कार्यक्रमों – ग्राम स्वराज्य और सम्पूर्ण क्रान्ति–के साथ मेल नहीं खाता है।

सेवा के उपेक्षित क्षेत्रों को अपनाना मेरे लिए हमेशा ही आनन्द दायक रहा है। मेरे कार्य क्षेत्र की महिलाओं का यह नारा कि "क्या है जंगल के उपकार ? मिट्टी, पानी और बयार" मेरे लिए जीवन-मन्त्र बन गया है और इसलिए एकांगी होने के आरोप के जोखिम को उठाकर भी अपनी सारी शक्ति इस काम में लगाने का निश्चय किया है। मेरे बुजुर्गों और सहयोगियों की विभिन्न प्रवृत्तियों में हिस्सा लेने की मुझसे अपेक्षा रहती है, उनसे मुझे मुक्त समझ सकें और इस दिशा में कार्य करने के लिए आपका आर्शीवाद और सहयोग मुझे मिले, इसलिए यह संकल्प लेते समय मैंने इस पुण्य स्थल पर आपका पुण्य स्मरण कर संकल्प लिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी चिदानन्द : पूर्व से लेकर अब तक की यात्रा

● सुदर्शन मैठानी

दिसम्बर १६७६ के अवसर पर दिव्यजीवन संघ, शिवानन्द नगर द्वारा प्रकाशित 'लाइट फ्रोम द ईस्ट' शीर्षक अपने एक निबन्ध में महासचिव स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज ने 'पूर्व' का मात्र भौगोलिक अस्तित्व न मानकर उसके द्वारा संसार को दी गई समृद्ध परंपरा और दिशा बोध के महत्व को स्वीकार किया है। वे इसे संक्षेप में बौद्धिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक नवजागरण का आदिस्रोत बताते हैं। जागृति का यह स्रोत भारतवर्ष से लेकर पश्चिम तक अविच्छिन्न रूप से एक लंबी अवधि तक बहता चला गया। इसी अवसर पर महात्मा बुद्ध से लेकर वर्तमान तक की कड़ी में स्वामी शिवानन्द और स्वामी चिदानन्द के योगदान को स्वीकार करते हुये, उन्होंने अन्त में रवीन्द्रनाथ टैगोर की इस उक्ति के साथ अपनी सहमति प्रकट की है कि 'पूर्व अन्ततः पूर्व ही है और पश्चिम, पश्चिम ही है।'

स्वामी चिदानन्द जी के पावन जन्मदिवस पर ये पंक्तियां उन सहस्रों साधकों और प्रशंसकों की भावना को मध्येनजर रखते हुये लिखी जा रही हैं, जो कि समय समय पर उनके संपर्क में आये, उनसे मिले और दिशाबोध पाया। इस बीच उनकी जीवन यात्रा में कई आयाम और कई पड़ाव आये हैं, कई संस्कृति और जीवन मूल्य उनसे जुड़ गये हैं। दिव्यता और सात्विक दृष्टिकोण ने एक ओर उन्हें आध्यात्मिक जगत में प्रतिष्ठित कर दिया, तो विलक्षण प्रतिभा और वैज्ञानिक दृष्टिकोण उन्हें बौद्धिक धरातल की ओर ले गये। प्रगतिशील विचार और युगधारा को पहचानने की जागरूकता तीसरी ओर उन्हें महात्मा गांधी और 'लोकमान्य' के सामाजिक चिन्तन क्षेत्र में ले गई तो दिव्य जीवन संघ की विभिन्न शाखाओं को संगठित करने की प्रतिभा ने उन्हें एक 'आर्गनाइजर' के रूप में पहचाना। अनेकता और विविधताओं के कारण वस्तुतः उनका सीमांकन किया जाना सम्भव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। संक्षेप में वे सार्वभौमिक जीवन लेकर चले हैं।

उदारतावादी चिन्तन के क्षणों में—

स्वामी जी की जीवन यात्रा का पहला चरण बुद्ध और उदारतावादी दृष्टिकोण से शुरू होता है। बुद्ध की दया, त्याग और करुणा की भावना ने आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व मानव मात्र के लिये असीम प्रेम और मैत्री की भावना को जन्म दिया। बुद्ध की यह भावना लगभग पांच सौ वर्ष उपरान्त पश्चिम में ईसा ने अपनाई और ईसा के बलिदान हो जाने के पश्चात बुद्ध के उदारतावादी दृष्टिकोण को पुनर्प्रतिष्ठा मिल गई। धार्मिक तथा नैतिक जीवन के अनेक नेता एक लम्बे समय तक इसी उदारतावादी दृष्टिकोण का अवलंबन करते रहे, स्वामी चिदानन्द इसे व्यवहार के धरातल पर अंकित कर देते हैं। 'एपस्टल आॅफ प्रेयर' में उन्होंने सभी राग, द्वेष और मलिनताओं से मुक्ति का उपाय निर्मल-सहज़ भावना बताई हैं। उनके अनुसार कल्याण की अकांक्षा समस्त संघर्षों का अन्त करने और नये युग सृजना करने में सक्षम है। व्यक्ति के प्रति उनकी यह भावना आज के ऐटोमिक वारफेयर के संदर्भ में वेहद महत्वपूर्ण हो गई है, क्योंकि पारस्परिक घृणा के कारण ही समुदायों में तनाव बने, संघर्ष रहे और अन्ततः जान लेवा युद्ध छिड़े। सभी युद्धों का जन्म घृणा से ही होता है। स्वामी जी में मनुष्य के लिये एक कशिश है, एक छटपटाहट है और एक अच्छा जीवन जीने के लिये साथ ही जोरदार आग्रह भी है। बुद्ध, ईसा और विवेकानन्द की शृंखला में इस प्रकार स्वामी चिदानन्द एक और कड़ी बन गये हैं, जिन्होंने कि मानव के लिये सर्वाधिक व्यग्रता दिखाई।

आस्था दृढ़ होती गई—

समय के प्रवाह के साथ मानवीय प्रेम की भावना उनमें और प्रगाढ़ होती चली गई और फिर उसने दृढ़ आस्था का रूप धारण कर लिया। यहां से उनकी जीवन-यात्रा का दूसरा चरण शुरू होता है और वह है—मानव में आस्था का। होब्स (Hobs) मानव स्वभाव को स्वार्थी, क्रूर तथा निकृष्ट रूप में परिभाषित करते रहे हैं, मध्ययुगीन विचारक मैकेयावली ने तत्कालीन परिस्थितियों के आधार पर व्यक्ति को जन्म से स्वार्थी, स्वभाव से क्रूर तथा व्यवहार से अनैतिक करार कर दिया। उनका व्यक्ति जीवन भर प्रपंचों से ग्रस्त है और उसका अन्तिम लक्ष्य निरंकुश सत्ता को पाना है। बीसवीं सदी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्तित्ववादी दार्शनिक ज्यां पाल सार्त्र ने लॉक की भाँति व्यक्ति को अलग ही एक नई दृष्टि से देखा। सार्त्र का 'व्यक्ति' अस्तित्व प्रधान है और एक बार जब वह संसार में आ जाता है तो मुक्ति (स्वतन्त्रता) उसके लिए विकल्प नहीं रह जाती, बल्कि बाध्यता बन जाती है। स्वामी चिदानन्द अपनी जीवन-यात्रा के दूसरे चरण में सार्त्र से बहुत दूर आगे निकल आये और अपने व्यक्ति को सर्वाधिक प्रतिष्ठित कर देते हैं। उनका व्यक्ति अमरत्व की संतान है, उसका स्वरूप अलौकिक है, जीवन साधनामय है, मार्ग ज्योतिर्मय और अन्ततः मुक्ति ही इसका लक्ष्य है। समय-समय पर अपने पत्रों, निबन्धों और वार्ताओं के दौरान वे इन सम्बोधनों को प्रायः देते रहते हैं। उनके सम्बोधन अतिरेक पूर्ण नहीं हैं, बल्कि एक ऐसी मनस्थिति से हैं, जहां कि प्रकृति के सभी अवयव महिमामयी लगते हैं।

धर्म सामाजिक जीवन में प्रतिष्ठित हुआ —

मौजूदा जीवन में धर्म पर तीन तरह के जबर्दस्त प्रहार हुये हैं। एक ओर कुछ लोगों ने इसे विलास का साधन बना दिया है और दूसरी ओर कुछेक पैंगबरों ने इनकी मनमानी व्याख्या शुरू कर दी है। तीसरी श्रेणी उन लोगों की है जो धर्म को सामान्य जीवन ये कहीं दूर की वस्तु समझते हैं। स्वामी चिदानन्द अपनी यात्रा के तीसरे चरण में धर्म का समाज से समन्वय कर देते हैं। धर्म को समाज से जोड़ने की उनकी वृत्ति ठीक वैसी ही है जैसे कि गांधी जी ने धर्म को राजनीति से जोड़ा था। गांधी जी की यही भावना उन्हें मोहनदास कर्मचन्द गांधी से दूर हटाकर कालन्तर में 'बापू' और 'महात्मा' के पद तक पहुंचा ले गई। जर्मन राजनेता आन्द्रे मौरलीक्ष भी इसी उदारतावादी राजनीति के पक्षधर रहे। स्वामी चिदानन्द ने युगधारा पहचानी और समय-समय पर अपने निशान उस पर छोड़ते रहे। उनकी पूर्व प्रकाशित कृति 'लाइट फाउन्टेन' में एक ऐसे शिखर का वर्णन किया गया है-जहां तक पहुंचने के लिए अनेक मार्ग हैं, लेकिन अन्त में ऊंचाई से एक ही चांद हम सबको दिखाई देता है।

नये चरण में अचल की नई चेतना के साथ—

टिहरी जनपद, अमर शहीद श्रीदेव सुमन की कीर्तिस्थली है। प्रसिद्ध प्रकृति प्रेमी नेता सुन्दरलाल बहुगुणा ने अपने 'चिपको' तथा मद्यनिषेध आन्दोलनों का श्रीगणेश भी यहीं से किया। स्वामी जी ने समय की नब्ज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

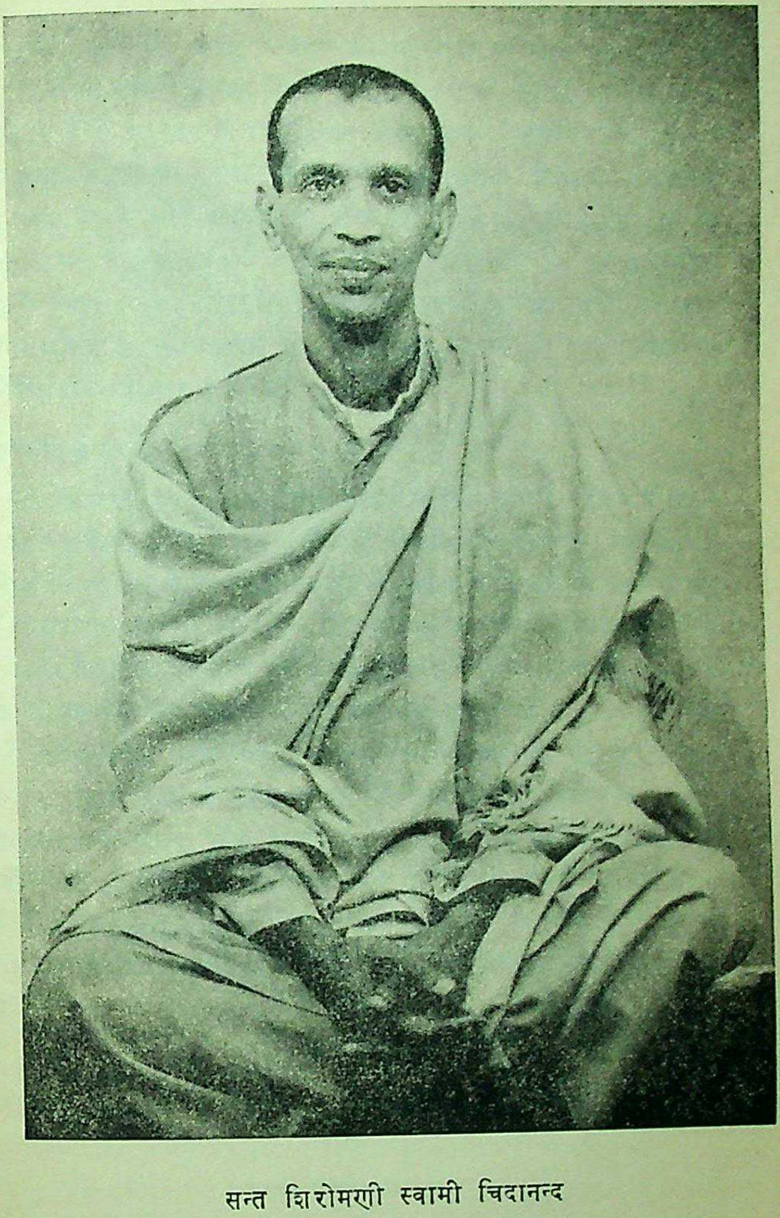

सन्त शिरोमणी स्वामी चिदानन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को पहचाना और नये चरण में अंचल की नई चेतना के साथ जुड़ गये। जुड़े ही नहीं बल्कि अपनी आवाज भी दे दी। हिमालय की तराई का यह बिगुल गांव-गांव और घर-घर में गूंजता गया और आज पर्यावरण का संरक्षण अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का मसला बन गया है। यही ललक अस्पृश्यता निवारण और कुष्ठ रोग से ग्रस्त रोगियों के प्रति स्वामी जी में दिखाई देगी, जो कि सुदूर अंचल में बसे पर्वतीय जीवन की चेतना के केन्द्र बन गये हैं। मुनि-कीरेती के निकट बने शिवपुरी-लक्ष्मणझूला कुष्ट-निवारक केन्द्रों पर आज जीवन शानदार नई करवट ले रहा है और समाज का यह उपेक्षित वर्ग आत्मनिर्भरता की ओर कदम बढ़ा रहा है।

शतं जीवेम् शरदः —

२४ सितम्बर १६१६ को दक्षिण भारत में जन्मे स्वामी चिदानन्द जी ने सन् १६३८ में मद्रास के लॉयल कालेज से बी०ए० ऑनर्स किया। सन् १६४६ में दिव्य जीवन संघ के संस्थापक स्वामी शिवानन्द जी से सन्यास दीक्षा ग्रहण कर वे भारत तथा विदेश में योग-वेदान्त आरण्य अकादमी के प्रचार कार्य में जुट गए। स्वामी शिवानन्द जी के ब्रह्मलीन होने के उपरान्त (१६६३) वे दिव्य जीवन संघ के अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित हुये। तब से लेकर अब तक उनकी आध्यात्मिक यात्रा पूर्व से पश्चिम तक निरन्तर चल रही है। विज्ञान और धर्म किसी देश की व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं हैं और महापुरुष भी ठीक इसी तरह सभी जाति और राष्ट्रों की सम्पत्ति हैं। वे सार्वभौमिक हैं, अतः जनजीवन से जुड़ जाते हैं। शिवानन्द नगर-मुनिकीरेती में वर्ष भर कई आंच-लिक और सांस्कृतिक उत्सव आयोजित किये जाते हैं। इन उत्सवों में आपको इसी सार्वभौमिकता के दर्शन होंगे और यही स्वामी चिदानन्द जी का जीवन लक्ष्य भी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युग पुरुष मुकन्दीलाल बारिस्टर और हम.....

कमल साहित्यालंकार

हिमालय यात्रा के अवसर पर एक योगी ने कहा था—

"परख सकती नहीं रत्न को, हर इन्सान की आँखें।
दिखाई ब्रह्म क्या दे, जब तक नहीं ज्ञान की आँखें॥"

ये पंक्तियां हम पर लागू होती हैं। हमने कभी यह समझने का यत्न नहीं किया कि हमारे समाज में वारिस्टर मुकन्दीलाल जी एक असामान्य व्यक्ति हैं। गुण-ग्राही उन्हें बृहती मनीषा के धनी और कलायोगी मानकर आदर देते हैं। उन्होंने अपने जीवन के ५० बहुमूल्य वर्ष गढ़वाल की चित्रकला की खोज में बिताये और अंग्रेजी में गढ़वाल (पहाड़ी) पेंटिग ग्रंथ लिखा। भारत–सरकार ने जब उस ग्रंथ को सन् १९६९ में प्रकाशित किया तब विश्व की आँखें खुली। उस ग्रंथ की भूमिका में श्रीमती इन्दिरा गांधी जी ने लिखा—

"बारिस्टर मुकन्दीलाल जी पहाड़ी चित्रकला के Authority हैं।"

पुस्तक के मुखपृष्ठ पर तब के राज्यपाल डॉ० गोपाल रेड्डी ने मुकन्दीलाल जी को गढ़वाल का निष्ठावान कलाशोधक घोषित किया। उ० प्र० के भूतपूर्व मुख्य मंत्री ने कहा था "बारिस्टर मुकन्दीलाल जी भारतीय संस्कृति के स्रोत हैं।" पर हम क्या कहते हैं ? प्रत्यक्ष है।

बारिस्टर महोदय को जब विशिष्ट कलायोगी मानकर उत्तर प्रदेश ललित कला अकादमी लखनऊ की ओर से फैलोशिप से विभूषित किया गया, तब उ० प्र० के मुख्य मंत्री श्री कमलापति त्रिपाठी जी ने २५-२-१९७२ को अपने भाषण में कहा था—

"प्रख्यात कलाविद बारिस्टर मुकन्दीलाल जी को ललित कला अकादमी का फेलो पाकर हम परम हर्षित हैं। भारत कला के इतिहास में गढ़वाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रकला को एक विशेष स्थान प्राप्त होना, उनके अनुसंधान और अध्ययन का ही परिणाम है, इसलिये विशेषतया उ० प्र० आपका ऋणी रहेगा। बारिस्टर महोदय इस फेलो उपाधि के सर्वोच्च अधिकारी हैं। आपने कलाक्षेत्र में राष्ट्र को महत्वपूर्ण उपलब्धियां अर्पित की हैं। 'गढ़वाल में पेंटिंग' आपकी अमर कृति है, जिसकी भूमिका प्रधान मन्त्री ने लिखी हैं—

यह समायोजन भारत के सबसे बड़े राज्य उ० प्र० की राजधानी में हुआ था, जहां अपार संख्या में हम लोग भी है। हममें ऊँचे कलाकार और गलाकार भी कम नहीं हैं, पर हमारे कानों में जूं तक नही रेंगी। उस उत्सव में पर्वतीय मन्त्री और विधायक भी थे पर किसी को इतना भी नहीं सूझा कि अपने उत्तराखण्डी कलाविद को सार्वजनिक रूप में एक माल्यार्पण ही कर दें।

कोटद्वार के मालवीय उद्यान में भूतपूर्व राज्यपाल डॉ० गोपाल रेड्डी ने जब मुकन्दीलाल जी को गढ़वाल का 'भीष्म पितामह' कहा तो केवल इसका अनुमोदन करने श्री ललिताप्रसाद नैथानी वकील आगे आये, जिन्होंने यह भी कहा कि उस दिन हम भाव-विभोर हो गये, जब हमने 'वाइस ऑफ अमेरिका' को गढ़वाल चित्रकला की समीक्षा करते सुना था। कोटद्वार गढ़वालियों का द्वार (नगर) हैं, जहां अनेक बुद्धिजीवी भी बसे हुए हैं, लेकिन उन्हें कला संचेतक मुकन्दीलाल जी घर के 'जोगण' ही नजर आते हैं। समीप रहने वालों में भी दृष्टिदोष साबित हुआ।

यही हालत हमारी दिल्ली की भी है। अखिल भारतीय कला संस्थान, नई दिल्ली ने अपनी स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर १८-३-७८ को बारिस्टर मुकन्दीलाल जी को उनके ९३ वर्ष में प्रवेश करने पर सम्मानित किया। उन्हें एक मानपत्र के साथ द्रव्य और अच्छादन भी भेंट किया, किन्तु हम को पता नहीं रहा।

२४ अगस्त १९७८ को जब बारिस्टर साहब द्वारा लिखित और सरकार द्वारा प्रकाशित तथा शिक्षा मन्त्री द्वारा विमोचित 'कला गुरु आनन्द कुमार स्वामी' पुस्तक का एक बड़े समारोह में अभिनन्दन हो रहा था, तब उसमें केवल चार गढ़वाली उपस्थित थे।

शिक्षा मन्त्री डा० प्रतापचन्द्र 'चन्द्र' जब बारिस्टर साहब के कार्य की प्रशंसा कर रहे थे तो बीच में बैठे हुए एक विदेशी पत्रकार ने इन पंक्तियों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक के कान में कहा था—

"Mr. Mukandi LaI is one of the glorious sons of India and a light of the Himalayas, which works and speaks" दिल्ली की गढ़वाली जनता ने कभी कोई समारो इस गढ़वाली विद्वान और कलाविद महापुरूष के सम्मान में किया हो, ऐसा सुना नहीं गया।

गीता में कहा गया है –'तदात्मानं सृज्याम्यहं' इसके अनुकूल मुकन्दीलाल जी ने भी कई क्षेत्रों में प्रशंसनीय और जनोपयोगी प्रशासकीय कार्य किये हैं, जिनके कारण देश-विदेशों से उन्हें यश मिला है। परन्तु हमारी आंखों में धूल ही पड़ी रही।

गढ़वाल में जन्म और शिक्षा—

पाटली गांव, चमोली गढ़वाल के श्री बद्रीप्रसाद की धर्मपत्नि श्रीमती पद्मा देवी ने १४-१०-१८८५ में मुकन्दीलाल जी को जन्म दिया था। आपकी शिक्षा गांव में शुरू होकर ओक्सफोर्ड विश्व-विद्यालय से इतिहास आनर्स से बी०ए० और लन्दन में 'ग्रेज इन' से बारिस्टरी पास करके पूर्ण हुई। आप १९१३ में विदेश गये और १९१९ में अपनी शिक्षा पूर्ण कर और बारिस्टर बनकर भारत लौट आये।

विवाह—

आपने १९१५ में एक आंग्ल महिला कुमारी इलिजाबेथ जट्टबोल से विवाह किया और उसका भारतीय नाम श्रीमती गायत्री लीला देवी रखा। आपके दो पुत्र और तीन पुत्रियां हैं। सबसे बड़ा पुत्र जनरल जार्ज भारतसिंह है, जो भारतीय सेना से अवकाश लेकर लौटे हैं।

भारत लौटकर बारिस्टर साहब ने लैंसडाउन में वकालत शुरू की। इलाहाबाद हाईकोर्ट में आप सफल विधिवक्ता रहे। आपको लोग गढ़वाल-कुमाऊं का बारिस्टर कहा करते थे।

सेवाएँ—

बारिस्टर साहब को नजदीक से परख कर कवि ने एक अनुष्टुप छन्द में कहा है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रटणा गढ़वाल को, कनकै जी भलु होवा
नीति कला-साहित्य मां, काद मुकन्दीलाल ,ई ।

यह छन्द इसलिए सार्थक माना जाता है कि आपने गढ़वाल की विविध रूप में सेवा की है । कुछ उदाहरण इस प्रकार से दिये जा सकते हैं—

(१) गढ़वाल में १९०८ के भयंकर अन्नकाल पीड़ितों की सेवा की ।

(२) गढ़वाल-कुमाऊं से कुली बेगार का कलंक मिटाया ।

(३) गढ़वाल से कालागढ़ क्षेत्र छीन कर बिजनौर में मिलाये जाने का विरोध किया ।

(४) गढ़वाली पलटनों की संख्या बढवाई । (५) कांग्रेस के स्वयं सेवक रहे । (६) गढ़वाल में स्वतन्त्रता आन्दोलन के लिए मन्च तैयार किया और कांग्रेस की सदस्यता वढ़ाई । (७) गढ़वाल में डिग्री कालेज स्थापित करवाया । (८) गढ़वाल मण्डल की स्थापना करवाई । (९) गढ़वाल कमिश्नरी दिलवाई । (१०) कवि व चित्रकार मोलाराम को चित्रकला का जनक सिद्ध किया । (११) गढ़वाल चित्रकला की शैली की नींव १६५८ में गढ़वाल में ही पड़ी थी, यह तथ्य सिद्ध किया । (१२) 'पहाड़ी पैंटिंग' नामक ग्रन्थ लिखकर, विश्व में गढ़वाल का गौरव बढ़ाया । (१३) रुकमणी मंगल और 'कला गुरू आनन्द कुमार स्वामी' ग्रन्थ लिखे, जिन्हें भारत सरकार ने प्रकाशित किया । (१४) टिहरी राज्य के हाईकोर्ट में जज रहे । (१५) १९२३-३० तक उत्तर प्रदेश असेम्वली में स्वराज्य पार्टी के सदस्य रहे । (१६) १९२६-३६ तक उत्तर प्रदेश असेम्वली के डिपुटी प्रेजीडेंट रहे । (१७) १९६२-६७ में विधान सभा के सदस्य रहे । (१८) सोलह वर्ष, टरपन्टाइन फैक्टरी बरेली के मैनेजर रहे ।

इतनी जन सेवाओं के बावजूद बारिस्टर साहब कसकते मन और वाणी से कह देते हैं कि मैं गढ़वाल के लिए कुछ नहीं कर सका । कवि के शब्दों में—

वही जिये स्वदेश में जो देश के लिए जिये
जिये तो देश के लिए, मरे तो देश के लिए
वही रहे स्वदेश में जो देश के लिए जिए ।

नीति, राष्ट्र सेवा और कला की त्रिवेणी—

बारिस्टर साहब राजनीतिज्ञ हैं, समाज सुधारक हैं । राष्ट्र सेवक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और कला के खोजी हैं। इन सबके लिए उनके हृदय में श्रद्धा, प्रेम और आस्था की त्रिवेणी हिलोरें लेती है। इससे उन्हें आत्मतुष्टि मिलती है। उनके मन में जड़ और जगत के लिए एकसा प्रेम है। उनमें न तो अहंकार है और न दम्भ। अहम् को वह विद्यार्थी जीवन में ही त्याग चुके थे, जब उन्होंने पौड़ी में निश्चय किया था कि मैं देश सेवा करूंगा।

उपनिषद कहता है—'श्रद्धा और प्रेम में आत्मा एकाग्र होती है।

कला परख मेधा—

विश्व में सबसे अधिक चर्चा उनकी कला परख मेधा की हैं। उन्हें नाम और रूप, दोनों विषयों का एक सा ज्ञान है। नाम का विश्व कवि कलाकार की रचना है। रूपमय विश्व चतुर्मुख ब्रह्मा की रचना है। कलाविद् और बोधिजन 'नील : पतङ्गों हरितो लोहिताक्ष'।

उपनिषद् के भाव को जानते हैं। नीले रंग के भौरे और हरे-लाल रंगों के तोते में विद्यमान प्रकृति के उपादान कारणों को कलाकार की तूलिका से आप पहिचान चुके हैं। इसीलिए आपने १९०४ से मोलाराम की चित्रकला के अन्वेषण को अपना प्रमुख विषय बनाया था। इस सम्बन्ध में पहाड़ी पेंटिंग उनकी विश्व को एक सफल देन है।

कला का आलोक—

चित्रकला के आदि समर्थक मोलाराम के चित्रों के ललित-कलित कलेवर का सौंदर्य, इन्हीं कला कुल दिवाकर की आंखों में भी कोई विशेष आंखे हैं, जिनसे वह चित्रांकित भाव को पढ़ते हैं। उनका हृदय भी विश्व की कला रचना कौशल का दर्पण है। यही कारण है कि उनके कला अन्वेषण में प्रकृति के सूक्ष्मतम स्पन्दन का अलौकिक दर्शन होता है।

चित्रकला के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर बारिस्टर मुकन्दीलाल जी ने कलाकार और परमात्मा की व्यापक अनुभूति का अनुभव भी खूब किया है। इतना ही नहीं आपने हर चित्र में चित्रकार की आत्मा और जगत की एकता को भी परखा है। बारिस्टर साहब के गुण सागर से कुछ बून्दें परख कर, मैंने बहुत श्रद्धा और भक्ति से उनका ३७४ पृष्ठों में जीवन वृत तैयार किया। उसे टाइप करवाया और उनके अवलोकन तथा स्वीकरण के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए कोटद्वार जाकर १९७६ में उन्हें स्वयं सौंप आया। यह जीवन-वृत लेखन और समर्पण का लोक दिखावा नहीं था। मैंने केवल हाड-मांस के मुकन्दीलाल जी के वपुष को नहीं देखा। उस पंचभौतिक शरीर के अन्दर विद्यमान उस कलाविद (आत्मा) को परख कर देखा, जिसके लिए उपनिषद पहले कहते है 'निष्कलंक' कलाओं से रहित अर्थात क्रिया शून्य किन्तु परमशान्त और दोषों से रहित और फिर कहते है 'कला सर्ग परं देवं' सोलह कलाओं की रचना करने वाले परम द्रेव परमेश्वर। यह तो मेरी निष्ठा-भक्ति और श्रद्धा की तंत्री थीं जो नाद न कर सकी, सो मुझे दुःख नहीं, क्योंकि मैंने किसी लौकिक ईषणा से इसे नहीं लिखा था। ईषणा है तो यही कि ऐसे पुरुष की वह उपयोगी जीवन कथा उनके अनुगतों में व्याप्त हो। मैं तो उन्हें दृश्यमान, चलने फिरने वाले स्थाणु रुद्र के समान तब ही मान बैठा था, जब १९७३ में मैंने उन्हें निकटता से देखा और प्रभावित हुआ।

उनका भी अपना अटल धर्म है। उनका कहना है– "मैं अपनी आत्मकथा को अपने जीते जी नहीं छपवाना चाहता। नाम और ख्याति का मैं छात्र काल से ही विरुद्ध रहा हूं। इससे जो कुछ देश सेवा यदि मेरे द्वारा हुई है तो उसका मूल्य आ जाता है। मेरा आखिरी जीवन न जाने कैसे व्यतीत होता है। मेरे द्वारा कोई ऐसा कार्य न हो जिससे देश को हानि पहुंचे और मेरे कारण गढ़वाल बदनाम हो" —मुकन्दीलाल, भारती भवन, कोटद्वार (१७-८-७८ के पत्र से)

मेरी श्रद्धा तो कुछ फूल खिला गई। वारिस्टर साहब के ही शब्दों में मेरे द्वारा लिखे गए ग्रन्थ को भी भक्तदर्शन जी और श्री जगदीश कुमार मुरादाबाद वाले ने देखा और प्रभावित हुए। वारिस्टर साहब ने कृपा की, ग्रन्थ का पार्सल खोला और उक्त सज्जनों को दिखाया। मुझे भी लिखा कि मैं उसे देख रहा हूं, जहां परिवर्तन आवश्यक समझूंगा करता जाऊंगा।

अब तो हम सबको समष्टि रूप में सोचना है कि ऐसे युग पुरुष के प्रति समाज का क्या कर्तव्य है। व्यक्तिगत मुझे कोई चिन्ता नहीं। जहां इनकी अपार सम्पत्ति और हजारों की संख्या में पुस्तक राशि जायेगी, वहां एक किनारे पर मेरे द्वारा लिखा गया जीवन-वृत भी आंख वालों को दिखाई दे जायेगा और मेरी आस्था सफल होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं आज भी कहता हूं कि कोई पारखी उनका बारीकी से लोक-जीवन देखेगा तो मेरे स्वर में स्वर भरता हुआ कहेगा :—

'यों तो तुम पर अब लिखने को, कुछ भी तथ्य नहीं है,
पर जो लिखा गया वह भी तो, पूरा तथ्य नहीं है।
सर्गहीन सद्ग्रन्थ महत तुम, काव्य क्रोश अपने में
रुद्राक्षी माला हो जिसकी अन्त नहीं अपने में।

अस्तु :— शतायुषः पुत्र पौत्रान् स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ....

ढोल सागर

एक अज्ञात ग्रन्थ के असंकलित अध्याय

केशव अनुरागी

समस्त उत्तराखंड का सांस्कृतिक अंचल ढोल सागर की विषय वस्तु से पर्याप्त प्रभावित है। ढोल सागर की चर्चा ठेट ११ वीं शताब्दी में कत्यूरी शासनकाल से आज तक निरन्तर होती आई है, परन्तु फिर भी इस दिशा में अब तक कोई ठोस गवेषणात्मक प्रयास नहीं किया गया। गढ़वाल के कुछ कला मर्मज्ञों ने स्थानीय ढोल सागरियों से प्राप्त छोटी बड़ी कुछ पुरानी पांडुलिपियां तथा उन कलावन्तों द्वारा वंश परम्परा से कंठस्थ किए श्लोकों एवं उक्तियों के आधार पर एक परिचयात्मक लघु संकलन श्री बदरीकेदारेश्वर प्रेस पौड़ी (गढ़वाल) से सन् १९१३ में प्रकाशित किया था। इस संकलन मे कहीं भी ढोल सागर के रचयिता के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं मिलता। बूढे कलावन्तों के मतानुसार मूल ढोल सागर के प्रणेता कुमाऊं के कत्यूरी राजा प्रीतक द्यो के पुत्र दुलाधाम द्यो के प्रश्रय मे रहने वाले गोरख पन्थी योगी गुरू खेगदास ठहरते हैं। अपने मत की पुष्टि में वे कत्यूरियों की कीर्ति कथा का यह अंश प्रस्तुत करते हैं कि "विद्या प्रसाद को कैलदास, कैलदास को कल्पणा दास, विनोलीदास को आदि गुरू खेगदास कासम्बरी भट्ट त्यारा ढोल सागर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूं आदेश ।" योगी गुरू खेगदास कत्यूरिया की राजधानी खैरागढ में दुलाशाह धाम द्यो के दरबारी कलारत्न थे। कहते है कि एक दिन समोयाताल में नकुवा मसाणी ने धाम द्यो की बारह बीसी (२४०) भैंसों को डुबो दिया था। तब गुरू खेगदास ने योग के मन्त्रों का उच्चारण करते हुए ढोल में नर्सिंह का आह्वान बाज सुल्तान चौक प्रस्तुत किया तथा तब नर्सिंह ने वहां स्वयं प्रकट होकर उन डूबी हुई भैंसों का उद्धार किया था। इस अभूतपूर्व घटना से धाम द्यो खेगदास से अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्हें इस चमत्कारिक कला को आगे बढाने के लिए प्रोत्साहित किया। फलतः इन्होंने ढोल सागर की रचना कर डाली।

विषय वस्तु की दृष्टि से ढोल सागर का रचना काल १०वीं और ११वीं शताब्दी के मध्य ठहरता है। इस ग्रन्थ में ढोल की कला के साथ साथ यत्र तत्र गोरख पन्थी योगवाणी की भी चर्चा है जैसे : "सृष्टि, नाद शब्द, शक्ति, भक्ति, ज्ञान, गुरू-चेला, पौन-पाणी" आदि की उत्पति का निरूपण। इसलिए ढोल सागर की पुरानी हस्तलिखित प्रतियों को जोगेसुरी ढोल सागर कहते है। ठीक इस काल में रचित योगीराज गुरू गोरखनाथ की जोगेश्वरी साखी का भी उल्लेख मिलता है। इस गोरखपंथी युग में नाथ पंथियों ने योग सम्बन्धी कितने ही सागरों की रचना की है, जैसे : बोध सागर, सर्वज्ञ सागर, अनुराग सागर, दरिया सागर, अम्बु सागर आदि। अतः ढोल सागर भी इसी सागर परम्परा की एक शसक्त कड़ी है। ढोल सागर की जो प्रति इन पक्तियों के लेखक को पढने को मिली है, वह साम वेद के आधार पर लिखित ईश्वर-पार्वती सम्वाद के रूप में है। प्रति के आरम्भ में किसी अनाम जिज्ञासु ने उचित ही लिखा है :

उमा शिव सम्वाद यह सब ग्रन्थन को सार।
ढोल सागर या ग्रन्थ को राखे नाम विचार ॥

इसी प्रकार ग्रन्थ के अन्त में स्पष्ट ही कह दिया है "इतिश्री ईश्वर-पार्वती सम्वादे सामवेदान्तर्गते ढोल सागरे।" सृष्टि से सम्बन्धित सम्वादों को जोगेश्वरी ढोल सागर और ढोल तथा उसकी कला सम्बन्धी सम्वादों को चिष्ठ कला ढोल सागर कहा जाता है। वैसे जोगेश्वरी और चिष्ठ कला यह मूल ढोल सागर के ही दो खंड हैं। जोगेश्वरी खंड के कथ्य की कुछ झाकियां प्रस्तुत हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टि की उत्पति के विषय में गौरी शंकर की एक प्रश्नोत्तरी इस प्रकार हैं :

पार्वत्युवाच :

अरे आवजी प्रथमे जल शूनाकार
नहीं धरती नहीं गिरि ।
नहीं कविलास सर्वत्र धुंध धुंधकार
तै दिन की उत्पत्ति बोली जै ।।

श्री सुरोवाच :

अरे गुनी जन प्रथम निराकार
निराकार से साकार जल थल
जल मा भयो अंड, अंड फूटि
उपाईले (उत्पन्न किए) नौ खंड
निराकार गोसांई ने ब्रह्मान्ड
मलिक (मलकर) ब्रह्मा उपायो
अंग मलिक भोला उपायो
पाऊं मलिक पारवती उपायो
आदि गोसांई पिरथवी रची ।।

ढोलसागर में नागपन्थी योग वाणी की सर्वत्र चर्चा है । यहां ज्योतिष शास्त्र की भाँति ही योग दो प्रकार के हैं : जोग और ऊसरी जोग, जिनकी संख्या क्रमशः २८ और २४ है । योग की चर्चा के अन्तर्गत ही पार्वती के प्रश्न के उत्तर में महादेव जी बताते हैं कि "प्रथमे धरती पीछे आकासं, प्रथमे नारी पीछे पुरुषं, प्रथमे माई पीछे पूत । प्रथम गुरु पीछे चेला । प्रथमे रात्रि पीछे दिवस । प्रथमे सिख पीछे धुत हुए है ।" ढोल सागर में उत्पत्ति का यह सिद्धांत अग्वान पिछवान कहलाता है । आत्मा की स्थिति के सम्बन्ध में वताया हैं कि वह शून्याकार में स्थित पवन मात्र हैं तथा वह स्वयं शाश्वत निरंजन ब्रह्म का अंश है । "सुनकर वैसी आत्मा जियु मनेछा काया गुरू मौन हमारे नाऊं हमी कपटो निरंजन नाऊं ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फुटकल विषयों में रिद्धि-सिद्धि-निधि, नक्षत्र-ग्रह, ऋतु-मास, योनि आदि के अतिरिक्त ढोल सागर में अक्षर प्रकाश की भी चर्चा है। इस सन्दर्भ में पार्वतीजी पूछती हैं, "अरे आवजी कथं शारदा उत्पत्ति अक्षर आकांश"। उत्तर में महादेव जी द्वारा अइउ ऋलृ ऐओ-ऐऔ हयवर लड मणन झमघटध जब गडद कप और शषस आदि शब्दाधार प्रस्तुत किए गए हैं। सूत्रयुग में पाणिनी की अष्टाध्यायी में दिए गए चौदह महेश्वर सूत्रों का स्वरूप भी लगभग यही है।

ढोल सागर के चिष्ट कला खंड में ढोल की रचना तथा उसकी कला का सम्यक निरूपण हुआ है। ढोल के स्वरूप के सम्बन्ध में ढोल सागर के रचियता का दृष्टिकोण नितान्त आध्यात्मिक है। ढोल विश्व का प्रतीक है, जिसका निर्माण ब्रह्मा, विष्णु, महेश, पार्वती तथा चार युगों ने मिलकर किया।

"ढोले महेश नेढोल्या पार्वती ने बटोल्या विष्णु ने गडाया चारि युग मुडाया ब्रह्मा ढोल उपरि कन्दोटी (स्कान्द पटिका) चढ़ाया।" अब इस ढोल का स्वरूप देखिये कितना असीम है :

उत्तर ढोल का मूलं पच्छिम ढोल की शाखा।
दक्खिण ढोल का पेटं पूरब ढोल का आंखा॥

ढोल के जितने भी अवयव है, उनका सम्बन्ध विभिन्न देवी देवताओं से बताया गया है।

आपु पुत्रं भवे ढोलं ब्रह्म पुत्रं डोरिका।
पौन पुत्रं भवे नादं भीम पुत्रं गजावलम्॥
विष्णु पुत्रं भवे पूंड नाग पुत्र कुंडलिका।
बरूम पुत्रं कंदोटिका गुणी पुत्र कस्णिका॥

इसी प्रकार कुंडली के बारह शरों (रंध्रों) के नाम इस प्रकार है, "श्री वेद सव् पासमती गणेश रणका छणका बेची गोपी गोपाल दुर्गा सरस्वती तथा जगति।" ढोल के कटि प्रान्त में स्थित बिजैसार (पीतल मध्य पट्टिका) के छोरों को जोड़ने वाली तीन ताम्र मेखलायें ब्रह्मा, विष्णु और महेश के प्रतीक है तथा बिजैसार समस्त ब्रह्माण्ड को नियन्त्रण में रखने वाली त्रिदेव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सामूहिक महाशक्ति की प्रतीक है। अतः ढोल सागर समस्त ब्रह्माण्ड का प्रतीक है तथा उससे उद्भूत विभिन्न ताल-बोल सृष्टि के विभिन्न व्यापारों के रागात्मक अभिव्यन्जन है। ढोल सागर की आध्यात्मिक पीठिका यही है।

ढोल सागर मूल रूप से ताल सम्बन्धी ग्रन्थ है तथा यहां भी ताल के प्रणेता शिव ही माने गये हैं। ताल का अर्थ ही शिव शक्ति हैं (ता शिव तथा ल शक्ति)। यही शिव शक्ति ढोल सागर की आत्मा है और इसलिए आदि ढोल को इस ग्रन्थ में शिवजन्ती कहा गया है। ढोल सागर में ढोल वादन की चार प्रमुख शैलियों का उल्लेख मिलता है, जिनके नाम इस प्रकार हैं: "अमृत, सिन्ध, प्रराणि और मध्यानी।" इनके प्रवर्तक क्रमशः इन्द्र के दरबारी कलावन्त उद्दीमदास, मानधाता के वामादास, महेन्द्र के विदिपालदास और विक्रमादित्य के कलारत्न अगवानदास बताए गए हैं। इनमें से अगवानदास की मध्यानी शैली ही अब तक अक्षुंण चली आ रही है। मध्यानी की भी चार उप शैलियां हैं–सूत्रिका, कूल, सेन्दूरी और झाड़खंडी। इन शैलियों के अन्तर्गत ढोल सागर में चर्चित तालों में से आज का कलावन्त केवल कुछ ही तालों को उपयोग में ला सका है, जिसमें से मुख्य ताल इस प्रकार है: वढे (वधाई) धुयाल अथवा धुयेल, थरहरी, चौरास, सुल्तान, चौक चासणी, चामणी, वेलबाल, शब्द, जोड़ जक, नौवत, धाई रहमामी पूछ-अपूछा किरणी पैंसारौं दबुकू और चरितालिम्।

ढोल सागर में उच्चकोटि की साहित्यिकता भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से ही स्पष्ट है कि ढोल सागर का पट पुरातन और नवीन साहित्य संगीत. योग, भोग, लोक, विश्व शक्ति भक्ति आदि विभिन्न युग्मो के ताने बाने से बुना हुआ है। यह उस मनीषि की उर्वरा मानस भूमि की उपज है, जिसने सृष्टि के कण कण में विराट सौन्दर्य के दर्शन कर प्रमाणित कर दिया है कि कला कला के लिए नहीं, अपितु जीवन के लिए है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

English Section

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The Himalayas : Crisis in the Evolution of Policy and Programmes

Norman Reyolds

Himalayas represent a special case deserving urgent attention. The conservation of the Himalaya's fragile eco-system is vital to both those who live in the hills and to the millions who live in one or another of the river valleys that the Himalayas have created.

The crisis in the Himalayas, at least as it exists in the Indian states of Uttar Pradesh and Himachal Pradesh, cannot usefully be treated as a special crisis on its own. In its administrative and institutional aspects it is but an extreme version of a crisis that inhabits most corners of the Indian subcontinent. It is neither as intractable nor as nasty as its counterpart in the plains, especially in Bihar. Nor is it as unhealthy in terms of social cohesion as the passivity and extortion that characterise the central tribal belt. Its crisis is more immediate because population growth and commercial expansion press upon the fragile resource base of the hills without the modulation suitably developed institutions could provide. Today there is a near breakdown of administrative measures and of local institutions so that the welfare of the region is threatened.

We propose three pieces, Catchment Authorities, Community Budgets and Community Forestry, as an integral package of administrative reform. We argue that corrective measures are embodied in the overall proposal which run counter to some of the negative aspects of the present social order and of the administrative culture. Once active, these measures could help to combine optimum decisions made at the local level with more appropriate technical services. They could

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

clarify the poorly drawn boundaries between government and community roles and provide room for some dynamic institutional development.

Background to Current Administration

India's development administration has been built upon the revenue and law and order functions inherited and perfected by the British. Large powerful agencies have arisen (the P. W. D., Agriculture, Irrigation, Forestry Departments etc.) under the aegis of a colonial regime. Organised in their respective hierarchies, these agencies have been able to engage village communities independent of each other and with a decreasing governance by the "coordinating" office of the District Magistrate. Over time they have developed their own patron and client relationships which are based on activities and procedures that essentially disrupt cohesion amongst groups at the village level. A parallel though more shifting force for disunity at the village level has been the growth of organised political parties each of which seeks its share of village voters. They, too, usually manipulate through patronage.

When cultivable land was exhausted in about the middle of this century, rural society lost an important element that had allowed for adjustment. In the 1940's and 1950's, for example, litigation changed from that predominantly between families to within family actions. The more recent spread of indebtedness epitomises the growing debility of rural society to order its own solutions. Money lending has become a device for extra-village manipulation of asests held by an increasingly beleaguere rural society.

In the hills the early move to separate the largest category of land, that is forest land, into land to meet local requirements and remainder to be "reserved" for the state, illustrate both a "once and for all" colonial approach to land issues and

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

an inability, perhaps an unwillingness, to see State and local interests in the round.

The decision of the founders of modern India to adopt a centrist economic model has matched and strengthened the inherited bureaucratic traditions. The decentralised political model has proven itself unequal to the centrist economic system. Local self-government, extended formally under Panchayati Raj in the 1950's and early 1960's, came too late and without the resources needed under local control to reverse the disabilities that were already hampering communities. Established client and patron relationships were essentially unaffected. Instead, the levers of power held by various agencies outside the village, that were used for partisan purposes, were used to upset the emergence of cohesive local interests. The true nature of local conflicts were kept from open view and hence any possible resolution between local parties was postponed indefinitely. Relative strength amongst villagers was reinforced as a function of the client/patron system. The still dominant revenue and law and order administration no doubt chose to interpret quiet in the countryside as the peace of constructive work.

The major architectural pieces of the still rigid, largely regulatory development administration were completed just as the period of rapid population growth and the spread of cultivation onto marginal lands began. The inadequacy of the former to handle the dynamics of the latter has produced many responses. There continues to be a plethora of calls from all parts of the Indian body politic for greater coordination of official development efforts, calls that testify to the lack of

---

* District, block and gram panchayat under the Community Development Programme, macro, and now mezo under the Tribal sub-plans; a renewed approval for Block plans under the Sixth Plan; and many others.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

coordination but which also demonstrate the unwillingness to analyse the causes.

The long debate over the best unit of planning* has concentrated essentially on the most appropriate administrative level for a given approach**. Of greater current significance has been the creation in recent years of specialist agencies to handle particular problems or areas. The Command Area and the Drought Prone Areas Development Agencies are good examples. The agency form has enabled a devolution of day-to-day administrative and financial powers to a governmental body at the field level. There have been difficulties in sorting out line department jealousies and the generalist versus specialist eontroversy has impeded progress. Nonetheless, the short history of agency functioning has demonstrated that more complex tasks can be undertaken than before.A gency staff appear to prefer team work even though living outside of one's parental departments and the current culture of administration places a premium upon departmental loyalty.

The fear is that little systematic investigation will be undertaken by the responsible parts of government with the intent of following through the changes The natural tendency to expel transplants requires that there be sustained attention to the complex of issues involved, a quality the presnt administrative set-up does not provide. Much will depend on the initiative of the research institutions and on imaginative political leadership

Under the Drought Prone Areas Programme there is a current attempt to utilize the watershed or catchment concept to combine a natural resource area with a social unit for development administration purposes. In the Deccan, Mahara-

** The Growth Centres programme in the early 1970's, which was experimental, failed to find a solution to administrative and growth centre boundaries.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

shtra has demarcated 1,752 watersheds* outside of the major irrigation command areas as the units for all future planning and implementation. Other states are beginning to explore the concept. Evidence to-date, sparse as it is, has demonstrated the difficulty of translating the concept into action if planning and execution remain within the existing departmental hierarchies. Tәchnically sound plans have been produce, emphasising soil and water conservation, that ignore individual and group choices so that they are far from being optimum proposals on economic and social grounds.

In the next section we shall explore three ideas that begin with current administrative innovation in India. They take the agency and the catchment management concepts beyond their present contemporary subservience to established administrative norms to a position of local responsibility. Agency functioning is translated into service provision and accountability for the use of public funds. In so doing, we sketch a body of administrative rules and a sense of professional conduct. The boundaries of the relationship between government and community. so mis-used to-date, are defined. albeit in brief.

The crux of the crisis in India is an administrative and an institutional malaise arising out of the failure to define boundaries and to recognise, state and establish the rules for the professional management of development. Earlier we have shown the growth of the convenience of non-definition It mirrors the breakdown of the earlier morality and the pure exchange (code of behaviour) that characterised the traditional structure of relationships in Hinu society

An Approach to Administration in the Hills

Two characteristics of the Himalayas are of significance in the design of administration in the hills: the nature of the

*The watersheds vary in size, mostly between 100,00 to 17,000 hectares with from 10 to 20 villages in each.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

topography and the significant proportion of common land*. The topography offers an opportunity to redraw administrative units around natural resource areas, namely catchments. Because of the dramatic nature of topography in the hills, catchments can be so selected that they also represent the boundaries of social units. The large proportion of land that is common, not in private hands, means that about half of the natural resources of the hills can work for the common good if suitable institutions are created.

Catchment Authorities

Utter Pradesh has created a separate department, the Hill Development Department, to oversee development work in its eight hill districts. The Department, at least on paper, has redrawn the eight districts into sixty-eight catchments** over which it is intended to place Catchment Authorities; agencies similar to the Command Area and the Drought Prone Area field agencies. Two or three Regional Officers*** will be created in the hills, each to serve thirty or so Catchment Authorities.

The plan offers exciting possibilities some of which are sketched below. Under the new administrative scheme, the emphasis should be on the service relationship since the Catchment Authorities will enjoy day to day autonomy over financial aud administrative matters and, to a lesser extent,

---

*Common land here includes all categories of forest land, wastelands not controlled by individuals and village commons.

**The actual number of Catchments should be negotiated with the communities. Because of the variety of topography, population densities aud communication difficulties, Catchment Authorities should be expected to differ considerably in area and population covered.

***There are distinct cultural and political regions in the **U. P.** **Hills, Tehri, Garhwal and Kumaon that require recognition.**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

over technical issues. The Hill Development Department, headquartered in the State capital, Lucknow, would clear the annual plans and financial requirements of the Catchment Authorities. It would also provide or arrange for the provision of specialist services to the hill region as a whole: Satellite materials and their interpretation, major infrastructure planning industrial promotion, studies and staff development and personnel administration. The Regional offices would provide direct services to the Catchment Authorities–project formulation, coordination with institutional finance, technical skills and some administrative support. The Regional Offices, with the demise of the District and Block boundaries, at least for development administration purposes, may take charge of the management of growth centres and the provision of common infrastructure, for example storage, power and transport.

Policy making at the state level would have to be structured so that representation upwards by administrators and by citizens from the Catchment Authorities joined with a sub-committee or other body of the State Cabinet (the Chotanagpur and Santhal Parganas Development Authority in Bihar has a similar structure). Tht Hill Development Department would be the natural secretariat for the the same.

The above plan is an example of the best of current cffi-cial administrative thinking. The concept, although only on paper, has gone further to fit the different levels of administration into a whole, built up from the Catchmemt Authority, than anything to-date. Experience, meagre though it is in this field, does not suggest that much confidence can be placed in the process of implementation to carry the plan through to a

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

dynamic set of relationships, especially in the subjugation of line departments to field agency functioning and in the evolution of agency relations to communities.

In order to implement the new administrative plan, it is essential that a clear method be introduced by which communities gain the major decision making power within their respective areas. There are two reasons for this. The first is the need, argued above, to break the established hegemony of the line departments. A shift of power away from the administration to representative groups would help to force the change. The second reason is technical and underwrites the first. Efficiency under the present set of administrative relations is far from optimum. The reasons are several. Administrative scale has its own determinants. The historical neglect of small irrigation schemes by the irrigation departments in favour of large prestigious schemes is one example. So with catchments: if left to line department preferences it is unlikely that administrative boundaries will coincide with local considerations. Official targets set above the field level and administered sector by sector impede the establishment of a professional approach to a complex of resources and a sense of service to or contract with communities that contain diverse interests. Consequently it is not possible to produce comparable sets of choices, of opportunities forgone if one given choice is accepted. In the husbandry of natural resources the often crucial sense of a sequence of decisions and investments across sectors is denied; denied not to the cost of the department concerned but to the community and the wider society.

Three examples drawn from conservation, irrigation and pasture management illustrate the current administrative inefficiencies. (i) There are logical sequences in the conservation of hillsides, essentially treatment from top to bottom. They are sequences that may run counter to the interests of more powerful groups who tend to control the better bottom land and who

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

tend to hold key positions in the patron/client system. As treatment proceeds so it alters the nature and magnitude of water runoff so that other possibilities arise that favour irrigation development higher in the catchment which benefits the less powerful. Writ large, it is a conflict between the hills and the plains. (ii) It appears that in many upland areas a far greater irrigation potential can be realised by the use of a larger number of smaller and varied structures, with greater maintenance requirements and by the lifting of water by pumps and from wells than has been thought possible under departmental plans The reason is that departmental plans usually simplify the institutional/management component by limiting design to a few large pieces. (iii) Fencing is a major cost component of current pasture and reforestation efforts. The users, particularly the villagers, are not involved in the decision making yet agreement on their part to herd livestock in a particuler way might enable cheaper systems and structures to be used for fencing. The weakness is their indifference to savings since the operation is a departmental affair.

A real advantage of the agency concept contained within the Catchment Authorities is the ability to form project budgets as opposed to the line budgets which dominate today. Projects help to define the respective clientele. Although an advance over line functioning, projects remain governmental pieces. It seems that, for all their advantages, projects run-up against one of the reasons for the failure of the Community Development programme; its inability to pass over significant funds to local representative bodies.

Public accountability in India has become particularly fierce, largely as a public response to the "private" workings of bureaucracy. Until today no well developed instrument have existed that would allow funds to be passed downwards across organizations with confidence. The rapid growth in recent years of project perparation, analysis and evaluation for institutional

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

finance and for special project pieces provides a tool with which to professionalise the judgements used in the devolution of resources. Well used, it can help to elicit choices, to better understand the cost of conflicts of interest and to reveal optimum sequences of decisions. The pity is that under present arrangements no forum exists in which project analysis can play such a beneficial role. How to create such a forum is the point we turn to next.

Community Budgets

Certain conditions must be met before project analysis can become a potent tool in rural renewal. Decision making has to pass from government to community. And the communities have to be governed in their decision making by practicable criteria that set social, technical and economic norms; public accountability has to be maintained.

The device we propose is simple and radical. Under the Catchment Authorities we propose that Community Budgets be introduced. A first step would be for the Catchment Authorities and the communities to negotiate and demarcate community boundaries. These should be capable of mutual altaration from time to time, perhaps every three years. It would be necessary to establish norms or to create a formula such as the Gadgil* in accordance with which Community Budgets would be framed. It is of some interest that claims to community finance have not been institutionalized.

Under the Indian budgetary system choices between capital creation and asset maintenance are determined above the field level through the elaborate structures that define and apportion plan and non-plan funds. The result is often an artificial dichotomy to field management.

---

*Introduced to regulate state claims on Central funds for Plan expenditures.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

A Community Budget would include all monies that would normally be expected to be spent in a particular area on development work, on maintenance and on relief paid as income in a lump sum. It could include the cost of services such as veterinary and even those of education and health. The choice over services would depend on community initiative and on the availability of other models. For instance, if dairy development on the "Amul" pattern existed in the area, then the cost of departmental veterinary services could be included with a proviso that services of a certain quality must be secured.

The catchment Authority, being the agency that would manage the community Budgets, could extend the same financial powers that it enjoyed. So Community Budgets need not lapse. Hence income would be known for, say, five years in advance against which expenditures can be planned. Community officers, appointed and assisted by the Catchment Authorities, would prepare development blueprints for each community against its respective Community Budget. When prepared, the blueprint together with the forward income and expenditure projections would be passed to the community.

The community would make the decisions on the use of the budget. It could accept the blueprint or request that it be reformulated. The community officer's role would be to help identify opportunities and prepare proposals. Once the community makes a decision, that proposal would be appraised at the level of the Catchment Authority according to technical, social and economic criteria set by the state. In that manner service provision and the accountability for public funds are retained in the governmental agency, the Catchment Authorities. Responsibility for the decisions made are passed to the communities.

The process of decision making involved in community budgeting should become an educational forum. Greater awareness could emerge about interdependencies within communities

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

and the nature of assisstance available from outside.

Execution would be by agents mutually appointed by the Community and the Community Officer. Execution by existing government departments, by contractors or by the community itself are the main choices available.

The use of Community Budgets would help to demarcate administrative boundaries and to re-define line department function. That and the local dynamics of the process should demand other and more appropriate technical solutions than those that exist in the hierarchies of today. The Community Budget would become the dividing line — service and accountability (government) and responsibility (community) behind which communities can regain their strength. The style of administration should foster the demand for open information, discussion and decision making in government and in communities.

The Catchment Authorities would also have the task of identifying elements that go beyond individual communites (macro planning). These would be financed (i) by a line budget, (ii) by a separate project budget for the particular purpose, or (iii) by concerned communities voting to participate using funds in their own budgets. Communities would have representation on Catchment Authority Boards together with senior officials and locally elected representatives (Assembly, Panchayat Samiti etc.).

Community Forestry

The final component of our suggested approach to the administration of the hills tackles the area of the most serious breakdown in adminstration between government and communities; forestry. Forestry, first organised in its present form by the British beginning after the middle of the last century, still lives midst legal boundaries that today denote little more than the

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

police powers conferred on the departments. They tell little or nothlng of the quality, the stock or of the pressures upon forests in any area.

In the century since forests were first demarcated, essentially into forests to provide the subsistence needs of villagers and forests reserved for the state to provide revenue to the exchequer, so much else has changed. Population, human and livestock, has increased and forest stock has dwindled with the loss of land to other purposes and, usually illegally, to cultivation. Wanton destruction by contractors, often in cahoots with foresters, and by villagers to whom forest lands have increasingly become an asset of last resort as poverty has afflicted greater numbers has accelerated the spread of degraded areas. India, still a predominantly rural society, has one of the least acreages per person of any country. * The drastic nature of that fact is now compounded by the extremely low productivity of her forests.

The still predominant view of forests as sources of revenue has hindered the forest departments from seeing themselves and from acting accordingly as development departments. Recently there has been greater recognition of the place and role of forests in rural development. The difficulty now is that money is not enough; for in no strategic forest area outside of the north-east where tribal societies have retained control over forests is it possible to guarantee the protection of forests and hence the realisation of the investment.

---

* In Jhabua it is about 150,000 hectares of forest, pasture and wasteland for a rural population of 610 , 000; or roughly 1 hectare of state or common land for four people. Some 20% of cultivated land and of fallow (i. e. private land) is unsuited to crop agriculture and to an equivalent of 1 hectare for three persons; or two hectares per family.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Himachal Pradesh and Uttar Pradesh have adopted a programme termed " 3-D " forestry: it recognises the villagers' interest in fodder and livestock and fuelwood. It is a sensible departure and it seems to be achieving some success. However, it tackles a mere fraction of the land problem. * The programme's stability is threatened by the economic and social disorder of the larger forestry system.

The need is to recognise the legal forest boundaries for what they aret oday : historical accidents. Boundaries must be redrawn outwards from community centres until there is sufficient land capable of allowing supply to meet demand in terms of norms for fuelwood, fodder and timber or until a natural or the legal boundary of another community is encountered. Reserve Forest under Departmental Management would comprise the remaining land.

Private land use in the hills occupies from 20% to 60% of the land. Consequently, in any region the land available for community forestry would form anywhere between 40% to 80% of the total area. In other words, Community Forests could become the single largest category of land use in the hills. It could then form the foundation for programmes of employment and for conservation. In many cases, the asset it represents could provide the basis for village reconstruction programmes.

Forests under departmental control have been developed to achieve revenue gaols. The result, in the hills, is the choice of a few species that are wanted in the plains where the markets exist. Processing, with little exception, is based in the plains where the forest merchants live. Forests designed to meet local needs for products and for employment would use

---

* The programme operates largely on village commons. It includes livestock improvement, veterinary services and dairy marketing.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

mainly different species and processing would largely take place in the hills. There are ecological considerations that must also be taken into account. Suffice it to say that species suited to the variety of local needs fits better with an ecological view of forestry than the much more singular commercial view of the plains.

The suspicion with which villagers regard official moves on forestry and the foresters proper concern that forests left to village politics can only be destroyed more quickly and certainly than otherwise, has praven to be a two-way roadblock to thought and action. The "chipko" or "embrace a tree" campaign begun in Gharwal in Utter Pradesh a few years back was a response by village women to the illicit felling of trees by contractors. Women literally embraced trees to prevent them being felled. It has become a powerful popular movement led by recognised social workers. Thus far it has forced the Forest Department to exercise greater care in the mode of forest exploitation. It does not as yet hold within it any permanent solution and consequently it is degenerating too quickly into a slanging match over people's versus departmental control of the forests.

There is an opportunity here to redirect the energy released from current legalistic bickering into constructive programmes. Solutions could be offered that provide constructive roles for villagers, social workers and foresters Under the aegis of the Ford Foundation and in colloaboration with state officials and voluntary groups in Bihar and in Madhya Pradesh we have conceived of an approach aimed to offer such a solution. It is termed Community Forestry. In each State it has received cabinet approval and fieldwork has just begun.

Community Forestry, to distinguish it form Social Forestry which is a largely departmental programme, offers a solution based on the joint-management of land by communities organised and supported for the purpose and the Forest

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Department. Fig illustrates the new relationship. The Forest Department retains its public accountability for the use of forest land through the terms of its joint-agreement with each community, largely embraced in technical sanctions. The agreements are prepared and serviced by a Community Forestry Organisation (C.F.O) - to be created based upon project documents that identify the land, the community, the proposed forest and related development, management techniques, expected costs and benefits, and financial arrangements including government budgetary allocations and institutional finance where possible.

In order to join the programme, each community has to agree to a number of key provisions: (i) Each member household will receive an equal share in what is essentially a land campany. In this manner the present right to nistar, which has broken down, is upgraded to control over a common asset, the land.* This occurs only under the rules of the programme and of the joint-management agreement which, when signed by the community and the Forest Department,

---

* An example of the seriousness of the breakdown of nistar arrangements comes from Himachal Pradesh. Timber for house construction is a right recognised under the forest law. Today the difficulty is that, the general condition of the forests and of the village economy having deteriorated in many parts, villagers make extravagent demands far timber for house building. Much of this timber is sold into the market illegally. In other words it has become a source of illegal income. Foresters, some of whom are involved in the illegal gains, cannot with any justice sort out the honest from the dishonest claims for timber. A departmental proposal to give each family 1/20 of the timber needed for a standard house each year, on the reasonable assumption of rebuilding every 20 years, had to be withdrawn from the Assembly at Simla. It appears that no procedure within the current nistar system will succeed while the villagers and those who represent them regard state forests as "fair game." Control of the situation will only come when the split between management and right is remedied in one institution which acts on behalf of the members of villages in developing and maintaining a commen asset.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

creates the legal entity, that is the Community Forestry Company (C.F.C.). (ii) Management decisions can be vetoed by either the Community or the Forest Department with provision for arbitration directly by the C.F.O. (iii) Forest land being treated as an asset to be managed and not as a right, prices are to be established for forest produce by equal distribution to each shareholder and subsequent voluntary redistribution through the market or, perhaps, by auctions overseen by the C.F.O. (iv) Provision is to be made for the creation of reserve funds, for the repayment of loans and for the payment of agreed royalties as prior claims on the produce of the C.F.C.

The C.F O's prime task is to develop its own capacity to service member C.F.Cs. Service would include; inital survey and project preparation; community organisation: training; the supervision of auctions; produce distribution; the development of and support for specialized crops as fodder and livestock, oak and tasar, orchards, essentiol oils and medical plants. Service would also include support for the development of cottage and small industries, and for the marketing of produce originating from forest land; the audit of acccunts; the arbitration of within community disputes and of disputes between the joint-management partners - the communities and the Forest Department.

The C.F O. will have to have capacities within itself that at present are distributed across a number of government departments; departments which in turn are not directly accountable to their clients. More than one C.F.O. could exist in any state. Control of the C.F.O. would be vested in a Board which might include members from the Forest, Finance and perhaps Planning Departments, the Hill Development Department in Uttar Pradesh: specialist agencies such as the Central Silk Board (tasar), the National Dairy Development Board, one or more representatives of bank, voluntary

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

agency and public or private corporations, and representatives of the member C F Cs. The Board's representation should delineate the boundary around the "society of actors" who form the C.F.O. and who have a welfare or professional interest in its performance

Membership of the Community Forestry programme cannot be automatic. The respective C.F.O. would set the entrance standards for communities depending on its ability to make the programme attractive in any region (land availability, crop choices, existing forest stock etc). Where valuable crops can be produced such as tasar and essential oils, the C.F O. may well decide to allow individual control of forest land for that purpose, perhaps on a royalty basis adjusted to cover loan repayments.

The boundaries of C.F.Cs would clearly be a more intimate affair than that of Catchment Authorities. The details are to be negotiated, and allowance made for re-negotiation, based on project documents and experience. Some C.F.C. functions, such as processing and marketing, may be best carried out at a secondary level which can be developed over time. Adiministrators may attempt to make the secondary level coincide with the Catchment Authority though lack of experience suggests it is an open question. C.F.Cs, if possible, should coincide with Community Budget boundaries. The adjustment could be both ways, depending on the locally more important variable. In both cases, service organisatoins, the Catchment Authority and the C.F.O., have to adjust the preferences of clients. They would be free to alter their own cost structure where applicable as part of the negotiation with clients over boundaries.

Conclusion

The paper proposes a drastic reduction of traditional line department activities in favour of service realtionships that

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

provide communities with control albeit governed by the use of technical and project analysis skills, over common lands and over a major share of development activities in their areas. It provides government development departments with professional roles, with opportunities to function as teams and with defined client relationships. Regulatory functions would cease to be the prime concern of foresters. They would be largely replaced by communal control sanctioned by specialist agencies. Government's prime role would become the building of service organisation rather than the control of people. The overlap in services between the governmental Catchment Authorities and the quasi-government C F.Os would be regulated by the communities. Their final sanction would lie in the use they make of Community Budgets.

The nature of the proposed organisations, the Catchment Authorities and the Community Forestry Organisations lends them to outside assistance in their creation and management. Today India had well developed commercial and industrial sectors and established institutes of management and of related social sciences. This wealth of academic and practical skills is only just beginning to be tapped by government to do more than write reports. The research, consultancy, training and management capacities available should now be brought in long term and responsible relationships, perhaps as declared partners, in the building of new institutions and programmes.

The tax exemption provision included in the 1977 budget to encourage public and private corporations to enter rural development promises to be important. In its present form, based upon company adoption of villages, it provides a modest entry point. If the corporate sector is to play a role at the top where a purer exchange of their skills is possible, then the provision will have to be elaborated.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The paper proposes a change in the balance of powers in the hills so that more complex decisions can be taken and implemented. Its strength lies in mechanisms that offer to nurture group action in areas in which the bulk of resources are community property. Imaginatively handled, the crisis in the Himalayas could spark administrative reform that could be of significance to India as a whole.

THE HIMALAYAN KINGDOMS

● *By Navnit Parekh*

Sandwitched between two giant neighbours, and perched on the roof of the world, are the Himalayan Kingdoms of Nepal and Bhutan. A third kingdon - Sikkim - has now become an integral part of India.

While both and India are teeming with millions of people, these Himalayan kingdoms are sparsely populated. While Nepal is the only Hindu kingdom in the world, Bhutan is the only country which has Lamaistic Buddhism as its official religion.

Let us first visit the bigger kingdom Nepal. There are regular air-services from Delhi, Calcutta, Patna and Varanasi to Kathmandu, the capital of Nepal. There is also an excellent motor-road, called "Tribhuvan Rajpath" linking Kathmandu with north India. This motor-road has been constructed with Indian aid.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

We take the Royal Nepal Air Lines flight from Delhi, to Kathmandu. Even before we touch the holy ground of Nepal, we obtain magnificent views of the giant, snow-clad mountains to our north. While our air-craft circles over the air-port, we get aerial glimpses of many a temple and pagoda on the ground.

From the air-port we drive to Hotel Saltee or Hotel Annapoorna. Those who have a small budget, can stay at Hotel Shankar, Paras or Panorama Hotel

We begin our sight-seeing of the Nepalese Capital, by first paying our homage to Lord Pashupati Nath Located on the banks of holy river Baghmati, the temple of Pashupati Nath is about two miles from the centre of the city. This temple is the holiest spot in all Nepal, and every year thousands of devout Hindus travel from all over India to this sacred shrine on the occassion of Maha-Shivaratri. A huge Nandi (Bull) greets us as we enter the precincts of this temple. He is the vehicle of Lord Shiva and therefore, he is sitting on a pedestal facing the temple. The roof of the temple is covered with sheets of solid gold. In the sanctum-sanctorum we have the Darshan of the beautiful Shiva-Lingam which has four faces of Shiva - one face is in each direction. This is one of the twelve Jyotir-Lingams of Shiva.

We are told that there are about two thousand temples in this valley, which consists of three cities-Kathmandu, Patan and Bhatgaon. About half a million people inhabit this rich and fertile valley, which is about 4500 feet above sea-level.

We now cross the Baghmati river and climb a flight of steps on the opposite side. We arrive at the shrine of Guhyeshwari Devi where only an aperture in the ground is worshipped as a manifestation of the Godess.

On one of the highways of Kathmandu is located a lovely temple made entirely out of wood. It is known as Kashta–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Mandap after which the name of the city "Kathmandu" is derived.

On the top of a hill, west of Kathmandu, is situated the famous Buddhist shrine of Swayambhu-Nath. We cover the 2 mile distance by car, although there is a steep flight of steps leading to the top of the hill. Swayambhu - Nath has the reputation of being the oldest shrine in all Nepal. A huge Stupa or Pagoda has been constructed here, which supports a conicl spire, crowned with a pinnacale of copper gilt. On the square base of the pinnacle are painted the large eyes of the Buddha on each side.

Bodh-Nath is another colossal Stupa on the out-skirts of Kathmandu. Built on an octagonal base, the pagoda has several niches containing prayer-wheels. We turn these wheels with our hands as we go round the Stupa in clock-wise fashion, and we murmur the universal Tibetan mantra "OM MANI PADME HUH". There are scores of niches, each containing an image of the Buddha. Atop the giant white dome of the Stupa, rests a square-based pyramid-spire, adorned with the All-Seeing eyes of the Buddha in each direction. We take the opportunity to meet many Tibetans who have settled around this shrine,. and we enjoy bargaining with them for the purchase of Tibetan antiques and art-wares.

In the heart of Kathmandu is Hanuman Dhoka which was the medieval royal palace. The Kings of Nepal are all crowned here and we also see the Coronation platform. Hanuman Dhoka was built by Raja Pratap Malla in 1650 A.D., and in the vicinity are the giant statue, of Kal-Bhairav, the Taleju temple, the Big Bell, a golden statue of Raja Pratap Malla and the Basantpur palace.

In a picturesque building with exquisitely carved balconies and latticed windows, resides a gracious virgin called Kumari-Devi, who is worshipped as a living godess. We now drive

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

to Singha-Darbar which was once the palace of the erstwhile rulers, the Ranas of Nepal. It has about a thousand rooms, and this colossal building is now the Secretariat of the Nepal Government. We also visit the shrine of Budha-Neelkanth, where a large image of Vishnu reclining on a bed of serpent Shesh-Nag, is erected in the midst of a pond.

We now leave Kathmandu and drive to Patan, three miles away. Officially called Lalitpur, Patan was the capital of Nepal in ancient times. Raja Veer Deva had founded this circular city nearly seventeen hundred years ago.

In the Durbar-square of Patan, we visit the ornately carved stone-temple of Sri Krishna. The walls of this temple are decorated with scenes from Ramayana and Maha-Bharat. There are several other temples, shrinnes and fountains at this Durbar-square of Patan.

We also visit the Mahabeuddha temple in Patan, which was a small image of the Buddha inscribed on every brick of the temple spire.

Farther from Patan, is another ancient town of Bhadgaon. This thousand-year-old city is also known as Bhaktapur. Shaped like a conch-shell, Bhadgaon is welknown for its Golden-Gate, which is the entrance to the modieval palace. It is the most ornate gate in all Nepal, with exquisitely carved metal sculpture. Another attraction of Bhadgaon is the Nyatapola temple, which is the best specimen of pagoda-architecture.

We now leave this lush-green valley, and fly to Pokhara in the west. A Royal Nepal Airlines flight bringe us to this principal town of West-Nepal. The name Pokhara means a lake, and there is an enchanting lake called Phewa-Tal, in the centre of this rich and prosperous valley. The lake has an erea of about four square miles, with a lovely little island in its midst. We enjoy boating on the calm bosom

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

of the lake while the stupendous curtain of snow-clad Annapcorna and Machha-Puchhare glitters in the back-ground.

South-West of Pokhara is the great shrine of Lumbini where Lord Buddha was born 2500 years ago. There is an ancient pillar here, erected by Emperor Ashoka. Lumbini and Pokhara are now connected with Kathmandu as well as with Gorakhpur in U.P. by an excellent motor-road.

We now take another flight of Royal Nepal Airlines, and we fly eastwards to Luk-la. From here, we trek to Namche-Bazar and to Thyangboche monastery to obtain breath-taking views of Mount Everest and its several sate-llites This region is called Solo-Khumbu and it is the homeland of the world famous Sherpa Community. The Japanese have now built a modern hotel called "Everest View Hotel" in this region.

Leaving this great Himalayan Kingdom of Nepal, we now fly to Bagdogra air-port from Calcutta. We travel seventy miles by car to the enchantic hill-resort of Darjeeling. The tourists can, alternately travel by train up to Siliguri and then take the mountain railway up to Darjeeling. This exciting toy-train passes through luxuriant forests, smiling tea-gardens and several deep, dark tunnels. The journey takes about six hours.

We put-up at the Everest Hotel or alternately at Windmere or Bellvue Hotel. Towering behind Darjeeling is the gigantic snowclad massif of Kanchenjunga which is the third highest mountain in the world. It is 28146 feet high and is flanked by Jahnu, Kabru and Pandin mountains.

At Darjeeling, we walk up to Birch Hill to visit the Himalayan Mountaineering Institute. Basic and Advance courses in mountaincraft are conducted by this Institute. We

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

have an animated chat with Sherpa Tenzing Norgay, who was the first man to stand on the summit of the highest mountain in the world. We also meet Sherpa Nawang Gombu who is the Director of Field Training and who has climbed Everest twice.

At Darjeeling we also visited the Natural History Museum, the race-course, the Botanical gardens and the Buddhist monastery at Ghoom.

In the early hours of one morning, we drive up to Tiger Hill for a spectacular view of the Himalayas. At dawn, when the first rays of the sun touch the silvery summits of Kanchenjunga, the snow-mountains offer a glorious feast of colour and tranquility. On a clear day, even Mt. Everest can be sighted from Tiger Hill.

From Darjeeling, we visit the near-by hill-resorts of Kalimpong and Kurseong. Kalimpong was once the centre of trade with Tibet, and is 30 miles from Darjeeling.

We now drive eastwards to Sikkim which was ruled by a Maharaja (Chogyal), until it was merged with the rest of India. Gangtok, the capital of Sikkim is about seventy miles from Darjeeling.

Sikkim is a tiny state, but it boasts of high snow-mountains, deep gorges, dense forests and lush-green rice-fields. There is also a great ethnic diversity in Sikkim. There are Lepchas, Bhutias and Nepalese living harmoniously together in Sikkim.

At Gangtok we stay at the Norkhil Hotel and first visit the Palace monastery. The entrance gate itself is very ornate and colourful. We watch the Buddhist Lamas perform strange ceremonies and rituals to the accompanyment of drums and cymbals. We also see the colourful frescoes on the walls of this monastery. Facing the monastery is the small palace of the erstwhile Maharajas of Sikkim.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

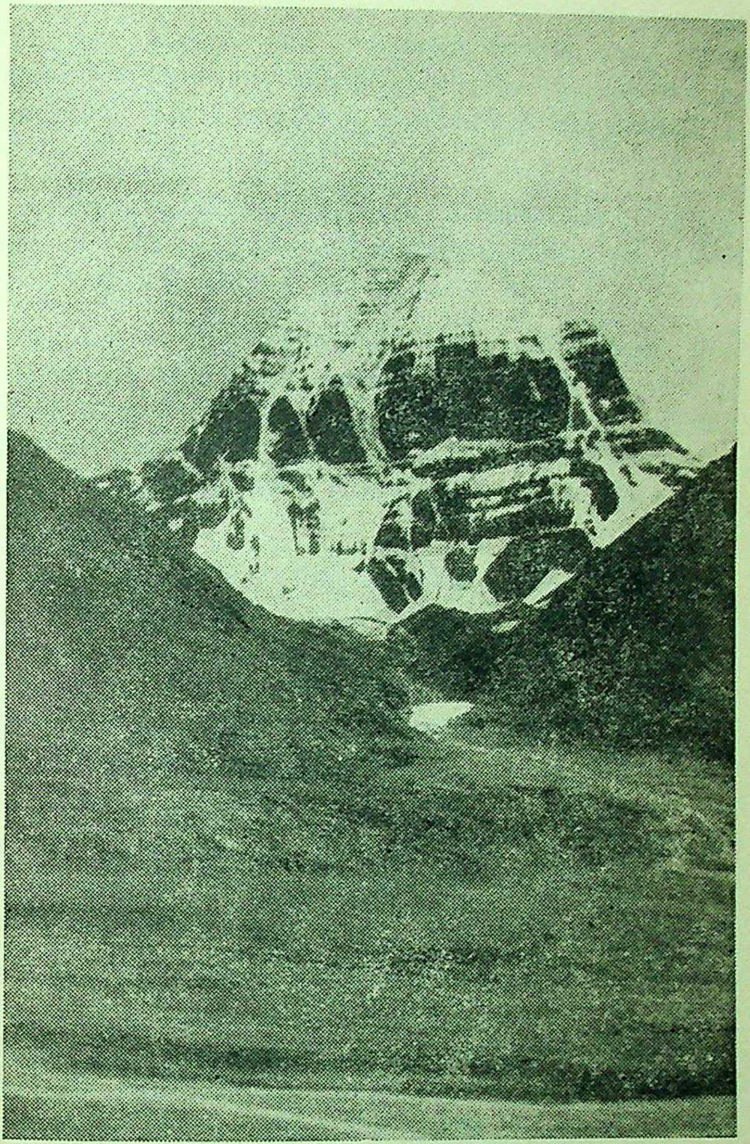

कैलास पर्वत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

There is a large, new monastery a lttle away from Gangtok, at Rumtek. This in founded by His Holiness the Karma-pa Lama who now resides there after having left Tibet.

One day we drive northwards to Singhik from Gangtok. We stay at the tourists bungalow and we obtain a magnificient view of Kanchenjunga at sun-rise.

Leaving Sikkim behind us, we travel by train from Siliguri to Hashimara station. Here we cross over to Phuntsoling which is on the border of India and Bhutan. This town has sprung-up on the banks of river Torsa and we take a car or a bus from Phuntsoling to reach Paro in the heart of Bhutan.

Paro Valley is one of the most fertile regions of Bhutan. Paro town used to be the summer capital of Bhutan until the new permanent capital was built at Thimphu, east of Paro. Every year thousands of Bhutanese get-together at Paro to participate in the annual fair held at Paro Dzong during April. Elaborate rituals and Lama-dances are held at this fortress for a week culminating on the full-moon of Chaitra. An enormous banner-painting of Guru Padma Sambhava, the founder of Lamaism, is erected at Paro Dzong on the last day of the festival.

Paro-Dzong in one of the largest fortresses in Bhutan. It is a peculiar combination of a monastery and a fortress. All public functions of the valley are held at Paro-Dzong and scores of Lamas reside inside this fortress. A seven-storeyed tower stands in the centre of the Dzong.

From Paro we drive eastwards to Thimphu, the new capital of Bhutan. We first visit Tashi Chho Dzong, which is a collossal rectangular structure, recently constructed, as the Secretariat of Bhutanese Government. In keeping with Bhutanese traditions, there is a monastery in the centre of the

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Dzong, which in the residence of the Head Lame of Bhutan.

At Thimphu, we also visit the beautiful palace of the King of Bhutan, which is a little away from the town. The palace is built in delicate Tibetan style.

We now drive further eastwards to Punakha which used to be the winter-capital of Bhutan. The town nestles on the banks of two streams which join here to form river Sankosh. The Dzong of Punakha has been constructed on an island in this river.

We now bid farewell to this great Himalayan Kingdom and to this enchanting region of the Indian sub-continent.

HILLS AND FORESTS IN LITERATURE AND LIFE

P. S. Sundaram

If it is true that God made the country and man made the town, it must be even truer that God made the hills, while man made the hamlets. Anything found in nature like forests and rivers must be the work of God, while the humblest cottage is as clearly man-made as the most gorgeous palaces.

Poetry which is supposed to deal with the true and the real is associated as much with "nature" as human nature. We look to it for descriptions of sunrise and the stars, tall oaks "the green-robbed senators of the woods", sounding cataracts

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

which haunt one like a passion. When Longfellow opens his *Evangeline* with

> This is the forest primeval, the murmuring pines and the hemlocks
>
> Bearded with moss, and in garments green, indistinct in the twilight
>
> Stand like Druids of eld, with voices sad and prophetic,
> Stand like harpers hoar, with beards that rest on their bosoms.

We feel at once that this is the land which is sacred and peculiar to poetry, and every poem worth the name should have descriptions like these.

And yet nature description is a comparatively recent phenomenon.

"A primrose by the river's brim", wrote Wordsworth disparagingly of the wicked Peter Bell,

> A yellow primrose was to him,
>
> And it was nothing more.

But was it anything more even to Shakespeare ?

> Daffodils
>
> That come before the swallow dares, and take
>
> The winds of March with beauty

is no doubt a wonderful piece of poetry. But while the lines do full justice to the beauty of the flowers, there is no suggestion in them of anything spiritual. Not that the lines are any the worse for it.

We in India pride ourselves on our spirituality. Like the ancient Greeks, we peoplesee everything around us as supernatural beings. Not only mountains and rivers but even trees and snakes are sacred and must be worshipped. Sermons

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

 An Life in stones and books in the running brooks are nothing strange to us. In fact the running brooks contain whole libraries.

Among the four *ashramas* prescribed for the Hindus, the third and the fourth are specially significant--- *vanaprastha* and *yati*. One had not only to educate oneself for life *(brahmacharya)* and live that life with wife and children *(grahastha)* He had also in the fullness of time to give up his home and go into the forest. Life was not complete without a portion of it spent in the quiet of the woods and far from worldly aims and ambitions. The last stage was complete renunciation.

It is interesting how both our great epics, the *Ramayana* and the *Mahabharata*, have whole books devoted to forest life Rama has to spend fourteen years in the forest as per his father's command unwillingly extracted from him by his step-mother, and the Pandavas have to spend twelve years in a forest as a result of losing a gambling match to their cousins, the Kauravas. This was to be followed by a year in anonymity

The *Bhagavata Purana* also has a few incidents connected with the forests. The most famous of these is the story of Dhruva, the child insulted by his step-mother Suruchi and going into Madhuvana to do *tapas* to gain the favour of God. But while details of this *tapas* are given month by month, hardly anything at all is said about the forest itself, except that Dhruva's father, Uttanapada is worried that his child might be eaten up there by wolves.

In the *Ramayana* and the *Mahabharata* too there is more about incidents in the forests than a straight description of the forests themselves.

One would expect that in the *Kumarasambhava* with its scene laid in the Himalayas, there would be a vivid description of this mountain and its precincts. Nothing indeed could be more magnificent than its opening:

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

There stands in the north the Monarch of Mountains,
His two feet well plunged in seas east and west:
The God-like Himalaya, rod-like outstretched
To measure and judge this world of ours.

The picture of a giant bestriding the world, feet planted in the seas, hands stretched out to measure the earth and also to judge it, cannot be bettered. But the sixteen stanzas that follow it go off into a world of legend and fantasy - - - the earth turned into a cow and milked by Mount Meru, hues reflected in the clouds producing an untimely evening and thereby misleading the heavenly houris, the trail of lions identified by the pearls which they had acquired by attacking and killing the tuskers and later let fall, phospherescent plants needing no oil to light up the amorous sports of hunters and their wives, the Kinnara ladies bitten by snow trudging slowly up and hampered not by the frost bite but their rounded hips and full breasts, lotuses plucked by the Seven Sages which blossom when the sun's rays strike from below, the solar orbit being lower than the lakes on which these flowers bloom! The splendid imagination of the opening is all turned, like the mad Ophelia's thoughts, to mere fancy and prettiness.

In the *Meghasandesa* Kalidasa has another opportunity to describe the Himalayas. Here too, as in the earlier work, he talks of the hollow bamboos turned into flutes for the mountain to play upon with his breath from the valleys. But there is another and a more arresting picture:

"If perchance a forest fire breaks out", says the Yaksha to his cloud-messenger,

"Caused by concussion of the Sarala trees
With a thousand showers extinguish it, and save
The *chamari's* tails. Great wealth should aid distress".

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The first sarga of *Raghuvansa* contains a good picture of Vasishtha's hermitage, and the fourth act of the *Sakuntalam* with its moving portrait of Sakuntala's sorrow at leaving her favourite creeper behind and the reciprocal love for her of the creeper, goes into the very heart of the true relationship between humans and plants. Our forefathers were wise in recognising that the wisdom of the Upanishads could have originated only in forests. Long before Wordsworth they had made woods and rills their daily teachers and sought

The silence that is in the starry skies,

The sleep that is among the lonely hills.

But the author of the *Bhagavatam* describes Dhruva's palace with its gold, crystal and emerald more lovingly and in greater detail than any hill or forest, as the Yaksha in Kalidasa has more to say about the splendour of his own house in Alaka with its emerald staircase, golden lotuses and stalks of beryl, than the scenery of the Himalayas. The conclusion is inevitable that either the author of the *Bhagavatam* and Kalidasa lived too much in the forest and liked to dream of the splendours of the cities, or knew too little about it from personal experience.

The actual splendour of the Himalayas is far greater than even Kalidasa could imagine - - - the wealth of its forests richer than rubies, its life-giving properties more certain and sovereign than those of all its mdicinal plants put together.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

UTTARAKHAND : Ecology vs. Economy

Rajshri Pant

Although I live in Bombay and love it, once a year I just have to migrate to the hills, even if I can afford to go only for a few days. It must be the "Pahari" blood in my veins that has taken me to places as far off as Gangotri and Yamnotri and the entire Alaknanda Valley. But every year I come back feeling a little sad because these hills are dying a slow death.

Himalayas, the greatest, the sublimest and the most formidable of all the mountain ranges, is facing environmental degradation through human interference. Faulty planning and inappropriate pattern of land use has set in motion a process of erosion and destruction. The widespread plunder of the forests by timber contractors, road builders and quarry-miners has disturbed the precariously balanced eco-system of this region. Deforestation, the drying up of Springs, loss of fertile top soil and the general economic deterioration as a result of all this is almost compelling the able bodied men to migrate to the plains, leaving the old, infirm and the women-folk to a life of deprivation and drudgery.

Our planners don't seem to realise that in the hills the environment is a basic dimension of development. The mountain regions are ecologically among the most fragile and any plan for development must take this into account, as also the interdependance of soil conservation, land use, water and energy resources. The inherent mistake in the planning process has been to treat hill-development as an extension of development work in the plains. The exploitation of natural resources has not taken into account the fact that natural

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

growth and regeneration is a slow process. The numerous limestone quarries between the Yamuna and Ganga have disfigured and gashed the Mussoorie Hills. The deep channel tapping of the pine for resin in Garhwal did result in increased production but caused extensive damage to the trees. Road cuts have removed the protective vegetative cover and brought whole stretches of hill side crumbling down in continuing slides. These and many such examples of denudation should have been visualised and alternatives provided for.

According to the National Forest Policy, 60 percent of the hills should be under forest cover. The actual area under reserve forest in Uttarakhand is down to 36 percent. With increasing pressure of population these areas are encroached upon for unterraced dry farming. Such farming not only gives very poor returns but results in heavy erosion. Besides, the hills and the forests are subject to heavy over grazing. There are more than four million heads of sheep, goats and cattle. The cattle here is kept not for milk but mainly for manure purposes. Whereas it takes about five heads of cattle to provide enough manure for 0.4 hectare of farmland, to provide year round grazing for a single animal 2 hectares of land is needed. The migrant Gujars and Bhotias, as they move up to Alpine pastures uncovered by the melting snow, create havoc along the trails they follow.

Without any thought for these environmental factors our planners continue to believe in more dams, more reservoirs and massive hydro-electric projects as the right means to development. No wonder the development in this region seems anti-development. The wholly inadequate effort has left its scars. Living conditions in the hills have deteriorated and the poor hill farmer is paying a heavy price. The small fragmented holdings and total absence of alternatives to agriculture in development plans have resulted in a stream of 'refugees' to the plains.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Ofcourse the 'Chipko' movement has helped. In much of the Alaknanda Valley the area for protection have been demarcated. In Bhagirathi and Bhilangana Valley regulated felling has been resumed. The plea for forests with more Oak and broad leaved species which provide fodder has been accepted. But this is only the fringe of the problem. The main issue is to drastically alter the current land use pattern, establish alternative sources of fuel and fodder, and income generation and employment. The Ganga and Yamuna catchment areas lie in Uttarakhand and conservation measures here are not to be viewed in the limited perspective of benefits to the local population but in the larger context of the well being of all those also who live in the plains below.

This means that all our development strategies need to be reviewed and the faulty ones corrected immediately. Actually all the development programmes in Uttarakhand need to be brought under a single umbrella. A land use pattern has to be evolved for the hills. Appropriate catchment area authorities should be set up in all upper catchments. All these will of necessity be multi-disciplinary bodies to ensure a co-ordinated development plan for the catchment area. Then alone can the long overdue regeneration of Himalayan ecology and economy be achieved.

We must also realise that the greatest achievement of the 'Chipko' movement has been generation of ecological consciousness. This needs to be harnessed to promote a new pattern of development without destruction of biological wealth and ecological balance. There is no future for Uttarakhand in terms of traditional concepts of economic development which do not take into account fundamental environmental factors. Whatever the mistakes of the past if there is vision and perception the future of Uttarakhand can still be bright.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

QUIET CRISIS IN THE HIMALAYA

A. D. Moddie

"The earth has cancer, and the cancer is man". This is one of the most telling sentences of our time. The cancer of multiplying man's pollution and poverty is fast extending itself over the face of the earth. It has been steadily creeping over the Himalaya, unspectacularly but relentlessly. Once beautiful, forested hills are becoming bare, ugly landscapes. Ecological degradation is setting in across the whole range. "The Himalayan arc", says Eric Eckholm "forms an ecological Gibraltar whose fate looms over the well-being of hundreds of millions"; about 50 m. in the mountains, and about another 300 m. in the Indus, Ganges and Brahmaputra valleys. The ecological clock is ticking away. The deserts of Afghanistan are in the late evening; Bhutan and NEFA may be still in the early morning; and the central Himalaya is in the late afternoon of the Himalayan day. Wild life is being fast exterminated, and both man and mountain are becoming poorer. In bygone ages the Himalaya seemed eternal; man's onslaught has rendered them among the most fragile ecosystems of the earth.

Most people still have the hang-over of the past attitudes to the Himalaya. They treat the Himalaya as some kind of Shangrila, or as the abode of Gods; of little economic use to man and with limited geophysical implications for the lands and peoples around it. True, the Himalaya being the highest and most majestic mountain range of the world, has an aesthetic and spiritual quality which calls to the spirit of man, and makes it almost a symbol of the Super conscious; but it

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

is more than the earth's altar for worship, the arena for human sublimation by yogi or mountaineer. It is the weather-maker of Asia. The inter-action of the annual monsoon and the eternal Himalaya makes the weather for the whole of south Asia, and it also influences the continental climate of the whole of central Asia. Without the Himalaya there would be major climatic changes in most Asian countries. They are also the sources of rivers–and of hydro-electric power, actual and potential,-of the Indian sub-continent; watering Pakistan, India, Nepal, Bangladesh and Bhutan. The whole range is like Bhagiratha's bent bow which strikes arrows at glacier and snow slope, and releases hundreds of streams of water down to the sub-continent below. The hydro-electric potential is incalculable and only partially tapped. One small indication is that the potential of a single valley–the Karnali valley in Nepal-is expected to be the same as the entire installed capacity of India. There is fabulous hydro-electric potential in the fifty-mile Brahmaputra bend, in which its waters come crashing down 10,000 ft. in so short a distance. One report had it that 25% of the world's hydro-power could come from just this one source. The Himalaya could also be the source of much wealth in the shape of timber, forest produce, minerals, and the source of horticulture and wool. But all this calls for environgent-oriented planning, not blind exploitation.

The tragedy is that they have not been looked upon as reservoirs of resources, but as remote reteats, barren wild, and resourceless. The people of the sub-continent have turned their backs on the Himalaya for centuries, except for spiritual purposes. They have turned to them in times of pilgrimage. People in other parts of the world have responded to them as challenges to adventure upon the world's highest mountains; and names like Everest, Annapurna, Kanchenjunga, Nanda Devi, and Nanga Parbat have beckoned heroic hearts from every continent.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Then the 'dorje' or the thunderbolt struck. On a March night in 1959 the Dalai Lama prayed for the last time in his chapel in the Potala, and then fled over the Kameng ranges into India. In the 1962 border conflict between Himalaya and China, the rest of the world suddenly awoke to the fact, that the Himalaya was one of the most sensitive political and strategic frontiers of Asia. Shangrila vanished like a cloud. The Himalaya become a region for 'real politik'. It was a frontier which not only saw the Himalayan upthrust of the two major Asian powers; but also harboured the problems of small but attractive States like Nepal and Bhutan; apart from Afghanistan and Pakistan suspended in strained relations from the Hindu Kush in the far north-west. This was once the area where three empires met. History was repeating itself.

Much of the western Himalayan region from Afghanistan through Ladak to Lahul and Spiti has been mountain desert for centuries: but the cancer is spreading eastward fast, and the carrier is man, both Himalayan and non-Himalayan man. Mounting populations in the inhabited hill regions upto 10,000 ft. have in many cases multiplied as fast than the population of either the Gangetic plain or the coastal plain of India. In the last fifty years since 1921, the populations of districts below 10,000 ft. elevation in the Himalaya have risen a 170%, whilst those of selected districts in the Gangetic plain have risen 127%, and those in the coastal plain only 99%. These mounting populations of poor hill peasants are pushing up the valleys to the last rocky slopes which can be tilled for the most meagre subsistence farming. Before the plough and the axe fine forests have fallen over thousands of square miles in the last thirty years. The denudation of vital forest cover, which should be 60% of the land area in hill regions for ecological stability, has led to disastrous consequences in the shape of hill erosion, the siltation of dams, and the scourge of annual floods. The hillman has very limited arable land,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

and on an average he can barely produce 50% of his food. With erosion fast removing the thin irreplaceable top soil and its nutrients, his descendants must face diminishing food production per capita. A widespread example of this lies in the central Himalaya, in Garhwal, Kumaon and Nepal, the next stage of the extension of the western mountain desert unless immediate and massive remedial steps are taken. Nepal provides the most dramatic example of the speed of this desertification of the most beautiful part of the range, the central Himalaya, which Frank Smythe described only thirty years ago as its "cream". In a flash of time, in one decade ending 1971, Nepal has lost 50% of its forest cover. Two-thirds of its people live in the hills, and they cannot feed themselves on spreading aridity. Its people have, therefore, had to flow down with the silt and the water, and spread themselves over the entire terai belt, extending into the hills of Garhwal, Kumaon, Darjeeling Sikkim and Bhutan; and into the plains of India. This disastrous phenomenon is not in the central Himalaya alone. Everywhere the treeline is receding and the hills are browning. The brown disease is spreading fast within one generation.

But it grows not only with the growth in the numbers of the hill peasant, anthropomorphic man from the plains equipped with higher technology and larger resources, is fast invading these highlands of the prayer-wheel and the temple. Perceptions of eternity are giving way to sad scenes of Himalayan fragility And it is the lot of the ecologist to witness this in quiet suffering. In their lot pursuits for the glittering summits, mountaineers need to pause, and ask themselves how well-founded their love of mountains may be; how long those beautiful environments below the snow-line will remain beautiful; and whether the pristine is now lost for ever.

The dam builders have built huge dams in India, Nepal and Pakistan at enormous cost, averaging Rs. 1,000 m. to

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Rs. 2,000 m. each, with a life expectancy between a hundred and two hundred years. Within ten years of the construction of these dams, the life expectations have shrunk to between half and a tenth caused by incalculable siltation in the treeless watershed areas behind the dams. This has led to an enormous waste of resources. The mere erection of concrete walls in narrow defiles cannot produce irrigation water and hydro-electric power for long, if the cancer behind the dam is ignored.

Road building has led to similar results, less dramatic but more widespread. In 1947, Karponam, ten miles up the track from Gangtok to the Nathula on the Tibet border was dense with one of the world's finest rhodendron forests, dripping with 200 inches of rainfall. It was a shock to discover ten years later that not one tree stood there. The old Sikkim Darbar and its contractors were the carriers of this cancer. Even in economic terms, the recurring maintenance cost of the new road in an eroded landscape would cost more than the capital cost of the construction of the road; apart from the biospheric and aesthetic loss to Sikkim of such a treasure as a rich rhodendron forest.

Then there are the new nomads, the tourists, trekkers and mountaineers. Even the first phase of this new nomadism in the last fifteen years has shown its destructive potential for both landscape and culture. New tourist resorts have been built without any serious thought to alternative sources of energy and trees, the only source of local energy, have been cut down thoughtlessly. This goes on from Gulmarg to Kulu to Sola Khumbu. Tourism is following its own nest. The classic example is that of Sola Khumbu, the land of the Sherpas. Ironically, the attraction of the Everest region is proving to be Sola Khumbu's ecological undoing, and perhaps cultural too. And that with an influx of trekkers and climbers which have risen from only 20 to 3400 a year in the ten years

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ending 1974. The destructive potential of environmentally unplanned tourism of even these limited numbers is apparent. The Nanda Devi sanctuary, with only a single entrance through the Rishi gorge, is threatened too. Once vegetation above 10,000 ft. is cut down, regeneration is a very long process. The Singalila ridge dividing Darjeeling district and Sikkim from Nepal has been laid bare of its forest cover long ago. In Kulu, the tree-line has been visibly receding up the slopes from the valley floor in the last thirty years, and it is now near the ridges. The Alaknanda valley dividing Garhwal and Kumaon is in an advanced state of ecological degradation. These are only a few illustrative examples of the blight creeping over the Himalaya. Climbers and trekkers need to acquire a new ecological ethic of respect for their natural environments, without which they despoil the mountains for their pleasure. As a contribution to this problem the Himalayan Club has formed an Environment Committee to enhance awareness of the problem, to bring violations of Himalayan environment to the attention of trekkers, climbers and the authorities; and to promote the conservation of one of the earth's last and grandest regions.

Two interesting models of conservation and development of mountain regions present themselves in the European alps and the Japan mountains It was surprising to learn that in central Europe in places like Switzerland, Bavaria and Austria, similar conditions prevailed there a hundred and fifty years ago as in the Himalaya today; poor peasants, deforestation, soil erosion, floods, and a poor economy. In the early phase of the industrial revolution, central Europe lost its forests; fortunately coal, the alternative energy came to its rescue. In the subsequent century and a half, three factors have mainly accounted for the present state of conservation and development. The first was land-use planning, with the help of land tenure systems which, in some cases, went back to the fourteenth and fifteenth centuries. The

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

second was the development ot hydro-electric power as a major alternative source of local energy for development, without the destruction of forest cover. The third was the development of planned tourism. Between these three, there seem to be a happy blend of conservation and development. And this provides something of a useful model to other mountain regions of the world.

In Japan there is the remarkable phenomenon of only 2% of the large population of over 100 m. living in the mountains, which covers 75% of the land area. This has been achieved partly by a policy of conserving the mountain regions as reservoirs of resources of forestry, hydro-electric power and tourism; and, partly, by the draw of economic development in the plains in the last thirty years especially. Admittedly, a price has been paid for this in the congestion and pollution of the remaining 25% of the land area in the plains. Perhaps the Japanese model has swung too far in one direction; but again the basic principle of treating mountains as reservoirs of natural resources with the same combination of factors seems to apply here as in central Europe. They are useful models for the Himalaya too.

Since Stockholm, 1972 and the spread of environmental consciousness an awareness has been dawning that the mountain ranges of the world, the Himalaya and Andes in particular, are in a state of jeopardy, and that their biospheric problems begin with the impact of man on the mountain. UNESCO-sponsored conferences have been held in the European alps, then in the Andes, and recently for the Himalaya – Hindukush area at Kathmandu in Septemder, 1975. Earlier, in December 1975, a conference of over forty scientists and mountain experts from many countries assembled in Munich to take stoke of this problem. At the end of the conference, they issued the following statement of concern:

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Statement of Concern

Mountains and the Human Future

1 Man has been the maker of deserts in past ages, even with his bare hands, and often in the name of progress. Now that he is multiplying fast, and has more powerful technology, his capacity to endanger the balance between Man and Nature (Only One Earth) has been enhanced many times.

2. About a third of the earth's land surface, the mountain regions, seemingly permanent, are among the most fragile once deforestation and soil erosion begin. Yet their potential for human well-being, for agriculture, forestry, water and power systems, and recreation, can affect half the human race, for better or for worse. In many places the misuse of mountain laid causes economic losses far in excess for any gains from development endeavours.

3. Eco-stress in the mountain has widening destructive impact in the plains with floods, the siltation of dams, reservoirs and ports; the loss of agricultural produce, and of homesteads; leading to irreplaceable human and economic losses.

4. The combined eco-stress on mountain and plains affects the world's two major problems, food and energy, especially in the developing world Eco-stress undermines national and international efforts in economic development

5. Yet, there is hope, and there is vast potential for human benefit, given awareness of the problem; and if conservation-oriented development techniques are explored. Many are already known. They need implementation. In the developed mountain countries there are many useful examples of timely economic and ecological development to serve as a guide to prevent an avalanche of disastrous consequences.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

6. Eco-development also needs new levers for resource and employment generation, especially in poor developing mountain lands, which are in both an ecological and a resource trap. In many areas important possibilities exist especially where recreational, potential and hydrological resources exist but are unavailed of.

7. New sources of energy for mountain peoples are the key to the problem of saving and spreading forest cover, the shield of agriculture in both mountains and plains There is promising potential for such new sources of energy from hydro-power, fuel forestry, and even solar energy.

8 Urbanization and population increase are driving millions of plainsmen to seek recreation and peace in the hills. This is a mounting environment threat, but one which can be turned into potential benefit if ecologically planned tourism, which can respect landscapes and cultures, could provide alternative employment for populations whose subsistence technology is rapidly depleting their resources of land and forest.

9. We who are concerned with the implications of ecological degradation of mountain environments, believe that the dimensions of this problem call for an immediate trans-national, multi-disciplinary response including the joint use of all available scientific, technical, economic and political possibilities.

10. The time for such a response is now, in word and in action. The hour is already late.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

KALIDASA'S

KUMARASAMBHAVAM

Canto I

1. There stands in the north the monarch of mountains,
His two feet submerged in the east sea and west - - -
The godlike Himalaya, a rod that is stretched
To measure and mete justice on this our earth.

2. When the Earth turned a heifer and Mount Meru made Milkman
To draw from her udders whatever he could get,
This was her calf to whom she gave first
Her most dazzling gems and her most potent plants.

3 With jewels so costly and various, he
Could afford the handicap caused by the snow:
Where virtues are many, a single defect,
Like the spot on the moon, is easily merged.

4. The hues of his peaks reflected in clouds
An untimely evening produced by day,
Which misled the heavenly hour is so much
They wore all their garments and jewels awry.

5. The *siddhas* who shelter under the shade
Of the clouds that come up to this mountain's waist,
Oppressed by those clouds when they pour down as rain,
Resort to the sunshine they find higher up.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

6. The trail of the lions that slaughter the tuskers
The snow washes clean of all its red gore;
But the hunters can still find the path that they took
By the pearls loosened there from the paws of those beasts.

7. For the barks of the birch trees that grow on this mount
The oread nymphs find an excellent use:
With fluids as red as some elephants' spots
On them they indite their amorous notes !

8. For the notes that emerge from the bamboos his flutes
The breath is supplied by the valley, his mouth.
The *kinnaras* learning their music from these
Fulfill his desire to teach them that art.

9. When elephants in rut allay their itch
By rubbing their temples against the pines
The resin that milklike flows from those trees
Fills with its fragrance the forests and peaks.

10. At night when the foresters sport with their wives
Their caves are lit up by luminous plants;
No oil is needed to keep them aflame
And brighten the joy of the amorous play.

11. The *kinnara* damsels bitten by the snow
Suffer great torture in toes and heels;
And yet they seem loth to hurry their pace - - -
So weighed down are they by their hips and their breasts !

12. The darkness, that owllike flees from the Sun
And sues for protection, gets shelter here:
The mean, as the good, seeking refuge
The high-minded treat as their very own.

13. The *chamari* deer wagging their tails
White as the sheen of the rays of the moon
Provide the *chauris* which make good the name
Of "King of the Mountains" of this lofty range.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

14. To the *kinnara* women stripped of their clothes
The clouds are a godsend covering their shame:
Hanging like curtains in front of their caves
They are veils coming down all out of the blue!

15 Over the Ganga the winds blow cool
And shake the pines as on they rush;
They ruffle the plumes of the peacocks there
And gladden the hunters tracking their game.

16. In the lakes up above bloom the lotuses which
The seven sacred sages gather in hand;
As the sun in his orbit revolves underneath
From below shoot his beams to make them unfold!

17. The might of this mountain could well bear the earth;
All things for a sacrifice he could supply;
For this was he listed an Overlord
And his right prescribed for offerings.

Translated by
P. S. Sundaram

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

THE SHERPAS - THE SONS OF THE SNOW

Dr. H. D. Bhatt 'Shailash'

The saga of Everest would be incomplete without mentioning the role of the Sherpas. The Sherpas are indispensable for any expedition in the Greater Himalayas. Famous Indian and foreign moutaineers affirm their crucial role. "If God had not made the Sherpas, Everest might yet be unclimbed," said M. S. Kohli and B. G. Verghese.

The Nepal - Tibet border is inhabited by a tribe called the Sherpas. They are of the Mongolian race. Their language, culture and religion do not differ much from those of the Tibetans. The Sherpas are a clan of the Bhotias and have been living in the northern part of Nepal in Solo–Khumbu and Farak. "Sherpa" is pronounced "shar–pa" in Tibet and means the easterner, as the Sherpa territory lies in the east of Tibet.

The Sherpas are Buddhist by religion. Their temples, called the *Boche* resound with the sound of "*Om Mani Padme Hum*". Persons entrusted with the management of the *Boches* are known as "Choukhumba" and "Chorpain". Their creed is non-violence and they abstain from killing animals. Strange to say they relish meat of animals killed by others. They believe in the philosophy of Virtue *(Sonam)* and Vice *(Digva)* and are lawabiding people. The village chief *(Pembu)* is respected by everyone and the village customs form the basis of village administration.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

They are very fond of music and dance which make the warp and woof of their social fabric. Men, women and children all take part in community dances.

Their three most important festivals are associated with seasons. As their territory is located at high altitude (9,000′ to 19,000′), spring comes here late. The spring festival, "*So-Laha*" is celebrated in June. On this occasion the entire population attires in festive clothes and holds a community dance. Villages, valleys and grasslands - all come to life as the life force once again vibrates through Nature. "Chaang" their home-made brew, is freely oflered and drunk. Gaiety and abandonment mark the spring festival.

The autumn festival, "Yardjang", comes after four months of "So - laha". Dance and music high - light this festival.

"Tan-Laha", which coincides with Diwali is their third most important festival.

The Sherpas are truly sons of the snow. A Sherpa child begins gazing at the lofty snowy peaks in his very childhood and feels an irresistible fascination for the snow. Icy winds blowing through their land intensify his longing to explore the mystery of the snow. A Sherpa child in nursed on stories related to *Chomolungma,* the Goddess of the earth.

The Sherpa territory, comprising of three districts of Nepal, is known as Solo–Khumbu. Some of the important Sherpa villages are Pangboche, Thyanboche, Nauje (Namche Bazar), Khoomjung and Thami Chowk. Of all the Sherpa settlements in Solo–Khumbu, Namche Bazar comes at the top by virtue of its opulence and commercial importance. It is a great centre of attraction for the Sherpas who supplement their agriculture with petty trade. Maize and potatoes are raised by them on terraced fields of their settlements.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Permanent settlements of the Sherpas are located at the altitude of 12000′ to 13000′. In summer, they migrate to still higher altitudes (19000′ and over) for grazing their yaks on the alpine pastures. Their summer habitation in the pastures is called "*Yarsa*" and winter habitation "*Gunsiya*". The latter is situated on leeward side of the mountain.

They do not observe any rigid marital rites. Pre-marriage sex is not a taboo among them. Inter-mixing of the sexes is not frowned upon; rather the youth of both sexes get ample opportunity to mix with each other in fields, pastures or valleys. They are also free to indulge in as they please. Similarly, divorce is not difficult to obtain. The lover pays bride money to her husband and takes away the girl Their children are often named after the weekdays like Dawa (Monday), Mingma (Tuesday), Lhakpa (Wednesday), Phurba (Thursday), Pasang (Friday), Pemba (Saturday) and Nima (Sunday). A child is named after the day he is born. Two other most current names are Ang (my dear) and Lhame (Goddess).

Darjeeling is the second home of the Sherpas where a number of them have now permnently settled down.

It was freak of luck which brought the Sherpas to the notice of the mountaineers. Long time back some Sherpas migrated to Darjeeling in search of their livelihood. Their mountainous country does not provide them sufficient agricultural resources for a comfortable settled life. In Darjeeling they came in contact with the mountaineers and impreseed them with their usefulness and dependability on insufferable heights.

It was in the year 1907 A. D. that Dr. A. M. Kellas took a few of them with his Sikkim Himalaya expedition. He was struck by their ramarkable efficiency in the snow and their native ability to climb high altitude with ease. He showered wholesome praise on them for their performance and they became the burning topic of talk among the mountaineers.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

But the glorious chapter of their history begins from 1922. Gen. Bruce, who led the 2nd British Everest Expedition in 1922, eulogised the characteristic courage and self-effacement of Chettan Sherpa. It was Chettan Sherpa who saved the life of Nortan, the famous British mountaineer, when glare of the snow blinded him and brought him down through the North Col.

In 1930, when Chetten Sherpa was buried under an avalanche while with the International Kanchanchanga Expedition, Smythe paid glowing tributes to him:

> "We had lost not a porter, but a valued friend.
> We left him buried amid one of the grandest mountain cirques in the world. So died a genuine lover of the mountains, a real adventurer at heart, and one whom members of several Himalayan expeditions will mourn".

There is no count of the Sherpas who sacrified their lives on these snow-clad, sky-high mountains. In 1922, seven Sherpas who were with the Everest Expedition, were buried alive under an avalanche. Then again in 1934, fifteen Sherpas died in the snow while with the Nanga Parvat Expedition. How can we forget those Sherpas who voluntarily courted death and sacrificed their lives for the sake of others ?

In 1934, Gayley Sherpa refused to desert his leader Willy Merkl, who led the expedition to Nanga Parvat. He knew he would surely die but he could not be dissuaded from his dangerous resolve, He stood fast with his leader and was buried under the snow. Both the corpses were found four years after this tragic episode.

In 1939, Pasang Kikuli and two other Sherpas died in an attempt to save the life of Wolfe, an American mountaineer who was taken ill when he was at Camp VII. Pasang Kikuli took two other Sherpas with him and climbed 5600' in a single day from the base camp to camp VI. Next day he

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

arrived at Camp VII to save Wolfe. Unfortunately in the heavy blizzard that followed, he could not save Wolfe but himself died as well.

When the International Women's Expedition was preparing for an assault on Cho-oyu peak (26,876 ft.), its leader Madame Claude Kogan and another member of the expedition and Sherpa Wangdi were buried under an avalanche This happened in 1959. Sherpa Wangdi made strenuous efforts for three hours to free them from the snow. Unfortunately the leader and her companion died under the snow and the woebegone Sherpa could not come out of the snow even after a hard struggle.

In 1961, Sherpa Norbu lost his life while he was accompanying the Japanese expedition to Lang-Tang in the Himalayas. Instances of self-sacrifice by the Sherpas are too numerous to be related here in full. They are also famous for their examplary courage and endurance in the snow.

One incident took place in 1954. Dr Hebert Tichy was the leader of the Austrian Expedition to Cho-oyu peak (26,876ft.). At the same time, a Swiss Expedition, led by Raymond Lambert, was bound for Gaurishankar Peak; but at the eleventh hour, the Swiss Expedition had to drop its preparation for assault on Gaurishankar Peak and decided to make an attempt at Cho-oyu Peak.

Sherpa Pasang Dawa Lama was with the Austrian Expedition. When he came to know that the Swiss Expedition also wanted to climb Cho-oyu Peak, he promised Dr. Hebert that he would behead himself if he failed to reach the summit before the Swiss Expedition reached there. True to his word, Pasang Dawa Lama climbed from the height of 13,000 ft. to the peek (26,876 ft.), within three days. His achievement sounds nothing short of a miracle. When he heard the news of the Swiss Expedition's plan to reach Cho-oyu Peak, he was at

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Marlung (13,000 ft.) near Namche Bazar, where he had gone to obtain supplies. On the first day, he climbed up to base camp at 18,000 ft.; on the second day, he reached Camp IV at 23,000 ft ; and on the third day, he reached the peak (26,876 ft.) in the company of Dr. Hebert Tichy.

In the history of mountaineering, Pasang Dawa Lama's achievement is a unique one. Diaries of the mountaineers are full of innumerable courageous deeds of the Sherpas. Their contribution to the achievements in the snow is too voluminous to be condensed in a short article. They opened new paths, conquered lofty peaks and on many occasions saved the lives of the mountaineers by their sacrifices. Their inherent efficiency, great courage and readiness for self-sacrifice deserve a glowing tribute in the history of mountaineering. Names like Tenzing Norgay, Tharkey, Pasang Kikuli, Pasang Dawa Lama, Ang Tharkay, Norbu, Tsiring, Nawang, Gombu, Fou Dorji and Ang Tshering can never be forgotton by the mountaineers who harken to the stirring call of the Himalayas.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

What shall we leave to them..

● *Winston J. Creado*

No more of rapture on the Rhododendron heights -
No more of questing thru the ageless snows
And summits of untrodden bliss -
Gone are the meadows of a thousand summers,
Gone are the monarchs of millennium girth,
And all the wind-spurred whispers
And the tumult and the songs
That thronged the forests of a million ferns...
All silenced in the heartless rasp
Of axe, and in the grate
And gash of plough – the precious spores
Of too many painful evolutions – now dispersed
In fuel smoke - cruel smoke
That wastes itself in faded dreams
And dim horizons - - -

Let us descend then,
Thru this sad dusking, down
The wildered pathway and
The wind - eroded steeps,
Past faltering rills and rifled rocks,
Whilst all around us, now, resound
The haunting cries of homeless birds -
Forever homeless in their hills - their own,
Once - verdant hills - - -
Let us go down,
And think, as we descend :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

What shall we gift unto our progeny -
Our own beloved children - got
Or misbegot in lust or love -
What shall we grant them for their wondering eyes ?

How shall we soothe their hour of rest ?
How recompense their toiling years ?
And what songs shall we leave
To greet their wakening ears
In all that rifled dawn ?

Will this be then our legacy
Of love to them for all eternity ?

This sad succession of a sere spring -
This strange silence in the empty hills
This twisted shadow of the lopped
And leafless trunk ?

This burning legacy - this barren testament,
Of all that we received in trust
From our forebears ?

To joy in, and to begueath
Unsquandered, down the line - - ?
No more to give them - only a breath
Of gention memories
In all these handfuls of the wind blown dust - - -

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The Rape

● *Winston J. Creado*

Do you not hear the cry
Ascending from these ravaged hills ?
They cry out in their nakedness -
Oh you have stripped from me
My chaste coverlet
Of leaf and bud and flower and brook
And bird - sustaining branch !
O you ! ungrateful man-you have despoiled -
Struck at the root of your own sustenance and birth ! !
Yes, you have raped your own most beauteous
And bounteous Mother - Earth !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The Publishers are higly grateful to the commercial concerns for the following complimentary advertisements, which considerably helped to meet the printing expenses of this book.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'स्थावराणां हिमालय :'

—गीता

WITH BEST COMPLIMENTS FROM

The Surat Cotton Spg. & Wvg. Mills Pvt. Ltd.

MAFATLAL CENTRE, NARIMAN POINT

BOMBAY 400 021

Gram : "SUWEAVE" Phone : 231823
Telex : MGMC IN 11 4240-4241

With best compliments from

Masturlal Chunilal & Co.

(BOMBAY)

Direct Importers and Manufacturers' Agents
of Machineries, Chemicals &
Stores for all Industries.

"Shreyas Building," 1st floor
180 Madame Cama Road
Nariman Point
Bombay 400 020.
Tel : 241039/241021

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

TCI'S Holiday Packages

21 day TCI TOUR TO EUROPE & U.K.
For Rs. 15,500/-

27 day TCI COAST TO COAST TOUR TO U.S.A. For Rs. 16,350/-

30 day TCI TOUR TO EUROPE & AMERICA For Rs. 18,800/-

20 day TCI TOUR TO S.E. ASIA & JAPAN
For Rs. 15,500/-

32 day TCI ROUND THE WORLD TOUR
For Rs. 23,999/-

TCI

Travel Corporation (I) PvtLtd.

Chander Mukhi, Nariman Point,

BOMBAY—400 021.

Phone : 231881

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे हिमाद्रि, देवतात्मा, शैले शैले आजिओ तोमार
अभेदांग हरगौरी आपनारे येन बारम्बार
शृंगे शृंगे विस्तारिया धरिछेन विभिन्न मूरति

-रवीन्द्र नाथ टैगोर

With best compliments from

Siesta Steel Construction Pvt. Ltd.

401, Lotus House

SIR V. THAKKERSEY MARG

BOMBAY—400020

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा हो या रंक, बूढा हो या जवान, पुरुष हो या स्त्री, हर एक यह अनुभव करता है कि जीवन में अधिक नहीं तो कम से कम एक बार तो हिमालय के दर्शन अवश्य किये जायं, हिमालय का अमृत सा जल पिया जाय और हिमालय की विशाल शिला पर बैठकर क्षणभर ईश्वर का ध्यान किया जाय।

—काका साहब कालेलकर

With best Compliments
from

A WELL WISHER

WITH BEST COMPLIMENTS
OF

V. K. ENGINEERING
&
PLASTIC INDUSTRIES

Office :

Building No. 9, Block No. 4
Sona Udyog Industrial Estate
Adheri (E), Bombay-400069
Phones—561403 & 575364

Factory :

19-25 S. U. Industrial Estate
Andheri (E), Bombay-400069

Leading manufacturers of LDPE Films, LDPE Milk Pouch Film, HDHM film etc.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देख यज्ञ सामग्री का घर
उसे धरा धारण में सक्षम,
विधि ने उसे यज्ञ भागी कर
दिया नगाधिप का पद उत्तम ।

—महादेवी वर्मा

WITH BEST COMPLIMENTS
of

Phones : 311358
316680

H. R. TRADERS
Laxmi Bhavan, 158/164 Fotalwadi No. 1
Kalbadevi Road, Bombay-400002
Leading Dealers in all kind of Plastics

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा
यस्य समुद्र रसया सहाहु :
(ऋग्वेद १०-१२१-४)

WITH BEST COMPLIMENTS FROM

M. M. SANGHVI & Co.

43, READYMONEY MANSION

3rd, Floor. Veer Nariman Road, **Fort,**

Bombay--400 001

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुण्यतीर्थ प्राचीन हिमालय,
पावन तपोवनों से शोभित
जहां साधुजन आते, आत्मिक शांति खोजने
तत्व लाभ हित ।

—सुमित्रा नन्दन पंत

WITH BEST COMPLIMENTS FROM

DAMJI SHAMJI & Co.

ENGINEERS AND BUILDERS

Ghatkopar Office :
Meghdoot, Vallabhbaugh Lane
Ghatkopar (East)
Bombay-400077

Bombay Office :
Damji Shamji Bhavan
288 Narshi Natha Street
Bombay-400009

Phones : Office : 327899, 338852
Ghat. Office : 679246
Res. : 673701

पूर्व और पश्चिम सागर तक
भू के मानदण्ड-सा विस्तृत,
उत्तर दिशि में दिव्य हिमालय
गिरियों का अधिपति है शोभित ।

—महादेवी वर्मा

WITH BEST COMPLIMENTS FROM

Kailash Textile Mills

11 LADWADI, 1st FLOOR

OLD HANUMAN ROAD

BOMBAY—400 002

Phones :

Off. 252944, 257320 Resi. : 594750,505713

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Telegram : 25359 Phone : Works 8616 Resi. 25359

The Kathiawar Welding & Repairing Works

Electric Arc and Oxy-Acetylene Welding, Engineers & Boiler Repairers

Stockists & Suppliers : **Boiler Paints & Descaling Chemicals**

Works : Near S.T. Work Shop, Gondal Road, Rajkot-2

Office : 'Bala Bhuvan', Opp. Kapad Mill, Karansinhji Road, Rajkot-360001 (Saurashtra)

Repairers to : Steam Boilers

WELDING, PATCHING, RIVETTING, TIPPET RINGS

*

Turning & Grading Water Tube Boiler Hader Seat by Machine

*

Welding Products :

Such as Autoclaves, Tanks Steam Pipes, Ammonia and Condenser coils for Ice-Plant

*

Consultants :

Boilers, Boiler erections & all sorts of Steam Fittings

SWASTIK CLOTH MAKING UP MACHINES

OUR SPECIALITIES

1. Single Folding Machine (with Batch Unwinding Device).
2. Combined Double Folding and Plaiting Machine.
3. Combined Double Folding and Plaiting or Rolling Machine. (Rolling on Card Board wooden frame or wooden stick).
4. Single Roll Folding Machine (Rolling on Card Board, Wooden frame or Wooden stick).
5. Selvedge Printing Machine, to be synchronised with the folding machine or with plaiting device.
6. Cloth Stamping Machine.
7. Cloth Inspection Machine.
8. Big Batching Machine.

Now more than 2000 'SWASTIK' Cloth Making-up Machines are working in 500 leading Textile Mills all over India and abroad.

Manufactured by :

SWASTIK ENGINEERING AND MANUFACTURING CO. PVT. LTD.

Bahucharaji Road, VADODARA-390 018

Tel. No. : 58331, 58079 **Grams : 'SIMCO',**

Telex : 175 448 SMCO

—: BOMBAY OFFICE :—

'EVEREST' G-16, 8th Floor, Tardeo Road, BOMBAY-400 034.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैलास शिखरामासा हिमवद् गिरि संस्थिता :

नीलकंठ त्रिनेत्रं च तन्मे मनः शिव संकल्प मस्तु,

(ऋ./ग्र. ४/खिल, ११/२५)

WITH BEST COMPLIMENTS FROM

MAHADEVIA SERVICES

19/2 Prabhadevi Industrial Estate

Veer Savarkar Marg

Bombay—400028

WITH BEST COMPLIMENTS

of

LMS MARKETING PVT. LTD.

BOMBAY MUTUAL ANNEXE

17 Gunbow Street

Fort, Bombay-1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

WITH BEST COMPLIMENTS

OF

VIGUNI

ENTERPRISES

कैलाश शिखरे रम्ये शंकरस्यः शुभे गृहे
देवता स्तत्र मोदन्ति तन्मे मनः शिव संकल्प मस्तु ।

(ऋ./अ.४/खिल, ११/२४)

With best compliments from

Mahadevia Plastics

79, Nagindas Master Road

Bombay 400 023

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वनाम धन्य परम पूज्य
श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज
तथा उनके मनीषी शिष्यों के
गहन अध्ययन, मनन, चिन्तन तथा
स्वानुभव के आधार पर
अंग्रेजी तथा हिन्दी में लिखी गयी कतिपय
लोकप्रिय, रोचक तथा ज्ञानप्रद
आध्यात्मिक हिन्दी पुस्तकें

* जीवन में सफलता के रहस्य
* भक्तियोग साधना
* ब्रह्मचर्य—साधना
* जपयोग
* प्राणायाम—साधना
* मरणोत्तर जीवन और पुनर्जन्म
* मानसिक शक्ति
* महान् जीवन की पथप्रदर्शिका
* ज्योतिपथ की ओर
* नये समाज की दिशा
* समाज-परिवर्तन के शाश्वत मूल्य
* मुक्ति—पथ

सम्पूर्ण हिन्दी तथा अंग्रेजी की महत्व-पूर्ण तथा उपयोगी पुस्तकों के सूचीपत्र के लिए कृपया सम्पर्क करें:

❀ दिव्य जीवन संघ ❀

शिवानन्द - प्रकाशन - संस्थान
पो० शिवानन्दनगर—२४९ १९२,
जिला टिहरी-गढ़वाल, उत्तर-प्रदेश, हिमालय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Library
Any Other
ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar